अथर्ववेद संहिता

[सरल हिन्दी भावार्थ सहित]

भाग-२

[काण्ड ११ से २०तक]

सम्पादक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

प्रकाशक

ब्रह्मवर्चस्

शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उ. प्र.)

पंचम आवृत्ति] २००२ [१००रुपये

ॐ

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्र चोदयन्तां
पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं
प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्त्वा व्रजत
ब्रह्मलोकम्॥

हम साधकों द्वारा स्तुत (पूजित) हुई,
अभीष्ट फल प्रदान करने वाली
वेदमाता (गायत्री)
द्विजों को पवित्रता और प्रेरणा प्रदान करने वाली हैं।
आप हमें दीर्घ जीवन प्राणशक्ति, सुसन्तति, श्रेष्ठ पशु (धन),
कीर्ति, धन- वैभव और ब्रह्मतेज प्रदान करके
ब्रह्मलोक के लिए
प्रस्थान करें।

(अथर्व० १९।७१।१)

*

॥ अथैकादशं काण्डम् ॥

[१-ब्रह्मौदन सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- ब्रह्मौदन । छन्द- त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुब्गर्भा भुरिक् पंक्ति, २,५ बृहतीगर्भा विराट् त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पदा शाक्वरगर्भा जगती, ४, १५-१६,३१ भुरिक् त्रिष्टुप्, ६ उष्णिक्, ८ विराट् गायत्री, ९ शक्वरातिजागतगर्भा जगती, १० विराट् पुरोऽतिजगती विराट् जगती, ११ जगती, १७, २१, २४-२६, ३७ विराट् जगती, १८ अतिजागतगर्भा पराऽतिजागता विराट् अतिजगती, २० अतिजागतगर्भा परशाक्वरा चतुष्पदा भुरिक् जगती, २७ अतिजागतगर्भा जगती, २९ भुरिक् विराट् जगती, ३५ चतुष्पदा ककुम्मती उष्णिक्, ३६ पुरोविराट् त्रिष्टुप्]

सूक्त क्र. ४. ३४ की तरह इस सूक्त के भी देवता ब्रह्मौदन हैं। इसके ऋषि भी ब्रह्मा (सृजेता देव) हैं। ब्रह्मौदन 'यज्ञ' से संस्कारित पक्व अन्न को कहते हैं। उस अन्न से अन्नमय कोश (स्थूल शरीर) के जो सूक्ष्म कोश (सैल) बनते हैं, वे यज्ञीय प्रवृत्तियुक्त होते हैं। यह सृष्टि भी यज्ञीय संस्कार युक्त है। इसके सूक्ष्मतम कणों को बनाने के लिए जो अन्न (उपकरण-सब पार्टिकल्स को) पकाया (उपयोग के लिए तैयार किया) गया था, वह भी यज्ञीय ब्रह्म के सुसंस्कारों से युक्त था, इसलिए उसे भी ऋषि 'ब्रह्मौदन' के रूप में देखते हैं। इसलिए यज्ञशाला में पकाये गये अन्न के अतिरिक्त जिसे देवमाता अदिति (मन्त्र क्र.१) ने पकाया, ऐसा वह ब्रह्मौदन सृष्टि के सृजन में प्रयुक्त सूक्ष्म अन्न (ऊर्जा एवं पदार्थ के बीच की स्थिति वाला कोई तत्त्व) ही हो सकता है-

२९८७. अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।

सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप प्रकट हों । यह अदिति (देवमाता) सुसन्तति की कामना करती हुई ब्रह्मौदन (हविष्यान्न) पकाती हैं । अतीन्द्रिय शक्ति सम्पन्न सप्तर्षि जो प्राणियों को उत्पन्न करने वाले हैं, वे आप (अग्निदेव) को इस देवयजन कार्य में प्रजा (याजकों) के साथ मंथन क्रिया द्वारा उत्पन्न करें ॥१ ॥

[लौकिक सन्दर्भ में बच्चों में यज्ञीय संस्कार पैदा करने की इच्छुक माता ब्रह्मौदन पकाती हैं। सूक्ष्म सन्दर्भ में अदिति (अ + दिति = अखण्ड ब्राह्मी चेतना) सृष्टि उत्पादक सूक्ष्म कणों को पकाती तैयार करती हैं। सूक्ष्म संदर्भ में सप्त ऋषि प्राण की सात दिव्य धाराएँ हैं। वे मन्थन द्वारा यज्ञीय संस्कार उत्पन्न करने वाले अग्नि को प्रकट करते हैं ।]

२९८८. कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।

अयमग्निः पृतनाषाद् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥२ ॥

हे सामर्थ्य सम्पन्न मित्रो (ऋत्विजो) ! आप मंथन द्वारा अग्नि को उत्पन्न करें । ये अग्निदेव द्रोहरहित साधकों के संरक्षक हैं, शत्रुओं (कुसंस्कारों) की सेना को पराजित करने वाले उत्तम वीर हैं, जिनके द्वारा देवों ने दस्युओं को वशीभूत किया ॥२ ॥

२९८९. अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।

सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥३ ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! आप महान् पराक्रम के लिए उत्पन्न होते हैं । ज्ञानवर्धक अन्न (ब्रह्मौदन) पकाने के लिए, प्राणियों के उत्पादक सप्तर्षियों ने आपको प्रकट किया है, अतः इस माता को वीर भावों से सम्पन्न सुसन्तति प्रदान करें ॥३ ॥

२९९०. समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः ।
तेभ्यो हविः श्रपयञ्जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! समिधाओं से प्रदीप्त होकर आप यज्ञीय देवों को लेकर यहाँ पधारें । हे ज्ञान सम्पन्न अग्ने ! आप देवताओं के लिए हविष्यान्न पकाते हुए देहावसान के अनन्तर इसे (यजमान को) श्रेष्ठ स्वर्ग में प्रतिष्ठित करें ॥४ ॥

२९९१. त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम् ।
अंशाञ्जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥५ ॥

जो देवताओं, पितरगणों और मनुष्यों के तीन प्रकार के भाग पहले से स्थापित करके रखे गये हैं , हम उन्हें विभाजित करके समर्पित करते हैं । आप अपने-अपने अंश के अभिप्राय को जानें, इनमें जो देवों का अंश है, वही अग्नि में आहुति रूप में समर्पित होकर, इस यजमान पत्नी (देवमाता अदिति) को पार करें, (इष्ट - लक्ष्य तक पहुँचाएँ) ॥५ ॥

२९९२. अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान् ।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप बलशाली और शत्रुओं के पराभूतकर्ता हैं । अतः विद्वेषी शत्रुओं को अधःपतित करें । हे यजमान ! यह परिमित परिमाण में मापी हुई शाला (यज्ञशाला) आपके सजातीय वीरों को आपके लिए द्रव्य भेंट करने वाला बनाए ॥६ ॥

२९९३. साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय ।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥७ ॥

हे याजक ! आप साथ जन्मे हुए साथियों के साथ वृद्धि को प्राप्त हों, उच्च पराक्रमी कार्य के लिए इसे (ब्रह्मौदन को) तैयार करें । उस लोक में आरोहण करें, जिसे स्वर्गलोक कहा गया है ॥७ ॥

२९९४. इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥८ ॥

यह विस्तृत देवी स्वरूपा पृथ्वी शुभसंकल्पों से युक्त होकर, चर्मरूपी (त्वचारूपी) ढाल अपने संरक्षण के लिए धारण करे । जिससे हम पुण्यलोक को प्राप्त करें ॥८ ॥

[यज्ञीय प्रक्रिया से पृथ्वी का रक्षक कवच पुष्ट होता है, इससे हमें पुण्य, हितकारी, वातावरणयुक्त लोक (क्षेत्र) प्राप्त होता है ।]

२९९५. एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु ।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ॥९ ॥

हे ऋत्विक् ! इन साथ-साथ रहने वाले दोनों ग्रावाओं (सोम निष्पादक उपकरण) को पृथ्वी की त्वचा पर रखें । यजमान के निमित्त सोमरस को कूटकर निकालें । जो इस स्त्री (अदिति) पर आक्रमण करते हैं, उन्हें विनष्ट करें । (हे अदिति !) सोमरस निचोड़ती हुई और भरण-पोषण करती हुई आप अपने प्रजाजनों को श्रेष्ठ पद पर स्थापित करें ॥९ ॥

[स्थूल एवं सूक्ष्म सोम निष्पादक उपकरण सोम निचोड़े, अदिति (प्रकृति या पृथ्वी) का सन्तुलन बिगाड़ने वाले नष्ट हों । यह अदिति सोम प्रवाहों द्वारा प्रजा को पुष्ट एवं उन्नत बनाए ।]

२९९६. गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमां स्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥१० ॥

हे वीर ऋत्विक् ! आप अपने हाथों में ग्रावाओं को धारण करें । पूजनीय देवता आपके यज्ञ में पधारें । हे यजमान ! आप जिन तीनों वरों की याचना करना चाहते हैं, उन्हें मैं यज्ञ द्वारा सिद्ध (पूर्ण) करता हूँ ॥१० ॥

२९९७. इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥११ ॥

(हे अग्निदेव !) यह आपकी धारण शक्ति है और यह जन्म की प्रक्रिया है । शूरों की माता अदिति आपको ग्रहण करें । वीरों की सेना वाली इस देवी को जो कष्ट दें , उन्हें दूर हटा दें और इसे वीरों से समृद्ध करें ॥

२९९८. उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥१२ ॥

हे यज्ञकामिन् (याजको या अन्नकणो) ! आप जीवन यात्रा के लिए स्थित हों । तुषों (विकारों) को अलग करें तथा समान प्रकार के अन्यों से श्रेष्ठ बनें । विद्वेषियों को हम पद दलित करें ॥१२ ॥

२९९९. परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय ।
तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥१३ ॥

हे नारी !(नेतृत्व क्षमता सम्पन्न स्त्री या मंत्रशक्ति) आप दूर जाकर शीघ्र लौटें । आपको गोष्ठों (गौ या किरणों के स्थान) पर जल की आपूर्ति के लिए पहुँचाया जा रहा है । वहाँ से यज्ञीय जल- अंशों को ग्रहण करें तथा बुद्धिपूर्वक शेष (अनुपयोगी) जल अंशों को छोड़ दें ॥१३ ॥

[लौकिक सन्दर्भ में ब्रह्मौदन पाक के लिए शुद्ध जल लाया जाए तथा सूक्ष्म प्रक्रिया में यज्ञीय मंत्र शक्ति द्वारा अन्तरिक्ष से श्रेष्ठ प्रवाहों का अवतरण हो ।]

३०००. एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ॥१४ ॥

ये देवियाँ सुसज्जित होकर आ गयी हैं । आप उठें और पराक्रम प्रारंभ करें । स्वामियों में श्रेष्ठ स्वामी वाली तथा संतानों में श्रेष्ठ संतान वाली (हे स्त्री !) तुम्हें यज्ञ की प्राप्ति हुई है । इस कुम्भ (पूरित करने वाले पात्र) को स्वीकार करें ॥१४ ॥

३००१. ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः ।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ॥१५ ॥

हे जलदेवो ! आपके शक्तिप्रद भाग पहले से निश्चित किये गये हैं, ऋषियों के निर्देश से उन्हें ही भरकर यहाँ लाएँ । आपके निमित्त सम्पन्न होने वाला यह यज्ञ पथप्रदर्शक, ऐश्वर्यवर्धक, सुप्रजाप्रदायक, पराक्रमवर्धक, गौ, अश्वादि पशु प्रदान करने वाला तथा वीर सन्ततियों को प्रदान करने वाला हो ॥१५ ॥

३००२. अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसङ्गत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥१६ ॥

हे अग्ने ! यज्ञ के लिए उपयुक्त, पवित्र और तपः सामर्थ्य से सम्पन्न अन्न (चरु) उपलब्ध हुआ है, अतएव आप इसे अपनी ऊष्मा से प्रतप्त करें । ऋषि और देवगण भी इसे तपाएँ और ऋतुओं के अनुकूल बनाएँ ॥१६ ॥

३००३. शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।

अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥१७ ॥

पवित्र किये गये, शुद्ध और मिश्रित करने वाले यज्ञ के योग्य यह शुभ्र वर्णयुक्त जल, चरुस्थाली में प्रवेश करे । यह जल हमें सुसन्तति और श्रेष्ठ पशु प्रदान करे । ब्रह्मौदन (ज्ञान सम्पन्न पोषक प्रवाह) के पाचक (पकाने वाले) यजमान पुण्यलोक को प्राप्त करें ॥१७ ॥

३००४. ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।

अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ॥१८ ॥

मंत्र से पवित्र और घृतादि से पके हुए दोषरहित ये चावल सोम के अंश स्वरूप हैं । अतएव हे यज्ञीय तण्डुलो ! तुम चरुस्थाली में स्थित जल में प्रवेश करो । ब्रह्मौदन (ज्ञान सम्पन्न पोषक प्रवाह) के पाचक (पकाने वाले) यजमान स्वर्गलोक को प्राप्त करें ॥१८ ॥

३००५. उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।

पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥१९ ॥

(हे ब्रह्मौदन !) आप बढ़ें और महत्ता प्राप्त करके फैल जाएँ । हे सहस्रपृष्ठ (हजारों आधार वाले) !आप पुण्यलोकों में प्रविष्ट हों । पितामह, पिता, संतानों, उनकी संतानों के क्रम में आपको पकाने वाला मैं पन्द्रहवाँ हूँ ॥

[स्थूल अर्थों में यज्ञ एवं ब्रह्मौदन पाक का क्रम पन्द्रह पीढ़ियों से चलते आने का भाव है । सूक्ष्म संदर्भ से ब्रह्मौदनरूपी सूक्ष्म उपकरणों का परिपाक चौदह भुवनों में अपने-अपने ढंग से हुआ है । इस भूमण्डल में हम उसे अपनी आवश्यकता के रूप में पकाने वाले पन्द्रहवें हैं ।]

३००६. सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।

अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव ॥२० ॥

हे यजमान ! यह सहस्रपृष्ठ और सैकड़ों धाराओं वाला ब्रह्मौदन देवयान मार्ग से स्वर्ग प्रदायक है । इसे मैं आपके लिए धारण करता हूँ । इन्हें संतान के साथ संयुक्त कर देने के लिए प्रेरित करें और हमें सुखी करें ॥२० ॥

३००७. उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।

श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥२१ ॥

(यज्ञदेव) वेदिका के ऊपर उदय हों, इसे (ब्रह्मौदन) ऊर्ध्वगति दें । शत्रुओं को नष्ट करें । इसको विशेष रूप से धारण करें । हम सभी समानतायुक्त पुरुषों की तुलना में श्रेष्ठ बनें तथा विद्वेषी शत्रुओं को पददलित करें ॥

३००८. अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि ।

मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ॥२२ ॥

हे ज्ञानसम्पन्न ओदन ! आप इस भूमि को प्राप्त हों, देवताओं सहित इसके साथ मिल जाएँ । आपको शाप न लगे और बाधक अभिचार प्रभावित न करे । आप अपने निवास क्षेत्र में नीरोग रहकर प्रकाशित हों ॥२२ ॥

३००९. ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।

अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥२३ ॥

यज्ञ से बनी तथा मन से स्थापित यह ब्रह्मौदन की वेदिका सामने प्रतिष्ठित है । उस पर स्थाली स्थापित करके उसमें देवताओं के लिए अन्न तैयार करें ॥२३ ॥

३०१०. अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन्।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु ॥२४ ॥

प्राणिमात्र के स्रष्टा सप्तर्षियों ने देवमाता अदिति के दूसरे हाथ के रूप में स्रुवा को बनाया है। यह स्रुवा ओदन के पक्व भाग को जानती हुई वेदिका के मध्य ज्ञाननिष्ठ ओदन की स्थापना करे ॥२४ ॥

३०११. शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्र सीद।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥२५ ॥

तैयार हुए यज्ञ योग्य ओदन के समीप पूजनीय देवगण पधारें। हे ओदन ! आप अग्नि से बाहर आकर पुनः इन देवों को प्रसन्न करें। सोमरस से पवित्र होकर ब्रह्मनिष्ठों के उदर में प्रवेश करें। आपको ग्रहण करने वाले ऋषिगण दुखी न हों ॥२५ ॥

३०१२. सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान्।
ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥२६ ॥

हे राजा सोम ! जो ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण आपके समीप बैठे हैं, उन्हें श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करें। हम उन आर्षेय ऋषियों को ब्रह्मौदन के लिए बार-बार आवाहित करते हैं ॥२६ ॥

३०१३. शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥२७ ॥

शुद्ध, पापरहित और दूसरों को पावन बनाने वाले यज्ञीय जल को विप्रजनों के हाथों पर छोड़ते हैं। हे जल ! जिस अभिलाषा से हम तुम्हारा अभिषिञ्चन करते हैं, उस अभीष्ट को मरुद्‌गणों के साथ इन्द्रदेव हमें प्रदान करें ॥२७ ॥

३०१४. इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥२८ ॥

यह स्वर्ण अमर ज्योतिरूप है और खेत से प्राप्त यह शुद्ध ओदन (परिपक्व अन्न) कामधेनु के समान है, जिसे हम दक्षिणा स्वरूप ज्ञानियों को प्रदान करते हैं। यह स्वर्ग में असंख्य गुना बढ़े। इससे हम पितरों के स्वर्गलोक का मार्ग प्रशस्त करते हैं ॥२८ ॥

३०१५. अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्‌ढि दूरम्।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥२९ ॥

इस अन्न के तुषों (विकारों) को जातवेदा अग्नि में डाल दें, छिलकों को दूर फेंकें। यह (अन्न) सद्‌गृहस्थ के गृह का अंश है, ऐसा हमने सुना है। यह अतिरिक्त निर्ऋति देवता का भाग है, ऐसा हम जानते हैं ॥२९ ॥

३०१६. श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम्।
येन रोहात् परमापद्य यद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ॥३० ॥

हे ज्ञानयुक्त ओदन ! आप तप साधना करने वाले और सोमरस का अभिषवण करने वाले याजकों को समझें तथा स्वर्ग पथ की ओर इन्हें प्रेरित करें। दुःखों से रहित जो परम उत्कृष्ट स्वर्ग नामक अन्तरिक्ष है, उनमें ये यजमान उत्तम श्येनपक्षी की तरह, जिस प्रकार भी हो, ऊपर आरोहण कर सकें, ऐसा प्रयत्न करें ॥३० ॥

३०१७. बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान्।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥३१ ॥

हे अध्वर्यु ! इस पोषक ओदन के ऊपरी भाग को भली प्रकार शुद्ध करें, तदुपरान्त ओदन के मध्य घृतसिंचन के लिए गर्तरूप स्थान बनाएँ तथा सभी अवयवों को घृत से सींचें । जो मार्ग पितरगणों के समीप स्वर्ग में ले जाता है, ओदन के माध्यम से हम उसी का निर्माण करते हैं ॥३१ ॥

३०१८. बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान्।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥३२ ॥

हे ब्रह्मौदन ! जो अब्राह्मण (ब्रह्मवृत्ति से विरत) तुम्हारे निकट (सेवन करने के उद्देश्य से) आएँ, उनमें से अहंकारी राक्षसों को दूर कर दें । आपका सेवन करने वाले अन्नार्थी यशस्वी ऋषिगण कभी विनष्ट न हों ॥३२ ॥

३०१९. आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥३३ ॥

हे ओदन ! हम आपको ऋषि पुत्रों में स्थापित करते हैं, अनार्षेयों के भाग इसमें नहीं हैं । अग्निदेव और मरुद्‌गण इसके संरक्षक हैं तथा सम्पूर्ण देवगण भी इस परिपक्व ज्ञान ब्रह्मौदन का चारों ओर से संरक्षण करें ॥३३ ॥

३०२०. यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम्।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥३४ ॥

यह ब्रह्मौदन यज्ञों का उत्पादक होने से सदैव प्रवृद्ध करने वाला, धारणकर्त्ता एवं सम्पत्ति का घर है । हे ज्ञाननिष्ठ ओदन ! हम आपके द्वारा पुत्र-पौत्रादि प्रजा की पुष्टि, दीर्घायु और धन-सम्पदा प्राप्त करें ॥३४ ॥

३०२१. वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥३५

हे अभीष्टपूरक ओदन ! आप स्वर्गलोक को प्रदान करने वाले हैं । अतः आप हमारे द्वारा प्रदत्त किये जाने पर आर्षेय ऋषियों को प्राप्त हों। तत्पश्चात् पुण्यात्माओं के स्वर्गधाम में स्थित हों। वहाँ हम दोनों का (भोक्ता-भोक्तव्यात्मक) संस्कार निष्पन्न होगा ॥३५ ॥

३०२२. समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान्।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥३६ ॥

हे ओदन ! आप सुसंगत होकर गंतव्य स्थल में जाएँ । हे अग्निदेव ! आप देवयानमार्ग की रचना करें । हम भी पुण्यकर्मों के प्रभाव से सप्त किरणों से युक्त (दुःख रहित) स्वर्गलोक में स्थिर रहने वाले यज्ञ का अनुकरण करते हुए वहाँ पहुँचें ॥३६ ॥

३०२३. येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥३७ ॥

जिस ज्ञानयुक्त अन्न (ब्रह्मौदन) द्वारा इन्द्रादि देवता देवयान मार्ग से स्वर्गलोक में गये हैं, हम भी उसी ब्रह्मौदन को पकाकर स्वर्गारूढ़ होकर श्रेष्ठ लोक को प्राप्त करें ॥३७ ॥

[२- रुद्र सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- रुद्र । छन्द- अनुष्टुप्, १ परातिजागता विराट् जगती, २ अनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदा विराट् जगती, ३ चतुष्पदा स्वराट् उष्णिक्, ६ आर्षी गायत्री, ८ महाबृहती, ९ आर्षी त्रिष्टुप्, १० पुरः कृति त्रिपदा विराट् त्रिष्टुप्, ११ पञ्चपदा विराट् जगतीगर्भा शक्वरी, १२ भुरिक् त्रिष्टुप्, १४, १७-१९, २३, २६, २७ विराट् गायत्री, २० भुरिक् गायत्री, २२ त्रिपदा विषमपादलक्ष्मा महाबृहती, २४, २९ जगती, २५ पञ्चपदा अतिशक्वरी, २८ त्रिष्टुप्, ३० चतुष्पदोष्णिक्, ३१ त्र्यवसाना षट्पदा विपरीतपादलक्ष्मा त्रिष्टुप्।]

३०२४. भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम्।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥१ ॥

हे भव और शर्व देवो ! आप दोनों हमें सुखी करें । संरक्षणार्थ हमारे सम्मुख रहें । हे प्राणियों के पालक एवं पशुपति ! आप दोनों को नमन है । आप अपने धनुष पर चढ़ाए और खींचे गए बाण को हमारे ऊपर न छोड़ें आप हमारे द्विपादों- चतुष्पादों का विनाश न करें ॥१ ॥

३०२५. शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः ।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥२ ॥

हे संहारकारी देवो ! आप दोनों हमारी देहों को कुत्ते, गीदड़, मांसभक्षी गिद्धों और काले तथा हिंसक कौए इत्यादि के लिए काटने हेतु न दें, मक्खियाँ और पक्षी खाने के लिए इन कटे हुए शरीरों को न पाएँ ॥२ ॥

३०२६. क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः । नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥३

हे सर्व उत्पादक (भव) देव ! आपके क्रन्दन रूप शब्द और प्राण वायु के लिए हम प्रणाम करते हैं । आपके मोह- माया की ओर प्रेरित करने वाले शरीरों को प्रणाम है । हे अविनाशी रुद्रदेव ! हजारों नेत्रों से युक्त आपके प्रति हमारा प्रणाम है ॥३ ॥

३०२७.पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत । अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥

हे रुद्रदेव ! हम आपके प्रति पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशा में नमस्कार करते हैं । अन्तरिक्ष मण्डल के मध्य सर्व नियन्तारूप में स्थित हम आपको प्रणाम करते हैं ॥४ ॥

३०२८. मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव । त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः।

हे पशुपालक, भवदेव ! आपके मुख, आँखों, त्वचा और नील, पीत आदि वर्ण के लिए प्रणाम है । आपकी समानतायुक्त दृष्टि और पृष्ठ भाग के लिए नमस्कार है ॥५ ॥

३०२९. अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते । दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥६ ॥

हे पशुपतिदेव !आपके उदर, जिह्वा, मुख, दाँत, घ्राणेन्द्रिय तथा अन्य अंगों के लिए हमारा नमस्कार है ।

३०३०.अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना । रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि

नील केशधारी, सहस्र नेत्रयुक्त, तीव्रगति वाले, अर्द्धसेना के विनाशक, रुद्रदेव से हम कभी पीड़ित न हों ॥७ ॥

३०३१. स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः ।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥८ ॥

उत्पत्तिकर्त्ता भवदेव सभी प्रकार के कष्टों से हमें मुक्त करें । जिस प्रकार अग्निदेव जल का परित्याग कर देते हैं, वैसे ही रुद्रदेव हमें मुक्त रखें । वे हमें किसी प्रकार का कष्ट न दें । उन भवदेव को हम प्रणाम करते हैं ॥८ ॥

३०३२. चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दश कृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९ ॥

हे शर्वदेव ! आपके लिए चार बार तथा हे भवदेव ! आपके लिए आठ बार नमस्कार है । हे पशुपते ! आपके लिए दस बार प्रणाम है । ये गौ, घोड़े, भेड़, बकरी और पुरुष आदि आपके आश्रित हैं ॥९ ॥

३०३३. तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्व१न्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥१० ॥

हे प्रचण्ड बलशाली रुद्रदेव ! ये चारों दिशाएँ आपकी ही हैं । ये स्वर्गलोक, पृथ्वी और विशाल अन्तरिक्ष भी आपके ही शरीर हैं । पृथ्वी में जीवन प्रक्रिया आपके ही अनुशासन में चलती है । अतएव सभी पर अनुग्रह करने के लिए आप ही वन्दनीय हैं ॥१० ॥

३०३४. उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः । स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥११ ॥

हे पशुपालक रुद्रदेव ! जिसमें ये सम्पूर्ण लोक स्थित हैं, वे वसुओं के निवास रूप, विश्वरूप (अण्डकटाहात्मक) विशाल कोश आपके ही हैं । ऐसे आप हमें सुख प्रदान करें, आपके लिए हमारा नमस्कार है । मांसभोजी सियार और कुत्ते आदि सभी हमसे दूर रहें । अमंगलकारी शब्दों से रोने वाली, बालों को खोलकर चिल्लाने वाली पैशाचिक वृत्तियाँ हमसे दूर अन्यत्र चली जाएँ ॥११ ॥

३०३५. धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥१२ ॥

हे रुद्रदेव ! आपका सुवर्णमय धनुष एक बार के प्रयास से हजारों जीवों को समाप्त कर देता है, ऐसे शिखण्डों से युक्त धनुष को प्रणाम है । यह देवों का आयुध जिस दिशा में भी हो, उसी ओर उसे हमारा नमन है ॥

३०३६. यो३भियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥१३ ॥

हे रुद्रदेव ! जो पलायन कर जाता है और छिपकर आपको हानि पहुँचाना चाहता है । आप घायल पदान्वेषी की तरह खोजकर उसका वध कर देते हैं ॥१३ ॥

३०३७. भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥१४ ॥

भव और रुद्रदेव समान मतिवाले हैं । वे प्रचण्ड पराक्रमशाली अपना शौर्य प्रदर्शन करते हुए सर्वत्र विचरण करते हैं । वे जिस दिशा में विद्यमान हों, उसी ओर उन्हें हमारा नमस्कार है । ।१४ ॥

३०३८. नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते । नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥

हे रुद्रदेव ! हमारे समक्ष आते हुए, वापस जाते हुए, बैठे हुए और खड़े होने, सभी स्थितियों में आपके प्रति हमारा नमस्कार है ॥१५ ॥

३०३९. नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥१६ ॥

हे रुद्रदेव ! प्रातः, सायं, रात्रि और दिन सभी कालों में आपके प्रति हमारा प्रणाम है। भव और शर्व दोनों देवों के प्रति हम नमस्कार करते हैं ॥१६ ॥

३०४०. सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम्।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥१७ ॥

हजारों नेत्रों से युक्त, अति सूक्ष्मद्रष्टा, पूर्व की ओर अनेक बाण छोड़ने वाले मेधावी और जिह्वा से सम्पूर्ण विश्व के भक्षणार्थ सर्वत्र संव्याप्त रुद्रदेव के समीप हमारा गमन न हो ॥१७ ॥

३०४१. श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम्।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥१८ ॥

अरुण वर्ण के अश्वयुक्त काले अपवित्र के मर्दक, उन भयंकर महाकाल को, जिन्होंने (केशी नामक राक्षस के) रथ को धराशायी किया था, उन्हें हम पहले से जानते हैं- वे हमारा प्रणाम स्वीकार करें ॥१८ ॥

३०४२. मा नोऽभि स्त्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ॥१९ ॥

हे पशुपतिदेव ! अपने आयुध हमारी ओर न फेंकें। आप हमारे ऊपर क्रोधित न हों, आपके प्रति हमारा नमस्कार है। अपने देवास्त्र को हमसे दूर फेंकें ॥१९ ॥

३०४३. मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः। मा त्वया समरामहि ॥

आप हमारी हिंसा न करें, हमें (अच्छे - बुरे के सम्बन्ध में) समझाएँ। हमारे ऊपर क्रोधित न होकर संरक्षण बनाये रखें। आपके प्रति कभी हमारा विरोध न रहे ॥२० ॥

३०४४. मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥२१ ॥

हे उग्रवीर ! आप हमारे गौ, मनुष्य, भेड़-बकरियों की कामना न करें। आप अपने शस्त्र को अन्यत्र देवहिंसकों की प्रजा पर छोड़कर उनका विनाश करें ॥२१ ॥

३०४५. यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥२२ ॥

जिन रुद्रदेव के आयुध क्षय, ज्वर और खाँसी हैं, बलशाली घोड़े के हिनहिनाने के समान ही पूर्व लक्षित मनुष्य के प्रति जिनके आयुध जाते हैं, उन उग्र रुद्रदेवता के लिए हमारा नमस्कार है ॥२२ ॥

३०४६. योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून्।
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥२३ ॥

जो (रुद्रदेव) अन्तरिक्ष मण्डल में विराजमान रहते हुए यज्ञभाव से विहीन देवविरोधियों को नष्ट करते हैं, हम उन रुद्रदेव के लिए दसों शक्तियों (अँगुलियों) के साथ प्रणाम करते हैं ॥२३ ॥

३०४७. तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि।
तव यक्षं पशुपते अप्स्व१न्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥२४ ॥

हे पशुपतिदेव ! जंगली मृगादि पशु, हंस, गरुड़, शकुनि और अन्य वनचर पक्षी आदि आपके ही हैं;

आपका पूजनीय आत्मतेज अप् प्रवाहों में स्थित है, अतएव आपको अभिषिक्त करने के लिए ही दिव्य जल प्रवाहित होता है ॥२४ ॥

३०४८. शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि। न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् त्समुद्रे ॥२५ ॥

घड़ियाल, अजगर, कछुए, मछली और जलचर प्राणियों पर आप अपने तेज आयुधों को फेंकते हैं । हे रुद्रदेव ! आपकी सीमा से परे कुछ भी नहीं । आप सम्पूर्ण भूमण्डल को एक ही दृष्टि से देखने में समर्थ हैं । आप पूर्व और उत्तर समुद्रों तक में व्याप्त पृथ्वी पर आघात करते हैं ॥२५ ॥

३०४९. मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना । अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् ॥२६ ॥

हे रुद्रदेव ! आप ज्वरादि रोगों से हमें पीड़ित न करें, स्थावर और जंगम के विष से भी हमें बचाएँ । विद्युत् रूप आग्नेयास्त्र हमसे दूर किसी भिन्न स्थान पर गिराएँ ॥२६ ॥

३०५०. भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्व१न्तरिक्षम् । तस्मै नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥२७ ॥

भगदेव द्युलोक के अधीश्वर हैं और भू-मण्डल के स्वामी हैं । वे द्यावा-पृथिवी के मध्य विस्तृत अन्तरिक्ष लोक को भी अपने तेजस् से परिपूर्ण करते हैं । उत्पत्तिकर्त्ता देव यहाँ से जिस दिशा में हों, उसी ओर उन्हें हमारा नमस्कार है ॥२७ ॥

३०५१. भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ । यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥२८ ॥

हे उत्पत्तिकर्त्ता देवराज ! आप याज्ञिक यजमानों को सुखी करें, आप पशुओं के अधिपति हैं । जो श्रद्धालु मनुष्य इन्द्रादि देवों को संरक्षक मानते हैं, उनके द्विपाद और चतुष्पाद जीवों को सुख प्रदान करें ॥२८ ॥

३०५२. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः । मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥२९ ॥

हे रुद्रदेव ! आप हमारे शिशुओं, वृद्धों एवं समर्थ पुरुषों का संहार न करें । हमारे वीर पुरुषों को विनष्ट न करें । आप हमारे माता-पिता और शरीर को भी पीड़ित न करें ॥२९ ॥

३०५३. रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः । इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥

रुद्रदेव के प्रेरणायुक्त कर्मों में तत्पर प्रमथगणों और कटुभाषी गणों को हम नमस्कार करते हैं । मृगया विहार के निमित्त किरात वेशधारी भवदेव के विस्तृत मुख युक्त श्वानों को नमन करते हैं ॥३० ॥

३०५४. नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः । नमो नमस्कृताभ्यो नमः सम्भुञ्जतीभ्यः । नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ॥३१ ॥

हे रुद्रदेव ! आपकी विस्तृत घोषयुक्त शब्दों वाली, केशधारी, नमस्कारों से शोभित और संयुक्तरूप से भोजन ग्रहण करने वाली सेनाओं को प्रणाम है । हे देव ! आपकी कृपा से हमें मंगल और निर्भयता प्राप्त हो ॥३१ ॥

[३ - ओदन सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- बार्हस्पत्यौदन । छन्द- १,१४ आसुरी गायत्री, २ त्रिपदा समविषमा गायत्री, ३, ६, १० आसुरी पंक्ति, ४, ८ साम्नी अनुष्टुप्, ५, १३, १५, २५ साम्नी उष्णिक्, ७, १९-२२ प्राजापत्यानुष्टुप्, ९, १७, १८ आसुर्यनुष्टुप्, ११ भुरिक् आर्ची अनुष्टुप्, १२ याजुषी जगती, १६, २३ आसुरी बृहती, २४ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती, २६ आर्ची उष्णिक्, २७ साम्नी गायत्री, २८ साम्नी बृहती, २९ भुरिक् साम्नी बृहती, ३० याजुषी त्रिष्टुप्, ३१ अल्पशः अथवा याजुषी पंक्ति ।]

इस सूक्त के देवता भी ओदन (अन्न) हैं। इस सूक्त में यह बहुत स्पष्ट हो गया है कि ऋषि द्वारा वर्णित ओदन केवल स्थूल अन्न तक सीमित नहीं है, वह सृष्टि के निर्माण में प्रयुक्त ऐसा तत्त्व है, जिसकी विशेषताओं ने प्रकृति में विभिन्न आकार-प्रकार उत्पन्न किये हैं। उसका सेवन भी परम्परागत ढंग से नहीं होता, उसके लिए ऋषियों जैसी-परिष्कृत इन्द्रियाँ ही सक्षम होती हैं-

३०५५. तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥१ ॥

उस ओदन (अन्न) का सिर बृहस्पतिदेव है और ब्रह्म उसका मुख है ॥१ ॥

३०५६ द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः प्राणापानाः ॥२ ॥

द्युलोक और पृथ्वी इसके कान हैं, सूर्य और चन्द्रमा इस अन्न तत्त्व के नेत्र हैं। जो मरीचि आदि सप्तर्षि हैं, वे इसके प्राण और अपान हैं ॥२ ॥

३०५७. चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥३ ॥

धान्यकणों को कूटने वाला मूसल ही इसकी दृष्टि है और ओखली ही इसकी अभिलाषा है ॥३ ॥

३०५८. दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ॥४ ॥

दिति (विभाजक शक्ति) ही इसका सूप है और सूप को धारण करने वाली अदिति (अखण्ड शक्ति) है, वायुदेव (कणों-तुषों) को पृथक् करने वाले हैं ॥४ ॥

[अदिति शक्ति के अखण्ड प्रवाह ने सृष्टि उत्पादक मूल प्रवाह को धारण किया। दिति (विभाजक) शक्ति से उसका वर्गीकरण किया गया। यह क्रिया प्रत्यक्ष अन्न के लिए सूप में होती है तथा वायु प्रवाह इसके सहयोगी होते हैं।]

३०५९. अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥५ ॥

इस विराट् अन्न के कण ही अश्व हैं, चावल गौएँ हैं और पृथक् किया गया भूसा ही मच्छर हैं ॥५ ॥

[सृष्टि उत्पादक मूल तत्त्व में कुछ शक्ति कण (पावर पार्टिकल्स) अश्व शक्ति के प्रतीक हैं। उर्वर और पोषक सामर्थ्य वाले कण गौ के तुल्य हैं। मच्छर आदि कीट जिनमें प्राण तत्त्व नहीं के बराबर होता है, उन्हें उस दिव्य अन्न की भूसी कहना युक्ति- संगत है।]

३०६०. कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥६ ॥

नाना - प्रकार के दृश्य उसके (ब्रह्मौदन के) छिलके हैं, मेघ ही ऊपरी सतह (सिर) है ॥६ ॥

३०६१. श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥७ ॥

काले रंग की धातु (लोहा) इसका मांस और लाल रंग का (ताँबा) इस अन्न तत्त्व का रक्त है ॥७ ॥

३०६२. त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥८ ॥

ओदन पकने के बाद जो भस्म शेष रहती है, वह सीसा है, जो सुवर्ण है, वही अन्न का वर्ण और जो कमल है, वही अन्न की गन्ध है ॥८ ॥

३०६३. खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥९ ॥

खलिहान इसके पात्र हैं, शकट के अवयव इसके कंधे हैं और ईषा (नामक शकट का अवयव) हँसली (कंधे की अस्थियाँ) है ॥९ ॥

३०६४. आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥१० ॥

बैलों के गले में बँधी हुई रस्सियाँ ही इसकी आँतें और चर्म रज्जु ही गुदा भाग है ॥१० ॥

३०६५. इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥११ ॥

यह विस्तृत भूमि ही ओदन पाक के निमित्त कुम्भीरूपा है और द्युलोक ही इसका ढक्कन है ॥११ ॥

३०६६. सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥१२ ॥

जुताई की गहरी लकीरें इसकी पसलियाँ और नदी आदि में जो रेत है, वह (ऊबध्य) मलस्थान है ॥१२ ॥

३०६७. ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥१३ ॥

जल इसका हस्त प्रक्षालक है और छोटी-छोटी नदियाँ इस (ओदन) की अभिषिञ्चक हैं ॥१३ ॥

३०६८. ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥१४ ॥

कुम्भी ऋग्वेद द्वारा अग्नि पर रखी गयी है और यजुर्वेद द्वारा हिलायी गयी है ॥१४ ॥

३०६९. ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥१५ ॥

अथर्ववेद द्वारा इसे धारण किया गया (पकड़ा गया) है और सामवेदीय मंत्रों से इसे घेरा गया है ॥१५ ॥

३०७०. बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥१६ ॥

बृहत्साम ही जल में डाले गये चावलों को मिलाने वाला (काष्ठ) है और रथन्तरसाम ओदन निकालने का उपकरण (करछी) है ॥१६ ॥

३०७१. ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥१७ ॥

ऋतुएँ इस अन्न को पकाने वाली हैं और इनके (ऋतुओं के) दिवस-रात्रि इसकी (ओदन की) अग्नि के प्रज्वलनकर्त्ता हैं ॥१७ ॥

३०७२. च ः पञ्चबिलमुखं घर्मो३भीन्धे ॥१८ ॥

पाँच मुखों से युक्त पात्र में स्थित चावल को सूर्य की गर्मी उबालती है ॥१८ ॥

[पाक- पात्र पाँच मुखों वाला है, पककर यह अन्न पाँच तत्त्वों के रूप में प्रकट होता है । अन्तरिक्षीय सूक्ष्म प्रवाह सौर ऊर्जा के संयोग से विभिन्न पदार्थों का सृजन कर सकता है ।]

३०७३. ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥१९ ॥

इस ओदन यज्ञ द्वारा समस्त लोकों को अभिलषित फल की प्राप्ति होती है ॥१९ ॥

३०७४. यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥२० ॥

जिस ब्रह्मौदन के ऊपर और नीचे समुद्र, द्युलोक तथा पृथ्वी तीनों ही आश्रित हैं ॥२० ॥

३०७५. यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥२१ ॥

उस (ओदन) के उच्छिष्ट (शेष बचे अंश) से छह अस्सी (६x८० = ४८० या ६८०) देव प्रकट हुए ॥२१ ॥

[यह कथन रहस्यात्मक है, किन्तु यह बात विज्ञान सम्मत है कि प्रकृति की सृजन-पोषण प्रक्रिया से बचे शेष पदार्थों को कृष्णगर्तों (ब्लैक होल्स) द्वारा खींचा जाकर उन्हें पुनः नयी सृजन प्रक्रिया में लगा दिया जाता है ।]

३०७६. तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥२२ ॥

उस ओदन की जो महत्ता है, उसके सम्बन्ध में हम (तत्त्वदर्शियों से) पूछते हैं ॥२२ ॥

३०७७. स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥२३ ॥

जो इस अन्न की महिमा के ज्ञाता हैं, वे यह (रहस्य) समझें ॥२३ ॥

३०७८. नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति ॥२४ ॥

वे इसे कम न कहें, वह असिंचित है यह भी न कहें तथा वह क्या है ? ऐसा भी न कहें ॥२४ ॥

३०७९. यावद् दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत् ॥२५ ॥

दाता ने जितना दिया है, उससे अधिक न चाहें ॥२५ ॥

३०८०. ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशी३: प्रत्यञ्चा३मिति ॥२६ ॥

(ब्रह्मज्ञानी विचारक परस्पर वार्तालाप करते हैं) आपने आगे (सामने) के ओदन का सेवन किया है अथवा पीछे (पराङ्मुख) स्थित अन्न को ग्रहण किया ॥२६ ॥

३०८१. त्वमोदनं प्राशी३स्त्वामोदना३ इति ॥२७ ॥

आपने ओदन का भक्षण किया है अथवा ओदन ने ही आपका प्राशन किया है ॥२७ ॥

३०८२. पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥२८ ॥

यदि आपने पराङ्मुख स्थित ओदन का सेवन किया है, तो प्राणवायु आपको त्याग देगी, ऐसा इनसे (सेवनकर्ताओं से) कहा जाए ॥२८ ॥

३०८३. प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥२९ ॥

यदि आपने सम्मुख उपस्थित ओदन का सेवन किया है, तो अपान वायु की वृत्तियाँ आपका परित्याग करेंगी । विद्वान् इस प्रकार इसके सेवनकर्त्ता से कहें ॥२९ ॥

३०८४. नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥३० ॥

न मैंने ओदन का सेवन किया है, और न ही अन्न ने मेरा प्राशन किया है ॥ ३० ॥

३०८५. ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥३१ ॥

वास्तव में अन्न ही अन्न का सेवन करता है ॥

[अपने को ' मैं ' सम्बोधन करने वाला तो जीवात्मा है, उसे अन्न की आवश्यकता नहीं होती । अन्नमय कोश ही अन्न का सेवन करता है । सृष्टि की अन्तरंग प्रक्रिया में भी खेत का बीज इसी सूक्ष्म अन्न को खाकर कई गुना हो जाता है ।]

[४ - ओदन सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- १, ७, १० (१), १-१८ (७) साम्नी त्रिष्टुप्, १, ४, ११ (२), १-१८ (३), २-३, १३-१७ (५) एकापदासुरी गायत्री, १, १०, १२, १६ (४) दैवी जगती, २, १३ (४) आसुरी बृहती, ७, १३, १५(२) १, ४-१२, १८ (५) एकपदासुर्यनुष्टुप्, १-१८ (६) साम्नी अनुष्टुप्, २- ५, ८-९, ११-१८ (१) आर्च्यनुष्टुप्, ६ (१) साम्नी पंक्ति, २, ५, ९, १६, १७ (२) आसुरी जगती, ३, ६, १०, १२, १४ (२) आसुरी पंक्ति, ३(४) आसुरी त्रिष्टुप्, ४, १५, १७ (४) याजुषी गायत्री, ५, ६, ९ (४) दैवी पंक्ति, ७-८ (४) प्राजापत्या गायत्री, ८ (२) आसुर्युष्णिक्, ११, १४, १८ (४) दैवी त्रिष्टुप्, १८ (२) एकपदा भुरिक् साम्नी बृहती ।]

इस सूक्त में दिव्य ओदन के सेवन की मर्यादाएँ बतलायी गई हैं । इसका सेवन सिर, मुँह, आँख, कान, पृष्ठ आदि शरीर के सभी अंगों से किया जाता है । वर्तमान विज्ञान इस निष्कर्ष तक तो पहुँच गया है कि मनुष्य जो भोजन करता है, उसके अलावा

भी उसकी शक्ति का कोई अन्य भी स्रोत है, किन्तु वह क्या है; यह उसे विदित नहीं। वृक्ष- वनस्पति जिस प्रकार प्रकृति के सूक्ष्म प्रवाहों से अपना अन्न (आहार) प्राप्त करके बढ़ते- पुष्ट होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य को भी वह प्राप्त होता है। वेद ने उसे ही दिव्य ओदन कहा है। वह सामान्य रूप से जितना मिलता है; उतना तो मिलता रहता है, किन्तु उसे विशेष रूप में पाने के लिए ऋषियों जैसे (सुसंस्कार युक्त) अंग-अवयव चाहिए, अन्यथा उसे पाया नहीं जा सकता। रेडियो तरंगों के प्रसारण को स्थूल कान सीधे सुन नहीं सकते, उसके लिए मध्यस्थ तंत्र (सर्किट) की आवश्यकता होती है। संगीत की बारीकियों को अनगढ़ कान नहीं सुन सकते, दिव्य दृष्टि के बिना अर्जुन विराट् के दर्शन नहीं कर सकते। अंग-प्रत्यंगों में ऋषियों जैसी सुसंस्कारिता के अंश विकसित हुए बिना उस दिव्य ओदन का प्राशन (चाटना-सेवन) संभव नहीं है, यही बात इस सूक्त में स्पष्ट करते हुए उसे ग्रहण करने के सूत्र संकेत दिये गये हैं। विभिन्न अंगों से सम्बन्धित दिव्य शक्तियों, उनके संस्कारों द्वारा ही उसे आत्मसात् किया जा सकता है-

३०८६. ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। बृहस्पतिना शीर्ष्णा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥१॥

पूर्व अनुष्ठाता ऋषियों ने जिस सिर से ओदन का प्राशन किया था, यदि इसके अतिरिक्त दूसरे सिर से आप प्राशन करते हैं, तो ज्येष्ठ सन्तान से प्रारंभ होकर क्रमशः आपकी सन्ततियों के विनष्ट होने की संभावना है; ऐसा ज्ञाता पुरुष उससे (प्राशनकर्त्ता से) कहे। प्राशिता कहे- मैंने अभिमुख (आगे) और पराङ्मुख (पीछे) की स्थिति में भी इस अन्न का सेवन नहीं किया। पूर्व ऋषियों ने बृहस्पति से सम्बन्धित सिर से इसका प्राशन किया, मैंने भी अन्न सम्बन्धी सिर से उसी प्रकार सेवन किया। ओदन ने ही ओदन का प्राशन किया है। इस प्रकार यह प्राशित अन्न सम्पूर्ण अंग-अवयवों से परिपूर्ण है। जो मनुष्य इस प्रकार से ओदन के प्राशन को जानता है, वही सर्वांगपूर्ण होकर पुण्यमय स्वर्गलोक में विराजता है ॥१॥

३०८७. ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। बधिरो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥२॥

पूर्व ऋषियों की रीति से भिन्न यदि आपने दूसरे कानों से इसका (ओदन का) प्राशन किया, तो बधिर दोष से दुःखी होंगे, (ज्ञाता मनुष्य प्राशनकर्ता से) यह कहे। प्राशिता कहे-द्यावा-पृथिवी रूप कानों से मैंने इस अन्न का सेवन किया और उससे उसके वांछित फल को प्राप्त किया। इसमें दोष की सम्भावना नहीं। इस प्रकार सेवन किया हुआ ओदन सभी अंगों और अवयवों से परिपूर्ण हो जाता है, इस प्रकार जो इसे जानता है, वह सर्वांगपूर्ण फल को प्राप्त करते हुए पुण्यमय स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है ॥२॥

३०८८. ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अन्धो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सूर्याचन्द्रमसाभ्या मक्षीभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥

प्राचीन ऋषियों ने जिन नेत्रों से प्राशन किया था, उनसे भिन्न यदि आपने दूसरे लौकिक नेत्रों से सेवन किया,

तो नेत्रहीनता का दोष लगेगा, ऐसा इससे (सेवनकर्त्ता से) कहे । (सेवनकर्त्ता कहे) मैंने इस अन्न को अभिमुख और पराङ्मुख होकर ग्रहण नहीं किया, अपितु उसका सूर्य-चन्द्ररूपी नेत्रों से सेवन किया, जिससे अभीष्ट फल को प्राप्त किया । अत: यह अन्न परिपूर्ण अङ्ग- अवयवों से युक्त है । इस प्रकार से जो इसे जानते हैं, वे सर्वांगपूर्ण फल को उपलब्ध करते हुए पुण्यप्रद स्वर्गादि लोकों में पहुँचते हैं ॥३ ॥

३०८९.ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । ब्रह्मणा मुखेन । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४ ॥

जिस ब्रह्मात्मक मुख से प्राचीन ऋषियों ने ओदन का प्राशन किया था, यदि आप उनसे भिन्न दूसरी रीति से इसका सेवन करेंगे, तो आपके समक्ष ही सन्तति का विनाश होगा, यह सेवनकर्त्ता को बताएँ । (सेवनकर्त्ता का कथन) मैंने इस अन्न का अभिमुख और पराङ्मुख स्थिति में प्राशन नहीं किया है; किन्तु ब्रह्मरूपी मुख से इसका सेवन किया है । उसी ब्राह्मी मुख से इसे यथेष्ट स्थल तक पहुँचाया है, इस प्रकार यह सेवित अन्न सर्वांगपूर्ण होकर सम्पूर्ण फल को ज्ञाता से कहता है । जो मनुष्य इस प्रकार से ओदन- प्राशन की विधि से परिचित हैं, वे सर्वांगपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करके पुण्यफल का उपभोग करने वाले स्वर्गादि लोक को प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

३०९०.ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह ।तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । अग्नेर्जिह्वया । तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥५ ॥

पूर्व ऋषियों ने जिस जिह्वा से ओदन का प्राशन किया था, उससे भिन्न दूसरी (लौकिक) जिह्वा से इसका सेवन करने पर आपकी जिह्वा की सामर्थ्य (प्रभावक्षमता) समाप्त हो जाएगी, ऐसा उससे (प्राशनकर्त्ता से) कहे । प्राशिता का कथन- इस अन्न का हमने अभिमुख और पराङ्मुख स्थिति में सेवन नहीं किया, अग्निरूपी जिह्वा से हमने इसको ग्रहण किया, वही प्राशिता और अन्न की जिह्वा है, जिससे उसके फल को प्राप्त किया । अत: यह अन्न सभी अंगों और अवयवों से परिपूर्ण है । इस प्रकार से जो इसे जानते हैं, वे सर्वांगपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करते हुए पुण्य फलरूप स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

३०९१.ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । ऋतुभिर्दन्तैः । तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥६ ॥

प्राचीनकालीन ऋषिगणों ने जिन दाँतों से अन्न का भक्षण किया था, उनसे भिन्न दूसरे (लौकिक) दाँतों से सेवन करने की स्थिति में आपके दाँत गिर जाएँगे, ऐसा उससे (प्राशिता से) कहे ॥(प्राशिता का कथन -) इस ओदन को हमने अभिमुख और पराङ्मुख अवस्था में सेवन नहीं किया, अपितु इसे वसन्त, ग्रीष्म आदि ऋतुरूप दाँतों से प्राशित किया है, इस प्रकार सेवित अन्न सर्वांगपूर्ण फल को प्रदान करता है । इस प्रकार से जानने वाला ज्ञानी पुरुष सर्वांगपूर्ण फल को प्राप्त करते हुए पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों में विराजमान होता है ॥६ ॥

३०९२. ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह।तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सप्तर्षिभिः प्राणापानैः। तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७ ॥

पूर्व पुरुषों ने जिन प्राणों, अपानों से ओदन का सेवन किया, उनसे भिन्न दूसरी स्थिति में (लौकिक प्राणापानों से) सेवन करने पर प्राण और अपानरूप मुख्य प्राण आपका परित्याग कर देंगे, ऐसा प्राशिता से कहे। (प्राशिता कहे-) हमने अभिमुख और पराङ्मुख किसी भी स्थिति में अन्न का सेवन नहीं किया, अपितु सप्तर्षिरूप प्राणों-अपानों से इसका प्राशन किया है। इस प्रकार सेवित अन्न सम्पूर्ण फल को प्रदान करता है। इस प्रकार जो मनुष्य इस ओदन- प्राशन की विधि को जानता है, वह सर्वांगपूर्ण फल को प्राप्त करता हुआ, इसके पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है ॥७ ॥

३०९३.ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। अन्तरिक्षेण व्यचसा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥८ ॥

पूर्वकालीन ज्ञानियों ने जिस विधि से ओदन का प्राशन किया, उससे भिन्न अन्य विधियों से (लौकिक रूप से) इसका सेवन किये जाने पर राजयक्ष्मा रोग आपका विनाश करेगा, ऐसा इससे (प्राशनकर्त्ता से) कहे। (प्राशनकर्त्ता कहे-) हमने अभिमुख और पराङ्मुख स्थिति में इसका सेवन न करके अन्तरिक्षात्मक विधि से (अन्तः प्राण से) इसका सेवन किया है और इससे अभीष्ट फलों को प्राप्त किया है। जो प्राशनकर्त्ता इस प्रकार से ओदन-प्राशन की विधि को जानते हैं; वे अभीष्ट फल को प्राप्त करते हुए पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करते हैं ॥८ ॥

३०९४.ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। दिवा पृष्ठेन। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥९ ॥

जिस पृष्ठ से प्राचीन ऋषियों ने इस ओदन का सेवन किया , उसके अतिरिक्त यदि किसी पृष्ठ भाग से प्राशन करेंगे, तो विद्युत् आपको विनष्ट कर देगी, ऐसा (प्राशिता से) कहे। (प्राशिता कहे-) हमने इसका अभिमुख और पराङ्मुख होकर सेवन नहीं किया, अपितु द्यौरूपी पृष्ठ से इसका प्राशन किया है, उसी से इसे यथेष्ट स्थल पर प्रेरित किया है। इस प्रकार से सेवन किया गया यह अन्न अभीष्ट फलदायी होता है। जो साधक इस प्रकार से इस ओदन-प्राशन के सम्बन्ध में जानते हैं, वे पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों में सर्वांगपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करते हैं ॥९ ॥

३०९५. ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। पृथिव्योरसा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥१० ॥

जिस वक्षस्थल से प्राचीन ज्ञानियों (ऋषियों) ने इस ओदन का प्राशन किया था, उससे भिन्न दूसरे वक्षस्थल से सेवन किये जाने पर कृषि कार्य में समृद्ध नहीं होंगे, ऐसा प्राशिता से कहे। (प्राशिता कहे-) हमने पराङ्मुख अथवा अभिमुख होकर इस अन्न का प्राशन नहीं किया, अपितु पृथ्वीरूप वक्षस्थल से ओदन का प्राशन किया और उसे यथेष्ट स्थल की ओर प्रेरित किया है। इस प्रकार से प्राशित यह अन्न सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है , जो साधक इसके सम्बन्ध में इस प्रकार ज्ञान रखता है, वह पुण्यभूत स्वर्गादि के सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करता है ॥१० ॥

२०९६. ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सत्येनोदरेण। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११ ॥

पूर्वकालीन पुरुषों ने जिस उदर से अन्न का सेवन किया, उससे भिन्न दूसरे ढंग से प्राशन करने की स्थिति में उदर के लिए कष्टदायी अतिसार नामक रोग से आपका विनाश होगा, ऐसा (प्राशिता से) कहे। (प्राशिता कहे-) अभिमुख अथवा पराङ्मुख अवस्था में मैंने इसका सेवन नहीं किया, अपितु सत्यरूपी उदर से इसका प्राशन किया, जिससे इसके दोष से मुक्त होकर यथेष्ट स्थल में इसे प्रेषित किया है। इस प्रकार से सेवित यह ओदन सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है, जो साधक इस विधि से इससे (ओदन- प्राशन से) संबंधित जानकारी रखता है, वह इसके सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों के पुण्यभूत स्वर्गादि को उपलब्ध करता है ॥११ ॥

२०९७. ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। समुद्रेण वस्तिना। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥१२ ॥

प्राचीन ऋषियों ने जिस वस्ति (मूत्राशय) द्वारा ओदन का सेवन किया था, उससे भिन्न दूसरी विधि से इसके सेवन से आपकी जल में मृत्यु होगी, ऐसा (प्राशनकर्त्ता से) कहे। (प्राशिता कहे-) मैंने अभिमुख अथवा पराङ्मुख अवस्था में इसका प्राशन नहीं किया है, अपितु समुद्र रूपी वस्ति से ओदन का प्राशन किया है, इससे दोषमुक्त होने पर उसके यथेष्ट लाभ को प्राप्त किया है। इस प्रकार सेवित यह अन्न सम्पूर्ण अंग-अवयवों से परिपूर्ण है। इस विधि का ज्ञाता सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट लाभ प्राप्त करते हुए पुण्यभूत स्वर्गादि लोक प्राप्त करता है ॥१२ ॥

२०९८. ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। मित्रावरुणयो रूरुभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥१३ ॥

प्राचीन ऋषियों ने जिन जंघाओं से इस ओदन का प्राशन किया था, उससे भिन्न विधि से इसके सेवन से जंघाएँ विनष्ट हो जाएँगी, ऐसा (सेवनकर्ता से) कहे। (प्राशिता कहे-) हमने अभिमुख अथवा पराङ्मुख स्थिति में ओदन का प्राशन नहीं किया। अपितु मित्रावरुण रूपी जंघाओं से इसका सेवन करके उसके यथेष्ट फल को प्राप्त किया। इस प्रकार से प्राशित यह अन्न सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है, जो इस प्रकार से इसके सम्बन्ध में ज्ञान रखता है, वह सर्वाङ्गपूर्ण फलों को प्राप्त करते हुए पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों का अधिकारी होता है ॥१३ ॥

३०९९.ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। स्रामो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥

पूर्व ऋषियों ने जिन अस्थियुक्त जानुओं (घुटनों) से इस अन्न का सेवन किया, उससे भिन्न विधि से इसके सेवन किये जाने से जानु भाग सूख जाएगा, ऐसा (सेवनकर्त्ता से) कहे। (प्राशिता कहे-) मैंने अभिमुख (सामने) या पराङ्मुख (पीछे) स्थिति में इसका सेवन नहीं किया, अपितु त्वष्टादेव के जानुओं से ओदन- प्राशन किया और उनसे उसे यथेष्ट स्थान की ओर प्रेषित किया। इस प्रकार सेवित यह अन्न सभी अंग-अवयवों से परिपूर्ण है। इस प्रकार जो इसकी विधि के ज्ञाता हैं, वे सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों के पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करते हैं ॥१४॥

३१००. ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। अश्विनोः पादाभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥१५॥

पूर्व ज्ञानी पुरुषों ने जिन पैरों से ओदन का सेवन किया, उनसे भिन्न दूसरी विधि से सेवन किये जाने पर आपको बहुत अधिक चलने (निरर्थक चलने वाले) का पाप लगेगा, ऐसा (सेवनकर्त्ता से) कहे। (प्राशिता कहे-) सामने या पीछे से मैंने ओदन का प्राशन नहीं किया, अपितु अश्विनीकुमारों के पैरों से मैंने इसका सेवन किया, जिससे यथेष्ट स्थल की ओर इसे प्रेषित किया है। इस प्रकार के प्राशन से यह सभी अंग-अवयवों से परिपूर्ण है। इस प्रकार से जो इससे सम्बंधित विधि के ज्ञाता हैं, वे सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों के पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करते हैं ॥१५॥

३१०१. ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सवितुः प्रपदाभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥१६॥

प्राचीन ऋषियों ने जिन पंजों (पदाग्र भाग) से इस ओदन का सेवन किया, उससे भिन्न विधि से इसका सेवन करने पर सर्प दंश से मृत्यु को प्राप्त होगा, ऐसा (सेवनकर्त्ता से) कहे। (प्राशिता कहे-) अभिमुख अथवा पराङ्मुख दोनों ही अवस्थाओं में हमने इसका सेवन नहीं किया, अपितु सवितादेव के पंजों से इसका प्राशन किया है, इस स्थिति में दोषमुक्त होकर यह यथास्थान पहुँचा है। इस प्रकार से सेवित अन्न सभी अंग-अवयवों से परिपूर्ण है। इस प्रकार की विधि का ज्ञाता मनुष्य इसके सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों के पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है ॥१६॥

३१०२. ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। ऋतस्य हस्ताभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥१७॥

पूर्वकालीन ज्ञानियों ने जिन हाथों से ओदन का प्राशन किया, उससे भिन्न रीति से इसके सेवन से आपको ब्रह्महत्या का दोष लगेगा, (अभिज्ञ पुरुष प्राशिता से) ऐसा कहे ।(प्राशिता कहे-) समक्ष अथवा पृष्ठभाग (पराङ्मुख) से हमने इसका प्राशन नहीं किया, अपितु परब्रह्म के सत्यरूप हाथों से इसका सेवन किया और उन्हीं से इसके यथेष्ट फल की प्राप्ति की है अथवा इसे यथास्थान पहुँचाया है । इस प्रकार सेवन किया गया अन्न सभी अंग- अवयवों से परिपूर्ण होता है । जो साधक इस प्रकार से इस प्राशन- विधि का ज्ञाता है, वह पुण्यभूत स्वर्गलोक में सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करता है ॥१७ ॥

३१०३.ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अप्रतिष्ठानो ऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सत्ये प्रतिष्ठाय। तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥१८ ॥

प्राचीन ऋषियों ने जिस ब्रह्मात्मक प्रतिष्ठा से ओदन का प्राशन किया था, उससे भिन्न रीति से इसके सेवन से आप अपनी प्रतिष्ठा खो देंगे, ऐसा (प्राशिता से) कहे । (प्राशिता कहे-) अभिमुख और पराङ्मुख स्थिति में हमने इसे ग्रहण नहीं किया, अपितु ब्रह्म में प्रतिष्ठित होकर संसार के प्रतिष्ठाभूत ब्रह्म से इसका प्राशन किया और इसके यथेष्ट फल को प्राप्त किया है । इस प्रकार से सेवित यह अन्न सभी अंग-अवयवों से परिपूर्ण है । जो साधक पुरुष इस प्रकार से इस अन्न सेवन की विधि के ज्ञाता हैं, वे सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों के प्रदाता पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों में विराजमान होते हैं ॥१८ ॥

[५ - ओदन सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- आसुरीअनुष्टुप्, २ आर्ची उष्णिक्, ३ भुरिक् साम्नी त्रिपदा त्रिष्टुप्, ४ आसुरी बृहती, ५ द्विपदा भुरिक् साम्नी बृहती, ६ साम्नी उष्णिक्, ७ प्राजापत्या बृहती ।]

३१०४. एतद् वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥१ ॥

यह (उक्त महिमायुक्त) जो ओदन है, उसका स्वरूप सूर्य मण्डलात्मक है ॥१ ॥

३१०५. ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ॥२ ॥

जो मनुष्य ओदन के ज्ञाता हैं, वे सूर्यलोक को प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

३१०६. एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ॥३ ॥

प्रजापति ने इस महिमाशाली ओदन से तैंतीस देवों या लोकों की रचना की ॥३ ॥

३१०७. तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥४ ॥

उन लोकों या देवों के प्रज्ञान (प्रकृष्ट ज्ञान या पहचान) के लिए ही यज्ञीय विज्ञान का निर्माण किया गया ॥४ ॥

३१०८. स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥५ ॥

इस तथ्य के ज्ञाता के जो निंदक होते हैं, वे अपने प्राण की गति को रोक देते हैं (मृत्यु को प्राप्त होते हैं) ॥५ ॥

३१०९. न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥६ ॥

इससे उसकी प्राणशक्ति का ही क्षय नहीं होता, अपितु उसका सम्पूर्ण अस्तित्व समाप्त हो जाता है ॥६ ॥

३११०. न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥७ ॥

उसका सर्वस्व नाश ही नहीं होता, अपितु उसके प्राण असमय में ही उसका परित्याग कर देते हैं ॥७ ॥

[६ - प्राण सूक्त]

[ऋषि- वैदर्भि भार्गव। देवता- प्राण। छन्द- अनुष्टुप्, १ शङ्कुमत्यनुष्टुप्, ८ पथ्यापंक्ति, १४ निचृत् अनुष्टुप्, १५ भुरिक् अनुष्टुप्, २० अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्, २१ मध्येज्योति जगती, २२ त्रिष्टुप्, २६ बृहतीगर्भा अनुष्टुप्।]

३१११.प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१

जिस प्राण के अधीन यह सम्पूर्ण विश्व है, उस प्राण के लिए हमारा नमन है। वही प्राण सभी प्राणियों का ईश्वर है और उसी में सम्पूर्ण विश्व विराजमान है ॥१॥

३११२.नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥२

हे प्राण ! आप शब्दध्वनि करने वाले और मेघों में गर्जना करने वाले हैं, आपके निमित्त प्रणाम है। आप विद्युत् रूप में चमकने वाले और जल वृष्टि करने वाले हैं, आपको हमारा नमन है ॥२॥

३११३. यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥३॥

हे प्राण ! जिस समय आप मेघों द्वारा ओषधियों को अभिलक्षित करते हुए, महान् गर्जना करते हैं, तब ओषधियाँ तेजस्वी होती हैं और गर्भ को धारण करके विविध प्रकार से विस्तार प्राप्त करती हैं ॥३॥

३११४. यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥४॥

वर्षाकाल में जब प्राण ओषधियों को लक्षित करके गर्जना करते हैं, तब उस समय सभी हर्षित होते हैं। भूमि के सम्पूर्ण प्राणी आनन्द- विभोर हो जाते हैं ॥४॥

३११५. यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥५॥

जब प्राणदेव जल वृष्टि द्वारा विस्तृत भूक्षेत्र को सींचते हैं, उस समय गौ आदि पशु हर्षित होते हैं कि निश्चित ही अब हम सबकी अभिवृद्धि होगी ॥५॥

३११६. अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥६॥

प्राणदेव से अभिषिञ्चित हुई ओषधियाँ, प्राण के साथ वार्तालाप करती हुई कहती हैं कि हे प्राण ! आप हम सबकी आयु की वृद्धि करें तथा सभी को शोभन सुगन्धि से युक्त करें ॥६॥

३११७. नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥७॥

हे प्राणदेव ! आगमन करते हुए, जाते हुए, कहीं भी स्थित हुए तथा बैठते हुए, (सभी स्थितियों में) आपके प्रति हमारा नमन है ॥७॥

३११८. नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते। पराचीनाय
ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ॥८॥

हे प्राणदेव ! प्राण- प्रक्रिया के व्यापार करने वाले तथा अपानन व्यापार करने वाले आपके निमित्त नमन है । परागमन स्वभाव वाले, आगे बढ़ने और पीछे लौटने आदि सभी व्यापारों में आपके प्रति हमारा नमन है ॥८ ॥

३११९. या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥९ ॥

हे प्राणदेव ! आपका प्रिय जो (प्राणमय) शरीर है , आपकी जो प्रेयसी (जीवनीशक्ति) है तथा अमृतत्त्व से युक्त ओषधि है; वह सब दीर्घ जीवन के लिए हमें प्रदान करें ॥९ ॥

३१२०. प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥१० ॥

पुत्र के साथ रहने वाले पिता की तरह, प्रजाओं के साथ प्राण रहते हैं । जो प्राण धारण करने वाले (जंगम प्राणी) हैं तथा जो ऐसे नहीं (वृक्ष- वनस्पति या पत्थर, धातु आदि) हैं, उन सबके ईश्वर (नियन्त्रणकर्त्ता) प्राण ही हैं ।

३१२१. प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥११ ॥

प्राण ही मृत्यु (के कारण) हैं, प्राण ही रोगादि (के कारण) हैं । देवशक्तियाँ प्राणों की ही उपासना करती हैं । प्राण ही सत्यनिष्ठ व्यक्ति को श्रेष्ठ लोक में प्रतिष्ठित करता है ॥११ ॥

[प्राण शरीर छोड़ते हैं, तो मृत्यु होती है । प्राण शरीरस्थ विकारों को बाहर फेंकते हैं , तो रोग प्रकट होते हैं । देव शक्तियाँ भी प्राण की विशिष्ट धाराओं के रूप में प्रकट होती हैं ।]

३१२२. प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥१२ ॥

प्राण ही विराट् और सर्वप्रेरक है, अतएव उस प्राण की ही सभी देव उपासना करते हैं । वही सर्व उत्पादक सूर्य अमृतमय सोम और प्रजाओं के उत्पत्तिकर्त्ता प्रजापतिदेव हैं ॥१२ ॥

३१२३. प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥१३ ॥

प्राण और अपान ही चावल और जौ के रूप में रहते हैं । प्राणों को ही अनड्वान (भारवाही वृषभ) कहते हैं । जौ में प्राण स्थित है तथा चावलों को अपान कहा गया है ॥१३ ॥

[प्राण -प्रक्रिया, धारक -प्रक्रिया है तथा अपान निष्कासक प्रक्रिया है । यह शोध का विषय है कि जौ और चावलों का इनके साथ किस प्रकार का सम्बन्ध है ।]

३१२४. अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥१४ ॥

जीवात्मा गर्भ में प्राणन और अपानन की क्रिया सम्पन्न करता है । हे प्राण ! आपके द्वारा प्रेरित हुआ प्राणी पृथ्वी पर उत्पन्न होता है ॥१४ ॥

३१२५.प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१५ ॥

प्राण को मातरिश्वा वायु कहा गया है और वायु का नाम ही प्राण है । भूतकाल में, भविष्यत्काल में और वर्तमानकाल में जो कुछ भी है, वह सब प्राण में ही प्रतिष्ठित है ॥१५ ॥

३१२६. आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ।

ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥१६ ॥

हे प्राण ! जब आप वृष्टि द्वारा परितृप्त करते हैं, तब महर्षि अथर्वा द्वारा रचित, अंगिरा गोत्रियों और देवताओं द्वारा निर्मित तथा मनुष्यों द्वारा उत्पन्न की जाने वाली सम्पूर्ण ओषधियाँ प्रकट होती हैं ॥१६ ॥

३१२७. यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।

ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥१७ ॥

जिस समय प्राण वर्षा ऋतु में वृष्टिरूप से विशाल पृथ्वी पर बरसता है, तो इसके अनन्तर ही ओषधियाँ और वनस्पतियाँ प्रादुर्भूत होती हैं ॥१७ ॥

३१२८. यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः ।

सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिँल्लोक उत्तमे ॥१८ ॥

हे प्राणदेव ! जो आपके वर्णित माहात्म्य को जानते हैं और जिस ज्ञानी मनुष्य में आप विराजमान होते हैं, उसके निमित्त समस्त देव उत्तमलोक (स्वर्ग) एवं अमरत्व प्रदान करते हैं ॥१८ ॥

३१२९. यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः ।

एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः ॥१९ ॥

हे प्राण ! सम्पूर्ण प्रजाजन, जिस प्रकार आपके निमित्त बलि (उपभोग योग्य अन्न) लेकर आते हैं; हे श्रेष्ठ यशस्विन् ! उसी प्रकार आपकी महिमा को सुनने वाले विद्वान् के निमित्त भी (वे मनुष्यादि) बलि प्रदान करें ॥१९ ॥

३१३०. अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः ।

स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥२० ॥

देवशक्तियों में जो प्राण है, वही गर्भ में विचरण करता है । सभी ओर संव्याप्त होकर वही पुनः प्रकट होता है । इस नित्य वर्तमान प्राण ने भूतकाल और भविष्यत्काल में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं में , इस प्रकार अपनी शक्तियों से प्रवेश किया है, जिस प्रकार पिता अपने पुत्र में, अपनी शक्तियों के साथ प्रविष्ट होता है ॥२० ॥

३१३१. एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् । यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य

न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन ॥२१ ॥

जल से ऊपर उठता हुआ हंस एक पैर को उठाता नहीं है । हे प्रियजनो ! यदि वह उस पैर को उठा दे, तो यह आज, कल, दिन, रात्रि, प्रकाश और अंधकार कुछ भी शेष नहीं रह जाएगा ॥२१ ॥

[प्राण को हंस और संसार को भवसागर कहा गया है । यह प्राण सदैव गतिशील रहता है, किन्तु इस भवसागर में वह अपना एक अंश सतत बनाये रखता है । यदि प्राण का वह अंश भी हट जाए, तो यह काया- जगत् सब समाप्त हो जाएगा ।]

३१३२. अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।

अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥२२ ॥

आठ चक्रों वाला एक नेमि-धुरा (प्राण) हजारों अक्षर (अनश्वर) प्रभावों के साथ आगे- पीछे घूमता है ।अपने आधे भाग से वह विश्व के लोकों-पदार्थों की रचना करता है, जो भाग शेष रहता है, वह किसका प्रतीक-चिह्न है ।

[शरीर भी आठ चक्रों (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणि पूरक, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, सोमक तालु तथा सहस्रार) वाला है। विश्व भी आठ दिशाओं से संयुक्त है। ये आठों चक्र प्राण की धुरी पर ही गतिशील हैं। प्राण अन्दर- बाहर सभी जगह सक्रिय है, एक भाग शरीर या विश्व व्यवस्था चलाता है, शेष किस (अनन्तसत्ता) का प्रतीक है, ऐसी जिज्ञासा व्यक्त की गई है।]

३१३३. यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥२३ ॥

जो प्राण अनेक जन्मों को धारण करने वाले, चेष्टाशील सम्पूर्ण विश्व के अधिपति हैं और दूसरे प्राणियों की देह में शीघ्रतापूर्वक प्रवेश करते हैं, ऐसे हे प्राण ! आपके निमित्त हमारा प्रणाम है ॥२३ ॥

३१३४. यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥२४ ॥

जो प्राण अनेक रूपों से जन्मने और गतिमान् रहने वाले सम्पूर्ण विश्व का स्वामी है, वह प्राण प्रमादरहित होकर सदैव सभी ओर विचरणशील होते हुए ज्ञानशक्ति से सम्पन्न और असीमित होकर हमारे समीप स्थित रहे ॥

३१३५.ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते । न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ।

हे प्राण ! प्राणियों की निद्रावस्था में उनके रक्षणार्थ आप जागते रहें, सोएँ नहीं । प्राणियों के सोने पर, इस प्राण के सोने के सम्बन्ध में किसी ने परम्परा क्रम से सुना नहीं है ॥२५ ॥

[जब मनुष्य सो जाता है, तब भी प्राण - प्रवाह शरीर के पाचन, श्वास-प्रश्वास, रक्त संचरण आदि सभी संस्थानों को गतिशील रखते हैं।]

३१३६. प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥२६ ॥

हे प्राण !आप हमसे विमुख न हों और न हमसे दूर अन्यत्र जाएँ । हम आपको अपने अस्तित्व के लिए बाँधते हैं। वैश्वानर अग्नि को जिस प्रकार देह में धारण करते हैं, उसी प्रकार हम अपने शरीर में आपको धारण करते हैं ॥

[७ - ब्रह्मचर्य सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- ब्रह्मचारी । छन्द- १ पुरोऽतिजागत विराड्गर्भा त्रिष्टुप्, २ पञ्चपदा बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी, ३ उरोबृहती, ४-५, २४ त्रिष्टुप्, ६ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती, ७ विराड्गर्भा त्रिष्टुप्, ८ पुरोऽतिजागता विराट् जगती, ९ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, १० भुरिक् त्रिष्टुप्, ११, १३ जगती, १२ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा विराट् अतिजगती, १४, १६-२२ अनुष्टुप्, १५ पुरस्ताज्ज्योति त्रिष्टुप्, २३ पुरोबार्हतातिजागतगर्भा त्रिष्टुप्, २५ एकावसानार्च्युष्णिक्, २६ मध्येज्योति उष्णिग्गर्भा त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त के ऋषि ब्रह्मा तथा देवता ब्रह्मचारी हैं। 'चर' धातु चलने-आचरण एवं सेवन के अर्थों में प्रयुक्त होती है। इस आधार पर ब्रह्मचारी का व्यापक अर्थ होता है, ब्रह्म (ब्राह्मी चेतना या अनुशासन) में ही चलने वाला अथवा उसी का सेवन करने वाला। सूक्त के मन्त्रों में ब्रह्मचारी की जो महत्ता दर्शायी गयी है, वह इसी व्यापक संदर्भ से सिद्ध होती है। ब्रह्मचर्य का प्रचलित अर्थ 'वीर्य रक्षा' भी उसी व्यापक परिभाषा के अन्तर्गत आता है। वेद अध्येता मन्त्रों को इसी संदर्भ के अनुसार देखें-समझें-

३१३७. ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं[१] तपसा पिपर्ति ॥१ ॥

ब्रह्मचारी (ब्रह्म के अनुशासन में आचरणशील) द्युलोक और भूलोक इन दोनों को अपने अनुकूल बनाता हुआ चलता है । देवगण उस (ब्रह्मचारी) में सौमनस्यतापूर्वक निवास करते हैं । इस प्रकार वह पृथ्वी और द्युलोक को अपने तप से धारण करता है तथा आचार्य को परिपूर्ण (तृप्त या सार्थक) बनाता है ॥१ ॥

[ब्रह्म के अनुशासन में चलने वाले अपनी भावनाओं, विचारों तथा क्रियाओं से पृथ्वी एवं आकाश के स्थूल - सूक्ष्म प्रवाहों को अपने (ब्रह्मानुशासन के) अनुरूप बनाता है । लौकिक अर्थों में शरीर का नाभि से नीचे वाले भाग को पृथ्वी से सम्बद्ध, नाभि से कण्ठ तक अन्तरिक्ष से तथा सिर को 'द्यु' से सम्बन्धित कहा जाता है । ब्रह्मचारी इनको परस्पर बनाता है तथा सभी को ब्रह्मानुशासन में आबद्ध रखता है ।]

३१३८. ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे । गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥२ ॥

देव, पितर, गन्धर्व और देवगण ये सभी ब्रह्मचारी के पीछे (सहयोगार्थ) चलते हैं । तीन एवं तीस (या तैंतीस), तीन सौ और छह हजार इन देवताओं का ब्रह्मचारी ही अपने तप से परितोषण करता है ॥२ ॥

[देवों को विभिन्न कोटियों (विभागों) में बाँटा गया है । तीनों लोकों के तीन, उनके दस-दस सहयोगी ३०, दोनों ३३ आदि । वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार देव शक्तियों को विशिष्ट प्राण प्रवाह कहा गया है । उनकी संख्या हजारों कही गयी है । वही भाव यहाँ युक्तिसंगत बैठता है ।]

३१३९. आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः । तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥३ ॥

ब्रह्मचारी को अपने समीप बुलाते हुए (उपनयन संस्कार करके) आचार्य अपने ज्ञानरूपी शरीर के गर्भ में उसे धारण करता है । आचार्य तीन रात्रि तक उसे अपने गर्भ में रखता है । जब (दूसरे आध्यात्मिक जन्म को लेकर) वह बाहर आ जाता है, तो देवगण (दिव्य शक्ति प्रवाह अथवा सत् पुरुष) एकत्रित (उसके सहयोग या अभिनन्दन के लिए) होते हैं ॥३ ॥

[आचार्य शिष्य को अपने गर्भ में तीन रात्रियों में रखता है, तीन दिनों का उल्लेख नहीं है । रात्रि अन्धकार की-अज्ञान ग्रस्त स्थिति की प्रतीक होती है । जब तक शिष्य के तीनों प्रकार के अन्धकारों (भावना, विचारणा तथा कायापरक अभाव, अज्ञान एवं अशक्ति) का निवारण नहीं हो जाता, तब तक आचार्य उसे अपने संरक्षण (गर्भ) में रखते हैं ।]

३१४०. इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति । ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥४ ॥

ब्रह्मचारी समिधा, मेखला, श्रम और तप द्वारा लोकों का पोषण करता है । उसकी पहली समिधा पृथ्वी है, दूसरी द्युलोक है तथा (तीसरी) अन्तरिक्ष है ॥४ ॥

[समिधा ही अग्नि को धारण करती है, मेखला उसे मर्यादित रखती है । यह ऊर्जा को उत्पादित करने तथा उसे मर्यादा की सीमा में प्रयुक्त करने का संकेत है । श्रम स्थूल पुरुषार्थ का तथा तप सूक्ष्म पुरुषार्थ का प्रतीक है । शरीर के क्रम में पहली समिधा पृथ्वी नाभि से नीचे वाला अंग है । ब्रह्माग्नि प्राप्त करने के लिए इसे पहले समर्पित करते हैं अर्थात् पहले स्थूल ब्रह्मचर्य का अभ्यास किया जाता है । द्युलोक दूसरी समिधा है अर्थात् विचारों को ब्रह्मानुशासन में लाना दूसरा चरण है । अन्तरिक्ष, नाभि से कंठ तक का हृदय भाग तीसरी समिधा है अर्थात् भावों को ब्रह्ममय बनाना तीसरा चरण है । इन्हीं से क्रमशः अशक्ति, अज्ञान एवं अभाव की तीन रात्रियों का निवारण होता है ।]

३१४१. पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् । तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥५ ॥

ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ घोषित होने) से पूर्व साधक ब्रह्मचारी (ब्राह्मी अनुशासन का अभ्यासी) होता है । वह ऊर्जा धारण करता हुआ ऊपर उठता (उन्नतिशील होता) है, तब ब्राह्मण के रूप में प्रकट होता है और ज्येष्ठ ब्रह्म (परब्रह्म) तथा देवगणों का सान्निध्य उसे प्राप्त होता है ॥५ ॥

३१४२. ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः । स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥६ ॥

(पहले वर्णित ढंग से) समिधाओं को प्रज्वलित करके कृष्णवस्त्र (कृष्णमृग चर्म) धारण करके बढ़े हुए दाढ़ी- मूँछोंयुक्त ब्रह्मचारी पूर्व (पहले वाले) समुद्र (सांसारिक भण्डार) से उत्तर (श्रेष्ठतर) समुद्र (दिव्य भण्डारों) तक पहुँच जाता है ॥६ ॥

३१४३. ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम्।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ॥७ ॥

अमृत गर्भ में रहकर ब्रह्मचारी, ब्रह्मतेज, श्रेष्ठ लोकों (स्थितियों या क्षेत्रों), प्रजापति (प्रजापालक सामर्थ्य) तथा सर्वश्रेष्ठ स्थिति वाले विराट् को उत्पन्न (अपने अन्दर जाग्रत्) करता है । तब वह इन्द्र (नियन्ता बनकर) निश्चित रूप से असुरों (आसुरी प्रवाहों) को नष्ट करता है ॥७ ॥

३१४४. आचार्य स्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥८ ॥

(आचार्य के गर्भ में ब्रह्मचारी को नया जीवन मिलता है । उसका विवरण देते हुए ऋषि कहते हैं-) आचार्य नभ (गर्भाकाश) में दोनों बड़े और गम्भीर पृथ्वी और द्युलोक का सृजन (ब्रह्मचारी के लिए) करते हैं । ब्रह्मचारी अपनी तपःसाधना से उनकी रक्षा करता है, इसीलिए देवगण उसके साथ सौमनस्यतापूर्वक रहते हैं ॥८ ॥

[पृथ्वी पार्थिव देह की तथा द्युलोक चेतन प्रवाह का प्रतीक है । आचार्य के गर्भ में ब्रह्मचारी के ये दोनों ही आधार बदल जाते हैं । दोनों में से हीनता, संकीर्णता का निवारण होकर उनमें महत्ता एवं गम्भीरता का समावेश होता है । इन प्राप्त विभूतियों की रक्षा तपः शक्ति से ही की जा सकती है, तभी देव- अनुग्रह - प्राप्ति का सुयोग बनता है ।]

३१४५. इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥९ ॥

सर्वप्रथम ब्रह्मचारी ने भूमि की भिक्षा ग्रहण की, तत्पश्चात् द्युलोक को भी प्राप्त किया । इन दोनों लोकों को समिधा बनाकर उसने अग्नि (ब्रह्मतेज) की उपासना की । इन दोनों के बीच ही उसका संसार स्थित होता है ॥९ ॥

३१४६. अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥१० ॥

ब्राह्मण की सम्पत्ति निकटवर्ती गुहा (अन्तःकरण या अनुभूति) में तथा द्युलोक के आधार से भी परे स्थित है । ब्रह्मचारी उसकी रक्षा तप द्वारा करता है । वह तप उसे निश्चित रूप से ब्रह्मविद् बना देता है ॥१० ॥

आगे के मंत्रों के भाव साधक के साथ-साथ प्रकृति में संव्याप्त ब्रह्मानुशासन युक्त दिव्य प्रवाहों पर भी घटित होते हैं-

३१४७. अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥११ ॥

इधर (द्युलोक में) एक (तेजस्) है तथा इस पृथ्वी पर दूसरा (तेजस्) है, ये दोनों अन्तरिक्ष में मिलते हैं । उनसे शक्तिशाली किरणें प्रसारित होती हैं । तपःशक्ति से ब्रह्मचारी उन दिव्य संचारों का अधिकारी बनता है ॥११ ॥

३१४८. अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥१२ ॥

बड़ा प्रभावशाली अरुण (भूरे) और काले रंग वाला, गर्जन करने वाला (ब्रह्मचारी मेघ) पृथ्वी को (उत्पादक तत्त्वों से) भर देता है । वह पृथ्वी और पर्वतों के समतल स्थानों पर रेतस् (उत्पादक तेज) का सिंचन करता है, जिससे चारों दिशाएँ जीवन्त हो उठती हैं ॥१२ ॥

३१४९. अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्य१प्सु समिधमा दधाति ।

तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥१३ ॥

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और जल में ब्रह्मचारी समिधाओं को अर्पित करता है । उनके तेजस् अलग-अलग रूप से अन्तरिक्ष में निवास करते हैं । उसी से वर्षा, जल, घृत और पुरुष आदि समृद्ध (तेजः सम्पन्न) होते हैं ॥१३ ॥

३१५०. आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।

जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्व१राभृतम् ॥१४ ॥

आचार्य ही मृत्यु (यम-अनुशासनकर्ता अथवा पूर्व अस्तित्व को समाप्त करने वाले) , वरुण (नवसृजक) सोम (आनन्दप्रद प्रवाह), ओषधि (उपचारक) तथा पयः (पोषक रस-दूध) के तुल्य हैं । वही सत्प्रवाह युक्त मेघ हैं ; क्योंकि उन्होंने ही (साधक में) यह (नया) स्वः (आत्मबोध) भर दिया है ॥१४ ॥

३१५१. अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ ।

तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान्मित्रो अध्यात्मनः ॥१५ ॥

प्रजापति की जैसी इच्छा होती है, (तदनुसार) आचार्य वरुण बनकर केवल शुद्ध घृत (सार-तेजस्) उत्पन्न करते हैं । ब्रह्मचारी उसे अपने अधिकार में लेकर अपने मित्रों (समानधर्मियों) को प्रदान करता है ॥१५ ॥

३१५२. आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।

प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी ॥१६ ॥

ब्रह्मचारी ही आचार्य बनता है और वही प्रजापति (प्रजापालक-रक्षक-शासक) बनता है । ऐसा प्रजापालक ही ब्रह्मानुशासनयुक्त राज्य करता है; विराट् को वश में करने वाला इन्द्र नियन्ता बनता है ॥१६ ॥

३१५३. ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥१७ ॥

ब्रह्मचर्य एवं तपः शक्ति से ही शासक राष्ट्र की रक्षा करता है । आचार्य भी ब्रह्मचर्य की सामर्थ्य से ब्रह्मचर्य की आस्था वाले (शिष्य) की कामना (उनके सृजन का प्रयास) करते हैं ॥१७ ॥

[दिव्य अनुशासन के परिपालन से ही राष्ट्र की सुरक्षा एवं व्यवस्था स्थायी बन सकती है, प्रशासनिक आतंक उसके लिए पर्याप्त नहीं है । आचार्यगण भी दिव्य अनुशासन- पालन में समर्थ व्यक्तित्व गढ़ने की कामना करें , तभी राष्ट्र के उत्थान का सही आधार बनता है ।]

३१५४. ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम् ।

अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥१८ ॥

ब्रह्मचर्य - संयम साधना से ही कन्या युवापति को प्राप्त करती है । बैल और अश्व आदि भी ब्रह्मचर्य का पालन करके ही भक्षणीय (शक्तिवर्द्धक) घास (आधार) की अभिलाषा रखते हैं ॥१८ ॥

[असंयमी को यौवन का ठीक-ठीक लाभ नहीं मिल पाता । बैल-अश्व आदि नैसर्गिक रूप से प्राप्त उस वृद्धि के कारण ही शक्तिसम्पन्न बनते हैं ।]

३१५५. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत । इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१राभरत् ॥१९

ब्रह्मचर्यरूप तपः साधना से सभी देवताओं ने मृत्यु का निवारण किया : ब्रह्मचर्य की सामर्थ्य से ही देवराज इन्द्र अन्य देवताओं को दिव्य तेजस् (अथवा स्वर्ग) देने में समर्थ हुए ॥१९ ॥

३१५६.ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः । संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ।

ओषधियाँ, वनस्पतियाँ, ऋतुओं के साथ गमनशील संवत्सर, दिन-रात्रि, भूत और भविष्यत् , ये सभी जन्म से ही ब्रह्मचारी होते हैं ॥२० ॥

३१५७. पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥२१ ॥

पृथ्वी में जन्म लेने वाले प्राणी, आकाश में विचरणशील प्राणी, वन्य पशु, ग्रामीण पशु, पक्षहीन पशु तथा पंखयुक्त पक्षी, ये सभी जन्मजात ब्रह्मचारी होते हैं ॥२१ ॥

३१५८. पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥२२ ॥

प्रजापति परमेश्वर से उत्पादित सभी प्राणी अपने अन्दर प्राणशक्ति को भिन्न-भिन्न ढंग से धारण करते हैं। ब्रह्मचारी में अवस्थित ब्रह्म उन (प्राणों) की रक्षा करता है ॥२२ ॥

३१५९. देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥२३ ॥

देवों का यह सर्वश्रेष्ठ उत्साह उत्पन्न करने वाला (वर्चस्) ज्योतिष्मान् होकर गतिशील होता है । उससे उत्पन्न ब्राह्मण सम्बन्धी ज्येष्ठज्ञान तथा देवगण सब अमृत तत्त्व से युक्त हो गये ॥२३ ॥

३१६०. ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥२४ ॥

ब्रह्मचारी प्रकाशमान ब्रह्म (चेतन या ज्ञान) को धारण करता है, इसलिए उसमें सभी देवगण समाहित रहते हैं। वह (ब्रह्मचारी) प्राण, अपान, व्यान, वाणी, मन, ज्ञान तथा मेधाशक्ति को उत्पन्न करता है ॥२४ ॥

३१६१. चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥२५ ॥

(अस्तु , ऐसे ब्रह्मचारी) हममें दृष्टि, श्रवणशक्ति, यश, अन्न, वीर्य, रक्त और उदर (पाचन शक्ति) प्रदान करें ॥२५॥

३१६२. तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः
समुद्रे। स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥२६ ॥

ब्रह्मचारी उपर्युक्त इन सभी के सम्बन्ध में कल्पनाशील होते हुए जल के समीप तपः साधना में संलग्न होता है । इस ज्ञानरूप समुद्र में तपोनिष्ठ होकर, यह ब्रह्मचारी स्नातक हो जाता है और तब वह अति तेजस्वी होकर, इस भूमण्डल में विशिष्ट आभायुक्त हो जाता है ॥२६ ॥

[८- पापमोचन सूक्त]

[ऋषि- शन्ताति । देवता- चन्द्रमा अथवा मन्त्रोक्त । छन्द- अनुष्टुप् , २३ बृहतीगर्भा अनुष्टुप् ।]

३१६३. अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः ।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१ ॥

अग्निदेव, ओषधिसमूह, वनस्पतिसमूह, लतासमूह, इन्द्र, बृहस्पति और सर्वप्रेरक सूर्यदेव की हम सब स्तुति करते हैं । ये सभी हमें पापकर्मों के प्रभाव से मुक्त करें ॥१ ॥

३१६४. ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम्।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२ ॥

प्रकाशमान वरुणदेव, मित्रदेव, व्याप्तिशील विष्णु, भजनीय देव, भग, अंशदेव और विवस्वान् नामक सभी देवों की हम स्तुति करते हैं । ये सभी पाप-कृत्यों से हमें विमुक्त करें ॥२ ॥

३१६५. ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम्। त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥

हम सर्व उत्पादक सवितादेव, धातादेव, पूषादेव और अग्रणी त्वष्टादेव की स्तुति करते हैं, ये हमें पापकर्मों से मुक्त करें ॥३ ॥

३१६६. गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम्।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४ ॥

गन्धर्वगण, अप्सरागण, अश्विनीकुमारों, वेदों के पति ब्रह्मा और अर्यमा आदि देवों से हम प्रार्थना करते हैं । ये देवगण हमें पाप-कृत्यों से मुक्त करें ॥४ ॥

३१६७.अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा। विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस।

दिन-रात्रि, इनके अधिष्ठाता देव सूर्य और चन्द्र तथा अदिति के सब पुत्रों (देवों) की हम स्तुति करते हैं, वे हमें दुष्कर्म रूपी पापों से बचाएँ ॥५ ॥

३१६८. वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः। आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥

वायुदेव, पर्जन्यदेव, अन्तरिक्ष, दिशाओं और उपदिशाओं की हम वन्दना करते हैं, वे हमें पाप से बचाएँ ॥६ ॥

३१६९. मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥७ ॥

दिन, रात्रि और उषःकाल के अधिष्ठाता देव, हमें शपथजनित पापों से बचाएँ, ज्ञानी लोग जिसे चन्द्रमा कहते हैं, वे सोमदेव भी हमें शपथजनित पापों से बचाएँ ॥७ ॥

३१७०. पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥८ ॥

पृथ्वी के ऊपर रहने वाले प्राणी, अन्तरिक्ष में रहने वाले पक्षी और जंगल में वास करने वाले मृग आदि पशुओं और शकुन्त पक्षियों से हम प्रार्थना करते हैं, वे सभी हमें पाप-कृत्यों से संरक्षित करें ॥८ ॥

३१७१. भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ॥९ ॥

भव और शर्वदेव तथा जो पशु संरक्षक रुद्रदेव हैं, उनकी हम स्तुति करते हैं । इन देवों के जिन बाणों को हम जानते हैं , वे हमारे निमित्त सदैव कल्याणकारी हों ॥९ ॥

३१७२. दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान्।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१० ॥

द्युलोक, नक्षत्र, भूमि, यक्ष, पर्वत, सातों समुद्रों, नदियों और जलाशयों की हम स्तुति करते हैं, वे सभी हमें पापों से संरक्षित करें ॥१० ॥

३१७३. सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११ ॥

सप्तर्षिगण, जल, प्रजापति ब्रह्मा, पितरगण और उनके अधिपति मृत्यु देवता यम की हम प्रार्थना करते हैं, वे हमें पाप-कृत्यों से रक्षित करें ॥११ ॥

३१७४.ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये । पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः

दिव्यलोक में विद्यमान देव, अन्तरिक्ष मण्डल में स्थित देव तथा भूलोक में जो देवगण हैं, वे हमें दुष्कर्म रूपी पापों से बचाएँ ॥१२ ॥

३१७५. आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१३ ॥

बारह आदित्यगण, एकादश रुद्रगण, आठ वसुगण, दिव्यलोक के वर्तमान देव, ऋषि अथर्वा, अंगिरा और मनीषीगण सभी हमसे स्तुत होकर, हमें पापों से मुक्त करें ॥१३ ॥

३१७६.यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा । यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥

हम यज्ञ और यजमान की स्तुति करते हैं । ऋचाओं और सामगान की हम स्तुति करते हैं । ओषधियों और यज्ञकर्त्ता होता, इन सबकी वन्दना करते हैं, वे हमें पापों से बचाएँ ॥१४ ॥

३१७७. पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१५ ॥

पत्र, काण्ड, फल-फूल और मूलात्मक पाँच राज्यों (स्थानों) से युक्त ओषधियों में सोमलता सर्वश्रेष्ठ है । दर्भ, भाँग, जौ और धान, ये सभी हमसे स्तुत होकर हमारे दुष्कर्मों को काटने में समर्थ हों ॥१५ ॥

३१७८. अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१६ ॥

यज्ञविरोधी असुरों, सर्पों, पुण्यकर्मियों, पितरगण और एक सौ एक मृत्यु के देवताओं की हम स्तुति करते हैं, वे हमें पापों से संरक्षित करें ॥१६ ॥

३१७९. ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१७ ॥

ऋतुओं, ऋतुओं के अधिपतियों, षड्ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले पदार्थों, संवत्सरों और मासों की हम स्तुति करते हैं, वे हमें पापों से मुक्त करें ॥१७ ॥

३१८०. एत देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१८ ॥

हे देवगण ! आप पूर्व - पश्चिम - उत्तर- दक्षिण अपनी- अपनी दिशाओं से शीघ्रतापूर्वक आकर, हमें पाप-कृत्यों से बचाएँ ॥१८ ॥

३१८१. विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१९ ॥

हम सत्य के प्रति दृढ़निष्ठ, सत्कर्मरूप यज्ञ संवर्द्धक समस्त देवों की , उनकी सहयोगी शक्तियों के साथ वन्दना करते हैं, वे हमें पापों से रक्षित करें ॥१९ ॥

३१८२. सर्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२० ॥

हम सत्यनिष्ठ, यज्ञवर्द्धक देवों की उनकी शक्तियों के साथ स्तुति करते हैं, वे हमारे पापों का शमन करें ॥२०॥

३१८३. भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥२१ ॥

भूतों को वशीभूत करने वाले, भूतों के अधिपति की हम स्तुति करते हैं, वे सभी हमें पापों से बचाएँ ॥२१ ॥

३१८४. या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ॥२२ ॥

दिव्यतायुक्त पाँच दिशाओं, बारह मासों और संवत्सर की दाढ़ों (पक्ष, सप्ताह आदि) की हम स्तुति करते हैं । वे हम सभी के प्रति कल्याणकारी हों ॥२२ ॥

३१८५. यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम् ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् ॥२३ ॥

(इन्द्र के सारथि) मातलि जिस रथक्रीत (रथ के बदले प्राप्त) अमरता देने वाली ओषधि के ज्ञाता हैं, इन्द्र ने उस ओषधि को जल में प्रविष्ट किया है । हे जलदेव ! आप वह कल्याणकारी ओषधि हमें प्रदान करें ॥२३ ॥

[मातलि का अर्थ होता है, मतल (मत स्थापनकर्ता) से उत्पन्न । स्थापित मत के आधार पर क्रियात्मक संकल्प उभरता है । यही इन्द्र (सर्वनियन्ता देव) का सारथि है । इन्द्र की शक्ति को यही सारथि उपयुक्त स्थान पर पहुँचाता है । यह स्त्रष्टा द्वारा स्थापित मत से उत्पन्न क्रियात्मक संकल्प ही यह जानता है कि अपने रथ (मनोरथ) को समर्पित करते ही यह अमरता प्राप्त की जा सकती है । इन्द्र ने उसे जल (रस तत्त्व) में स्थापित किया है । मनुष्य पाप तभी करता है, जब उसे ईश्वरीय अनुशासन से भिन्न क्रियाओं में रस आने लगे । यदि हितप्रद ईश्वरीय अनुशासन के पालन में हमें 'रस' आने लगे, तो हमारे सारे हीन मनोरथ समर्पित हो जाएँ तथा हम रथक्रीत अमरत्व की ओषधि पा जाएँ ।]

[९ - उच्छिष्ट-ब्रह्म-सूक्त]

[**ऋषि**- १-२७ अथर्वा । **देवता**- उच्छिष्ट, अध्यात्म । **छन्द**- अनुष्टुप्, ६ पुरोष्णिग् बार्हतपरा अनुष्टुप्, २१ स्वराट् अनुष्टुप्, २२ विराट् पथ्या बृहती ।]

इस सूक्त के देवता 'उच्छिष्ट' हैं । उच्छिष्ट का अर्थ होता है-अवशिष्ट, शेष बचा हुआ, छोड़ा हुआ । यजुर्वेद (४०.१) में कहा गया है- 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' (उसके द्वारा छोड़े हुए का ही भोग करो) । परमात्म सत्ता ने, अपने अव्यक्त गुणातीत स्वरूप में से, जो अंश त्याग दिया-छोड़ दिया है, वही उच्छिष्ट अंश नाम, रूपात्मक सृष्टि बनी है । यह उच्छिष्ट के प्रकट होने का क्रम सतत चल रहा है । परमात्म सत्ता के उच्छिष्ट (छोड़े हुए) अंश से सृष्टि का मूल उत्पादक, क्रियाशील तत्त्व, 'अप्' बना । अप् प्रवाह द्वारा छोड़े गये, उच्छिष्ट अंश से परमाणुओं के घटक सूक्ष्मकण (सब एटामिक पार्टिकल्स) बने । उनका अविरल प्रवाह बह रहा है उनके उच्छिष्ट से पंचभूतों की उत्पत्ति होती है । पृथ्वी के उच्छिष्ट से अन्न, वनस्पति आदि उत्पन्न होते हैं, प्रकृति चक्र में प्राणियों द्वारा उच्छिष्ट छोड़े हुए से वृक्ष-वनस्पतियों का तथा वृक्ष-वनस्पतियों के उच्छिष्ट से प्राणियों का क्रम चलता है । यही प्रकृति यज्ञ इकालॉजी का आधार है । ऋषि इस उच्छिष्ट चक्र को अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर उस रहस्य को प्रकट करते हैं-

३१८६. उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः ।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥१ ॥

(उस विराट् के) उच्छिष्ट (छोड़े हुए) में ही नाम और रूप तथा उसी में लोक -लोकान्तर स्थापित हैं । उसके अन्दर ही इन्द्र, अग्नि तथा समस्त विश्व समाहित है ॥१ ॥

३१८७. उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् ।

आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥२ ॥

उस अवशेष में द्युलोक और पृथ्वी के सभी प्राणी समाहित हैं । जल, समुद्र, चन्द्रमा और वायु ये सभी उसी उच्छिष्ट स्वरूप ब्रह्म में विद्यमान हैं ॥२ ॥

३१८८. सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः ।

लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ॥३ ॥

सत् (चेतनशील) और असत् (जड़तायुक्त) सृष्टि दोनों, इसी अवशिष्ट में हैं । मृत्यु, सर्जक बल तथा प्रजापति उसी उच्छिष्ट में स्थित हैं । सभी लोक वरुणदेव और अमृतमय सोम इसी में समाहित हैं । हममें श्री- शोभा उसी के कारण स्थित है ॥३ ॥

३१८९. दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश ।

नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥४ ॥

सुदृढ़ (लोकादि) , दृढ़ एवं स्थिर (जड़ पदार्थ) , गतिमान् प्राणी, अव्यक्त ब्रह्म, विश्व की उत्पत्ति करने वाली दस देव शक्तियाँ नाभि के आश्रित चक्र की तरह उच्छिष्ट के आश्रित हैं ॥४ ॥

३१९०. ऋक् साम यजुरुच्छिष्ट उद्‌गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् ।

हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥५ ॥

ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, उद्‌गीथ, स्तुति और स्तवन, ये सभी उच्छिष्ट में स्थित हैं । हिंकार, स्वर और सामगान के गायन, ये सभी यज्ञीय अवशिष्ट में ही निहित हैं । ये सभी हमारे अन्दर स्थित रहें ॥५ ॥

३१९१. ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम् । उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भइव मातरि ॥

इन्द्राग्नि की स्तुति वाले सूक्त, पवमान सोम के सूक्त, पावमान एवं महानाम्नी ऋचाएँ, महाव्रतशील यज्ञीय मंत्र भाग, ये सभी उसी प्रकार उच्छिष्ट में विद्यमान हैं, जिस प्रकार माता के गर्भ में जीव रहता है ॥६ ॥

३१९२.राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः । अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥

राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अध्वर, अर्क, अश्वमेध और आनन्दप्रद जीवन रक्षक यज्ञ, ये सभी प्रकार के यज्ञ उच्छिष्ट में ही विद्यमान हैं ॥७ ॥

३१९३. अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह ।

उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥८ ॥

अग्न्याधान, दीक्षा, छन्द से कामनाओं की पूर्ति करने वाला यज्ञ, उत्सन्न यज्ञ और सोमयागात्मक यज्ञ, ये सभी उच्छिष्ट में विद्यमान हैं ॥८ ॥

३१९४. अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः ।

दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥९ ॥

अग्निहोत्र, श्रद्धा, वषट्कार, व्रत, तप, दक्षिणा एवं अभीष्टपूर्ति, ये सभी उस उच्छिष्ट में विद्यमान हैं ॥९ ॥

३१९५. एकरात्रो द्विरात्रः सद्यः क्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः ।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥१० ॥

एकरात्र, द्विरात्र, सोमयाग, सद्य क्री एवं प्रक्री (एक दिन में सम्पन्न होने वाले सोम यज्ञ) उक्थ्य (उक्थ गान के साथ होने वाले याग), ये सभी यज्ञ तथा यज्ञ के शेष अंश ब्रह्मविद्या के साथ उच्छिष्ट में ही आश्रयीभूत हैं ॥१० ॥

३१९६. चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह । षोडशी
सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥११ ॥

चतुरात्र, पंचरात्र, षड्रात्र और इनके दो गुना दिनों वाले (अर्थात् अष्टरात्र, दशरात्र, द्वादशरात्र), सोलह तथा सप्तरात्र ये सभी यज्ञ उच्छिष्ट द्वारा ही विनिर्मित हैं । ये सभी अमृतमय फल प्रदान करने वाले हैं ॥११ ॥

३१९७. प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः ।
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥१२ ॥

प्रतिहार, निधन, विश्वजित्, अभिजित्, साह्न, अतिरात्र, द्वादशाह, ये सभी यज्ञ उच्छिष्टरूपी ब्राह्मी चेतना से युक्त हैं । ये सभी हमारे अन्दर स्थित हों ॥१२ ॥

३१९८. सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥१३ ॥

सत्यनिष्ठ वाणी, विनम्रभाव, कल्याण, पितरगणों को तृप्ति देने वाले स्वधा, बलप्रद अन्न, अमरत्व प्रदाता अमृत (पीयूष) , पराक्रमयुक्त शक्ति, ये सभी अभीष्ट काम यज्ञ, अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं, जो उच्छिष्ट में ही विद्यमान हैं ॥१३ ॥

३१९९. नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥१४ ॥

नौ खण्डों वाली भूमि, सात समुद्र, दिव्यलोक, सूर्यदेव और दिन-रात्रि भी उच्छिष्ट में ही समाहित हैं । यह सम्पूर्ण ज्ञान हमारे अन्दर स्थित हो ॥१४ ॥

३२००. उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥१५ ॥

उपहव्य, विषूवान् और गुहा में आश्रित (अज्ञात) जो यज्ञ है, उन्हें विश्व पोषक और पिता के भी उत्पन्नकर्त्ता उच्छिष्ट ही धारण करने वाले हैं ॥१५ ॥

३२०१. पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥१६ ॥

उच्छिष्ट, उत्पन्नकर्त्ता का भी परमपिता है, प्राण का पौत्र भी है और पितामह भी है । वह विश्व का नियन्ता होकर सर्वव्यापक है, सर्व समर्थ और पृथ्वी में सर्वोत्तम है ॥१६ ॥

३२०२. ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥१७ ॥

ऋत, सत्य, तप, राष्ट्र, श्रमशीलता, क्रियाशीलता, भूत (उत्पादित विश्व) , उत्पादित होने वाला भविष्यत्,

वीर्य (पराक्रम शक्ति), श्री - सम्पदा और बल, ये सभी उच्छिष्ट के ही आश्रित हैं ॥१७ ॥

३२०३. समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥१८ ॥

भौतिक समृद्धि, शारीरिक ओज, संकल्प बल, क्षात्रतेज, क्षात्र धर्म से संरक्षण योग्य राष्ट्र, छह भूमियाँ, संवत्सर, इडा (अन्न) देव, ऋत्विजों के कर्मप्रेरक मंत्र प्रैष, ग्रह, चरु से युक्त हवि, ये सभी उच्छिष्ट (परब्रह्म) में ही स्थित हैं ॥१८॥

३२०४. चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥१९ ॥

चतुर्होता, आप्रिय, चातुर्मास्य, स्तोता की गुणवत्ता को प्रकट करने वाले मंत्र निविद, यज्ञ होत्रा (सप्त वषट्कर्ता), पशुबन्ध और उसकी इष्टियाँ उच्छिष्ट में ही समाहित हैं ॥१९ ॥

३२०५. अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीराप: स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥२० ॥

अर्धमास (पक्ष), मास, ऋतुओं के साथ ऋतु-पदार्थ, घोषयुक्त जल, गर्जना करते हुए मेघ और पवित्र भू-मण्डल, ये सभी उच्छिष्ट में ही समाहित हैं ॥२० ॥

३२०६. शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥२१ ॥

पथरीली बालू, रेत, पत्थर, ओषधियाँ , वनस्पतियाँ और घास, जलपूर्ण बादल, विद्युत् तथा वृष्टि ये सभी उच्छिष्ट रूप ब्रह्म में ही आश्रित हैं ॥२१ ॥

३२०७. राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः ।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥२२ ॥

पूर्ण सिद्धि, इष्टफल की प्राप्ति, सम्यक् प्राप्ति-समाप्ति, अनेक प्रकार के पदार्थों की प्राप्ति- व्याप्ति, तेजस्विता, अभिवृद्धि -समृद्धि, अत्यधिक प्राप्ति और ऐश्वर्यशीलता, ये सभी उच्छिष्ट ब्रह्म में ही आश्रययुक्त हैं ॥२२ ॥

३२०८. यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२३ ॥

प्राण धारण करने वाले (प्राणी) , जो नेत्रों से देखने वाले हैं, ये सभी उच्छिष्ट से निर्मित हैं । जो देव शक्तियाँ दिव्यलोक (स्वर्गलोक) में विद्यमान हैं, वे सभी उच्छिष्ट में ही सन्निहित हैं ॥२३ ॥

३२०९. ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२४ ॥

यजु, ऋक्, साम, छन्द (अथर्व) आदि वेद द्युलोक तथा स्वर्गस्थ सभी देवता उच्छिष्ट यज्ञ में ही स्थित हैं ॥

३२१०. प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२५ ॥

प्राण, अपान, श्रोत्र, चक्षु, भौतिक और अक्षय - चेतनशील तथा दिव्यलोक के देवगण, ये सभी उच्छिष्ट (परब्रह्म) से ही प्रादुर्भूत हैं ॥२५ ॥

३२११. आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२६ ॥

आनन्द, मोद, प्रमोद, प्रत्यक्षीभूत आनन्द और स्वर्गीय देवगण, ये सभी उच्छिष्ट ब्रह्म से ही उत्पादित हुए हैं ॥

३२१२. देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥२७ ॥

देवगण, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सराएँ और देवता, ये सभी उच्छिष्ट ब्रह्म से ही उत्पादित हैं ॥२७ ॥

[१० - अध्यात्म सूक्त]

[ऋषि- कौरुपथि । देवता- अध्यात्म और मन्यु । छन्द- अनुष्टुप्, ३३ पथ्यापंक्ति ।]

इस सूक्त के देवता अध्यात्म मन्यु हैं । कोश ग्रंथों के अनुसार मन्यु के अर्थ अनेक हैं, यहाँ उत्साह एवं अहंकार ठीक बैठते हैं । प्रथम मंत्र में मन्यु अपनी पत्नी को संकल्प के घर से प्राप्त करता है । मन्यु आत्मतत्त्व पर आधारित उत्साह या अहंकार (स्वबोध) संकल्प के घर में अपनी सहधर्मिणी संकल्पशक्ति से विवाह रचाता है । वह आत्म स्फूर्त, उत्साह, संकल्पशक्ति के संयोग से सृष्टि (रचना) करता है । उसमें वर पक्ष एवं कन्या पक्ष के रूप में अनेक प्रवृत्तियाँ, शक्तिधाराएँ सहयोग करके उस महोत्सव को सफल बनाती हैं । प्रारंभ के मंत्रों में संरचना के घटकों देवशक्तियों का वर्णन करते हुए बाद के मंत्रों में सृजित शरीरों के निर्माण और उनकी विशेषताओं का वर्णन है । यह वर्णन मनुष्यों, प्राणियों के शरीरों से लेकर प्रकृति के विराट् शरीर तक सर्वत्र लागू होता है । मंत्रार्थ इस ढंग से करने के प्रयास किये गये हैं कि अध्येता विभिन्न दृष्टियों से उन्हें समझ सकें-

३२१३. यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥१ ॥

जिस समय मन्यु (आत्म स्फूर्ति, उत्साह) ने संकल्पबल के गृह (स्रोत) से अपनी संकल्पशक्ति रूपी स्त्री को प्राप्त किया, उस समय कन्यापक्ष के लोग कौन थे ? वर पक्ष के लोग कौन थे ? उनमें किसे श्रेष्ठ वर की संज्ञा से विभूषित किया गया था ? ॥१ ॥

३२१४. तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे । त आसं
जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥२ ॥

अर्णव (सृष्टि से पूर्व सृष्टि के मूल सक्रिय तत्त्व के महासागर) के बीच तप और कर्म ये दो पक्ष थे, वे ही वर पक्षीय और कन्या पक्षीय लोग थे तथा ब्रह्म ही उस समय सर्वश्रेष्ठ वर थे ॥२ ॥

३२१५. दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा । यो वै
तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ॥३ ॥

अधिष्ठाता देवों से दस देवता उत्पन्न हुए (उनका वर्णन अगले मंत्र में है) । जिस साधक ने प्रत्यक्ष रूप में इनका निश्चित ही साक्षात्कार किया, वही ज्ञानी मनुष्य देश, काल आदि से रहित विराट् ब्रह्मज्ञान को कहने में समर्थ है ॥३ ॥

३२१६. प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥४ ॥

प्राण, अपान, नेत्र, श्रवणेन्द्रिय, क्षीणता रहित-ज्ञानशक्ति, क्षीणतायुक्त भौतिक शक्ति, व्यान (अन्नरस को संचारित करने वाली वृत्ति) , उदान (ऊपरी उद्‌गार, व्यापार को चलाने वाली प्रक्रिया) , वाणी और मस्तिष्क, ये दस प्राण निश्चित ही संकल्पशक्ति को धारण करते हैं ॥४ ॥

३२१७. अजाता आसन्नृतवोऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥५ ॥

ऋतुएँ, धाता, बृहस्पतिदेव, देवराज इन्द्र, अग्निदेव और अश्विनीकुमार ये सभी देव जब उत्पन्न नहीं हुए थे, ऐसी अवस्था में इन देवों ने (अपनी उत्पत्ति के लिए) किस श्रेष्ठ की उपासना की थी ? ॥५ ॥

३२१८.तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे । तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥६ ।

ज्ञानयुक्त तप और फलरूप कर्म ही विशाल समुद्र में विद्यमान थे । कर्मशक्ति से तप की उत्पत्ति हुई, इसलिए वे धाता आदि देव अपनी उत्पत्ति के लिए उसी की उपासना करते हैं ॥६ ॥

३२१९. येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः ।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित् ॥७ ॥

वर्तमान भूमि (पृथ्वी या काया) से पूर्व की (बीते हुए जीवन या कल्प) की जो भूमि थी, उसे तप के प्रभाव से सर्वज्ञ महर्षियों ने जान लिया था । अतीतकालीन भूमि को जो पृथक्-पृथक् नाम से जानते हैं, वही पुराण (पुरातन) के जानने वाले कहे जाते हैं ॥७ ॥

३२२०. कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत ।
कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो धाताजायत ॥८ ॥

उस (सृष्टि सृजन के) समय में इन्द्र, अग्नि, सोम, त्वष्टा और धातादेव आदि किससे उत्पन्न हुए ॥८ ॥

३२२१. इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत ॥९ ॥

(उस समय) इन्द्र से इन्द्र, सोम से सोम, अग्नि से अग्नि, त्वष्टा से त्वष्टा तथा धाता से धाता की उत्पत्ति हुई ॥९ ॥

[परमात्मा में ये सभी शक्तियाँ या विशेषताएँ बीज रूप में स्थित रहती हैं । उन विशेषताओं से ही ये शक्तियाँ पहले वाले कल्प की तरह ही प्रकट हुईं ।]

३२२२. ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥१० ॥

जिन अग्नि आदि अधिष्ठाता देवों से पूर्वोक्त प्राण, अपान आदि दस देवगण उत्पन्न हुए, वे (देवगण) अपने पुत्रों को स्थान देकर किस लोक में आश्रयीभूत हुए ? ॥१० ॥

३२२३. यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत् ।
शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकमनुप्राविशत् ॥११ ॥

सृष्टि-रचना काल में स्रष्टा ने जब बाल, अस्थि, नसों, मांस और मज्जा को एकत्र किया, तो उनसे हाथ-पैर आदि शारीरिक अंगों की रचना करके किस लोक में अनुकूलता के साथ प्रवेश किया ? ॥११ ॥

३२२४. कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् ॥१२ ॥

उस स्रष्टा ने किस- किस उपकरण से केशों, किससे स्नायु भाग, कहाँ से अस्थियों को परिपूर्ण किया ? कहाँ से शारीरिक अंग-अवयवों, पोरों और मांस, मज्जा को एकत्रित किया ? ऐसा कह पाने में कौन समर्थ है ? ॥

३२२५. संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन्।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥१३ ॥

वे देवगण सींचने वाले (संसिच) इस नाम से युक्त हैं । वे देव मरणधर्मा शरीर को रक्त से गीला करके उसे पुरुष आकृति रूप बनाकर उसमें प्रविष्ट हुए ॥१३ ॥

३२२६. ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम्।
पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समदधादृषिः ॥१४ ॥

किस ऋषि ने जंघाओं, घुटनों, पैरों, सिर, हाथ, मुख, पीठ, हँसली और पसलियों आदि सभी अंगों को आपस में मिलाया ? ॥१४ ॥

३२२७. शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संधा समदधान्मही ॥१५ ॥

सिर, हाथ, मुख, जीभ, कण्ठ और अस्थियों आदि सभी पर चर्म के आवरण को चढ़ाकर देवों ने अपने-अपने कर्म में संलग्न किया ॥१५ ॥

३२२८. यत्तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत्।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत् ॥१६ ॥

जो यह विशाल शरीर है, संधाता (जोड़ने वाला) देव द्वारा जिसके अवयव जोड़े गये हैं, वह शरीर जिस वर्ण (प्रकृति या रंग) से प्रकाशित है, किस देव ने इस शरीर में वर्ण की स्थापना की ? ॥१६ ॥

३२२९. सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत् ॥१७ ॥

देवों ने शिक्षा (प्रतिभा) प्रदान की । स्थिर (धर्म पर स्थिर) वधू (सर्जक शक्ति) ने उसे समझ लिया ।सबको वश में रखकर शासन चलाने वाली उस जाया (जन्मदात्री) ने (अंगों में) वर्णों (प्रवृत्तियों) को भर दिया ॥१७ ॥

३२३०.यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः । गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥

जगत् के उत्पादक जो श्रेष्ठ आदिदेव त्वष्टा हैं, उन्होंने जब नेत्र, कान आदि छिद्रों की रचना की, उस समय मनुष्य देह को घर बनाकर प्राण, अपान और इन्द्रिय आदि देवों ने उसमें प्रवेश किया ॥१८ ॥

३२३१. स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् ॥१९ ॥

स्वप्न, निद्रा, आलस्य, निर्ऋति आदि पापमूलक देवों ने वृद्धावस्था में क्षरण करने वाले खालित्य, बाल सफेद करने वाले पलितत्व आदि सहित शरीर में प्रवेश किया ॥१९ ॥

३२३२. स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत्।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥२० ॥

चोरी, दुराचार, कुटिलता, सत्य, यज्ञ, महान् कीर्ति, बल, क्षात्रतेज और सामर्थ्य शक्ति- ये सभी मनुष्य देह में प्रवेश कर गये ॥२० ॥

३२३३. भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।

क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥२१ ॥

ऐश्वर्य, दरिद्रता, दानवृत्ति, कंजूसी, भूख और सभी प्रकार की तृष्णा, ये सभी इस मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हुए ।

३२३४. निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।

शरीरं श्रद्धा दक्षिणा श्रद्धा चानु प्राविशन् ॥२२ ॥

निन्दा, स्तुति, आनन्दप्रद वस्तु, आनन्दरहित शोक, श्रद्धा, धन-समृद्धि रूप दक्षिणा (दक्षता) , अश्रद्धा आदि भी मनुष्य देह में प्रवेश कर गये ॥२२ ॥

३२३५. विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।

शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥२३ ॥

विद्या (आत्मविद्या) एवं अविद्या (भौतिक विद्या) तथा अन्य जो उपदेश करने योग्य शब्द हैं, साथ ही ऋक्, साम, यजुर्वेद आदि सभी इस मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हुए ॥२३ ॥

३२३६.आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये । हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥

आनन्द, मोद, प्रमोद, हास्य- विनोद, हास्य चेष्टा और नर्तन आदि ये भी मनुष्य देह में प्रविष्ट हुए ॥२४ ॥

३२३७.आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये । शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥

सार्थक कथन (आलाप) , निरर्थक कथन (प्रलाप) और वार्तालाप इन सभी ने मनुष्य में प्रवेश किया । आयोजन, प्रयोजन और योजन भी मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हुए ॥२५ ॥

३२३८. प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।

व्यानोदानौ वाङ् मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥२६ ॥

प्राण, अपान, चक्षु, कान, जड़- चेतनशक्ति, व्यान, उदान, वाणी और मन ये सभी मनुष्य देह में प्रविष्ट होकर उसके साथ अपने-अपने कार्यों में संलग्न होते हैं ॥२६ ॥

३२३९. आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।

चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥२७ ॥

प्रार्थना रूप आशीष, घोषणा- प्रशासन, संमति, विशेष अनुशासन, मन बुद्धि, चित्त और अहंकार की समस्त वृत्तियों ने मानव देह में प्रवेश किया ॥२७ ॥

३२४०. आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।

गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ॥२८ ॥

स्नान में प्रयुक्त (स्वच्छ करने वाला) जल, स्नान (पेय रूप) जल, प्राण को स्थिरता देने वाला जल, शीघ्रगामी जल, अल्प जल, गुहा स्थित जल, शुक्ररूपी जल, स्थूल जल तथा बीभत्स भाव (ये सभी प्रकार के रस एवं भाव प्रवाह) शरीर में प्रविष्ट हुए ॥२८ ॥

३२४१.अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् । रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥

अस्थियों को समिधा रूप (आधार) बनाकर आठ प्रकार के जल ने शरीर की आकृति को गढ़ा और वीर्य को घृत रूप में प्रयुक्त करके देवों ने मनुष्य देह में प्रवेश किया ॥२९ ॥

३२४२. या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥३० ॥

यह जल, देवगण जो विराट् ब्रह्म के साथ (अव्यक्त रूप में) रहते हैं, वे सभी ब्रह्मतेज के साथ मनुष्य देह में प्रविष्ट हुए । ब्रह्म भी शरीर में प्रविष्ट हुआ और वही प्रजापति (स्वामी) रूप में स्थित रहता है ॥३० ॥

३२४३. सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे । अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये॥

सूर्यदेव ने आँख को, वायुदेव ने घ्राणेन्द्रिय को अपने भाग रूप में स्वीकार किया, इसके अतिरिक्त छह कोशयुक्त शरीर को सभी देवगणों ने अग्नि को भागरूप में प्रदान किया ॥३१ ॥

३२४४. तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥३२ ॥

इस प्रकार इन सभी बातों का ज्ञाता विद्वान् मनुष्य शरीर को "यह ब्रह्म स्वरूप है" ऐसा मानता है; क्योंकि इसमें सभी देव शक्तियाँ उसी प्रकार वास करती हैं, जिस प्रकार गोशाला में गौएँ निवास करती हैं ॥३२ ॥

३२४५. प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।
अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ॥३३ ॥

(यह जीवात्मा) मृत्यु के क्रम में एक प्रकार के (श्रेष्ठ) कर्म से (उच्च लोकों में) जाता है, एक प्रकार के (हीन) कर्म से (निम्न लोकों में) जाता है तथा एक प्रकार के कर्म से (पुनः इस विश्व का) सेवन (भोग) करता है ॥३३ ॥

३२४६. अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिञ्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ॥३४ ॥

पोषक अप् (जल) प्रवाह (अन्तरिक्ष अथवा गर्भ) के बीच यह शरीर बढ़ता है, इसलिए इसे शव (बढ़ने वाला) कहते हैं । उसके अन्दर स्थापित उस (बढ़ाने वाले) आत्मतत्त्व को 'शव' कहते हैं ॥३४ ॥

[११ - शत्रुनिवारण सूक्त]

[ऋषि- काङ्कायन । देवता- अर्बुदि । छन्द- अनुष्टुप्, १ त्र्यवसाना सप्तपदा विराट् शक्वरी, ३ परोष्णिक्, ४ त्र्यवसाना उष्णिक् बृहतीगर्भा परात्रिष्टुप् षट्पदा अतिजगती, ९, ११, १४, २३, २६ पथ्यापंक्ति, १५, २२, २४-२५ त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी, १६ त्र्यवसाना पञ्चपदा विराट् उपरिष्टाज्ज्योति त्रिष्टुप्, १७ त्रिपदा गायत्री ।]

इस सूक्त के ऋषि काङ्कायन तथा देवता अर्बुदि है । कंक का अर्थ क्षत्री-रक्षक होता है । कांकायन का अर्थ रक्षा प्रयासों में प्रवृत्त व्यक्ति । अर्बुदि अर्व धातु से बना है, जिसका अर्थ संहार होता है । अस्तु, अधिकांश आचार्यों ने अर्बुदि को शत्रुसंहारक के अर्थ में ही लिया है । मन्त्रार्थों में शत्रुसंहारक सेनानायक द्वारा शत्रु हनन का भाव भी उभर आता है; किन्तु अर्बुद का अर्थ- मेघ तथा न्यर्बुद (निः अर्बुद) का अर्थ- विशिष्ट प्रयोजन से मेघ भी होता है । यज्ञीय एवं मन्त्र की सामर्थ्य के संयोग से विकसित स्थूल सूक्ष्म मेघों के प्रहार से वातावरण में व्याप्त- सूक्ष्म और स्थूल घातक पदार्थों और प्राणियों को नष्ट करने का भाव सूक्त मन्त्रों में बड़ी स्पष्टता से उभरता है । अध्येता उन्हें दोनों संदर्भों में समझ सकते हैं । सूक्त में एक शब्द उदारान् भी बार-बार आया है । उसका अर्थ, उत् + आरान् ऊपर के आततायी अथवा ऊपर के भीषण अस्त्र होता है । अर्बुद से ऊपर के आततायियों को भयभीत करने के लिए ऊपर के अस्त्र दिखाने, उनका प्रभाव दिखाने की प्रार्थना की गयी है-

३२४७. ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च । असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि । सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥१ ॥

हे अर्बुदि ! ये जो आपके (विशाल) बाहु हैं, बाण- धनुषों के पराक्रम हैं, तलवारें, परशु आदि आयुध तथा हृदय के संकल्प हैं, उन्हें अमित्रों (शत्रुओं) द्वारा देखे जाने योग्य स्थिति में लाएँ, उत्-आरानों को भी दिखाएँ ॥१ ॥

[**अमित्र जब हमें कमजोर देखते हैं , तो हानि पहुँचाने के लिए आक्रामक हो उठते हैं। सामर्थ्य को देखकर वे मर्यादा में बने रहते हैं। ऋषि का भाव है कि आततायी हमारी सामर्थ्य देखकर ही शांत रहें ; ताकि भले लोग शान्ति से बने रहें, शान्ति भंग न हो तथा किसी को मारना भी न पड़े। उदारान् प्रदर्शय के दोनों अर्थ होते हैं- (१) ऊपर के आततायियों को शस्त्र दिखायें अथवा ऊपर के पीड़क शस्त्र दिखाकर दुष्टों को शान्त करें।**]

३२४८. उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥२ ॥

हे मित्र देवो ! आप उठें और युद्ध के लिए तत्पर हों। हे शत्रुनाशक अर्बुदि ! जो हमारे मित्र हैं, उन्हें आप भली प्रकार सुरक्षित रखें। आपके द्वारा हमारे सभी वीर सैनिक संरक्षणयुक्त हों ॥२ ॥

३२४९. उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम्। अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥३ ॥

हे अर्बुदि ! आप अपने स्थान से उठें और अपना कार्य प्रारम्भ करें। 'आदान' और 'संदान' विधियों या उपकरणों से शत्रु सेनाओं को वशीभूत करें ॥३ ॥

३२५०. अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः। याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं
च पृथिवी मही। ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥४ ॥

जो अर्बुदि और न्यर्बुदि नाम से प्रसिद्ध देव हैं, जिन्होंने अन्तरिक्ष और भूमण्डल को आवृत कर रखा है, ऐसे इन्द्र के स्नेही (अर्बुदि और न्यर्बुदि) विजय दिलाने वाले हैं, ऐसी हमारी मान्यता है ॥४ ॥

३२५१.उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह । भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥

हे देव समुदाय वाले अर्बुदि ! आप अपनी सैन्य शक्ति के साथ उठें और शत्रुओं की शक्ति खण्डित करते हुए, उन्हें चारों ओर से घेर लें या दूर हटा दें ॥५ ॥

३२५२.सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन्। तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया।

हे न्यर्बुदि ! ऊपर के सात प्रकार के अस्त्रों की समीक्षा करते हुए घृताहुति दिये जाने के साथ ही अपनी सैन्यशक्ति सहित उठ खड़े हों ॥६ ॥

३२५३. प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु। विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥

हे अर्बुदि ! आपके प्रहार से पुरुष या पौरुष नष्ट हो जाने पर शत्रु शक्तियाँ श्री- हीन, अस्त-व्यस्त तथा अश्रुमुखी होकर आक्रोश से भर उठें ॥७ ॥

३२५४. संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती। पतिं भ्रातरमात् स्वान् रदिते अर्बुदे तव।

हे अर्बुदि ! आपके आक्रमण से वह (शत्रु शक्ति) करूकर (कार्यतन्त्र) को समेट कर अपने पुत्र, भाई- बन्धुओं (कुटुम्बियों) के हित (सुरक्षा) की कामना करें ॥८ ॥

३२५५. अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः।
ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥९ ॥

हे शत्रुनाशक अर्बुदे ! आपके प्रहार से शत्रुओं के नष्ट हो जाने पर भयंकर विशाल मांसभक्षी पक्षी गीध, बाज और कौवे आदि उनको खाकर परितृप्त हों। इसे आप देखते रहें ॥९ ॥

[मरे हुए शरीरों से सड़ाँध न फैले, इसके लिए प्रकृति ने मरे हुए प्राणियों का माँस खाने वाले जीव पैदा किये हैं। वे युद्ध में मरे शत्रुओं अथवा प्रकृति द्वारा नष्ट किये गये शत्रु कीटों को खाकर तृप्त होते हैं।]

३२५६.अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः। पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव।

हे शत्रुसंहारक अर्बुदे ! आपके द्वारा नष्ट किये जाने पर गीदड़, व्याघ्र, मक्खी और मांस के छोटे कृमि- ये सभी शत्रुओं के शवों का भक्षण करके परितृप्त हों ॥१०॥

३२५७. आ गृह्णीतं सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे।
निवाशा घोषाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥११॥

हे अर्बुदि और न्यर्बुदि नामक वीरो ! आप दोनों शत्रुओं के प्राणों को ग्रहण करें और उन्हें समूल विनष्ट करें। जिससे उनमें कोलाहल-हाहाकार मचने लगे ॥११॥

३२५८. उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज। उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥

हे न्यर्बुदि ! आप हमारे शत्रुओं को भयभीत करें, शत्रु भयाक्रान्त होकर पलायन करने लगें। वे भयभीत हों, तत्पश्चात् आप हमारे शत्रुओं को हाथों और पैरों की क्रिया से रहित करके प्रताड़ित करें ॥१२॥

३२५९.मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि। मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव ॥

हे शत्रु संहारक अर्बुदि ! आपके द्वारा प्रताड़ित शत्रुओं की भुजाएँ शिथिल हो जाएँ, हृदय के संकल्प भी विस्मृत हो जाएँ, इन शत्रुओं के रथ, हाथी, अश्वादि कुछ भी सुरक्षित न रह सकें ॥१३॥

३२६०. प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः।
अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥१४॥

हे शत्रु विनाशक अर्बुदि ! आपके प्रहार से पुरुषों या पुरुषत्व का नाश होने पर शत्रु शक्तियाँ, आधारहीन, बिखरे केशवाली अस्तव्यस्त होकर छाती पीटती हुई रोती- भागती फिरें ॥१४॥

३२६१. श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे। अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम्।
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥१५॥

हे अर्बुदे ! आप श्वन्वती (फूलने वाले) रूपवाली अप्सराओं, अन्तः पात्र (अन्तःकरण) को उत्तेजित करने वाली पीड़ा, मायारूपी सेनाओं, ऊर्ध्व अस्त्रों और भयंकर दैत्यों को, शत्रुओं को दिखाएँ ॥१५॥

३२६२. खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम्। य उदारा
अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये। सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥१६॥

अन्तरिक्ष में भ्रमणशील छोटे से छोटे स्थान पर रहने वाली हिंसक पक्षिका को दिखाएँ, जो ऊपर स्थित उत्पीड़क गुह्य अस्त्रों का प्रयोग करे। अपनी माया से दृष्टिगोचर न होने वाले गंधर्व, अप्सरा, सर्प, राक्षस हैं; उन्हें आप पराजित करने हेतु शत्रुओं को दिखाएँ ॥१६॥

३२६३. चतुर्दंष्ट्राञ्छ्यावदतः कुम्भमुष्काँ असृङ्मुखान्। स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥१७॥

चार दाढ़ों से युक्त, काले दाँतों वाले, घड़े के समान अण्डकोशों वाले, रक्त से संलिप्त मुख वाले, भयभीत होने वाले और भयभीत करने वाले- इन सभी को शत्रुओं को दिखाकर भयाक्रान्त करें ॥१७॥

३२६४. उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः।
जयांश्च जिष्णुश्चामित्राञ्जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥१८॥

हे अर्बुदि ! आप शत्रुओं की सेनाओं को शोकाकुल करके कम्पायमान करें । आप दोनों विजयशील इन्द्रदेव के मित्ररूप हैं, अतएव हमारे वैरियों को पराजित करते हुए, हमें विजयी बनाएँ । ।१८ ॥

३२६५. प्रब्लीनो मृदितः शयां हतोऽमित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥१९ ॥

हे न्यर्बुदे ! हमारा शत्रु घेरे जाकर, मसले जाकर सो जाए और यज्ञीय धूम्र शिखा तथा अग्नि ज्वालाएँ शत्रुओं की सेनाओं को जीतती हुई, हमारी सेना के साथ प्रस्थान करें ॥१९ ॥

३२६६.तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् । अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ।

हे अर्बुदे ! आपके द्वारा युद्धभूमि से भागे हुए श्रेष्ठ शत्रुवीरों को इन्द्रदेव चुन-चुनकर हिंसित करें और इन शत्रुओं में से कोई भी सुरक्षित न रह सके ॥२० ॥

३२६७.उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु । शौष्कास्यमनु वर्तताममित्रान् मोत मित्रिणः ।

शत्रुओं के हृदय उखड़ जाएँ, शत्रुओं के प्राण ऊपर ही ऊपर शरीर का साथ छोड़ दें । भयवश उनके मुख सूख जाएँ और हमारे मित्रजनों को इस प्रकार के कष्ट न हों ॥२१ ॥

३२६८. ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये । तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिनः । सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥२२

जो धैर्यशाली वीर, अधीर, कायर, युद्ध से पलायन करने वाले भयवश शक्ति -विहीन अन्धकार से घिरे हुए हैं । जो मोहवश, भग्नशृंग पशु के समान परेशान होकर खड़े रह जाते हैं और जो भेड़-बकरियों के समान शब्द करने वाले वीर हैं, हे अर्बुदे ! हमारे उन सभी सेनानियों को, शत्रुओं को पराजित करने के लिए इन शत्रुओं के समक्ष करें ॥२२ ॥

३२६९. अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ॥२३ ॥

अर्बुदि और त्रिषन्धि नामक ये दोनों देव हमारे वीरनायक हैं, ये शत्रुओं को अनेक विधियों से विनष्ट करें, हे वृत्रनाशक शचीपति इन्द्रदेव ! जिन हजारों प्रकार की रीतियों से हम इन शत्रुओं का संहार कर सकें, उस प्रकार आप इन्हें प्रताड़ित करें ॥२३ ॥

३२७०. वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः । गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्य-जनान् पितॄन् । सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥२४ ॥

हे अर्बुदि देव ! वृक्ष और वनस्पतियों से निर्मित पदार्थों, ओषधियों, लताओं, गंधर्वों , अप्सराओं, सर्पों, देवों, पुण्यजनों , पितरगणों को आप शत्रुओं को प्रदर्शित करें और आकाशीय अस्त्रों (शक्तियों) को भी प्रदर्शित करें , जिससे शत्रुपक्ष भयभीत हो जाए ॥२४ ॥

३२७१. ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः । ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः । ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥२५ ॥

हे अर्बुदे ! आपके आक्रमण किये जाने पर, शत्रुओं की पहचान होने के बाद हमारे शत्रुपक्ष को मरुद्‌गण दण्डित करें । इन्द्र, अग्नि आदि देवता शत्रुओं पर नियंत्रण करें । धाता, मित्र, प्रजापति, आदित्य, ब्रह्मणस्पति देव तथा अथर्वा, अङ्गिरा आदि ऋषिगण शत्रुओं को नियंत्रित करें ॥२५ ॥

३२७२. तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम्॥२६॥

हे हमारे मित्ररूप देवगण ! आप हमारे शत्रुपक्ष का नियंत्रण करने के लिए उठकर तत्पर हों। इस प्रस्तुत युद्ध में भली प्रकार विजय प्राप्त करके अपने-अपने स्थान को प्रस्थान करें॥२६॥

[१२ - शत्रुनाशक सूक्त]

[ऋषि- १-२७ भृग्वङ्गिरा। देवता- त्रिषन्धि। छन्द- अनुष्टुप्, १ विराट् पथ्या बृहती, २ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुब्गर्भा अतिजगती, ३ विराट् आस्तार पंक्ति, ४ विराट् अनुष्टुप्, ८ विराट् त्रिष्टुप्, ९ पुरोविराट् पुरस्ताज्ज्योति त्रिष्टुप्, १२ पञ्चपदा पथ्यापंक्ति, १३ षट्पदा जगती, १६ त्र्यवसाना षट्पदा ककुम्मती अनुष्टुप् त्रिष्टुब्गर्भा शक्वरी, १७ पथ्यापंक्ति, २१ त्रिपदा गायत्री, २२ विराट् पुरस्ताद् बृहती, २५ ककुप् उष्णिक्, २६ प्रस्तार पंक्ति।]

३२७३.उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह। सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत।

हे उदार वीरो ! आप अपनी ध्वजा- पताकाओं के साथ युद्ध के लिए चल पड़ें। हे सर्प के समान आकृति वाले देवगण ! आप राक्षसों और अन्य लोगों के साथ हमारे शत्रुओं पर आक्रमण करें॥१॥

३२७४. ईशां वो वेद राज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह। ये अन्तरिक्षे ये दिवि
पृथिव्यां ये च मानवाः। त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम्॥२॥

हे शत्रुओ ! वज्रधारी देव तुम्हें वश में रखें। हे त्रिषन्धिदेव ! आप अपनी अरुणवर्ण ध्वजा-पताकाओं के साथ उठें और आकाश, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी के बुरे काम (दुष्प्रतिष्ठा) वाले मनुष्यों पर दृष्टि रखें॥२॥

३२७५. अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः।
क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना॥३॥

त्रिषन्धि वज्र के साथ लोहे के मुख (फल) वाले, सुई की नोक के समान बहुत से काँटों वाले, वृक्षों के समान काँटेदार, कच्चे मांस का भक्षण करने वाले और वायु के वेग से गमन करने वाले (बाण) शत्रुओं पर टूट पड़ें॥३॥

३२७६.अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु। त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे॥४॥

हे जातवेदा, हे आदित्य ! आप शत्रु शवों को आत्मसात् कर लें। त्रिषंधिदेव की वज्र को धारण करने वाली सेना भली प्रकार हमारे नियन्त्रण में रहे॥४॥

३२७७. उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह। अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया॥

हे देवजनो, हे अर्बुदे ! आप अपनी सेना के साथ उठें। यह आहुति आपको तृप्ति प्रदान करने वाली हो। त्रिषन्धिदेव की सेना भी हमारी आहुति से परितृप्त होकर हमारे शत्रुओं को विनष्ट कर डाले॥५॥

३२७८.शितिपदी सं द्यतु शरव्येऽयं चतुष्पदी। कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया।

यह शितिपाद चार चरण वाली शक्ति, बाणों की तरह शत्रुओं का संहार करे। हे विनाशकारिणी कृत्ये ! आप त्रिषन्धि नामक देव के वज्र को धारण करने वाली सेना के साथ शत्रुओं के विनाश के लिए उद्यत रहें॥६॥

३२७९.धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु।
त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः॥७॥

मायावी धूम्र से शत्रुसेना के नेत्र भर जाएँ और वह धराशायी होने लगे। नगाड़ों की ध्वनि से श्रवण शक्ति

के नष्ट होने पर शत्रुसेना रोने लगे । त्रिषन्धिदेव की सेना की विजय होने पर लाल वर्ण के ध्वज फहराये जाएँ ॥७ ॥

३२८०. अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति ।
श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥८ ॥

जो पक्षी दिव्यलोक और अन्तरिक्ष लोक में विचरण करने वाले हैं, शत्रुदल की मृत्यु पर मांस भक्षण के लिए नीचे मुख करके आ जाएँ । हिंसक पशु और मक्खियाँ शवभक्षण के लिए हमला करें । कच्चे मांस को खाने वाले गीध भी शवों का भक्षण करें ॥८ ॥

३२८१. यामिन्द्रेण संधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ॥९ ॥

हे बृहस्पति देव ! आपने देवराज इन्द्र और प्रजापति ब्रह्मा से जो संधान क्रिया (प्रतिज्ञा) की थी; हे इन्द्रदेव ! उस प्रतिज्ञा स्वरूप संधान क्रिया से हम समस्त देवों को यहाँ आवाहित करते हैं । हे आवाहित देवो ! आप हमारे सैन्यदल को विजय श्री प्रदान करें, शत्रुसेना को नहीं ॥९ ॥

३२८२. बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः । असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धि दिव्याश्रयन् ॥

अंगिरा के पुत्र देवमन्त्री बृहस्पति और अपने ज्ञान से प्रखर अन्य ऋषि भी असुरों के संहारक त्रिषन्धि नामक वज्र का दिव्यलोक में आश्रय लेते रहे हैं ॥१० ॥

३२८३. येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।
त्रिषन्धिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥११ ॥

जिस त्रिषन्धि ने सूर्यदेव को संरक्षित किया । सूर्य और इन्द्र दोनों उससे रक्षित रहते हैं । त्रिषन्धि नामक वज्र को सभी देवों ने ओज और बल के लिए स्वीकृत किया है ॥११ ॥

३२८४. सर्वाँल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥१२ ॥

अंगिरा के पुत्र बृहस्पति ने जिस असुर-विनाशक वज्र को निर्मित किया, इन्द्र आदि सभी देवताओं ने उसी से सभी लोकों पर विजय प्राप्त की ॥१२ ॥

३२८५. बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥१३ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! उसी वज्र के ओज से हम शत्रु सेना को शक्तिपूर्वक नष्ट करते हैं , जिसे आपने असुर संहार के लिए विनिर्मित किया था ॥१३ ॥

३२८६. सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट् कृतम् ।
इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥१४ ॥

जो वषट्कार से प्रदत्त हविष्यान्न का सेवन करते हैं, वे देवगण शत्रुओं को जीतकर हमारी ओर आगमन कर रहे हैं । हे देवगण ! आप इस आहुति को ग्रहण करें और यहाँ शत्रुओं को पराजित करें, उधर से नहीं ॥१४ ॥

३२८७. सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ।
संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥१५ ॥

समस्त देवगण शत्रुसेना का अतिक्रमण करें । त्रिषन्धि वज्र को हवि प्रिय है । हे देवगण ! जिससे आपने प्रारम्भ में आसुरी शक्तियों का पराभव किया, उसी से सन्धि की सुरक्षा करें ॥१५ ॥

३२८८.वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु । इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रति-धामिषुम् । आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥१६ ॥

वायुदेव शत्रुओं के बाणों के अग्रिम भागों को शक्ति विहीन करें । इन्द्रदेव इनकी भुजाओं को खंडित कर दें । वे शत्रु प्रत्यञ्चा पर बाण चढ़ा पाने में सक्षम न हों । सूर्यदेव इनके आयुधों को विनष्ट करें । चन्द्रदेव शत्रु के मार्ग को अवरुद्ध करें ॥१६ ॥

३२८९. यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे।तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥१७ ॥

हे देवताओ ! यदि शत्रुरूप राक्षसों ने पूर्व से ही मन्त्रमय कवचों का निर्माण किया हो, तो आप उन मन्त्रों को निरर्थक (शक्तिहीन) कर दें ॥१७ ॥

३२९०.क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् । त्रिषन्धे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥१८ ॥

हे त्रिषंधिदेव ! आप शत्रु समूह को घेरकर मांसभक्षियों के सामने धकेल दें और अपनी सेना के साथ आगे बढ़ें तथा शत्रुओं को जीतकर, उन्हें अपने नियन्त्रण में करें ॥१८ ॥

३२९१.त्रिषन्धे तमसा त्वममित्रान् परि वारय । पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ।

हे त्रिषन्धिदेव ! आप अपने मायावी अन्धकार से शत्रुओं को घेरें, पृषदाज्य (महान् व्रत या सार तत्त्व) से प्रेरित होकर इन शत्रुओं में से कोई भी मुक्त न रह पाए ॥१९ ॥

३२९२. शितिपदी सं पतत्वमित्राणाममूः सिचः । मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥

श्वेत पादयुक्त शक्ति शत्रुओं की सेना के ऊपर गिर पड़े । हे अर्बुदे ! आज ये युद्धभूमि में दूर-दूर दिखाई देती हुई शत्रु सेनाएँ किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाएँ ॥२० ॥

३२९३. मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम् । अनया जहि सेनया ॥२१ ॥

हे अर्बुदे ! आप अपनी माया से शत्रुओं को व्यामोहित करें, इनके मुख्य सेनापतियों का पराभव करें । आपके अनुग्रह से हमारी सेना भी उन पर विजय प्राप्त करे ॥२१ ॥

३२९४. यश्च कवची यश्चाकवचो३मित्रो यश्चाज्मनि । ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥२२ ॥

शत्रु सैनिक कवच को धारण किये हुए, कवचरहित अथवा रथारूढ़ जिस भी स्थिति में युद्ध कर रहे हों, वे अपने ही कवच बाँधने के पाशों, प्रत्यञ्चा पाशों और रथ के आघातों से घायल होकर गत्यवरोध से चेष्टारहित होकर गिर पड़ें ॥२२ ॥

३२९५. ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः । सर्वांस्ताँ अर्बुदे हताञ्छ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥२३ ॥

जो शत्रु कवचधारी, कवचविहीन और कवच के अतिरिक्त रक्षा साधनों को धारण करने वाले हैं । हे अर्बुदे ! उनकी मृत देहों को पृथ्वी पर कुत्ते, गीदड़ आदि भक्षण कर जाएँ ॥२३ ॥

३२९६. ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥२४ ॥

रथारूढ़, रथरहित, अश्वरहित और घुड़सवार जो भी शत्रु सैनिक हों, हे अर्बुदे ! मारे गये उन शत्रुओं को गीध, श्येन (बाज) आदि पक्षी खा डालें ॥२४ ॥

३२९७. सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम्। विविद्धा ककजाकृता ॥२५ ॥

शत्रु सेनाएँ शस्त्रों से बिंधकर हजारों की संख्या में घायल होकर शव के रूप में गिर पड़ें ॥२५ ॥

३२९८. मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम्।
य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥२६ ॥

हमारे जो शत्रु उस पृषदाज्य आहुति को वापस करके हमसे युद्ध करने के इच्छुक हैं, उनके मर्मस्थल बाणों से छिन्न-भिन्न हों। मार्मिक वेदना से वे रुदन करने लगें। दुखों से पीड़ित होकर वे पृथ्वी पर गिरें और हिंसक पशु उन्हें खा जाएँ ॥२६ ॥

३२९९. यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम्।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना ॥२७ ॥

देवगण जिस अनुष्ठान को सम्पन्न करते हैं और जो कभी निरर्थक नहीं होता, उस त्रिषंधि वज्रास्त्र से वृत्रसंहारक इन्द्र हमारे शत्रुओं का संहार करें ॥२७ ॥

॥ इत्येकादशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ द्वादशं काण्डम् ॥

[१ - भूमि सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- भूमि । छन्द- त्रिष्टुप्, २ भुरिक् त्रिष्टुप्, ४-६, १०, ३८ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ७ प्रस्तार पंक्ति, ८, ११ त्र्यवसाना षट्पदा विराडष्टि, ९ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्, १२-१३, ३७ त्र्यवसाना पञ्चपदा शक्वरी, १४ महाबृहती, १५ पञ्चपदा शक्वरी, १६, २१ एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप्, १८ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप् अनुष्टुब्गर्भा शक्वरी, १९ उरोबृहती, २० विराट् उरोबृहती, २२ त्र्यवसाना षट्पदा विराट् अतिजगती, २३ पञ्चपदा विराट् अतिजगती, २४ पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भा जगती, २५ त्र्यवसाना सप्तपदा उष्णिक् अनुष्टुब्गर्भा शक्वरी, २६-२८, ३३, ३५, ३९-४०, ५०, ५४, ५६, ५९, ६३ अनुष्टुप्, ३० विराट् गायत्री, ३२ पुरस्ताज्ज्योति त्रिष्टुप्, ३४ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप् बृहतीगर्भा अतिजगती, ३६ विपरीतपादलक्ष्मा पंक्ति, ४१ त्र्यवसाना षट्पदा ककुम्मती शक्वरी, ४२ स्वराट् अनुष्टुप्, ४३ विराट् आस्तार पंक्ति, ४४-४५, ४९ जगती, ४६ षट्पदा अनुष्टुब्गर्भा पराशक्वरी, ४७ षट्पदा उष्णिक् अनुष्टुब्गर्भा परातिशक्वरी, ४८ पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्, ५१ त्र्यवसाना षट्पदा अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती शक्वरी, ५२ पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भा परातिजगती, ५३ पुरोबार्हतानुष्टुप्, ५७ पुरोऽतिजागता जगती, ५८ पुरस्ताद् बृहती, ६१ पुरोबार्हता त्रिष्टुप्, ६२ पराविराट् त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त को पृथ्वी सूक्त कहा जाता है । इसमें सभी भूतों को पृथ्वी माता की सन्तान कहा गया है । इसे मातृभूमि सूक्त भी कहते हैं । मन्त्रों में भूमि की विशेषताओं एवं उसके प्रति अपने कर्तव्यों का बोध कराया गया है । भूमि अथवा मातृभूमि के प्रति कर्तव्य पालन करने वालों के लिए आवश्यक गुणों, प्रवृत्तियों, मर्यादाओं का भी उल्लेख है । उस क्रम में अनुभव होने वाली कठिनाइयों तथा उनके निवारणार्थ सूत्रों का भी उल्लेख है । राष्ट्रीय अवधारणा तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को विकसित, पोषित एवं फलित करने के लिए अत्यन्त उपयोगी सूक्त है-

३३००. सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१ ॥

सत्यनिष्ठा, विस्तृत यथार्थ बोध, दक्षता, क्षात्रतेज, तपश्चर्या, ब्रह्मज्ञान और त्याग-बलिदान ये भाव भूमि अथवा मातृभूमि का पालन-पोषण और संरक्षण करते हैं भूतकालीन और भविष्य में होने वाले सभी जीवों का पालन करने वाली मातृभूमि हमें विस्तृत स्थान प्रदान करे ॥१ ॥

[स्वार्थपूर्ण, महत्वाकांक्षाओं से ग्रस्त, जन्मभूमि या मातृभूमि को पुष्ट एवं विकसित नहीं कर सकते ।]

३३०१. असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।

नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥२ ॥

हमारी जिस भूमि के मनुष्यों के मध्य (गुण, कर्म और स्वभाव की भिन्नता होने पर भी) परस्पर अत्यधिक सामञ्जस्य और ऐक्यभाव है, जो हमारी मातृभूमि रोगनाशक ओषधियों को धारण करती है, वह हमारी कामना पूर्ति और यशोवृद्धि का साधन बने ॥२ ॥

३३०२. यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥३ ॥

हमारी जिस मातृभूमि में सागर, महासागर, नद, नदी, नहर, झीलें-तालाब, कुएँ आदि जल साधन हैं ; जहाँ सब भाँति के अन्न, फल तथा शाक आदि अत्यधिक मात्रा में पैदा होते हैं; जिसके सभी प्राणी सुखी हैं, जिसमें कृषक लोग, शिल्पकर्म विशेषज्ञ तथा उद्यमी लोग अत्यधिक संगठित हैं, इस प्रकार की हमारी पृथ्वी हमें श्रेष्ठ भोग्य पदार्थ और ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हो ॥३ ॥

[जहाँ प्राकृतिक सम्पदा के साथ विभिन्न प्रतिभा- सम्पन्न वर्ग परस्पर तालमेल के साथ रहते हैं; वहाँ भूमि सभी प्रकार के वैभव प्रदान करती है ।]

३३०३. यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।

या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४ ॥

हमारी जिस भूमि में उद्यमी और शिल्पकला में निपुण, कृषि कार्य करने वाले हुए हैं, जिस भूमि में चार दिशाएँ और चार विदिशाएँ धान, गेहूँ आदि पैदा करती हैं, जो विभिन्न प्रकार से प्राणधारियों और वृक्ष- वनस्पतियों का पालन-पोषण और संरक्षण करती हैं, वह मातृभूमि हमें गौ आदि पशु और अन्नादि प्रदान करने वाली हो ॥४ ॥

३३०४. यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।

गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५ ॥

हमारी जिस पृथ्वी में प्राचीन ऋषियों ने अनेक प्रकार के पराक्रमी कर्म सम्पन्न किये हैं, जिसमें देव समर्थक वीरों ने आसुरी शक्तियों से धर्म-युद्ध किया है, जिस भूमि में गाय, घोड़े और पशु-पक्षी विशेष रूप से आश्रय ग्रहण करते हैं, ऐसी हमारी मातृभूमि हमारे ज्ञान-विज्ञान, शौर्य, तेज, वीर्य और ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाली हो ॥५ ॥

३३०५. विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।

वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६ ॥

विश्व के सभी जीवों का पोषण करने वाली, सम्पदाओं (खनिजों) की खान, सबको प्रतिष्ठित करने वाली, स्वर्णिम वक्ष वाली, जगत् (सभी प्राणियों) का निवेश करने वाली, वैश्वानर (प्राणाग्नि) का भरण-पोषण करने वाली यह भूमि अग्रणी, बलशाली इन्द्रदेव तथा हम सबको अनेक प्रकार के धन धारण कराने वाली हो ॥६ ॥

३३०६. यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।

सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥७ ॥

निद्रा, तंद्रा, आलस्य, अज्ञान आदि दुर्गुणों से रहित देवगण (या देवपुरुष) जिस विशाल भूमि की, प्रमाद-रहित होकर रक्षा करते हैं, वह मातृभूमि सभी उत्तम, प्रिय तथा कल्याणकारी पदार्थों से हमें सुसम्पन्न करे तथा हमें ज्ञान, वर्चस् और ऐश्वर्य प्रदान करे ॥७ ॥

३३०७. यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः । यस्या हृदयं

परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः । सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥८

जिस भूमि का हृदय परमव्योम के सत्य-अमृत प्रवाह से आवृत रहता है, मनीषीगण अपनी कुशलता से जिसका अनुगमन करते हैं ; वह भूमि हमारे श्रेष्ठ राष्ट्र में तेजस्विता, बलवत्ता बढ़ाने वाली हो ॥८ ॥

[पृथ्वी आकाश के सूक्ष्म अमृत प्रवाहों से पोषण प्राप्त करती है । ज्ञानवान् लोग भी पृथ्वी की विशेषताओं का लाभ अपनी प्रतिभा द्वारा उठाते रहते हैं ।]

३३०८. यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।

सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥९ ॥

जिस धरा पर चारों ओर विचरने वाले परिव्राजक, संन्यासी शीतल जल की भाँति समदृष्टि सम्पन्न उपदेश देते हुए रात-दिन सजग होकर ज्ञान का संचार करते रहते हैं । जो भूमि हमें सभी प्रकार के अन्न-जल और दूध, घी इत्यादि प्रदान करती है, वह मातृभूमि हमारी तेजस्विता, प्रखरता को बढ़ाए ॥९ ॥

३३०९. यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे । इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः । सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥१० ॥

अश्विनीकुमारों ने जिस धरा का मापन किया, विष्णुदेव ने जिस पर विभिन्न पराक्रमी कार्य सम्पन्न किये और इन्द्रदेव ने जिसे दुष्ट शत्रुओं से विहीन करके अपने नियन्त्रण में किया था, वह पृथ्वी मातृसत्ता द्वारा पुत्र को दुग्धपान कराने के समान ही अपनी (हम सभी) सन्तानों को खाद्य पदार्थ प्रदान करे ॥१० ॥

३३१०. गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु । बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् । अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥

हे धरतीमाता ! आपके हिमाच्छादित पर्वत और वन हमारे लिए सुखदायक हों, वे शत्रुओं से रहित हों। विभिन्न रंगों वाली इन्द्रगुप्ता (इन्द्र-रक्षित) पृथ्वी पर मैं क्षय से रहित, कभी पराजित न होने वाला और अनाहत होकर प्रतिष्ठित रहूँ ॥११ ॥

३३११. यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः । तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः । पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥१२ ॥

हे पृथिवीमाता ! जो आपके मध्यभाग और नाभिस्थान हैं तथा आपके शरीर से जो पोषणयुक्त पदार्थ प्रादुर्भूत होते हैं; उसमें आप हमें प्रतिष्ठित करें और हमें पवित्रता प्रदान करें । यह धरती हमारी माता है और हम सब उसके पुत्र हैं । पर्जन्य (उत्पादक प्रवाह) हमारे पिता हैं, वे भी हमें पूर्ण करें- सन्तुष्ट करें ॥१२ ॥

३३१२. यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः । यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् । सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥१३ ॥

जिस भूमि पर सभी ओर वेदिकाएँ बनाकर विश्वकर्मादि (विश्व सृजेता अथवा सृजनशील मनुष्य) यज्ञ का विस्तार करते हैं । जहाँ शुक्र (स्वच्छ या उत्पादक) आहुतियों के पूर्व यज्ञीय यूप (आधार) स्थापित किये जाते हैं- यज्ञीय उद्घोष होते हैं । वह वर्धमान भूमि हम सबका विकास करे ॥१३ ॥

[भूमि को यज्ञीय-परमार्थ कर्मों की वेदी कहा गया है, श्रेष्ठ यज्ञीय प्रक्रिया के पहले उसके लिए प्रवृत्तियों के आधार बनाने होते हैं, तभी वे फलित होते हैं ।]

३३१३. यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन । तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥१४ ॥

हे मातृभूमे ! जो हमसे द्वेष- भावना रखते हैं, जो सेना द्वारा हमें पराभूत करने के इच्छुक हैं, जो मन से हमारा अनिष्ट चाहते हैं, जो हमें परतन्त्रता के बन्धन में जकड़ने की कुचेष्टा करते हैं, जो हमारा संहार करके हमें पीड़ा पहुँचाना चाहते हैं, ऐसे हमारे शत्रुओं का आप समूल नाश करें ॥१४ ॥

३३१४. त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः । तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५ ॥

हे पृथिवीमाता ! आपसे उत्पन्न और आपके ऊपर विचरण करने वाले प्राणियों, दोपायों, चौपायों, सभी का आप पालन- पोषण करती हैं । सूर्य अपनी अमृतस्वरूपी रश्मियों को जिनके लिए चारों ओर विस्तारित करता है, ऐसे हम पाँच प्रकार के मनुष्य (विद्वान् , शूरवीर, व्यापारी, शिल्पकार और सेवा धर्मरत) आपके ही हैं ॥१५ ॥

३३१५. ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१६ ॥

हे मातृस्वरूप भूमे ! सूर्य की किरणें हमारे निमित्त प्रजाओं और वाणी का दोहन करें । आप हमें मधुर पदार्थ और वाणी प्रदान करें ॥१६ ॥

३३१६. विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥१७ ॥

जिसमें सभी प्रकार की श्रेष्ठ वनस्पतियाँ और ओषधियाँ पैदा होती हैं, वह पृथ्वी माता विस्तृत और स्थिर हो । विद्या, शूरता, सत्य, स्नेह आदि सद्‌गुणों से पालित-पोषित, कल्याणकारी और सुख- साधनों को देने वाली मातृभूमि की हम सदैव सेवा करें ॥१७ ॥

३३१७. महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् । सा नो भूमे प्र रोचय
हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥१८ ॥

हे पृथिवी माता ! आप हम सभी को रहने का स्थान देती हैं । इसलिए आप बढ़ती रहती हैं । आप जिस गति से आकाश में कम्पित होकर जाती हैं, वह वेग अतितीव्र है । इन्द्रदेव सजगता के साथ आपकी रक्षा करते हैं । आप स्वयं स्वर्ण के समान तेजः सम्पन्न हैं, हमें भी तेजस्वी बनाएँ , हममें परस्पर कोई द्वेषभाव न हो, हम सबके प्रिय हों ॥१८ ॥

३३१८. अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥१९ ॥

पृथ्वी के मध्य भाग और ओषधियों में, अग्नि तत्त्व विद्यमान है । जल (मेघ) में, विद्युत् (अग्नि) में, पत्थरों में (चकमक इत्यादि) , मनुष्यों में, गौओं, घोड़ों आदि पशुओं में भी (जठराग्नि रूप में) , अग्नि तत्त्व की उपस्थिति है ॥१९ ॥

३३१९. अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्व१न्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥२० ॥

दिव्यलोक में, सूर्यरूप में अग्निदेव ही सब ओर प्रकाशित होते हैं, विशाल अन्तरिक्ष भी उसी प्रकाश स्वरूप अग्नि से आलोकित होता है । यज्ञ में प्रदत्त आहुतियों को ले जाने वाले घृत- स्नेहयुक्त अग्नि को मनुष्य प्रदीप्त करते हैं ॥२० ॥

३३२०. अग्निवासाः पृथिव्य सितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥२१ ॥

असितवर्ण से पृथ्वी में स्थित अग्निदेव हमें प्रकाश से- तेजस्विता से संयुक्त करें ॥२१ ॥

३३२१. भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् । भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन
मर्त्याः । सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥२२ ॥

जिस भूमि पर यज्ञ सुशोभित होते हैं और यज्ञों में मनुष्यों द्वारा देवताओं के लिए आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं, जिससे मनुष्य भूमि पर श्रेष्ठ अन्न और जल से जीवन धारण करते हैं; वह भूमि हमें प्राण और आयु प्रदान करे । वह पृथ्वी हमें पूर्ण आयुष्य प्राप्त करने योग्य बनाए ॥२२ ॥

३३२२. यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः । यं गन्धर्वा

अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२३ ॥

हे मातृभूमे ! आपके अन्दर विद्यमान श्रेष्ठ सुगन्धित ओषधियों और वनस्पतियों के रूप में जो गन्ध उत्पन्न होती है, जिसे अप्सराएँ और गन्धर्व भी धारण करते हैं । आप हमें उस सुगन्धि से सुरभित करें । हममें कोई परस्पर द्वेष न करे, सभी मनुष्य परस्पर मैत्रीभाव से रहें ॥२३ ॥

३३२३. यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे । अमर्त्याः

पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२४ ॥

हे भूमे ! आपकी जो सुगन्धि कमल में प्रविष्ट हुई है, जिस सुगन्धि को सूर्या (उषा) के पाणिग्रहण के समय वायुदेव ने धारण किया, उसी सुगन्धि से आप हमें सुगन्धित करें । संसार में कोई भी पारस्परिक द्वेष-भाव न रखें ॥२४ ॥

३३२४. यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः । यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।

कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२५ ॥

हे मातृभूमे ! वीर पुरुषों, साधारण स्त्री- पुरुषों में और हाथी, घोड़े आदि चार पैरों वाले पशुओं में जो तेजस्विता है तथा अविवाहित कन्याओं में आपकी जो गन्ध (तेजस्) है, वही गन्ध (तेजस्) हमारे अन्दर भी समाविष्ट हो । हमसे कोई द्वेष करने वाला न हो ॥२५ ॥

३३२५. शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥२६ ॥

जिस भूमि के ऊपर धूल, शिलाखण्ड और पत्थर हैं, जिसके भीतर स्वर्ण- रत्नादि अमूल्य खनिज पदार्थ हैं, उस धरती माँ को हम नमन करते हैं ॥२६ ॥

३३२६. यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।

पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥२७ ॥

जिस भूमि में वृक्ष-वनस्पति और लता आदि सदा स्थिर रहते हैं, जो वृक्ष-लतादि ओषधिरूप में सबकी सेवा सम्पन्न करती है, ऐसी वनस्पतिधारिणी, धर्मधारिणी और सर्वपालनकर्त्री धरती की हम शीश झुकाकर स्तुति करते हैं ॥२७ ॥

३३२७. उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।

पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥२८ ॥

हे मातृ भूमे ! हम दाँयें अथवा बायें पैर से चलते-फिरते, बैठे या खड़े होने की स्थिति में कभी दुखी न हों ॥२८ ॥

३३२८. विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।

ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥२९ ॥

क्षमा स्वरूपिणी, परम पावन और मन्त्रों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होने वाली भूमि की हम स्तुति करते हैं । हे पुष्टिदात्री, अन्नरस और बल-धारणकर्त्री पृथ्वी माता ! हम आपको घृताहुति समर्पित करते हैं ॥२९ ॥

३३२९. शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये
तं नि दध्मः । पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥३० ॥

हे मातृभूमे ! आप हमारी शुद्धता के लिए स्वच्छ जल प्रवाहित करें । हमारे शरीर से उतरा हुआ जल हमारा अनिष्ट करने के इच्छुकों के पास चला जाए । हे भूमे ! पवित्रशक्ति (पवित्रता प्रदायक प्रवृत्तियों या प्रवाहों) से हम स्वयं को पावन बनाते हैं ॥३० ॥

३३३०. यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥३१ ॥

हे भूमे ! आपकी पूर्व, पश्चिम आदि चारों दिशाओं, चारों उपदिशाओं तथा नीचे और ऊपर की दिशाओं में जो लोग विचरण करते हैं, वे सभी हमारे लिए कल्याणकारी हों । हमारा किसी प्रकार का अधः पतन न हो ॥३१ ॥

३३३१. मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥३२ ॥

हे भूमे ! हमारे पूर्व- पश्चिम, उत्तर-दक्षिण चारों दिशाओं में, आप प्रहरी बनकर संरक्षण करें, आप हमारे लिए कल्याणकारी हों । दुष्ट शत्रु हमें न जान पाएँ , उन शत्रुओं के संहार से हमें मुक्त रखें ॥३२ ॥

३३३२. यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥३३ ॥

हे भूमे ! जब तक हम स्नेही (अपने प्रकाश से आनन्दित करने वाले) सूर्यदेव के समक्ष आपका विस्तार देखते रहें, तब तक हमारी आयुष्य वृद्धि के साथ नेत्रज्योति (दर्शनेन्द्रिय) में किसी प्रकार की शिथिलता न आए ॥३३ ॥

३३३३. यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् । उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत्
पृष्टीभिरधिशेमहे । मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥३४ ॥

हे मातृभूमे ! जब सुप्तावस्था (सोयी हुई स्थिति) में हम दायें और बायें करवट लें तथा आपके ऊपर पश्चिम की ओर पैर पसारते हुए पीठ नीचे की ओर करके शयन करें , तब सभी मनुष्यों की आश्रयभूता हे भूमे ! आप हमारा संहार न करें ॥३४ ॥

३३३४. यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥३५ ॥

हे धरतीमाता ! जब हम (ओषधियाँ, कन्द आदि निकालने अथवा बीज बोने के लिए) आपको खोदें, तो वे वस्तुएँ शीघ्र उगें-बढ़ें । अनुसंधान के क्रम में हमारे द्वारा आपके मर्म- स्थलों कं. अथवा हृदय को हानि न पहुँचे ॥३५ ॥

[आज हम अपने अनुसंधान के क्रम में धरती को क्षत-विक्षत करने पर उतारू हैं । ऋषि हमें इस सम्बन्ध में हृदय हीन होने से रोकते हैं ।]

३३३५. ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥३६ ॥

हे विशाल मातृभूमे ! आपमें जो ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त ये छह ऋतुएँ वर्षभर में प्रतिष्ठित की गई हैं, उन - उन ऋतुओं के दिन-रात सभी तरह से हमारे लिए सुखप्रद हों ॥३६ ॥

३३३६. याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्व१न्तः । परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् । शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥३७ ॥

हिलती हुई गतिशील जिस भूमि में अग्नि स्थित है, जो जल के अन्दर है । देववृत्तियों की अवरोधक, वृत्र जैसे शत्रुओं का संहार करने वाले, देवराज इन्द्र का वरण करने वाली पृथ्वी, शक्तिशाली, वीर्यवान् और सामर्थ्यशाली पुरुष के लिए धारण की गई है ॥३७ ॥

[पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती हुई, भौंरे की तरह हिलती हुई, अन्तरिक्ष में दौड़ रही है- यह बात पदार्थ विज्ञानियों को अभी कुछ सौ वर्ष पहले ही मालूम हुई है, ऋषि इसे हजारों वर्ष पूर्व जानते थे ।]

३३३७. यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते । ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः । युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥३८ ॥

जिस धरती पर हविष्यान्न समर्पित करने के लिए यज्ञ-मण्डप का निर्माण किया जाता है, जिसमें यज्ञ-स्तम्भ खड़े किये जाते हैं । जिस भूमि पर ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद के मंत्रों से ऋत्विग्गण पूजा अर्चना करते हैं और इन्द्रदेव के लिए सोमपान के कार्य में संलग्न रहते हैं ॥३८ ॥

३३३८. यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः । सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥३९

प्राचीन काल में जिस पृथ्वी पर प्राणिसमूह के हितैषी क्रान्तदर्शी ऋषियों ने सप्त सत्रवाले ब्रह्म-यज्ञ किये और तपःपूत वाणी द्वारा वन्दनाएँ कीं ॥३९ ॥

३३३९. सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे । भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥

वह पृथ्वी हमारी आवश्यकता के अनुरूप हमें वाञ्छित धन प्रदान करे । ऐश्वर्य हमारा सहायक हो । इन्द्रदेव अग्रणी होकर आगे बढ़ें ॥४० ॥

३३४०. यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः । युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः । सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥४१ ॥

जिस भूमि में मनुष्य प्रसन्नता से गाते तथा नृत्य करते हैं, जिसमें मनुष्य शौर्योचित गुण से परिपूर्ण राष्ट्र के संरक्षण के लिए युद्धरत होते हैं, जहाँ शत्रु रुदन करते हैं, जहाँ नगाड़े बजाये जाते हैं, वह पृथ्वी हमारे शत्रुओं को दूर भगाकर हमें शत्रुविहीन करें ॥४१ ॥

**३३४१. यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥४२ ॥**

जिस भूमि में धान, गेहूँ, जौ आदि खाद्य-पदार्थ प्रचुर मात्रा में होते हैं, जहाँ (विद्वान्, शूरवीर, व्यापारी, शिल्पकार तथा सेवक) ये पाँच प्रकार के लोग आनन्दपूर्वक निवास करते हैं । जिस भूमि में निश्चित समय पर जलवृष्टि होकर अन्नादि का उत्पादन होता है, पर्जन्य से जिसका पोषण होता है, ऐसी मातृभूमि के प्रति हमारा नमन है ॥४२ ॥

**३३४२. यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥४३ ॥**

देवगणों द्वारा रचित हिंसक पशु पृथ्वी के जिस क्षेत्र में विभिन्न क्रीड़ाएँ सम्पन्न करते हैं, जो सम्पूर्ण विश्व को स्वयं में धारण किये है, उस पृथ्वी की प्रत्येक दिशा को प्रजापति हमारे लिए सौन्दर्य- सम्पन्न बनाएँ ॥४३ ॥

३३४३. निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।

वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥४४ ॥

अपने अनेक गुह्य स्थलों में धन, रत्न आदि तथा सोना, चाँदी आदि निधियों को धारण करने वाली पृथ्वी देवी हमारे लिए ये सभी खनिज-पदार्थ प्रदान करें । धन प्रदात्री, वरदात्री दिव्य -स्वरूपा पृथ्वी हमारे ऊपर प्रसन्न होकर, हमें ऐश्वर्य प्रदान करे ॥४४ ॥

३३४४. जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥४५ ॥

अनेक प्रकार की धार्मिक मान्यता वालों और विभिन्न भाषा- भाषी जन समुदाय को एक परिवार के रूप में आश्रय देने वाली, अविनाशी और स्थिर स्वभाव वाली पृथ्वी, गाय के दूध देने के समान ही असंख्य ऐश्वर्य हमारे लिए प्रदान करने वाली बने ॥४५ ॥

३३४५. यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये । क्रिमिर्जिन्वत्

पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥४६ ॥

हे मातृभूमे ! आप में जो साँप-बिच्छू आदि वास करते हैं, जिनका दंश प्यास और दाह पैदा करने वाला है, जिनके काटने पर शरीर पर दाने उठ आते हैं, जो कृमि गुफा में सोते रहते हैं, ये सभी वर्षा ऋतु में स्वच्छन्दता से विचरण करने वाले प्राणी तथा रेंगने वाले विषैले प्राणी कभी हमारा स्पर्श न करें । जो प्राणिसमूह हमारे लिए कल्याणकारी हों, वे हमें सुख प्रदान करें ॥४६ ॥

३३४६. ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे । यैः संचरन्त्युभये

भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥४७ ॥

हे देवस्वरूपे ! मनुष्यों के चलने फिरने योग्य, रथ और गाड़ियों के चलने योग्य जो आपके मार्ग हैं, जिन पर परोपकाररत सज्जन और स्वार्थरत दुर्जन दोनों तरह के लोग विचरण करते हैं, उन्हें आप चोरों और शत्रुओं के भय से मुक्त करें । हम कल्याणकारी मार्ग से जाते हुए विजय प्राप्त करें, उन मार्गों से आप हमें सुखी करें ॥४७ ॥

३३४७. मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।

वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥४८ ॥

गुरुत्वाकर्षण शक्ति को धारण करने की क्षमता से युक्त, पुण्यात्मा और पापात्मा दोनों प्रकार के मनुष्यों को सहन करती हुई वह पृथ्वी उत्तम जल देने के साथ मेघों से युक्त सूर्य की किरणों से अपनी मलीनता का निवारण करके, सूर्य के चारों ओर विशेषरूप से गमन करती है ॥४८ ॥

३३४८. ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।

उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥४९ ॥

हे पृथिवि ! जो जंगली पशु , पुरुषभक्षी सिंह, बाघ आदि जंगल में घूमते- फिरते हैं, उन उल नामक पशुओं, भेड़ियों, भालुओं और राक्षसों को हमारे यहाँ से दूर करके हमें निर्भय बनाएँ ॥४९ ॥

३३४९. ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।

पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥५० ॥

हे भूमे ! जो हिंसक, आलसी, दरिद्र, दूसरे के धन के हरणकर्ता, मांसभक्षी और राक्षसी वृत्तियों वाले आततायी हैं, उन सभी को हमसे पृथक् करें ॥५० ॥

३३५०. यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि । यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् । वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥५१॥

जिस भूमि पर दो पैर वाले हंस, गरुड़ आदि पक्षी उड़ते हैं, जहाँ धूलि- कणों को उड़ाती और पेड़ों को उखाड़ते हुए अन्तरिक्ष में संचरित होने वाले मातरिश्वा वायुदेव प्रवाहित होते हैं, उन वायुदेव की तीव्रता से अग्नि देव भी तीव्रगति से चलते हैं ॥५१ ॥

३३५१. यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि । वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥५२ ॥

जिस पृथ्वी पर अरुण और कृष्ण दिन-रात्रि मिलकर स्थित रहते हैं, जो पृथ्वी वृष्टि से आवृत रहती है, वह पृथ्वी हमें अपनी कल्याणकारी चित्तवृत्ति से प्रिय धामों में प्रतिष्ठित करे ॥५२ ॥

३३५२. द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।

अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥५३ ॥

द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, अग्नि, सूर्य, जल, मेधा (धारण शक्तियुक्त बुद्धि) तथा समस्त देवों ने हमें चलने (विभिन्न प्रकार से संव्याप्त होने) की शक्ति प्रदान की है ॥५३ ॥

३३५३. अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।

अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥५४ ॥

मैं शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाला, पृथ्वी में विशेषरूप से प्रख्यात हूँ । मैं शत्रुओं के सम्मुख पहुँच कर, उन्हें प्रताड़ित करूँ । मैं हर दिशा में विद्यमान शत्रुओं को ठीक तरह से वश में कर लूँ ॥५४ ॥

३३५४. अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।

आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥५५ ॥

हे पृथिवी देवि ! जब आपका विकास नहीं हुआ था, तब देवताओं ने आपसे विस्तृत होने की प्रार्थना की थी, उस समय आपके अंदर श्रेष्ठ प्राणी प्रविष्ट हो गये, तभी आपने चार दिशाओं की कल्पना की थी ॥५५ ॥

३३५५. ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् । ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥

भूमि में जहाँ-जहाँ गाँव, नगर, वन, सभाएँ हैं तथा जहाँ संग्राम और युद्ध मन्त्रणाएँ सम्पन्न होती हैं, वहाँ-वहाँ हम आपकी स्तुति करते हैं ॥५६ ॥

३३५६. अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत ।

मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥५७ ॥

पृथ्वी पर उत्पादित होने वाले पदार्थ पृथ्वी पर वास करते हैं, उनके ऊपर अश्व के समान ही धूलिकण उड़ाते

हैं । यह पृथ्वी प्रसन्नतादायी अग्रणी, विश्वरक्षक वनस्पतियों और ओषधियों का पालन करने वाली है ॥५७ ॥

३३५७. यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥५८ ॥

हम (अपने राष्ट्र के विषय में) जो उच्चारण करें, वह हितकर और मधुरता से भरा हुआ हो, जो देखें, वह सब हमारे लिए प्रिय (सहायक) हो । हम तेजस्वी, वेग- सम्पन्न हों तथा दूसरे (शत्रुओं) का संहार कर दें ॥५८ ॥

३३५८. शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥५९ ॥

शान्तिप्रद, सुगन्धिसम्पन्न, सुखदायी अन्न को देने वाली, पयस्वती मातृभूमि हमें उपभोग्य सामग्री और ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हो तथा हमारे पक्ष में बोले ॥५९ ॥

३३५९. यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं१ पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥६० ॥

विश्वकर्मा ने जब अन्तरिक्ष में अर्णव (प्राथमिक उत्पादक प्रवाहों) से हवियों के द्वारा भूमि को निकाला, तो भोज्य पदार्थों के छिपे हुए भण्डार प्रकट हो गये ॥६० ॥

३३६०. त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥६१ ॥

हे धरतीमाता !आप मनुष्यों को दुःखों से रहित करने वाली वाञ्छित पदार्थों को देने वाली, क्षेत्ररूपा और विस्तार वाली हैं ।आपके भाग जो कम हो जाते हैं, उन्हें सृष्टि के आदि में प्रादुर्भूत प्रजापति ब्रह्मा पूर्ण कर देते हैं ।

३३६१. उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥६२ ॥

हे भूमे ! आपमें उत्पन्न हुए सभी लोग, नीरोग, क्षयरोगरहित होकर हमारे समीप रहने वाले हों । हम दीर्घायुष्य को प्राप्त करते हुए मातृभूमि के लिए हवि प्रदान करने वाले बनें ॥६२ ॥

३३६२. भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥६३ ॥

हे मातृभूमे ! आप हमें कल्याणकारी प्रतिष्ठा से युक्त करें । हे कवे ! हे देवि ! हमें ऐश्वर्य और विभूति में प्रतिष्ठित करते हुए स्वर्ग की प्राप्ति कराएँ ॥६३ ॥

[२ - यक्ष्मारोगनाशन सूक्त]

[ऋषि- भृगु । देवता- १-२०, ३४-५५ अग्नि, मन्त्रोक्त, २१-३३ मृत्यु । छन्द- त्रिष्टुप् , २, ५, १२-१५, १७, १९-२०, ३४-३६, ३८-३९, ४१, ४३, ५१, ५४ अनुष्टुप् , ३ आस्तार पंक्ति, ६ भुरिक् आर्षी पंक्ति, ७, ४५ जगती, ८, ४८-४९ भुरिक् त्रिष्टुप्, ९ अनुष्टुब्गर्भा विपरीतपादलक्ष्मा पंक्ति, १६ ककुम्मती पराबृहती अनुष्टुप्, १८ निचृत् अनुष्टुप्, ३७ पुरस्ताद् बृहती, ४० पुरस्तात् ककुम्मती अनुष्टुप्, ४२ त्रिपदा एकावसाना भुरिक् आर्ची गायत्री, ४४ एकावसाना द्विपदार्ची बृहती, ४६ एकावसाना द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्, ४७ पञ्चपदा बार्हतवैराजगर्भा जगती, ५० उपरिष्टात् विराट् बृहती, ५२ पुरस्ताद् विराट् बृहती, ५५ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ।]

३३६३. नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।

यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥१ ॥

हे (क्रव्याद्) अग्ने ! आप नड (सरकंडे) पर आरोहण करें । आपके लिए यहाँ स्थान नहीं है, यह सीसा तुम्हारा भाग है, इस पर आप आएँ । जो यक्ष्मारोग गौओं और मनुष्यों में है, आप उस रोगसहित नीचे के द्वारों से यहाँ से दूर चली जाएँ ॥१ ॥

३३६४. अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।

यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥२ ॥

सभी रोग पापियों और दुष्टों के साथ यहाँ से दूर चले जाएँ । कर (क्रिया) और अनुकर (सहायक क्रिया) से यक्ष्मारोग को अलग करता हूँ , उसके द्वारा मृत्यु को भी दूर भगाता हूँ ॥२ ॥

३३६५. निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।

यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥३ ॥

हे (क्रव्याद्) अग्निदेव ! हम यहाँ से पाप देवता निर्ऋति और मृत्यु को दूर करते हैं । जो हमारे साथ विद्वेष करते हैं, उनका आप भक्षण करें । जिनसे हम द्वेष रखते हैं, उनकी ओर हम आपको प्रेरित करते हैं ॥३ ॥

३३६६. यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।

तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥४ ॥

यदि प्रेतदाहक (क्रव्याद्) अग्नि और हिंसक बाघ अन्यत्र कहीं स्थान न पाकर इस गोशाला में प्रवेश करे, तो उसे हम 'माषाज्य' विधि से दूर करते हैं, वह जल में वास करने वाली अग्नियों के समीप गमन करे ॥४ ॥

३३६७. यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।

सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥५ ॥

किसी मनुष्य की मृत्यु पर उसके दाह संस्कार के लिए प्राणियों ने क्रोध से आप (क्रव्याद् अग्नि) को प्रदीप्त किया, अब वह कार्य (शवदाह) सम्पन्न होने पर आपको, आपसे ही प्रदीप्त करते हैं ॥५ ॥

३३६८. पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।

पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आदित्य, रुद्र, वसु, धनप्रदाता ब्रह्मा और ब्रह्मणस्पति ने आपको सौ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त करने के लिए पुनः प्रतिष्ठित किया था ॥६ ॥

३३६९. यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।

तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥७ ॥

जो मांसभक्षी (क्रव्याद्) अग्निदेव दूसरे जातवेदा अग्नि को देखते हुए हमारे घर में प्रविष्ट हुए हैं, उन्हें पितृयज्ञ के निमित्त हम दूर ले जाते हैं, वे परम व्योम में घर्म (उष्णता) की वृद्धि करें ॥७ ॥

३३७०. क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।

इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥८ ॥

क्रव्याद् अग्नि को हम दूर ले जाते हैं, वह दोष को दूर करने वाले मृत्युदेव यमराज के समीप पापसहित चला जाए। यहाँ जो द्वितीय जातवेदा अग्नि है, वह सभी देवों के लिए यजनीय भाग का वहन करे ॥८ ॥

३३७१. क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम्।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोके अपि भागो अस्तु ॥९ ॥

मनुष्यों को मृत्यु की ओर ले जाने वाले प्रेतदाहक अग्नि को हम मन्त्ररूप वज्रास्त्र द्वारा दूर भगाते हैं। हम ज्ञानसम्पन्न लोग गार्हपत्य अग्नि द्वारा उसे नियन्त्रित करते हैं। पितरों के लोक में उस क्रव्याद् अग्नि का भाग अवश्य स्थित हो ॥९ ॥

३३७२. क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं१ प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥१० ॥

उक्थ्य की प्रशंसा करने वाले प्रेतदाहक अग्नि को हम पितरों के गमन मार्ग से दूर भेजते हैं। देवयान के मार्ग से आप दोबारा यहाँ न आएँ। आप पितरलोक में रहते हुए वहीं जाग्रत् रहें ॥१० ॥

३३७३. समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥११ ॥

पवित्र अग्निदेव ही जीव के कल्याण के निमित्त शवभक्षक अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। इससे सभी दुर्भावजन्य दोषों और पापकर्मों का निवारण होता है। पवित्र अग्निदेव प्रदीप्त होकर सभी की शुद्धि करते हैं ॥१२ ॥

३३७४. देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत्।
मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः ॥१२ ॥

दहन कार्य में प्रयुक्त अग्निदेव प्रदीप्त होकर द्युलोक में आरोहण करते हैं, हम सभी को पापों से बचाते हुए अप्रशस्त (न अपनाने योग्य-अलक्षित) मार्ग से संरक्षित करते हैं ॥१२ ॥

३३७५. अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१३ ॥

इस विदाहक अग्नि में हम सभी अपने दुष्कर्मों का शोधन करते हैं। हम शुद्ध हो गये हैं और यज्ञीय कार्यों के उपयुक्त बन गये हैं। अग्निदेव हमें दीर्घायु बनाएँ ॥१३ ॥

३३७६. संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः।
ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् ॥१४ ॥

संघातक, विघातक और शब्दरहित अग्निदेव आपके यक्ष्मा रोग को जानने वाले यक्ष्मा के साथ ही अतिदूर जाकर के विनष्ट हो गये ॥१४ ॥

३३७७. यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु।
क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥१५ ॥

जो अग्नि हमारे अश्वों, वीरपुरुषों, गौओं और भेड़- बकरियों में लोगों के लिए पीड़ाप्रद है, उस मांसभक्षी अग्नि को हम दूर करते हैं ॥१५ ॥

३३७८. अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।

निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः ॥१६ ॥

जीवनक्रम के विनाशक क्रव्याद् अग्नि को गौओं, घोड़ों और अन्य मनुष्यों से हम दूर करते हैं ॥१६ ॥

३३७९. यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।

तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥१७ ॥

हे अग्निदेव ! जिसमें देवगण और मनुष्य पवित्र होते हैं, उसमें घृताहुति से शुद्ध बनकर आप भी दिव्यलोक में आरोहण करें ॥१७ ॥

३३८०. समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः । अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥

हे आवाहित अग्निदेव ! प्रज्वलित होकर आप हमारा त्याग न करें । आप द्युलोक में प्रकाशमान हों । आप हमें चिरकाल तक सूर्य के दर्शन से निरंतर लाभान्वित करें ॥१८ ॥

३३८१. सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत् ।

अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥१९ ॥

हे मनुष्यो ! आप सिर के रोग को सीसे और नड नामक घास से दूर करें । उसे आप संकसुक (विनाशक) अग्नि में, भेड़ और स्त्री तथा सिर रखने के स्थान (तकिए) में स्थित मल को शुद्ध करें ॥१९ ॥

३३८२. सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे ।

अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः ॥२० ॥

हे मनुष्य !आप सिर तकिए पर रखें तथा मल को सीसे तथा काली भेड़ में शोधित करके पवित्र हो जाएँ ॥२०

[पवित्र या निरोग होने के यह सूत्र शोध की अपेक्षा रखते हैं ।]

३३८३. परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात् ।

चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥२१ ॥

हे मृत्यु ! देवयान मार्ग से भिन्न आपका जो (हीन) मार्ग है, वह हम से दूर रहे । हमारे वीर (वीर पुरुष या प्राण प्रवाह) बढ़ते रहें ॥२१ ॥

[देवता जिस पर चलते हैं, वह देवयान मार्ग दिव्य अनुशासनों और अनुदानों से युक्त होता है । उसके अनुगमन से अपने प्राण और परिजन क्षीण नहीं होते ।]

३३८४. इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।

प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥२२ ॥

ये जीवित (दिखने वाले) लोग मृतकों (निर्जीव व्यक्तियों या मानसिकता) से घिरे हुए हैं । (हम जीवन्त रहें इसलिए) श्रेष्ठ वाणियाँ (सत्पुरुषों के वचन अथवा देव प्रार्थनाएँ) हमारे लिए आज कल्याणप्रद हों । हम हँसते-नाचते (उल्लासपूर्वक) आगे बढ़ें और श्रेष्ठ वीरों (या प्राणों) के साथ विशिष्ट प्रयोजनों में लगे रहें ॥२२ ॥

३३८५. इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।

शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥२३ ॥

जीवों-प्राणियों के लिए यह मर्यादा देता हूँ , कोई भी इन (मर्यादाओं) का उल्लंघन कभी न करे । (इस

अनुशासन में रहकर) सौ वर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त करे तथा मृत्यु को पर्वतों (दृढ़ माध्यमों) से तिरोहित करे ॥२३ ॥

३३८६. आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यदि स्थ ।

तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥२४ ॥

वृद्धावस्था तक की दीर्घ आयु का वरण करो । एक के बाद एक प्रयास (प्रगति हेतु) करते रहें । श्रेष्ठ सृजन करने वाले त्वष्टादेव सभी को पूर्ण आयु तक ले जाएँ ॥२४ ॥

३३८७. यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।

यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥२५ ॥

हे धाता (धारणकर्त्ता) ! जैसे दिन एक के साथ दूसरा लगा रहता है, जैसे ऋतुएँ एक से एक जुड़ी रहती हैं, जिस प्रकार ये एक दूसरे को छोड़ते नहीं, उसी प्रकार जीवन को (सतत प्रवाह वाला) बनाएँ ॥२५ ॥

३३८८. अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।

अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२६ ॥

(हे साथियो !) चट्टानों वाली (वेगवती) नदी बह रही है ।सावधान हो जाओ, वीरत्व धारण करो और तैर जाओ ।तैरने में बाधक बने उन (वजनों-पाप वृत्तियों) को यहीं फेंक दो ।पार होकर रोगरहित पौरुष प्राप्त होगा ॥२६॥

[यह संसार की धारा पहाड़ी नदी की तरह खतरनाक बहाव वाली है । पार करने के लिए सावधानी तथा वीरता चाहिए । पाप आदि व्यसनों का वजन साथ लेकर इसे तैर कर पार नहीं किया जा सकता । उन्हें त्याग देने में भलाई है । पार होने पर विकार रहित पराक्रमी जीवन प्राप्त होता है ।]

३३८९. उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।

अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२७ ॥

हे मित्रगण ! आप उठें और तैरने के लिए तैयार हों, यह पत्थरों से युक्त नदी वेगपूर्वक बह रही है । जो अकल्याणकारी है, उसे यहीं फेंकें । हम तैरकर नदी को पार करके, सौख्यप्रद अन्न को उपलब्ध करें ॥२७ ॥

३३९०. वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।

अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥२८ ॥

हे (पवित्र करने वाले) पावको ! आप शुद्ध, पावन और दोष- विकारों से रहित होकर कल्याण के निमित्त सभी देवों की स्तुति प्रारम्भ करें । हम ऋक्पदों से पापों का अतिक्रमण करते हुए पुत्र-पौत्रादि सभी वीरों के साथ सौ वर्षों तक आनन्दपूर्वक रहें ॥२८ ॥

३३९१. उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः ।

त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥२९ ॥

ऋषियों ने त्रिसप्त (तीन क्रमों में सात) पुरुषार्थ करके, ऊपर वाले श्रेष्ठ वायुयुक्त मार्गों से (चलकर) नीचे वालों (हीन पथों) का अतिक्रमण किया । इस प्रकार अपने पदोपनयन (पैरों को, कदमों को संतुलित ढंग से रखने के क्रम) द्वारा मृत्यु को पराजित किया ॥२९ ॥

[ऋषि उत्कृष्ट प्राण धाराओं के प्रतीक हैं। वे पृथ्वी (शरीर का अधोभाग) , अन्तरिक्ष (मध्यभाग) तथा द्युलोक (ऊर्ध्वभाग) इन तीनों में संचरित सप्त-प्राण-प्रवाहों को निम्नकोटि की आकांक्षाओं-हीन पथों पर विचरण न करने देकर उच्च आदर्शों-उद्देश्यों में उनका नियोजन करते हैं। यह २१ पराक्रम करने के लिए उन्हें जीवन का हर चरण संतुलन (उपनयन) पूर्वक

रखना पड़ता है। इस प्रकार वे नीचे के मार्ग वालों को लाँघकर आगे बढ़ जाते हैं और मृत्यु को भी जीत लेते हैं। इस मन्त्र के भाव के साथ परशुराम जी द्वारा २१ बार आततायी राजाओं को पराजित करने के कथानक की संगति भी बैठती है। वे शिव के परशु से अशिव संकल्पों को काटकर यह २१ पराक्रम करते हैं।]

३३९२. मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।

आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ॥३० ॥

मृत्यु के चरणों को (विनाशकारी चरण क्रम को) रोककर, अधिक लम्बी तथा श्रेष्ठ आयु को धारण करें। इस क्रम में स्थित होकर मृत्यु को पीछे धकेल दें। ऐसा जीवन जिओगे, तो अपने आवास-स्थल (शरीर, घर या क्षेत्र) में विशिष्ट प्रयोग (यज्ञादि) की बात कह सकोगे ॥३० ॥

[जो व्यसनों में, पापों में रस लेते हैं, वे उद्देश्यपूर्ण या यज्ञीय जीवन नहीं जी सकते हैं।]

३३९३. इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।

अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥३१ ॥

ये नारियाँ श्रेष्ठ पत्नियाँ बनें, सधवा रहें, अंजन (दृष्टि शोधक) तथा घृत (तेजोवर्द्धक) आदि तत्वों से युक्त रहें। वे रोगरहित (स्वस्थ शरीर) तथा अश्ररहित (उल्लसित मन वाली) होकर श्रेष्ठ रत्नों (गुणों या नर रत्नों) को जन्म देने वाली बनकर अग्रणी श्रेणियों में उन्नति करें ॥३१ ॥

३३९४. व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्य१हं कल्पयामि ।

स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥३२ ॥

हविष्यान्न द्वारा हम इन दोनों मृतकों (पितरों) और जीवितों (मनुष्यों) को ही विशेष लाभान्वित करते हैं। ज्ञानशक्ति से हम इनकी विशेष कल्पना करते हैं। पितरगणों को दी जाने वाली स्वधायुक्त आहुति को हम अविनाशी बनाते हैं तथा इन्हें दीर्घायु से सम्पन्न करते हैं ॥३२ ॥

३३९५. यो नो अग्निः पितरो हृत्स्व१न्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।

मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ॥३३ ॥

हे पितरगण ! जो अमर फलप्रदाता अग्नि मनुष्यों के हृदय में प्रविष्ट होती है, उस दिव्य अग्नि को हम अपने अन्दर ग्रहण करते हैं। वह हमारे साथ विद्वेष न करे और हम भी उससे द्वेष न करें ॥३३ ॥

३३९६. अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।

प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ॥३४ ॥

हे मनुष्यो ! तुम मंत्र प्रयोग से, गार्हपत्य अग्नि से दूर होकर क्रव्याद् (मृतककर्म में प्रयुक्त अग्नि) की ओर दक्षिण दिशा में जाओ। वहाँ पर ज्ञानियों, पितरों तथा अपनी प्रसन्नता के लिए प्रिय कार्य करो ॥३४ ॥

३३९७. द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या । अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ।

जो व्यक्ति क्रव्याद् अग्नि को शान्त नहीं करता, वह पितृसम्पदा के दो भाग (स्वयं की और ज्येष्ठ पुत्र की सम्पदा) मिलने पर भी क्षीणता को प्राप्त होता है ॥३५ ॥

३३९८. यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते ।

सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥३६ ॥

जो व्यक्ति क्रव्यादग्नि को शांत नहीं करता, उसकी कृषि, सेवनीय-वस्तुएँ, मूल्य देकर प्राप्त की गई वस्तुएँ आदि समाप्तप्राय हो जाती हैं ॥३६ ॥

[जो व्यक्ति क्रव्याद् अग्नि से सम्बन्धित कार्य करके पितृऋण नहीं चुकाता, उसका लौकिक पुरुषार्थ फलित नहीं होता ।]

३३९९. अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे ।

छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्त्तते ॥३७ ॥

जो व्यक्ति क्रव्याद् अग्नि को विलग नहीं करता, वह यज्ञ करने की अपनी पात्रता समाप्त कर देता है । तेजरहित व्यक्ति की हवि भी देवगण स्वीकार नहीं करते ।उस व्यक्ति के कृषि, गौएँ और ऐश्वर्य नष्ट हो जाते हैं ॥

३४००. मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य । क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥

क्रव्याद् अग्नि जिसके पीछे पड़ जाती है, वह व्यक्ति पीड़ाजनक स्थिति को प्राप्त होता है । उसे आवश्यक साधनों के लिए भी बारम्बार दीनतायुक्त वचनों का प्रयोग करना पड़ता है ॥३८ ॥

[जो व्यक्ति यज्ञादि पुण्यकार्यों की अपेक्षा पाप कर्मों द्वारा सुख-साधन बटोरने का प्रयास करते हैं, उनके पीछे अग्नि का उत्पीड़क प्रवाह लग जाता है । उसके सारे साधन उत्पीड़न करने में लग जाते हैं ।]

३४०१. ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।

ब्रह्मैव विद्वानेष्यो३ यः क्रव्यादं निरादधत् ॥३९ ॥

जब स्त्री का पति मर जाता है, तब घर यातना- केन्द्र जैसे बन जाते हैं । (उस समय) ज्ञानी ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ-परमार्थपरायण) ही बुलाने योग्य (परामर्श लेने योग्य) होता है । वह क्रव्याद् अग्नि को शांतकर (उचित मार्ग का निर्धारण कर) सकता है ॥३९ ॥

३४०२. यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।

आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ॥४० ॥

जो पाप, दोष और दुष्कर्म हमारे द्वारा किये गये हैं, उनसे और प्रेतदाहक अग्नि के स्पर्श से हमें जो दोष लगा है, उससे जल हमें पवित्रता प्रदान करे ॥४० ॥

३४०३. ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।

पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥४१ ॥

जो जल देवों के गमन मार्ग से दक्षिण से उत्तर के स्थानों को घेरता है, तत्पश्चात् वही प्राचीन जल नूतन रूप होकर वर्षा करने वाले पर्वतीय शिखरों पर नदियों के रूप में प्रवाहित होता है ॥४१ ॥

३४०४. अग्ने अक्रव्यान्निःक्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥४२ ॥

हे अक्रव्याद् अग्निदेव ! आप क्रव्याद् (मांस- भक्षक) अग्नि को हमसे पृथक् करें । देवों की पूजन सामग्री को देवों के समीप पहुँचाएँ ॥४२ ॥

३४०५. इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात् ।

व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥४३ ॥

क्रव्याद् अग्नि ने इस व्यक्ति में अपना प्रभाव जमा लिया है, यह व्यक्ति भी उस शवभक्षक का अनुगामी हो गया है । मैं इन दोनों को व्याघ्ररूप मानता हूँ । कल्याण से भिन्न अशिवरूप अनेकों को अपने साथ ले जाने वाली क्रव्याद् अग्नि को मैं विलग करता हूँ ॥४३ ॥

३४०६. अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ॥४४ ॥

गार्हपत्य अग्निदेव देवताओं और मनुष्यों के मध्यस्थ हैं ; क्योंकि वे देवताओं की अन्तर्धि (अन्दर स्थित) और मनुष्यों की परिधि (बाहरी रक्षक सीमा) स्वरूप हैं ॥४४ ॥

[गार्हपत्य अग्नि से मनुष्य देवत्व की ओर बढ़ना आरंभ करता है तथा उसकी सामर्थ्य से देवत्व का विकास होता है ।]

३४०७. जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।

सुगार्हपत्यो-वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥४५ ॥

हे अग्ने !आप प्राणियों की आयुष्य बढ़ाएँ और जिनका निधन हो चुका है, वे पितरलोक को प्राप्त करें । श्रेष्ठ गार्हपत्य अग्निदेव शत्रुओं को संतप्त करें और हमारे लिए प्रत्येक उषा को कल्याणमय बनाएँ ॥४५ ॥

३४०८. सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥४६ ॥

हे अग्निदेव ! सभी प्रकार के दुष्टों , शत्रुओं को पराभूत करते हुए आप उनकी सम्पत्ति और सामर्थ्य को हमारे अंदर स्थापित करें ॥४६ ॥

३४०९. इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।

तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥४७ ॥

हे मनुष्यो ! आप इन सामर्थ्यवान् , ऐश्वर्यशाली अग्नि की उपासना प्रारंभ करें । ये आपको निंदनीय दुष्कर्मों से दूर करें । उन (दुष्कर्मों) के अस्त्रों को नष्ट करें तथा रुद्रदेव के अस्त्रों से स्वयं को संरक्षित करें ॥४७ ॥

३४१०. अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।

आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥४८ ॥

(हे साधको !) भार वहन करके तैरने वाली इस सवितादेव की नाव पर चढ़ो; यह तुम्हें निन्दनीय दुष्कर्मों-दुष्प्रवृत्तियों से बचाएगी ।उनकी विशाल छह शक्तियों के सहारे हम अमति (अज्ञान) को पार कर सकेंगे ॥४८ ॥

[इस भवसागर में अज्ञान की भीषण तरंगें उठ रही हैं । उन्हें पार करने के लिए अपना भार सँभाल सकने वाली समर्थ तरिणी-नाव चाहिए । दिव्य प्रेरणा के स्रोत सवितादेव की सद्प्रेरणा रूपी विशाल नाव पर अपनी पाँच प्राणों एवं मन की शक्तियों को आधारित करके अज्ञान के समुद्र को पार किया जा सकता है ।]

३४११. अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।

अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥४९ ॥

हे तल्प (सुखद सहारा देने वाले - सविता या गार्हपत्य अग्नि) ! आप हमारे क्षेम (कुशलता) का निर्वाह करते हुए दिन-रात हमें बढ़ाते हुए श्रेष्ठवीर की तरह गतिशील रहते हैं । उत्तम मन वाले आतुरतारहित साधकों को धारण करने वाले आप सुगन्धियुक्त पुरुषार्थ हमें प्रदान करें ॥४९ ॥

३४१२. ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा । क्रव्याद्

यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ॥५० ॥

जो पाप से आजीविका चलाते हैं, वे पुरुष देवों से अपना संबंध तोड़ लेते हैं । उन्हें क्रव्याद् अग्नि उसी तरह कुचलती है, जिस प्रकार घोड़ा नड नामक घास को कुचलता है ॥५० ॥

३४१३. ये ऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते । ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥

जो धनकामी, अश्रद्धालु ,दूसरों की हाँडी (पके - पकाये अन्न या धन) हथियाते हैं , वे क्रव्याद् (उत्पीड़क) अग्नि के निकट पहुँच जाते हैं ॥५१ ॥

३४१४. प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः ।

क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥५२ ॥

जिसके पल्ले क्रव्याद् (प्रेतकर्मा) अग्नि पड़ जाती है । वह मन से बार-बार पतनशील कर्मों की ओर लौटना- उन्हीं में प्रवृत्त होना चाहता है ॥५२ ॥

३४१५. अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः ।

माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥५३ ॥

हे मांसभक्षक अग्ने ! काले वर्ण की भेड़ आपका भाग है, सीसा और चन्द्र (लोहा-स्वर्ण आदि धातु) भी आपके ही भाग कहे गये हैं । पिसे हुए उड़द आपके हविष्यान्न हैं । आप घरों से दूर जंगल में निवास करें ॥५३ ॥

३४१६. इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम् ।

तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥५४ ॥

हे इन्द्रदेव !आपने बहुत पुरानी मूँज, तिलों का पुञ्ज, समिधा और सरकंडे की आहुति देकर यमाग्नि को पृथक् किया ॥५४ ॥

३४१७. प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्या विवेश ।

परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥५५ ॥

सही पथ का ज्ञाता (साधक) सामने गतिशील सूर्य को (श्रद्धा) समर्पित करता हुआ उस (धर्म मार्ग) में विशेष रूप से प्रवृत्त होता है । वह मृतकों के प्राणों को भी परमगति प्रदान करता है । मैं (ऋषि) ऐसे जीवन्तों को दीर्घायुष्य प्रदान करता हूँ ॥५५ ॥

[३- स्वर्गौदन सूक्त]

[ऋषि- यम । देवता- स्वर्ग, ओदन, अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप् , १, ४२-४३, ४७ भुरिक् त्रिष्टुप्, ८, १२, २१-२२, २४ जगती, १३, १७ स्वराट् आर्षी पंक्ति, ३४ विराड्गर्भा त्रिष्टुप्, ३९ अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप् , ४४ पराबृहती त्रिष्टुप् , ५५-६० त्र्यवसाना सप्तपदा शङ्कुमती अतिजागतशाक्वरातिशाक्वरधार्त्यगर्भा अतिधृति (५६ विराट् कृति, ५५, ५७-६० कृति ।)]

३४१८. पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।

यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद् वां वयो यमराज्ये समानम् ॥१ ॥

हे पुरुषार्थी पुरुष !आप अधिकारपूर्वक इस चर्म आसन पर विराजमान हों, जो आपके आत्मीयजन हैं, उन्हें बुलाएँ ।जितने पति-पत्नी इस प्रक्रिया को पहले कर चुके हैं, उनका तथा आप दोनों दम्पती का फल समान हो ॥१ ॥

३४१९. तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत् तेजस्ततिधा वाजिनानि ।

अग्निः शरीरं सचते यदैधोऽधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥२ ॥

(हे दम्पती !) अग्निदेव जिस प्रकार आपके शरीरों को तपाते हैं , उसी के अनुरूप तुम्हारी दृष्टि है, वैसा ही

वीर्य है, वैसा ही तेज है और वैसा ही बल है । इसी परिपाक विधि से यह जोड़े (नर-मादा) उत्पन्न होते हैं ॥२ ॥

३४२०. समस्मिँल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।

पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव ॥३ ॥

आप दोनों इस अन्न के प्रभाव से इस लोक में परस्पर मिलकर रहें, देवत्व के मार्ग पर साथ-साथ बढ़ें, नियन्ता (यम) के राज्य में भी एक साथ मिलकर रहें । आप दोनों का उत्पादक तेज मिलकर जो कुछ भी उपलब्धियाँ पा सकता है, उसे स्वयं प्राप्त करें ॥३ ॥

३४२१. आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।

तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री ॥४ ॥

हे पुत्रो ! जीवन से संयुक्त होकर, जीवन को धन्य बनाने वाले अप् (जीवन जल या प्रवाह) में प्रवेश करो । तुम्हारी माता (देहधारी माँ-अथवा प्रकृति) जिस अन्न को पका रही है, उसे हम बतलाते हैं, उसके अमृत का सेवन करो ॥४ ॥

३४२२. यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।

स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ॥५ ॥

यदि आपके माता-पिता पापमय और मलिन वाणी के प्रयोग से मुक्त होने के लिए अथवा किसी अन्य पाप से मुक्ति हेतु ओदन पकाते हैं, तो वह सहस्रों धाराओं से सुखों को देने वाला ओदन अपनी महिमा से द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनों में व्याप्त हो जाता है ॥५ ॥

[जो मलिनता का - पापों का निवारण कर सकता है, ऐसा ओदन-अन्न या तो यज्ञ द्वारा पकता है अथवा सूक्ष्म अन्न मन, वाणी एवं कर्म के रूप में परिपक्व होता है ।]

३४२३. उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।

तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ॥६ ॥

हे दम्पती ! द्यावा-पृथिवी में यजमान जिन लोकों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, उन लोकों में जो मधुर और तेजस्विता- सम्पन्न लोक हैं, उनमें आप सुसन्ततियों के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त आनन्दित रहें ॥६ ॥

३४२४. प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।

यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ॥७ ॥

हे दम्पती ! आप प्रकाशरूप पूर्व दिशा की ओर अग्रसर हों, इस स्वर्गीय सुखरूप लोक को श्रद्धालु लोग ही उपलब्ध करते हैं । जो आपका परिपक्व हविष्यान्न अग्नि में समर्पित किया गया है, उसके संरक्षण के लिए आप दोनों सन्नद्ध हों ॥७ ॥

३४२५. दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् ।

तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म बहुलं नि यच्छात् ॥८ ॥

हे स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर होते हुए इस पात्र के चारों ओर परिक्रमा करके वापस आएँ, उस समय आपके पितरजनों के साथ समान-विचार धारा से युक्त होकर नियामक देव (यम) परिपक्व अन्न के लिए प्रचुर सुख प्रदान करें ॥८ ॥

३४२६. प्रतीची दिशामियमिद् वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामथा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥९ ॥

यह पश्चिम दिशा है, जो दिशाओं में श्रेष्ठ है । जिस दिशा में सोमदेव अधिपति और सुखदायक है, उनका आश्रय ग्रहण करते हुए आप श्रेष्ठ पुण्य कर्मों को सम्पन्न करें । हे दम्पती ! इसके बाद आप दोनों परिपक्व अन्न के प्रभाव से संयुक्त- शक्तिशाली हों ॥९ ॥

३४२७. उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥१० ॥

यह उत्तर का प्रकाशमान क्षेत्र प्रजाजनों से सम्पन्न है, दिशाओं में श्रेष्ठ उत्तर दिशा हमें आगे बढ़ाए । व्यवस्थित छन्द (ज्ञान) प्रादुर्भूत हुआ है । हम सभी अपनी सर्वांगीण उन्नति के साथ प्रादुर्भूत हों ॥१० ॥

[पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में ही भू-भाग अधिक है, इसलिए प्रजा की संख्या भी अधिक है, सम्भवतः इसीलिए इसे प्रजाजनों की दृष्टि से उन्नत कहा गया है ।]

३४२८. ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥११ ॥

हे संसार की हितकारिणी पृथ्वी देवि ! आप अटल और विराट् हैं, आप हम सबके लिए कल्याणकारिणी हों । आप हमारे लिए और हमारी सन्ततियों के लिए शुभकर हों । आप निर्धारित संरक्षक की तरह इस परिपक्व (अन्न या प्रजा) की सुरक्षा करें ॥११ ॥

३४२९. पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह तन्नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥१२ ॥

हे पृथ्वी देवि ! पिता पुत्रों के सम्मिलन के समान ही आप हम सबके साथ व्यवहार करें । इस पृथ्वी पर हमारे लिए कल्याणकारी वायु बहाते रहें । जिस अन्नभाग को ये दोनों (दम्पती अथवा द्यावा-पृथिवी) परिपक्व करते हैं, वे हमारे तप: प्रभाव और सत्य संकल्प से अवगत हों ॥१२ ॥

३४३०. यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद्वा दास्यार्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥१३ ॥

यदि काला पक्षी (कौआ या कुसंस्कारी) कपट रीति से बिल बनाकर इसमें प्रविष्ट हो अथवा गीले हाथों वाली दासी ऊखल और मूसल को खराब कर दे, तो यह जल उन्हें शुद्ध करे ॥१३ ॥

३४३१. अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दम्पती पौत्रमघं नि गाताम् ॥१४ ॥

यह विशाल आधारयुक्त पत्थर हविरूप अन्न को कूटकर तैयार करता है । पवित्रे (पवित्रकारक उपकरणों) से पुनीत होता हुआ यह दुष्ट वृत्तियों (कूड़े- करकट) का संहार करे । हे ओदन (परिपक्व अन्न) ! आप पृथ्वी की त्वचा पर बैठें और अतिकल्याणप्रद हों । स्त्री- पुरुषों और उनकी सन्ततियों को पाप स्पर्श भी न कर सके ॥१४ ॥

३४३२. वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वाञ्जयेम ॥१५ ॥

देवशक्तियों के साथ वनस्पतिदेव हमारे समीप आ गये हैं, वे सभी रोग बीजरूपी राक्षसों और पिशाचों को दूर करते हैं । वे ऊँचे उठकर उद्‌घोष करते हैं कि सम्पूर्ण लोकों पर विजय प्राप्त करेंगे ॥१५ ॥

३४३३. सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्मॉं उत यश्चकर्श ।

त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥१६ ॥

पशुओं (जीवों) ने सात मेधों (यज्ञों अथवा अन्नों) को ग्रहण किया । तैंतीस देवता उनका सेचन करते हैं । इनमें जो तेजस्वी और सूक्ष्म हैं, वे हमें स्वर्गलोक में पहुँचाएँ ॥ १६ ॥

३४३४. स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।

गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥१७ ॥

हे ओदन !आप हमें स्वर्गलोक में पहुँचा रहे हैं, वहाँ हम अपनी भार्या और सन्तति सहित पहुँचें । निर्ऋति और शत्रु हमको प्रताड़ित न कर सकें, इसलिए हम आपका हाथ पकड़ते हैं, आप हमारा संरक्षण करें ॥१७ ॥

३४३५. ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।

वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् ॥१८ ॥

हे वनस्पतिदेव !(आपके प्रभाव से हम) पाप द्वारा प्रादुर्भूत अन्धकार को दूर करते हुए मधुर वाणी उच्चरित करेंगे । यह वानस्पत्य ऊर्ध्वगामी होकर देवपथ में जाने वाले हमारे (हम साधकों के हितों) और चावलों (हव्यान्न) की हिंसा न करे ॥१८ ॥

३४३६. विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।

वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद् विनक्तु ॥१९ ॥

(हे दिव्य अन्न !) चारों ओर से घृत से सिञ्चित हुए आप उस (घृतादि) के साथ एकरूप होकर (पर्जन्य के रूप में) इस लोक में हमारे समीप आएँ । प्रतिवर्ष प्रवृद्ध होने वाले आप सूर्य की संगति से तिनकों और भूसी को दूर करें ॥१९ ॥

३४३७. त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्य१न्तरिक्षम् ।

अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥२० ॥

ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मशक्ति द्वारा तीनों लोक संयुक्त हुए हैं । (इस अन्न में) यह द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष के अंश हैं । (हे दम्पती !) तुम दोनों इनके अंशों को लेकर कार्य आरंभ करो । यह फलें-बढ़ें और पुनः सूप में (सफाई के लिए) आएँ ॥२० ॥

[खेत में डाला हुआ अन्न १५-२० गुना हो जाता है । उसमें पृथ्वी का बहुत थोड़ा अंश जाता है; क्योंकि खेत की मिट्टी घटती नहीं । शेष अंश आकाशीय एवं अन्तरिक्षीय प्रवाहों से प्राप्त होते हैं । इसी प्रक्रिया से वे बढ़ते-परिपक्व होते हैं, तब उन्हें उपयोग के लिए भूसी आदि से अलग किया जाता है ।]

३४३८. पृथग् रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या ।

एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा ॥२१ ॥

पशु (हव्य पदार्थ) भिन्न-भिन्न होते हैं ; किन्तु समृद्ध (तैयार) किये जाने पर एक रूप हो जाते हैं । हे ग्रावन् ! आप इनकी लोहिनी (लाल या कठोर) त्वचा को हटा दें तथा जैसे धोबी वस्त्र शुद्ध करते हैं, वैसे इसे शोधित करें ॥२१ ॥

३४३९. पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा ।

यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि ॥२२ ॥

हे मूसल ! तुम पृथ्वी तत्त्व से बने होने के कारण पृथ्वी ही हो, अतः मैं पृथ्वी को पृथ्वी में ही मारता हूँ । पृथ्वी और तुम्हारा शरीर समान है । हे ओदन ! मूसल के प्रहार से तुम्हें जो पीड़ा पहुँच रही है, उससे तुम भूसी से पृथक् हो जाओ । मैं तुम्हें वेद मन्त्रों से अग्नि में अर्पित करता हूँ ॥२२ ॥

३४४०. जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।

उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥२३ ॥

(ओदन पाक के संदर्भ में कथन है) जननी जैसे पुत्र को सँभालती है, वैसे हम पृथ्वी (वेदिका) पर पृथ्वी (कुंभी एवं अन्नादि) को स्थापित करते हैं । उखा (अग्निपात्र) तथा कुंभी (पाक पात्र) वेदिका पर व्यथित न हों; क्योंकि आपको यज्ञ साधनों तथा घृतादि से सिञ्चित किया गया है ॥२३ ॥

३४४१. अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।

वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥२४ ॥

आपको पकाने वाले अग्निदेव आपकी रक्षा करें । इन्द्रदेव संरक्षण करें । मरुद्गण दक्षिण दिशा से, वरुणदेव पश्चिम दिशा तथा सोमदेव उत्तर दिशा की ओर से आपके आधार को सुदृढ़ करते हुए सुरक्षित करें ॥२४ ॥

३४४२. पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।

ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥२५ ॥

पवित्र कर्मों से पावन बनकर जल धाराएँ शुद्ध करती हैं । वे द्युलोक और फिर पृथ्वी को प्राप्त होती हैं । इन जीवनदायिनी, जीव को कृतार्थ करने वाली, सबकी आधारभूत, पात्र में अधिष्ठित जलधाराओं को अग्निदेव चारों ओर से संतप्त (दीप्त) करें ॥२५ ॥

३४४३. आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।

शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥२६ ॥

दिव्यलोक से आगमन करने वाली जल-धाराएँ पृथ्वीलोक में एकत्रित होती हैं, पृथ्वी से (वाष्पभूत होकर) पुनः अन्तरिक्ष में घनीभूत होती हैं । वह शुद्ध जल सबको पावन बनाता है । ऐसा (यज्ञीय धान्य से मिले हुए) पवित्र जल हमें स्वर्गीय सुखों की ओर ले जाए ॥२६ ॥

३४४४. उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः ।

ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥२७ ॥

जल निश्चित ही प्रभावशाली, प्रशंसनीय, बलवर्द्धक, पवित्र, अमृततुल्य और प्रभुस्वरूप है । हे जल ! आप दम्पती द्वारा डाले गये ओदन को शुद्ध करते हुए पकाएँ ॥२७ ॥

३४४५. संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः ।

असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥२८ ॥

प्राण और अपान वायु सहित ओषधियुक्त जल बिन्दु पृथ्वी को सिंचित करते हैं और सुन्दर वर्ण वाले जीवों में प्रविष्ट होकर , उन्हें शुचिता प्रदान करते हुए उनमें व्याप्त होते हैं ॥२८ ॥

३४४६. उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून् ।

योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः ॥२९ ॥

यह जल तप्तावस्था में युद्ध- सा करता है, शब्द ध्वनि करता है, फेन को उड़ाता है तथा अनेक बुद्बुदों को फेंकता है । हे जल प्रवाहो ! जिस प्रकार स्त्री पति के साथ ऋतुयज्ञ (प्रजनन कर्म) के लिए संयुक्त होती है, उसी प्रकार आप ऋतुयज्ञ के निमित्त चावलों के साथ सम्मिलित हों ॥२९ ॥

३४४७. उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।

अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥३० ॥

हे अग्ने ! (कुम्भी) तली में स्थित चावलों को आप ऊपर उठाएँ । जल के साथ ये स्वयं भली प्रकार मिल जाएँ । ये (चारों दिशाओं में जाने वाले) चावल भी मापे जा चुके हैं, अत: जल भी मापा गया है ॥३० ॥

३४४८. प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।

यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥३१ ॥

परशु प्रदान करो, शीघ्रता करो, (ओषधियाँ) यहाँ लाओ । ओषधियों को नष्ट न करते हुए उन्हें काटें । ये सभी शाक राजा सोम के राज्य में हैं । ओषधियाँ हमारे साथ क्रोध भावना से रहित हों ॥३१ ॥

३४४९. नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्गवस्तु ।

तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥३२ ॥

ओदन (सेवन) के लिए कुशा (आसन) बिछा दें, वह आसन हृदय तथा नेत्रों को प्रिय लगने वाला हो । वहाँ पर सभी देवगण अपनी दैवी शक्तियों के साथ बैठें और इस ओदन को ऋतुओं के अनुरूप सेवन करें ॥३२ ॥

३४५०. वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।

त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥३३ ॥

हे वनस्पते (वनस्पति से उत्पन्न ओदन) ! इस बिछाये गये आसन पर आप प्रतिष्ठित हों, देवताओं ने आपको अग्निष्टोम में स्वीकार किया है । स्वधिति ने त्वष्टादेव के समान इसे सुन्दर स्वरूप प्रदान किया है; जो अब पात्रों में दिखाई दे रहा है ॥३३ ॥

३४५१. षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।

उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥३४ ॥

निधिरक्षक यजमान साठ वर्ष तक इस पक्व अन्न से स्वर्ग (या सुख) प्राप्ति की कामना करे । पिता-पुत्र दोनों इसी के सहारे अपना जीवन चलाएँ । हे अग्निदेव ! आप इस (अन्न या यजमान) को स्वर्ग तक गति दें ॥३४ ॥

३४५२. धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।

तं त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद् वासयातः पर्यग्निधानात् ॥३५ ॥

हे अन्न ! आप धारणकर्ता हैं, अत: आप पृथ्वी के आधार पर स्थिर हों, आप अच्युत्य को देवशक्तियाँ च्युत न करें । जिनके पुत्र जीवित हैं, ऐसे स्त्री- पुरुष आपको अग्न्याधान से पुष्टि प्रदान करें ॥३५ ॥

३४५३. सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥३६ ॥

आप स्वर्गादि सभी लोकों को यज्ञ द्वारा जीतकर अपनी सम्पूर्ण मनोकामनाओं की तृप्ति करते हुए आएँ । दम्पती द्वारा करछी और चमस पात्र से ओदन निकाल कर इस एक पात्र में रखा जाए ॥३६ ॥

३४५४. उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैतत् ।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभिहिङ्कृणोत ॥३७ ॥

पात्र में घृत डालकर उसे फैलाते हुए घृत से परिपूर्ण पात्र को भरें । हे देवगण ! जैसे दुधारू गौएँ दुग्धपान करने वाले बछड़े को चाहती हुई शब्द करती हैं, वैसे ही तैयार हुए अन्न के प्रति आप प्रसन्नता सूचक शब्द करें ॥३७ ।

३४५५. उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिञ्छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥३८ ॥

हे याजको ! आपने इस लोक में इस (अन्न) को तैयार किया तथा (यज्ञ द्वारा) ऊपर (उच्च लोकों में) फैलाया । यह उस अप्रतिम स्वर्ग में खूब विस्तार पाए, जिसमें महान् सूर्यदेव स्थित हैं । इसे देवगण (या देवपुरुष) ही देवों (देवशक्तियों) के लिए प्रदान करते हैं ॥३८ ॥

३४५६. यद्यज्जाया पचति त्वत् परः परः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः ।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥३९ ॥

हे स्त्री ! आप इस ओदन का पाक करती हैं । यदि आप अपने पति से पहले चली जाएँ और आपके पति बाद में स्वर्ग पहुँचें, तो वहाँ आप दोनों मिल जाएँ । आप दोनों एक ही लोक में साथ-साथ रहें और यह ओदन वहाँ भी आपके साथ रहे ॥३९ ॥

३४५७. यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः ।
सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥४० ॥

इस (नारी या प्रकृति) से उत्पन्न सभी पुत्रों को, जो हमारे आस- पास भूमि की सेवा करते हैं, उन्हें (ओदन) पात्र के निकट बुलाएँ । पुत्र भी इस बात को समझते हुए इस नाभि (केन्द्र या यज्ञ) में आ जाए ॥४० ॥

३४५८. वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः ।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ॥४१ ॥

वासदाता ओदन की धाराएँ शहद और घृत मिश्रित हैं । अमरत्व प्रदान करने वाली वे धाराएँ स्वर्ग में केन्द्रीभूत हैं, स्वर्ग उन सबको अपने नियंत्रण में रखे । निधि का संरक्षक यजमान साठ वर्षों की आयु के पश्चात् इसकी अभिलाषा करे ॥४१ ॥

३४५९. निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये ।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ॥४२ ॥

निधि के संरक्षक यजमान दान द्वारा श्रेष्ठ वैभव की अभिलाषा करें । जो दूसरे वैभव रहित हैं वे सम्पदा के अभाव में दरिद्रताग्रस्त रहें । हमारी दान देने की प्रवृत्ति से उपलब्ध हुए, स्वर्गीय सुख ही ऐसे हैं, जो तीन काण्डों (तीन विभागों) से तीन श्रेणी के स्वर्गों से श्रेष्ठ स्तर के हैं ॥४२ ॥

३४६०. अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।

नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥४३ ॥

मेरे कर्मों के फल में बाधा डालने वाली राक्षसी शक्तियों को अग्निदेव संतप्त करें । क्रव्याद् अग्नि और राक्षसी प्रवृत्तियों में संलग्न लोग हमारा शोषण न करें । इस असुर को हम दूर भगाते हैं, इसे समीप नहीं आने देंगे । आदित्यगण और अंगिरावंशज ऋषि इस दुष्ट को नियंत्रित करें ॥४३ ॥

३४६१. आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।

शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥४४ ॥

हम आदित्यों और अंगिरा गोत्रीय ऋषियों के लिए घी से मिश्रित शहद निवेदित करते हैं । ज्ञाननिष्ठ मनुष्य के पुण्यमय दोनों हाथ जो अकल्याण से रहित हैं , वे पुण्यशाली हैं । वे इसे स्वर्ग की ओर ले जाएँ ॥४४ ॥

३४६२. इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।

आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ॥४५ ॥

जिस दर्शन योग्य काण्ड द्वारा प्रजापति ने फल प्राप्त किया था, उसके श्रेष्ठ भाग को हमने उपलब्ध कर लिया है । इसे घी से सींचें, यह घृत से युक्त भाग हम अङ्गिरा वंशजों का ही है ॥४५ ॥

३४६३. सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।

मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पुरा मत् ॥४६ ॥

हम सत्य, तप और देवताओं के निमित्त इस ओदनरूपी निधि को समर्पित करते हैं । आपसी कर्म के आदान-प्रदान रूप जुआ में और सभा- समिति में भी यह हमसे दूर न हो, हमें त्याग कर अन्य के पास न जाए ॥४६ ॥

३४६४. अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।

कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोऽन्वारभेथां वय उत्तरावत् ॥४७ ॥

मैं ही पकाने की क्रिया सम्पन्न कर रहा हूँ और इसे दानादि रूपों में मैं ही प्रदान कर रहा हूँ । हे यज्ञ स्वरूप कर्म ! हमारे यहाँ कुमारावस्था से युक्त दर्शनीय पुत्र उत्पन्न हुआ है । अब हम श्रेष्ठतायुक्त यज्ञान्न का पाचन और दान जैसे श्रेष्ठ कार्यों का शुभारम्भ करते हैं ॥४७ ॥

३४६५. न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममममान एति ।

अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥४८ ॥

इस कर्म में कोई दोष नहीं है और न ही इसका कोई (मित्र) आधार है । यह स्वजनों के साथ मिलजुल कर भी नहीं जाता । यह रखा हुआ पूर्ण पात्र फिर से पकाने वाले को ही प्राप्त हो जाता है ॥४८ ॥

३४६६. प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।

धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥४९ ॥

हे यजमान ! अतिशय प्रिय कर्म को हम तुम्हारे लिए सम्पन्न करते हैं । जो तुमसे द्वेष करते हैं, ऐसे व्यक्ति नर करूपी अन्धकार को प्राप्त करें । गौएँ , बैल, अन्न, आयुष्य और पुरुषार्थ हमारे निकट आएँ और अपमृत्यु को दूर करें ॥४९ ॥

३४६७. समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।

यावन्तो देवा दिव्या३तपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ॥५० ॥

जो अग्निदेव ओषधियों और जल का सेवन करते हैं (उनमें रहते हैं), वे परस्पर एक दूसरे को जानते हैं । ये तथा अन्य अग्नियाँ भी इस कर्म से अवगत हैं । पाककर्ता को देवताओं के तपरूप पुण्य और सुवर्ण आदि ज्योतिर्मय पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥५० ॥

३४६८. एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।

क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ॥५१ ॥

मनुष्य को यह चर्म (आच्छादन) अन्यों के सहयोग से प्राप्त है । अन्य पशु भी नग्न नहीं (सुरक्षित) हैं । अपने पुरुषार्थ से स्वयं को आच्छादित (संरक्षित) करो और इस अन्न के मुख को भी वसन (वस्त्र) से ढको ॥५१ ॥

३४६९. यदक्षेषु वदा यत् समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।

समानं तन्तुमभि संवसानौ तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ॥५२ ॥

(धन की लालसा से) आपने जुआ आदि खेलों अथवा सभा में जो असत्य भाषण किया है, उन अपने कषाय-कल्मषों को उसी स्थान में रख दें, समानता (ताने-बाने वाला वस्त्र) धारण करें ॥५२ ॥

[अपनी - शोभा प्रतिष्ठा के लिए जो अनीति हो गई हो, उसे वहीं छोड़ दें तथा मनुष्योचित प्रतिष्ठा से स्वयं को सुशोभित करें - यही उचित कहा गया है ।]

३४७०. वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत्पातयासि ।

विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ॥५३ ॥

(हे यज्ञान्न !) देवों के समीप जाएँ , वर्षा प्राप्त करें, त्वचा (पृथ्वी या प्राणियों के रक्षक आवरण) के चारों ओर (यज्ञ का) धूम्र उड़ाएँ । विश्व में विस्तृत हों, घृत (तेज) से युक्त होने की इच्छा वाले आप पुनः इस लोक को प्राप्त हों ॥५३ ॥

३४७१. तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् ।

अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥५४ ॥

यह अन्न स्वर्गलोक में अपने स्वरूप को अनेक आकार का गढ़ने में सक्षम है । अन्य वर्ण वालों को भी आत्मवत् ही जानता है । कालिमा को दूर करता है और तेजस्विता को शुद्ध बनाता है । उसका जो लोहित (सुदृढ़ या लाल वर्ण का) अंश है, उसे अग्नि में होमा जाता है ॥५४ ॥

३४७२. प्राच्यै त्वा दिशे३ग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।

एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि

नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५५ ॥

हम आपको पूर्व दिशा, अधिपति अग्निदेव, संरक्षणकर्त्ता असित और बाणधारी आदित्य के लिए प्रदान करते हैं । आप हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक इसका संरक्षण करें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मफल के रूप में वृद्धावस्था पर्यन्त उपलब्ध कराते रहें और हमारी वृद्धावस्था इसे मृत्यु तक पहुँचाए । इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुनः उत्पन्न होंगे ॥५५ ॥

३४७३. दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।दिष्टं नो अत्र जरसे
नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५६ ॥

हम आपको दक्षिण दिशा, अधिपति इन्द्रदेव रक्षणकर्त्ता तिरश्चिराजी नामक सर्प और बाणधारी यम के लिए प्रदान करते हैं, आप हमारे यहाँ से जाने तक इसका संरक्षण करें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मफल के रूप में जीर्णावस्था तक तथा वृद्धावस्था से मृत्यु तक पहुँचाएँ । इस पके हुए अन्न के साथ हम पुनः उत्पन्न होंगे ॥५६ ॥

३४७४. प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।दिष्टं नो अत्र जरसे नि
नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५७ ॥

हम आपको पश्चिम दिशा, अधिपति वरुण, रक्षणकर्त्ता पृदाकु नामक सर्प और वरुणधारी अन्न के लिए प्रदान करते हैं । आप हमारे यहाँ से प्रस्थान तक इसका संरक्षण करें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मफल के रूप में वृद्धावस्था पर्यन्त उपलब्ध कराते रहें और वृद्धावस्था इसे मृत्यु तक पहुँचाए । इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुनः उत्पन्न होंगे ॥५७ ॥

३४७५. उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या
इषुमत्यै । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र
जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५८ ॥

हम आपको उत्तर दिशा, अधिपति सोम, संरक्षणकर्त्ता स्वज नामक सर्प और अशनि के लिए प्रदान करते हैं । आप हमारे यहाँ से जाने तक इसका संरक्षण करें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मों के फलस्वरूप वृद्धावस्था तक प्राप्त कराते रहें और वृद्धावस्था इसे मृत्यु को सौंप दें । इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुनः उत्पन्न होंगे ॥५८ ॥

३४७६. ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य
इषुमतीभ्यः । एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र
जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥५९ ॥

हम आपको ध्रुव दिशा, अधिपति विष्णु, संरक्षणकर्त्ता कल्माषग्रीव नामक सर्प और इषुमती ओषधियों के लिए प्रदान करते हैं । आप हमारे यहाँ से गमनकाल तक इसका संरक्षण करें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मों के फलस्वरूप जीर्णावस्था तक प्राप्त कराएँ । जीर्णावस्था इसे मृत्यु को समर्पित करे । इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुनः उत्पन्न होंगे ॥५९ ॥

३४७७. ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि
नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥६० ॥

हम आपको ऊर्ध्व दिशा, अधिपति बृहस्पति, संरक्षक श्वित्र नामक सर्प और इषुवान् वर्षा के लिए प्रदान करते हैं । आप हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक संरक्षण करते रहें । इसे हमारे प्रारब्ध कर्मों के फलस्वरूप बुढ़ापे तक पहुँचाएँ , बुढ़ापा इसे मृत्यु को समर्पित करे । इस परिपक्व अन्न के साथ हम पुनः उत्पन्न होंगे ॥६० ॥

[४ - वशा गौ सूक्त]

[ऋषि- कश्यप । देवता- वशा । छन्द- अनुष्टुप्, ७ भुरिक् अनुष्टुप्, २० विराट् अनुष्टुप्, ३२ उष्णिक् बृहतीगर्भा अनुष्टुप्, ४२ बृहतीगर्भा अनुष्टुप् ।]

सूक्त के ऋषि हैं 'कश्यप' = पश्यक = द्रष्टा। देवता हैं वशा। वशा के अनेक अर्थ होते हैं, जैसे नारी, गौ, वन्ध्या, वश में आयी हुई आदि। सूक्तकार-द्रष्टा ने गौ के उपलक्षण से प्रकृति के रहस्यों को स्पष्ट किया है। प्रकृति उर्वर उत्पादक है, अनेक प्रकार के पोषक पदार्थ स्नेहपूर्वक देती है, इसलिए इसे पयस्वती (दूध या रस देने वाली) गौ कहा गया है। प्रकृति की कुछ उत्पादक विधाएँ हैं, जो मनुष्यों के हाथ आ सकती हैं या जो उसके संकल्प से प्रभावित हो सकती हैं, उन्हें वशा (वश में आने वाली) कहा गया प्रतीत होता है। केवल स्थूल गौ मान लेने से मन्त्रार्थों की रहस्यात्मकता का निर्वाह नहीं होता। काण्ड-१० के १०वें सूक्त के भी ऋषि 'कश्यप' तथा देवता 'वशा' हैं। दोनों सूक्त एक दूसरे के पूरक हैं। लौकिक गौ के उपलक्षण से समझाये गये ये रहस्य बड़े उपयोगी हैं। 'वशा' ब्राह्मण के अधिकार में रहने पर ही कल्याणकारी सिद्ध होती है, अन्य के नियन्त्रण में यह अनर्थकारी हो जाती है। ब्राह्मण का अर्थ यहाँ ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति अथवा ब्रह्म का यज्ञीय अनुशासन है। ब्राह्मण ज्ञान, यज्ञ और दान के लिए ही अपनी प्रतिभा को समर्पित, सुरक्षित रखता है, इसलिए वशा-प्रकृति की उत्पादक विद्या (क्रिएटिव-टेक्नालॉजी) का सदुपयोग उसी के द्वारा सम्भव है। स्वार्थियों-लोलुपों द्वारा हथियायी जाने पर यह विद्या या प्रतिभा अनिष्टकारी हो जाती है। इसीलिए इसे ब्राह्मण को ही सौंप देने का आग्रह किया गया है। मन्त्रार्थों के भावों को स्पष्ट करने के लिए यथास्थान संक्षिप्त टिप्पणियाँ कर दी गई हैं-

३४७८. ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत । वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् ॥

हरेक सद्गृहस्थ 'दान देता हूँ' ऐसा ही सदैव कहे। दान के अनुकूल भावना भी रखे। याचक ब्राह्मणों को वशा का दान करे। यह दान, दाता को प्रजा और सन्तति प्रदान करने वाला है ॥१ ॥

३४७९. प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥२ ॥

जो मनुष्य, माँगने वाले ऋषिपुत्रों को देवताओं की गौ (वशा-विद्या) नहीं देते, वे अपनी प्रजा को ही बेचते हैं और पशुओं से रहित होकर अपयश को प्राप्त होते हैं ॥२ ॥

[जो वशा-प्रकृति की उत्पादक विद्या का उपयोग स्वार्थपूर्ण कार्यों में करते हैं, उनकी प्रजा अभावों में पलती है; उत्पादनों का प्रयोग स्वार्थ के लिए होने लगता है ।]

३४८०. कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥३ ॥

वशा की सींग (वशा विद्या का पैनापन) टूटने से उस (अदानी व्यक्ति) के निकटवर्ती (साधन या व्यक्ति) नष्ट होते हैं। लँगड़ी होने से उन्हें गड्ढे में गिरना पड़ता है, बण्डी (बिना पूँछ की या विकल) होने से घर जल जाते हैं, तथा कानी (एक आँख खराब होने) से अपनी ही सम्पदा नष्ट होती है ॥३ ॥

[अब्राह्मण-अज्ञानी वशा विद्या को सँभाल नहीं पाते। वह लँगड़ी हो जाए, तो सब जगह जा नहीं सकती, अतः समाज का पतन होता है। कानी (एक तरफ ही देखने वाली) अपनी ही सम्पदा की दूसरे पक्ष की हानि कर देती है आदि। इसी प्रकार उपलक्षणों से भाव स्पष्ट किये गये हैं।]

३४८१. विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्यु१च्यसे ॥४ ॥

गौ के गोबर से रक्त ज्वर प्रकट होकर कृपण स्वामी का विनाश करता है। इसी कारण से वशा को दुर्दमनीय (शक्ति से दबायी न जा सकने वाली) कहा गया है ॥४ ॥

[वशा विद्या-उत्पादक टैक्नालॉजी का गलत उपयोग होने से उससे उत्पन्न गोबर-प्रदूषण तमाम रोगों का कारण बनता है। उसके अनुशासन का उल्लंघन करके छल-बलपूर्वक उससे बचा नहीं जा सकता।]

३४८२. पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥५॥

(इस रुष्ट) गौ के पैर रखने के स्थान में विक्लिन्दु नामक रोग फैलता है, जिसे गौ सूँघती है, ऐसे (गौ के स्वामी) बिना ख्याति को प्राप्त हुए ही क्षीण होकर विनष्ट हो जाते हैं ॥५॥

३४८३. यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥६॥

जो गौ के कानों को पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मानो देवताओं पर प्रहार करते हैं। गौ पर परिचय चिह्न बनाने वाले गोपालकों का धन क्षीण हो जाता है ॥६॥

३४८४. यदस्याः कस्मै चिद् भोगाय बालान् कश्चित् प्रकृन्तति।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥७॥

जो किसी साज-सज्जा के लिए इस गौ के बालों का कर्तन करते हैं, इस अपराध कर्म से उनकी सन्तानें मृत्यु को प्राप्त होती हैं और भेड़िया, बच्चों पर आघात करता है ॥७॥

[वृक्ष- वनस्पतियों को पृथ्वी की लोम राशि कहा गया है। उन्हें जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए तो प्रयुक्त किया जा सकता है, भोग- विलास, प्रदर्शन- वैभव के लिए काटना पाप है। पर्यावरण बिगड़ने से संतति पर संकट आते हैं।]

३४८५. यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षोअजीहिडत्।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥८॥

यदि गोपति की उपस्थिति में कौवा, गौ के बालों को नोचता है, तो इससे उसकी संतानें मृत्यु को प्राप्त होती हैं और क्षयरोग उसे सहजरूप में ग्रसित करता है ॥८॥

[गोपति संरक्षक के प्रतीक हैं तथा कौवे स्वार्थ, धूर्त प्रकृति के लोगों के पर्याय हैं।]

३४८६. यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति। ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥

यदि गौ की परिचारिका, गौ का गोबर और मूत्र इधर-उधर फेंकती है, तो उस पापकर्म से गोपति का रूप विकृत हो जाता है ॥९॥

[लौकिक अर्थों में भी गाय का गोबर, गोमूत्र जहाँ-तहाँ फेंकने से स्थान का स्वरूप विकृत हो जाता है, सूक्ष्म संदर्भ में वशा-विद्या टैक्नालॉजी का कचरा ठिकाने न लगाया जाए, तो उस क्षेत्र का स्वरूप विकृत हो जाता है।]

३४८७. जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥१०॥

जो वशा उत्पन्न होती है, वह मात्र ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानियों और देवताओं के लिए ही उत्पन्न होती है, अतएव इसे ज्ञाननिष्ठ ब्रह्मकर्म में संलग्न लोगों को दानस्वरूप देना उपयुक्त है, ऐसा विद्वानों का कथन है ॥१०॥

३४८८. य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा। ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥११॥

ब्रह्मनिष्ठों के माँगने पर उन्हें गौ प्रदान न करके, जो 'अपनी प्रिय है' ऐसा कहते हुए अपने ही पास रखता है, उसका यह कृत्य ब्रह्मनिष्ठों पर अत्याचार के समान ही है; क्योंकि देवों ने उसे उनके लिए ही निर्मित किया है।

३४८९. य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ।

आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥१२ ॥

जो लोग लोकहित को दृष्टिगत रखने वाले याचक ऋषिपुत्रों को देवों की गौ दानस्वरूप नहीं देते । उनके ऊपर ब्राह्मणों के कोप और देवों के आघात बरसते हैं ॥१२ ॥

३४९०. यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।

हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥१३ ॥

यदि कोई भोग सामग्री चाहता है, तो वह वशा (ब्रह्म विद्या) से नहीं, किसी दूसरी विधि से प्राप्त करे; क्योंकि जो वशा याचना करने पर भी नहीं दी जाती, वह गौ ही उस मनुष्य (गोपति) के विनाश का कारण बनती है ॥१३ ॥

३४९१. यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।

तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥१४ ॥

जैसे किसी की सुरक्षित निधि होती है, वैसे ही यह वशा (गाय) ब्राह्मणों की है । कहीं किसी के भी गृह में उत्पन्न होने पर उसके पास ब्राह्मण लोग याचक भाव से पहुँचते हैं ॥१४ ॥

३४९२. स्वमेतदच्छायन्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि ।

यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥१५ ॥

यदि ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ) गौ के समीप आते हैं, तो वे अपनी सम्पत्ति के पास ही आते हैं । इस गौ को रोकना (न देना) मानो इन्हें (ब्राह्मणों को) दूसरे अर्थ में व्यथित करना ही है ॥१५ ॥

३४९३. चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती । वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥१६ ।

तीन कालों (वर्षों या जीवन के अंशों) तक, जब तक वशा की पहचान न हो, तब तक उसे गोपति (इन्द्रियों का स्वामी) विचरण करने दे । हे नारद ! वशा (प्रतिभा या विद्या) को पहचान लेने पर उसके लिए ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति अथवा अनुशासन) खोजकर उसे सौंप दिया जाए ॥१६ ॥

३४९४. य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।

उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥१७ ॥

जो देवों की स्थायी निधि (सुरक्षित निधि) रूप वशा को अवशा (न देने योग्य) कहते हैं, तो भव और शर्व ये दोनों देव उस पर पराक्रमी प्रहार स्वरूप बाण चलाते हैं ॥१७ ॥

[भव उत्पन्नकर्त्ता और शर्व विसर्जन कर्त्ता देवों के नाम हैं । ये दोनों संबोधन शिवजी के लिए भी हैं । अदानी, नियम का उल्लंघन करने वाले को शिव का चक्र चलाने वाले देव दण्डित करते हैं ।]

३४९५. यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।

उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ॥१८ ॥

जो गोपालक उसके ऊध (थन) और स्तनों को नहीं जानते, वे भी दानस्वरूप गौ को देने में सक्षम हुए, तो वह वशा (गाय) उन्हें पुण्यफल के साथ पर्याप्त दूध का अभीष्ट फल देती है ॥१८ ॥

[काण्ड १० के १०.७ मन्त्र में वशा के ऊध और स्तन पर्जन्य तथा विद्युत् कहे गये हैं । जो यह रहस्य नहीं जानते तथा उत्पादक द्रव्यों की आहुतियाँ ब्रह्मकर्म-यज्ञ में देते हैं, उन्हें वशा का पय मिलता है ।]

३४९६. दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति ॥१९ ॥

जो याचना किये जाने पर भी ब्राह्मणों को नहीं देते, उनके घर में यह गौ दुर्दम्य (नियन्त्रणरहित) होकर वास करती है । जो इसे न देकर अपने पास ही रखना चाहते हैं , उनके अभीष्ट पूर्ण नहीं होते ॥१९ ॥

[जो प्रतिभा या विद्या, ब्रह्मनिष्ठों के नियन्त्रण में नहीं दी जाती, वह बागी होकर अनर्थ खड़े करती है ।]

३४९७. देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् । तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥२० ।

ब्राह्मण का रूप धारण करके, देव-शक्तियाँ ही वशा की याचना करती हैं । अतः दानस्वरूप गौओं को न देने वाले मनुष्य देवों के कोपभाजन बनते हैं ॥२० ॥

३४९८. हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम् । देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते

देवताओं की सुरक्षित निधि रूप में रखे गये भाग (वशा) को जो मनुष्य अपना प्रिय मानकर ब्राह्मणों को दान स्वरूप नहीं देता, तो उसे पशुओं का भी कोप भाजन बनना पड़ता है ॥२१ ॥

३४९९. यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥२२ ॥

गोपति के पास सैकड़ों अन्य ब्राह्मण भी यदि वशा की याचना करें, तो भी वशा विद्वान् की होती है, ऐसा देवों का कथन है ॥२२ ॥

[ब्रह्मनिष्ठों में भी जो विद्वान्-अनुभवी- कुशल हों- उन्हें सृजन विद्या के उपयोग का अधिकार सौंपना चाहिए ।]

३५००. य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥२३ ॥

जो मनुष्य इस प्रकार विद्वान् को गौ न देकर; दूसरे अपात्र को गोदान करता है, उसके लिए उसके स्थान में समस्त देवों के साथ-साथ पृथ्वी भी कष्टदायी हो जाती है ॥२३ ॥

३५०१. देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत । तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥२४।

जिसके यहाँ वशा का जन्म होता है, उससे देवता गौ की माँग करते हैं । नारद ने यह जान लिया कि देवों को इसका दान दिये जाने से (गौ और देवताओं) सबकी प्रगति होती है ॥२४ ॥

[यह भाव गीता के उस भाव के अनुरूप है कि यज्ञ से देवों को तृप्त करो, देवता तुम्हें उत्कर्ष देंगे ।]

३५०२. अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥२५ ॥

ब्राह्मणों द्वारा माँग किये जाने पर भी, जो वशा (गाय) को अपना प्रिय मानकर अपने पास रखता है, वह वशा उस मनुष्य को सन्तति के सौभाग्य से रहित और पशुधन से भी क्षीण करती है । ।२५ ॥

३५०३. अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥२६ ॥

ब्राह्मण लोग अग्नि, सोम, मित्र, वरुण और काम आदि देवों के निमित्त वशा की याचना करते हैं, अपने लिए नहीं, इसलिए यह दान न किये जाने पर मनुष्य उन देवों को ही अपमानित करता है ॥२६ ॥

[ब्राह्मण- ऋषि स्तर के व्यक्ति, लोगों की प्रतिभा एवं विद्या को देव कार्यों में प्रयुक्त करने के लिए ही माँगते हैं। उनको न देना देवकर्मों में अपनी साझेदारी से इन्कार कर देने जैसा ही है।]

३५०४. यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम्।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥२७॥

जब तक गोपति (इन्द्रियों का स्वामी) स्वयं ऋचाएँ नहीं सुनता, तब तक उसकी गौओं (इन्द्रियों) के बीच वशा (प्रतिभा या विद्या) विचरण करती रहे, परन्तु ऋचा सुनने (ज्ञान होने) के बाद उसे दानस्वरूप दे देना चाहिए ॥२७॥

३५०५. यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत्।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥२८॥

जो गोपालक मन्त्रघोष सुनकर भी अपनी गौओं के बीच दानस्वरूप दी जाने वाली गौ को चराता है, देवगण उसके ऊपर क्रोधित होकर उसकी आयु और सम्पदा को विनष्ट कर देते हैं ॥२८॥

३५०६. वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥२९॥

वशा अनेक स्थानों में विचरणशील होती हुई देवों की सुरक्षित निधिस्वरूपा ही है। जब वह अपने स्थान पर जाने की इच्छुक होती है, तो विभिन्न प्रकार के रूपों को प्रकट करती है ॥२९॥

३५०७. आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याञ्च्याय कृणुते मनः ॥३०॥

जब वशा अपने निवास स्थान पर जाने की इच्छुक होती है, तब वह अपने मनोभावों को प्रदर्शित करती है। ब्राह्मणों द्वारा याचना के लिए वह गौ अपने मन में संकल्पित होती है ॥३०॥

[जब विद्या या प्रतिभा जाग्रत् होती है, तो अन्दर से उसके ब्रह्मनिष्ठ-श्रेष्ठ उपयोग के भाव उठते हैं। यही वशा का अपना संकल्प होता है।]

३५०८. मनसा सं कल्पयति तद् देवाँ अपि गच्छति।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥३१॥

उस वशा (गाय) के मानसिक संकल्प किये जाने पर वे संकल्प देवों तक पहुँचते हैं। इसके बाद ही ब्राह्मण लोग गौ की याचना के लिए आगमन करते हैं ॥३१॥

[यह एक सूक्ष्म चक्र है। भावना से देवशक्तियों का सम्पर्क होता है और उसी आधार पर प्रतिभा के सदुपयोग का ताना- बाना बुना जाता है।]

३५०९. स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः। दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति।

स्वधारूप तर्पण कृत्य से पितरों की तृप्ति तथा यज्ञ और वशादान से देवों की संतुष्टि हो जाने पर क्षत्रिय गाय की माता (जन्मदात्री) का कोपभाजन नहीं बनता ॥३२॥

[अथर्व० १०.१०.१८ में भी वशा को क्षत्रियों की माता कहा गया है। क्षत्रिय धर्मी-प्रशासन कर्मियों को चाहिए कि वशा-प्रतिभा-विद्या के प्रति माँ का भाव रखें तथा उसे सत्पात्रों द्वारा ही प्रयुक्त होने दें।]

३५१०. वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः।
तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥३३॥

वशा (गाय) को क्षत्रियों की माता कहा गया है । जो वशा को ब्राह्मणों के लिए दानस्वरूप प्रदान करते हैं, वस्तुतः वह उनका दान नहीं है; क्योंकि गौ तो ब्राह्मण की ही सुरक्षित निधि कही गयी है ॥३३ ॥

३५११. यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये ।

एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत् ॥३४ ॥

जिस प्रकार स्रुवा में लिया हुआ घी अग्नि को न समर्पित करना अपराध है, उसी प्रकार ब्राह्मणों को वशा (गाय) दानस्वरूप न देने वाले को अपराधी माना जाता है ॥३४ ॥

३५१२. पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।

सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ॥३५ ॥

पुरोडाशरूपी वत्स से उत्तम दूध देने (दुहाने) वाली वशा; इस लोक में इस दानी यजमान के समीप ही रहती है, वह गौ इस दाता की समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करती है ॥३५ ॥

[बछड़े के स्नेह से गाय के थन भर आते हैं और गोपति को दूध मिलता है, इसी प्रकार पुरोडाश आदि (पोषक पदार्थों) के हवन से प्रकृति स्थित वशा तृप्त होकर, याजकों के लिए कामधेनु की तरह फलवती होती है ।]

३५१३. सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।

अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥३६ ॥

वशा दान करने वाले दाता की सम्पूर्ण कामनाएँ यम (अनुशासन) के राज्य में पूर्ण होती हैं; परंतु याचना करने पर भी दान न देने वाले को नरकलोक की प्राप्ति होती है, ऐसा विद्वज्जनों का अभिमत है ॥३६ ॥

३५१४. प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा । वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम्

सृजनशील वशा (प्रतिभा), गोपति (इन्द्रियों के स्वामी अविवेकी व्यक्ति) के लिए क्रोधित होकर विचरण करती है । वह अभिशाप देती है कि मुझे वन्ध्या (अनुत्पादक) स्थिति में रखने वाला मृत्युपाश से आबद्ध हो ॥३७ ॥

३५१५. यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् । अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः

जो वशा गौ को गर्भपातिनी (वन्ध्या) मानकर उसे अपने घर में पकाता है, बृहस्पति (विद्या के अधिष्ठाता) देव उसके पुत्र और पौत्रों से भिक्षा मँगवाते हैं ॥३८ ॥

[लोकहित के लिए देव शक्तियों द्वारा विकसित विद्या या प्रतिभा को जो घर में ही परिपक्व करके स्वार्थ में प्रयुक्त करना चाहते हैं, उनकी संतति की मति भ्रष्ट हो जाती है ।]

३५१६. महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि । अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥३९

यह गौ (वशा) गौओं (इन्द्रियों) के बीच चरती हुई भी अत्यधिक सन्ताप देती है, मानो दान न देने वाले गोरक्षक के लिए यह दूधरूपी विष देती है ॥३९ ॥

[प्रतिभा से इन्द्रिय सुख अर्जित करने वालों की इन्द्रियाँ विलासी होकर क्षीण होती जाती हैं । उनके लिए दूध भी विष बन जाता है ।]

३५१७. प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।

अथो वशायास्तत् प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात् ॥४० ॥

जो वशा ब्राह्मणों को दानस्वरूप दी जाती है, वह शेष पशुओं के लिए भी कल्याणकारक होती है । इसलिए वशा को देवताओं के लिए दी गई आहुति ही प्रिय है ॥४० ॥

३५१८. या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।

तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥४१ ॥

जिस समय वशा को देवों ने यज्ञ से बनाया (संकल्पित किया), उसी समय अधिक घृतवती और विशालकाय वशा को नारद ने अनुभव (स्वीकार) किया ॥४१ ॥

३५१९. तां देवा अमीमांसन्त वशेया३मवशेति ।

तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥४२ ॥

उस सम्बन्ध में देवों ने विचार विनिमय किया कि यह गौ स्वामी के वश में रहने योग्य नहीं है । तब नारद ने वशा को शेष गौओं की अपेक्षा सहज नियन्त्रित रहने वाली कहा ॥४२ ॥

३५२०. कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।

तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ॥४३ ॥

हे ऋषि नारद !मनुष्यों के यहाँ उत्पन्न होने वाली ऐसी कितनी गौएँ हैं, जिनके सम्बंध में आपको ज्ञान है ? आप विद्वान् पुरुष हैं, अतः हम आपसे पूछना चाहते हैं कि जो ब्राह्मण से भिन्न है, वह किसका सेवन न करे ? ॥४३ ॥

३५२१. विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।

तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥४४ ॥

(नारद का उत्तर) हे बृहस्पते ! ऐश्वर्य की कामना करने वाला वह व्यक्ति अब्राह्मण विलिप्ती (विशिष्ट प्रयोजनों में लिप्त), सूतवशा (प्रेरक वशा) तथा वशा (वशा के इन तीनों स्वरूपों) का सेवन न करे ॥४४ ॥

[अथर्व० १०.१०.३० में भी वशा के तीन रूप दिये हैं, उसे द्युलोक, पृथ्वी तथा विष्णु-प्रजापति कहा गया है । पृथ्वी में वशा का विलिप्तीरूप है, विष्णु-प्रजापति में प्रेरक सूतवशा है तथा द्युलोक में वशा (सर्ववशा) है । इन तीनों ही रूपों में यह केवल ब्रह्मनिष्ठों-परमार्थ परायणों के लिए ही फलित होती है ।]

३५२२. नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा । कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥

हे ऋषि नारद ! आपके लिए वन्दन है । यह वशा (गाय) विद्वान् पुरुष की प्रार्थना के अनुकूल ही है, परन्तु इन गौओं में कौन सी अतिभयंकर है, जिसे दानस्वरूप न देने पर पराभव होता है ॥४५ ॥

३५२३. विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।

तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥४६ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! जो ब्राह्मण से भिन्न हैं, वे यदि ऐश्वर्य समृद्धि की कामना करते हैं, तो वे विलिप्ती, सूतवशा, सर्ववशा, इन तीनों प्रकार की गौओं के सेवन से बचाव करें ॥४६ ॥

३५२४. त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।

ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः सो ऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥४७ ॥

विलिप्ती, सूतवशा और वशा ये गौओं की तीन श्रेणियाँ (प्रजातियाँ) हैं, इन्हें जो ब्राह्मणों को दानस्वरूप देते हैं, वे प्रजापति के क्षोभ से सुरक्षित रहते हैं ॥४७ ॥

३५२५. एतद् वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।

वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥४८ ॥

"हे ब्रह्म ज्ञानियो ! यह (वशा) आपकी हवि (आपके लिए समर्पित) है ।" ब्राह्मण द्वारा याचना किये जाने पर गोपति ऐसा उच्चारित करे । अदानी के घर में वशा अत्यंत भयंकर हो जाती है ॥४८ ॥

३५२६. देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद् वै स पराभवत् ॥४९ ॥

क्रोधित देवों ने, वशा से कहा, "इसने दान नहीं दिया, ऋचाओं (प्रदत्तज्ञान) में भेद उत्पन्न किया", इसलिए इसका पराभव हुआ ॥४९ ॥

३५२७. उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥५० ॥

इन्द्रदेव द्वारा वशा की याचना करने पर भी जो नहीं देता, उसके राज्य में भेद उत्पन्न होता है । उसके पाप के दण्डस्वरूप देवता उसे अहंकार के घेरे में डालकर विनष्ट करते हैं ॥५० ॥

३५२८. ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥५१ ॥

जो लोग, गोपति को (मर्यादा से) परे हटाकर 'मत दो' ऐसी सलाह देते हैं, वे दुर्बुद्धि के कारण इन्द्रदेव के कोप द्वारा विनष्ट होते हैं ॥५१ ॥

३५२९. ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥५२ ॥

जो गो-रक्षक के पास जाकर कहते हैं कि दानरूप में गौ को न दें, वे अपनी कुमति के कारण रुद्रदेव के फेंके हुए शस्त्र से विनष्ट होते हैं ॥५२ ॥

३५३०. यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वशाम् ।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ॥५३ ॥

हुत (यज्ञाहुतिरूप या दान में दी गयी) या अहुत (न दी गयी) वशा (विद्या अथवा प्रतिभा) को यदि (कोई व्यक्ति) अपने घर में (सीमित स्वार्थ के लिए) परिपक्व करता है, तो वह कुटिल होकर ब्राह्मणों और देवों का अपराधी बनकर लोकों (श्रेष्ठ लोकों या स्तरों) से पतित हो जाता है ॥५३ ॥

[५ - ब्रह्मगवी सूक्त]

[ऋषि- अथर्वाचार्य । देवता- ब्रह्मगवी । छन्द- १ प्राजापत्या अनुष्टुप्, २ भुरिक् साम्नी अनुष्टुप्, ३ चतुष्पदा स्वराट् उष्णिक्, ४ आसुर्यनुष्टुप्, ५ साम्नी पंक्ति, ६ साम्नी उष्णिक्]

आगे के सूक्तों ५-११ की देवता ब्रह्मगवी है । ब्राह्मण की कामधेनु उसकी तपःशक्ति या वाक्शक्ति कही गई है । ऐसे ही किसी संदर्भ से मन्त्रार्थ फलित होते हैं-

३५३१. श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता ॥१ ॥

तपश्चर्या द्वारा उत्पन्न की गई सत्य में आश्रययुक्त यह (ब्रह्मगवी) ब्राह्मण द्वारा जानी या पायी जाने वाली है ॥

३५३२. सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥२ ॥

यह सत्य से अच्छादित, श्री- सम्पदा से परिपूर्ण और यशस्विता से चारों ओर से घिरी (सम्पन्न) रहती है ॥२ ॥

३५३३. स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥३ ।

यह अपनी धारणा शक्ति से सुरक्षित हुई, श्रद्धा भावना से सम्पन्न, दीक्षाव्रत से संरक्षित और यज्ञ में प्रतिष्ठित रहती है, (ब्राह्मणेतर) क्षत्रिय (आदि) का इसकी ओर देखना (पानेकी लालसा करना) मृत्यु है ॥३ ॥

३५३४. ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ॥४ ॥

इस गौ के द्वारा ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है, ब्राह्मण ही इस गौ का स्वामी है ॥४ ॥

३५३५. तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥५ ॥

३५३६. अप क्रामति सूनृता वीर्य१ पुण्या लक्ष्मीः ॥६ ॥

ब्राह्मण की गौ के अपहरणकर्त्ता और ब्रह्मज्ञानी को व्यथा पहुँचाने वाले क्षत्रिय की लक्ष्मी, वीर्य और प्रिय मधुर वाणी साथ छोड़ देती है ॥५-६ ॥

[६ - ब्रह्मगवी सूक्त]

[ऋषि- अथर्वाचार्य । देवता- ब्रह्मगवी । छन्द- साम्नी त्रिष्टुप्, २ भुरिक् आर्ची एकपदा अनुष्टुप्, ३ आर्ची एकपदा अनुष्टुप्, ४ उष्णिक् (एकपदा), ५ आर्ची निचृत् पंक्ति ।]

३५३७. ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥१ ॥

३५३८. ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥२ ॥

३५३९. आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥३ ॥

३५४०. पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥४ ॥

३५४१. तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥५ ॥

ओज, तेज, शत्रुओं को दबाने की सामर्थ्य, बल, वाणी, इन्द्रिय शक्ति, लक्ष्मी, धर्म, वेद, शौर्यशक्ति, राष्ट्र, प्रजाजन, तेज, यश, पराक्रम, धन, आयुष्य, रूप, नाम, यशस्विता, प्राण, अपान, आँखें, कान, दूध, रस, अन्न को पचाने की अग्नि (ऊर्जा), ऋत, सत्य, वेद विहित याग आदि इष्ट पूर्त (स्मृति विहित कूप तटाक आदि) प्रजा और पशु । उपर्युक्त ये सभी (चौंतीस) पदार्थ ब्राह्मण की गौ को छीनने वाले और संहार करने वाले क्षत्रिय को छोड़ देते हैं ॥

[७ - ब्रह्मगवी सूक्त]

[ऋषि- अथर्वाचार्य । देवता- ब्रह्मगवी । छन्द- १ विराट् विषमा गायत्री, २ आसुर्यनुष्टुप्, ३, १५ साम्नी उष्णिक्, ४ गायत्री, ५-६, ८-९ प्राजापत्यानुष्टुप्, ७ याजुषी जगती, १०, १४ साम्नी अनुष्टुप्, ११ साम्नी बृहती, १२ याजुषी त्रिष्टुप्, १३ आसुरी गायत्री, १६ आर्ची उष्णिक् ।]

३५४२. सैषा भीमा ब्रह्मगव्य१घविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ॥१ ॥

यह ब्रह्मगवी भयानक, विषैली, प्रत्यक्ष आघात करने वाली तथा संहारक कृत्यास्वरूप हो जाती है ॥१ ॥

३५४३. सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥२ ॥

इस गौ में सभी प्रकार की भयंकरता और मृत्यु की सभी सम्भावनाएँ समाविष्ट हैं ॥२ ॥

३५४४. सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥३ ॥

इसमें सभी क्रूरतापूर्ण कृत्य और सभी पुरुषों के वध विद्यमान हैं ॥३ ॥

३५४५. सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्या दीयमाना मृत्योः पड्वीश आ द्यति ॥४ ॥

ब्राह्मण से छीनी गई यह ब्रह्मगवी, ब्रह्मघाती और देवताओं के शत्रु को मृत्यु के पाश में बाँध देती है ॥४ ॥

३५४६. मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥५ ॥

ब्राह्मण की आयु का ह्रास करने वालों के लिए, क्षयकारी यह गौ सैकड़ों प्रकार से संहार करने वाली (अस्त्र) हो जाती है ॥५ ॥

३५४७. तस्माद् वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥६ ॥

इसलिए ज्ञानी मनुष्यों को समझना चाहिए कि ब्राह्मण की गौ दबाने योग्य नहीं है ॥६ ॥

३५४८. वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥७ ॥

जब वह दौड़ती है, तब वज्र के समान बन जाती है और जब उठती है, तो आग के समान ऊपर को गमन करती है ॥७ ॥

३५४९. हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवो३पेक्षमाणा ॥८ ॥

वह खुरों को पटकती हुई हथियार के समान और दृष्टि डालती हुई संहारकदेव रुद्र के समान होती है ॥८ ॥

३५५०. क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥९ ॥

वह देखती हुई छुरे की धार के समान तीक्ष्ण वज्ररूप होती है और शब्द करने पर गरजती प्रतीत होती है ॥९ ॥

३५५१. मृत्युर्हिङ्कृण्वत्यु१ग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥१० ॥

हिंकार शब्द करती हुई मृत्युरूप और पूँछ को चारों ओर घुमाती हुई उग्रदेव स्वरूप भयानक होती है ॥१० ॥

३५५२. सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥११ ॥

वह कानों को हिलाती हुई, सब प्रकार की आयु को क्षीण करने वाली और मूत्र विसर्जन क्रिया के साथ क्षय रोग विस्तारित करने वाली बनती है ॥११ ॥

३५५३. मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥१२ ॥

दुही जाती हुई यह गौ मारक शस्त्ररूप होती है और दुही जाने के बाद सिर वेदना स्वरूपा होती है ॥१२ ॥

३५५४. सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥१३ ॥

समीप खड़ी होने पर संहारक और स्पर्श करने पर द्वन्द्व - संग्राम करने वाले वैरी के समान होती है ॥१३ ॥

३५५५. शरव्या३ मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥१४ ॥

मुँह में बाँधी जाने पर बाणों के समान और ताड़ित किए जाने पर महाविनाशकारिणी होती है ॥१४ ॥

३५५६. अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥१५ ॥

बैठती हुई भयानक विषरूपा और बैठी होने पर साक्षात् मृत्युरूप अन्धकार के तुल्य होती है ॥१५ ॥

३५५७. अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥१६ ॥

इस प्रकार की यह ब्रह्मगवी (ब्राह्मण की गाय) ब्राह्मण को नुकसान पहुँचाने वाले का अनुगमन करती हुई, उसके प्राणों का संहार करती है ॥१६ ॥

[८ - ब्रह्मगवी सूक्त]

[ऋषि- अथर्वाचार्य । देवता- ब्रह्मगवी । छन्द- १ आसुरी गायत्री, २,१० आसुरी अनुष्टुप्, ३ साम्नी अनुष्टुप्, ४ याजुषी त्रिष्टुप्, ५साम्नी गायत्री, ६-७ साम्नी बृहती, ८ भुरिक् साम्नी अनुष्टुप्, ९ साम्नी उष्णिक्, ११ प्रतिष्ठा गायत्री ।]

३५५८. वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥१ ॥

ब्राह्मण से छीनी हुई इस गौ को काट देने पर पुत्र-पौत्रादि का विभाजन करा देती है ॥२ ॥

३५५९. देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ॥२ ॥

चुराई जाते समय यह देवों का अस्त्र और हरण होने के बाद विपत्तिरूपा होती है ॥२ । ।

३५६०. पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥३ ॥

अधीन रखने पर पापरूपा और तिरस्कृत होने पर कठोरतामयी बनती है ॥३ ॥

३५६१. विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥४ ॥

कष्टमयी होने पर विषरूपा और सताये जाने पर तक्मा (ज्वर) के समान होती है ॥४ ॥

३५६२. अघं पच्यमाना दुष्वप्न्यं पक्वा ॥५ ॥

पकाये जाते समय पापरूपा और पक जाने के बाद दुष्ट (बुरे) स्वप्न के समान दुःखदायी होती है ॥५ ॥

३५६३. मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥६ ॥

यह ब्रह्मगवी घुमायी जाने पर मूल को उखाड़ने वाली और परोसी जाने पर विनाशकारिणी होती है ॥६ ॥

३५६४. असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ॥७ ॥

गन्ध द्वारा मूर्च्छित करने वाली, उठाई जाने पर शोकप्रदा और उठाई न जाने पर साँप के समान होती है ॥७ ॥

३५६५. अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥८ ॥

पास में ली गई वह विपत्ति स्वरूपा और समीप रखी हुई पराभवकारी होती है ॥८ । ।

३५६६. शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥९ ॥

वह पीसी जाती हुई क्रोधित रुद्रदेव के समान और पिसी हुई (पीसे जाने के बाद) सुखनाशक होती है ॥९ ॥

३५६७. अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥१० ॥

वह खाई जाती हुई दरिद्ररूपा और भक्षण किये जाने पर दुर्गतिकारिणी पापदेवी निर्ऋति के समान है ॥१० ॥

३५६८. अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥११ ॥

प्राशन की गई ब्राह्मण की गौ ब्रह्मघाती को इस लोक और परलोक दोनों से ही पृथक् कर देती है ॥११ ॥

[९ - ब्रह्मगवी सूक्त]

[ऋषि- अथर्वाचार्य । देवता- ब्रह्मगवी । छन्द- १ साम्नी पंक्ति, २ याजुषी अनुष्टुप्, ३, ८ भुरिक् साम्नी अनुष्टुप्, ४ आसुरी बृहती, ५ साम्नी बृहती, ६ पिपीलिकमध्या अनुष्टुप्, ७ आर्ची बृहती ।]

३५६९. तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥१ ॥

उसका आहनन (ले जाना-संहार करना) कृत्या के समान, आशसन (काटना) आयुध के समान तथा अर्धपक्व गोबर मिला चारा विनाशकारी होता है ॥१ ॥

३५७०. अस्वगता परिहृणुता ॥२ ॥

अपहरण की गई धेनु अपने नियंत्रण में नहीं रहती अर्थात् घातक होती है ॥२ ॥

३५७१. अग्निः क्रव्याद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥३ ॥

ब्रह्मगवी क्रव्याद् (मांस भक्षक) अग्नि बनकर ब्रह्मघाती में प्रविष्ट होकर उसका भक्षण कर डालती है ॥३ ॥

३५७२. सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥४ ॥

इसके (उत्पीड़क के) सभी अंग-प्रत्यंगों और जोड़ों को काट डालती है ॥४ ॥

३५७३. छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥५ ॥

इस (उत्पीड़क) के पिता से सम्बंधित बंधुओं का छेदन और मातृपक्ष के बन्धुओं को पराभूत करती है ॥५ ॥

३५७४. विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥६॥

क्षत्रिय द्वारा वापस न की गई ब्रह्मगवी ब्रह्मघाती क्षत्रिय के सभी विवाहित और सजातीय बन्धुओं को नष्ट कर देती है ॥६ ॥

३५७५. अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥७ ॥

वह इसे निवासरहित, परतन्त्र और सन्ततिहीन कर देती है, जिससे यह (ब्रह्मघाती) सहायता से विहीन होकर विनाश को प्राप्त होता है ॥७ ॥

३५७६. य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥८ ॥

जो क्षत्रिय ज्ञानी ब्राह्मण की इस गौ को अपहृत करता है (उसकी यही दुर्दशा होती है) ॥८ ॥

[१० - ब्रह्मगवी सूक्त]

[**ऋषि**- अथर्वाचार्य । **देवता**- ब्रह्मगवी । **छन्द**- प्राजापत्या अनुष्टुप्, २ आर्षी अनुष्टुप्, ४ साम्नी बृहती, ८-९ प्राजापत्या उष्णिक्, १० आसुरी गायत्री, १४ गायत्री ।]

३५७७. क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥१ ॥

उस (ब्रह्मघाती) दुष्ट के निधन होने पर गीध शीघ्र ही कोलाहल मचाते हैं ॥१ ॥

३५७८. क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः
पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलबम् ॥२ ॥

केशों को बिखेरकर स्त्रियाँ शीघ्र ही उस (दुष्ट) को भस्मीभूत करने वाली चिता के समीप चक्कर काटती हैं और हाथों से वक्षस्थल को पीटती हुई अश्रुपात करती हैं ॥२ ॥

३५७९. क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ॥३ ॥

उनके घरों में शीघ्र ही भेड़िये अपने नेत्र घुमाने (शब्द करने) लगते हैं ॥३ ॥

३५८०. क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत् तदासी३दिदं नु ता३दिति ॥४ ॥

शीघ्र ही उसके सम्बन्ध में पुरुष लोग पूछते हैं कि उसका जो स्वरूप था, क्या यह वही है ॥४ ॥

३५८१. छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥५ ॥

हे ब्रह्मगवी ! आप इस अपहरणकर्त्ता को काट डालें और टुकड़े-टुकड़े कर डालें । आप इसका समूल नाश करें ॥५ ॥

३५८२. आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥६ ॥

हे आङ्गिरसि (अङ्गिरस् की शक्ति) ! आप ब्राह्मण की धेनु के अपहरणकर्त्ता (ब्रह्मज्य) का संहार करें ॥६ ॥

३५८३. वैश्वदेवी ह्यु१च्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥७ ॥

(हे ब्रह्मगवि !) आप समस्त देवों की संहारकशक्ति (कृत्या) विनाशकशक्ति (कूल्बज) हैं, ऐसा आपके सम्बन्ध में कहा गया है ॥७ ॥

३५८४. ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥८ ॥

आप मन्त्ररूपी वज्रास्त्र से भस्मीभूत करने वाली तथा भली प्रकार भस्म करने वाली शक्ति हैं ॥८ ॥

३५८५. क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥९ ॥

आप छुरे के समान तीक्ष्ण बनकर तथा उसकी मृत्युरूपा बनकर प्रहार करें ॥९ ॥

३५८६. आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥१० ॥

आप अपहरणकर्त्ता से तेजस्विता, अभीष्टों की पूर्णता और सभी आशीषों को छीन लेती हैं ॥१० ॥

३५८७. आदाय जीतं जीताय लोके३ऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ॥११ ॥

उस ब्रह्मघाती को अल्पायु करने के लिए आप पकड़कर परलोक की ओर भेजती हैं ॥११ ॥

३५८८. अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥१२ ॥

हे अघ्न्ये (वधरहित गौ) ! आप ब्राह्मण के अभिशाप से ब्रह्मघाती के लिए पैरों की बेड़ीरूपा हैं ॥१२ ॥

३५८९. मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥१३ ॥

आप अस्त्ररूप बाणों के समूह को प्राप्त करती हुई, उसके पापों के कारण अघविषा (पापरूपा) बनें ॥१३ ॥

३५९०. अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥१४ ॥

हे अघ्न्ये (वधरहित गौ) ! आप उस ब्रह्मघाती, पापी, देवविरोधी, दानविहीन अपराधी का सिर काट लें ॥१४

३५९१. त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥१५ ॥

आपके द्वारा मारे गये नष्ट-भ्रष्ट हुए दुर्बुद्धिग्रस्त शत्रु को अग्निदेव भस्मीभूत करें ॥१५ ॥

[११- ब्रह्मगवी सूक्त]

[ऋषि- अथर्वाचार्य । देवता- ब्रह्मगवी । छन्द- प्राजापत्या अनुष्टुप्, ४ गायत्री, ६ प्राजापत्या गायत्री, १० आसुरी पंक्ति, ११ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, १२ आसुरी उष्णिक् ।]

३५९२. वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥१ ॥

हे अघ्न्ये ! आप ब्रह्मघाती को काटें, अत्यधिक काटें, भली प्रकार काटें । जलाएँ, अधिक जलाएँ, भली प्रकार जलाएँ ॥१ ॥

३५९३. ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह ॥२ ॥

हे वधरहित दिव्यस्वरूपा गौ ! आप ब्राह्मण के प्रति हिंसक भाव रखने वाले को समूल भस्म कर डालें ॥२ ॥

३५९४. यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥३ ॥

३५९५. एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥४ ॥

३५९६. वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥५ ॥

३५९७. प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥६ ॥

हे वधरहित गौ ! आप पापकर्मी, देवविरोधी, कर्त्तव्यपूर्ति में विघ्नकारी, ब्रह्मघाती के सिर और कन्धों को सैंकड़ों नोंकवाले छुरे के समान धाराओं से युक्त तीक्ष्ण वज्रास्त्र से विच्छिन्न करें, जिससे यह यमगृह से अतिदूर के पापलोकों को प्राप्त करे ॥३-६ ॥

३५९८. लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥७ ॥

(हे ब्रह्मगवी !) इसके लोमों को काट डालें, इसकी त्वचा को उधेड़ें ॥७ ॥

३५९९. मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥८ ॥

(हे ब्रह्मगवी !) इसके मांस को काट डालें और इसके स्नायु संस्थान को फुलाएँ (कुचलें) ॥८ ॥

३६००. अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥९ ॥

(हे ब्रह्मगवी !) इसकी अस्थियों को पीड़ित करें और इसकी मज्जा को क्षीण (विनष्ट) करें ॥९ ॥

३६०१. सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥१० ॥

(हे ब्रह्मगवी !) इसके सभी अंग-अवयवों और पर्वों (जोड़ों) को पृथक् (ढीला) करें ॥१० ॥

३६०२. अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ॥११ ॥

क्रव्याद् (मांस भक्षक) अग्नि इसे भस्मीभूत करे और वायुदेव इसे अन्तरिक्ष और पृथ्वी से बाहर खदेड़ दें ॥११ ॥

३६०३. सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥१२ ॥

सूर्यदेव इसे द्युलोक से बाहर करके भस्मीभूत कर डालें ॥१२ ॥

॥इति द्वादशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ त्रयोदशं काण्डम् ॥

[१- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त]

[ऋषि - ब्रह्मा । देवता- १- २ , ४-२७, ३२-६० अध्यात्म, रोहितादित्य, ३ मरुद्गण, २८-३० अग्नि, ३१ अग्नि, मन्त्रोक्त । छन्द- त्रिष्टुप्, ३-५, ९, १२ जगती, ८ भुरिक् त्रिष्टुप्, १३ अतिशाक्वरगर्भा अतिजगती, १४ त्रिपदा पुरःपरशाक्वरा विपरीतपादलक्ष्मा पंक्ति, १५ अतिजागतगर्भा जगती, १६, २९-३०, ३२, ३९-४०, ४५-५१,५३-५४ अनुष्टुप्, १७ पञ्चपदा ककुम्मती जगती, १८ पञ्चपदा परशाक्वरा भुरिक् ककुम्मती अतिजगती, १९ पञ्चपदा परातिजागता ककुम्मती अतिजगती, २१ आर्षी निचृत् गायत्री, २६ विराट् परोष्णिक्, २८ भुरिक् अनुष्टुप् ,३१ पञ्चपदा ककुम्मती शाक्वरगर्भा जगती, ३५ उपरिष्टाद् बृहती, ३६ निचृद् महाबृहती, ३७ परशाक्वरा विराट् अतिजगती, ४२ विराट् जगती, ४३ विराट् महाबृहती, ४४ परोष्णिक् , ५२ पथ्यापंक्ति, ५५ ककुम्मती बृहतीगर्भा पथ्यापंक्ति, ५७ ककुम्मती अनुष्टुप्, ५९-६० गायत्री ।]

३६०४. उदेहि वाजिन् यो अप्स्व१न्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥१ ॥

हे गतिमान् सूर्यदेव ! अप् (तेजस्वी धाराओं) के बीच से उदित होकर, आप प्रिय सत्यनिष्ठा से युक्त राष्ट्र (ज्योतिरूप) में प्रविष्ट हों । हे राष्ट्राधिपते ! जिस (देव) ने इस (विश्व) को प्रकट किया है, वह आपको राष्ट्र के उत्तम रीति से भरण-पोषण में भी सक्षम बनाए ॥१ ॥

३६०५. उद्वाज आ गन् यो अप्स्व१न्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः ।
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥२ ॥

हे सूर्यदेव ! आप ऊपर उठें । अप् धाराओं में निवास करने वाली प्रजा और अन्न में आप उच्च स्थान प्राप्त करें । सोम आदि वनस्पतियों को पुष्ट करते हुए जल, ओषधियों, द्विपादों (मनुष्यों) , चतुष्पादों (गौआदि पशुओं) को अपने राष्ट्र में प्रतिष्ठित कराएँ ॥२ ॥

३६०६. यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥३ ॥

हे मरुद्गण ! आप महान् पराक्रमी और पृथ्वी के प्रति मातृवत् व्यवहार करने वाले हैं । आप इन्द्रदेव के सहयोग से दुष्ट रिपुओं का संहार करें । हे श्रेष्ठ दानी मरुद्गणो ! आप स्वादिष्ट पदार्थों से प्रसन्न होते हैं । सूर्यदेव आपकी बात को सुनें ॥३ ॥

३६०७. रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम् ।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥४ ॥

सूर्यदेव उदित होकर ऊपर चढ़ रहे हैं, वे उत्पादन क्षमता से युक्त (प्रकृति) माता के अंक में गर्भरूप होकर बैठ गये हैं । छः दिशाओं ने उन (सूर्यदेव) के द्वारा बढ़ाये गर्भ को धारण किया है । वे उन्नति के मार्ग को जानते हुए राष्ट्र को भी उन्नत करते हैं ॥४ ॥

३६१५. सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः ।
मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि ॥१२ ॥

(ज्वालारूपी) हजारों शृंगों से युक्त, अभीष्टवर्षक, घृताहुतियों द्वारा आहुत, सोम को पृष्ठभाग पर धारण करने वाले, श्रेष्ठ वीर सन्तानों को प्रदान करने वाले, सर्वज्ञ अग्निदेव कभी हमारा परित्याग न करें । हम भी कभी आपका आश्रय न छोड़ें । हे अग्ने ! आप हमें गाय आदि पशुओं के संरक्षण और वीर सन्तति के पालन में समर्थ बनाएँ ॥१२

३६१६. रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमानाः स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु ॥१३ ॥

सूर्यदेव यज्ञ के उत्पादनकर्त्ता और मुखरूप हैं । हम वाणी, कान और मन तीनों के सहयोग से सूर्य के लिए आहुति प्रदान करते हैं । सभी देवगण हार्दिक प्रसन्नता के साथ सूर्य को प्राप्त करते हैं । वे हमें सभा-समितियों द्वारा मानवीय प्रगति के शिखर पर चढ़ाएँ ॥१३ ॥

३६१७. रोहितो यज्ञं व्य दधाद् विश्वकर्मणे तस्मात् तेजांस्युप मेमान्यागुः ।
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥१४ ॥

सूर्यदेव ने सम्पूर्ण विश्व के सत्कर्मों के लिए यज्ञीय विज्ञान का पोषण किया । उसी यज्ञीय भावना से ये सभी तेजस्वी गुण हमारे समीप आ रहे हैं । इस सम्पूर्ण विश्व के मध्य, महत्त्व की दृष्टि से यही आप (सूर्यदेव) का प्रमुख भाग है, ऐसा हमारा कथन है ॥१४ ॥

३६१८. आ त्वा रुरोह बृहत्यु१त पङ्क्तिरा ककुब् वर्चसा जातवेदः ।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आ त्वा रुरोह रोहितो रेतसा सह ॥१५ ॥

हे सर्वज्ञ (जातवेदा) अग्निदेव ! बृहती, पंक्ति, ककुप् तथा उष्णिक् आदि सभी छन्द अपनी तेजस्विता सहित आप में प्रविष्ट हुए हैं । वषट्कार भी आपमें प्रविष्ट हुआ है । सूर्यदेव भी अपने तेज के साथ आपमें ही प्रविष्ट होते हैं ॥१५ ॥

३६१९. अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम् ।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्वर्लोकान् व्यानशे ॥१६ ॥

ये सूर्यदेव पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के भीतर विद्यमान हैं । ये (अग्नि) सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक (सूर्य) के शीर्षस्थल स्वर्गलोक में संव्याप्त होते हैं ॥१६ ॥

३६२०. वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्
पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ॥१७ ॥

हे वाचस्पते (वाणी के अधिपति) ! हमारे लिए भूमि, योनि गृह, शय्या आदि सभी पदार्थ सुखदायक हों । जीवन तत्त्व प्राण हमारे साथ मैत्री भावना करते हुए इसी लोक में दीर्घकाल तक रहें । हे परमात्मन् ! ये अग्निदेव हमें दीर्घायु और तेजस्विता के साथ उपलब्ध हों ॥१७ ॥

३६२१. वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः । इहैव प्राणः
सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥१८ ॥

हे वाचस्पतिदेव ! जो हमारे सम्पूर्ण कर्मों को साधने वाली पाँच ऋतुएँ उत्पन्न हुई हैं, हमारे प्राण उनमें सहयोग भावना रखते हुए यहीं स्थित रहें । हे प्रजापते ! ऐसे आपको सूर्यदेव आयु और तेज के साथ धारण करें ॥१८ ॥

३६२२. वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधाम ॥१९ ॥

हे वाचस्पति देव ! हम सभी के मन शुभ संकल्पों से युक्त हों, आप हमारी गोशाला में प्रचुर गौओं एवं घर में वीर संतानों को पैदा करें । प्राण हमारे साथ मैत्री भावना रखते हुए इसी लोक में रहें । हे प्रजापते ! ऐसे आपको हम दीर्घायु और तेजस्विता के साथ धारण करते हैं ॥१९ ॥

३६२३. परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥२० ॥

हे राष्ट्राधिपते ! सर्वप्रेरक सवितादेव आपको चारों ओर से परिपुष्ट करें । अग्नि, मित्र तथा वरुणदेव आपको चारों ओर से संरक्षित करें । आप सभी राष्ट्रद्रोही शत्रुओं पर चढ़ाई करते हुए आगे बढ़ें तथा इस राष्ट्र को प्रिय और सत्यवाणी से युक्त करें ॥२० ॥

३६२४. यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित । शुभा यासि रिणन्नपः ॥२१ ॥

हे सूर्यदेव ! आपको विविध रंगवाली घोड़ियाँ (किरणें) रथ में धारण करती हैं । आप पानी को गतिमान् करते हुए प्रकाश के साथ श्रेष्ठ रीति से चलते हैं ॥२१ ॥

३६२५. अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥२२ ॥

सबके उत्पादनकर्त्ता रोहित (सूर्य) की आज्ञानुसार चलने वाली उत्पत्ति शक्ति (प्रकृति) सूक्ष्म ज्ञानयुक्त और उत्तम वर्ण वाली, प्रचुर अन्नयुक्त (तेजस्विनी) रोहिणी है । उस (रोहिणी) के द्वारा हम सभी अन्न या बल पर विजय प्राप्त करें । उससे ही हम सभी सेनाओं (बाधाओं) को वश में करें ॥२२ ।

३६२६. इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति ।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥२३ ॥

सूर्य ही इस विलक्षण शक्ति (रोहिणी) का स्रोत है । यही वह मार्ग है, जिससे उसकी विविध वर्णों से युक्त किरणों की शक्ति गमन करती है । गन्धर्व और कश्यप उसे उन्नत करते हैं । ज्ञानवान् लोग विशिष्ट कौशल के साथ उसे संरक्षण देते हैं ॥२३ ॥

३६२७. सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥२४ ॥

प्रकाशमान, गतिशील और अमर अश्व (किरणें) सूर्य के रथ को चलाते हैं । इन पुष्टिप्रद किरणों से युक्त तेजस्वी सूर्यदेव विविध वर्णयुक्त प्रभा के साथ द्युलोक में प्रविष्ट होते हैं ॥२४ ॥

३६२८. यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव ।
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ॥२५ ॥

जो रोहितदेव तेजस्वी किरणों से युक्त अभीष्टवर्षक हैं, वे अग्नि और सूर्य के चारों ओर स्थित हैं । जो पृथ्वी और द्युलोक को स्थिरता प्रदान करते हैं, उनसे ही देवों ने सृष्टि की उत्पत्ति की है ॥२५ ॥

३६२९. रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात्। सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ॥२६ ॥

सूर्यदेव विशालसागर से द्युलोक के ऊपर चढ़ते हैं।ये ऊपर उठने वाली वस्तुओं पर आरोहण करते हैं।

३६३०. वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा।
इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व ॥२७ ॥

उत्तम दूध और घृत देने वाली देवों की गौओं का मान (पालन) करें। देवों की गौएँ हलचल नहीं करतीं। इन्द्रदेव सोमरस का पान करें, अग्निदेव कल्याण करें, (देवों की) स्तुति करें और शत्रुओं को खदेड़ दें ॥२७ ॥

३६३१. समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥२८ ॥

प्रज्वलित हुए अग्निदेव घृताहुतियों से भली प्रकार प्रवृद्ध हुए हैं। वे सभी ओर से शत्रुओं को दूर करके विजय प्राप्त करने वाले अग्निदेव हमारे सभी शत्रुओं को विनष्ट करें ॥२८ ॥

३६३२. हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥२९ ॥

इन सभी वैरियों को अग्निदेव भस्म कर डालें। जो शत्रु सैन्यशक्ति के साथ हमारे संहार के आकांक्षी हैं, क्रव्याद् (मांसभक्षक) अग्नि द्वारा हम उन शत्रुओं को भस्म करते हैं ॥२९ ॥

३६३३. अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान्।
अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥३० ॥

हे बाहुबल सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप वज्र से हमारे शत्रुओं को नीचे झुकाकर (पराभूत करके) विनष्ट करें। हे अग्निदेव ! आप अपनी तेजस्वी लपटों से हमारे शत्रुओं को भस्मीभूत करें ॥३० ॥

३६३४. अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥३१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे समक्ष शत्रुओं को पददलित करें, ऊपर को उठने वाले समान जातीय शत्रु को पीड़ित करें। हे इन्द्राग्नि, मित्रावरुण देवो ! जो शत्रु हमारे प्रतिकूल होकर क्रोध करें, वे पददलित हों ॥३१ ॥

३६३५. उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥३२ ॥

हे सूर्यदेव ! उदित होते हुए आप हमारे शत्रुओं (हमारे विकास में अवरोधक तत्त्वों) का संहार करें। इन्हें अपनी विनाशकारी शक्ति से विनष्ट करके, मृत्यु के घने अंधकार में फेंक दें ॥३२ ॥

३६३६. वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम्।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥३३ ॥

विराट् वत्स (बाल सूर्य) सद्बुद्धि के संवर्द्धक, सामर्थ्यशाली पृष्ठिभूमि वाले होकर अंतरिक्ष पर चढ़ते हैं। वे स्वयं ब्रह्म के स्वरूप हैं, साधक उन्हें ब्रह्म (मंत्रों-यज्ञों) द्वारा समृद्ध करते हैं ॥३३ ॥

३६३७. दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥३४ ॥

हे राष्ट्राध्यक्ष ! आप स्वर्ग, पृथ्वी, राष्ट्र, धन, प्रजा और अमरत्व पर अधिष्ठित रहें। सूर्य प्रकाश से अपने शारीरिक सम्बन्ध को संयुक्त करें ॥३४ ॥

३६३८. ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम्। तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥३५ ॥

राष्ट्र का भरण-पोषण करने वाली जो देवशक्तियाँ सूर्य के चारों ओर घूमती हैं, उनके साथ मतैक्य स्थापित करके रोहितदेव प्रसन्नतापूर्वक आपके राष्ट्र को धारण करें ॥३५ ॥

३६३९. उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति। तिरः समुद्रमति रोचसे ऽर्णवम् ॥३६ ॥

हे सूर्यदेव ! मन्त्रों द्वारा पुनीत हुए यज्ञकृत्य आपका वहन करते हैं और सुमार्ग से गमन करने वाले अश्व भी आपका वहन करते हैं। आप अपनी किरणों से महासागर को प्रकाशवान् करते हैं ॥३६ ॥

३६४०. रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति। सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥३७ ॥

धन, गौओं और ऐश्वर्य सम्पदा को उपलब्ध कराने वाले सूर्यदेव के अवलम्बन से द्युलोक और पृथ्वी स्थिर हैं, जिनसे सहस्र (हजारों) धाराओं (में प्रकाश) और सात (वर्ण या प्राण) जन्म लेते हैं। ऐसे आप ही संसार की महानता के केन्द्र हैं, ऐसी हमारी मान्यता है ॥३७ ॥

३६४१. यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम्। यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः ॥३८ ॥

आप दिशाओं और उपदिशाओं में यशस्वी होकर गमन करते हैं, पशु और मनुष्यों में यशस्वी होकर जाते हैं। हम भी अखण्डनीया भूमि की गोद में यशस्वी होकर सवितादेव के समान सुन्दर बनें ॥३८ ॥

३६४२. अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि। इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥३९ ॥

आप वहाँ (द्युलोक में) वास करते हुए भी यहाँ के तथा इस लोक में रहते हुए वहाँ के सभी रहस्यों का दर्शन करते हैं। प्राणी भी यहाँ से द्युलोक में प्रकाशमान, ज्ञानसम्पन्न सूर्यदेव का दर्शन करते हैं ॥३९ ॥

३६४३. देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे। समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥४० ॥

आप स्वयं देव (प्रकाशक) होते हुए भी देवशक्तियों को क्रियाशील करते हैं और अन्तरिक्षलोक में विचरण करते हैं। जो समान तेजस्वी अग्नि को प्रदीप्त करते हैं, वे क्रान्तदर्शी विद्वान् इसके सम्बंध में जानते हैं ॥४० ॥

३६४४. अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्। सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥४१ ॥

गौएँ (पोषक किरणें) द्युलोक से नीचे की ओर तथा इस (पृथ्वी) से ऊपर की ओर (सतत) गतिमान् हैं। ये बछड़े (जीवनतत्त्व) को धारण किये हुए किस लक्ष्य की ओर जाते हैं ? ये गौएँ किस आधे भाग से परे निकल कर जन्म देती हैं ? यहाँ समूह के मध्य तो नहीं देतीं ॥४१ ॥

[पदार्थ विज्ञान की नवीनतम शोधों के अनुसार सूक्ष्म किरणों के प्रवाह पृथ्वी से आकाश की ओर तथा आकाश से पृथ्वी की ओर सतत गतिशील हैं । ये प्रवाह पृथ्वी के किसी भी अर्धभाग (हैमिस्फियर) को छूते हुए निकल जाते हैं । यह प्रभाव कब-कहाँ जीवन तत्त्व को प्रकट कर देते हैं ? किसी को पता नहीं है ।]

३६४५. एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥४२ ॥

वह सूर्य रश्मि एकपदी, द्विपदी, चतुष्पदी, अष्टपदी और नवपदी हो जाती है । वह जगत् की पंक्तिरूप है, जो सघन जलवाली होकर मेघों को क्षरित करती है ॥४२ ॥

३६४६. आरोहन् द्यामामृतः प्राव मे वचः । उत् त्वा यज्ञा
ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥४३ ॥

अमृतरूप हे सूर्यदेव ! आप द्युलोक पर चढ़ते हुए हमारी वाणी का संरक्षण करें । मन्त्रों से पुनीत यज्ञ आपका वहन करते हैं तथा मार्गस्थ (अश्व) किरणें सम्पूर्ण विश्व में आपको विस्तारित करती हैं ॥४३ ॥

३६४७. वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमणं दिवि । यत् ते सधस्थं परमे व्योमन् ॥४४ ॥

हे अविनाशीदेव ! आपके द्युलोक में विचरण स्थान और परम व्योम में जो निवास के स्थान हैं, उन्हें हम अच्छी तरह जानते हैं ॥४४ ॥

३६४८. सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति ।
सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥४५ ॥

सूर्यदेव दिव्यलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी और जल आदि को विशेषरूप से देखते हैं । सूर्य ही सम्पूर्ण विश्व (प्राणिमात्र) के अद्वितीय नेत्र हैं । वे विशाल द्युलोक में आरोहण करते हैं ॥४५ ॥

[नेत्र, प्रकाश अथवा प्रकाश के परावर्तन (रिफ्लैक्शन) को ही देखते हैं । सूर्यदेव प्रकाश के अद्वितीय स्रोत हैं, इसीलिए उन्हें अद्वितीय नेत्र कहा गया है ।]

३६४९. उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत । तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ।

(सृष्टिरूपी यज्ञ कर्म के समय) पृथ्वी की वेदिका बनाई गई । इसकी उर्वियाँ परिधि बन गई । तब सूर्यदेव ने हिम और दिन (शीतकाल और उष्णकाल) ये दो अग्नियाँ इस यज्ञ में प्रयुक्त कीं ॥४६ ॥

३६५०. हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् । वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः

सूर्य के उत्तम सुखों को पाने के अभिलाषी, साधक हिम और दिन (शीत और उष्ण ऋतुओं) का आधान करके तथा पहाड़ों को स्तम्भ (यूप) बनाकर वर्षारूप घृत से अग्नि की अर्चना करते थे ॥४७ ॥

३६५१. स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते । तस्माद्
घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञो ऽजायत ॥४८ ॥

आत्मज्ञान की प्राप्ति में सहायक सूर्यदेव के मन्त्र से यज्ञाग्नि को प्रज्वलित किया जाता है । उससे हिम (शीत) दिवस, उष्णता और यज्ञ का प्राकट्य हुआ है ॥४८ ॥

३६५२. ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ । ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ।

ब्रह्म (ज्ञान) से बढ़ने वाले, ब्रह्म (मन्त्रों) से प्रदीप्त होने वाले, ब्रह्म (यज्ञ) में आहुति पाने वाले, ये दो ब्रह्म और अग्नि हैं । स्वर्ग के जानकार इन सूर्यदेव के तेज से ये दोनों ब्रह्म और अग्नि प्रदीप्त हैं ॥४९ ॥

३६५३. सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्व१न्यः समिध्यते ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥५० ॥

एक अग्नि सत्य में प्रतिष्ठित है और दूसरी अप् प्रवाहों में प्रदीप्त होती है । स्वर्ग के ज्ञाता सूर्यदेव के तेज से ये दोनों अग्नियाँ प्रदीप्त होती हैं ॥५० ॥

३६५४. यं वातः परि शुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥५१ ॥

जिन्हें वायु, इन्द्र और ब्रह्मणस्पति आदि देवगण सुशोभित करने के अभिलाषी हैं, ऐसे सूर्यदेव के तेज से ये दोनों अग्नियाँ प्रज्वलित होती हैं ॥५१ ॥

३६५५. वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।
घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ॥५२ ॥

भूमि को वेदिका बनाकर, द्युलोक को दक्षिणारूप देकर और दिवस को ही अग्नि मानकर सूर्यदेव ने वृष्टिरूप घी से सम्पूर्ण विश्व को आत्मवान् (अस्तित्ववान्) बना दिया है ॥५२ ॥

३६५६. वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत् ॥५३ ॥

वर्षा ऋतु को घृत, दिन को अग्नि और भूमि को वेदिकारूप बनाया गया । वहाँ स्तुति-वचनों से सम्पन्न अग्नि द्वारा, इन पर्वत शिखरों को ऊँचा (उन्नत) किया गया ॥५३ ॥

३६५७. गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।
त्वयीदं सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च भाव्यम् ॥५४ ॥

स्तुति वचनों से पर्वतों को उन्नत बनाकर सूर्यदेव ने भूमि से कहा कि जो भूत और भविष्यत्काल में सम्भावित है, वह सभी आपमें प्रकट हो ॥५४ ॥

३६५८. स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत । तस्माद्ध जज्ञ इदं
सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥५५ ॥

वह यज्ञ सर्वप्रथम भूत और भविष्यत् के रूप में उत्पन्न हुआ, उससे वह सब कुछ प्रकट हुआ , जो विराजित (प्रकाशमान) है, इसे द्रष्टा ऋषि रोहित (सूर्य) ने ही परिपुष्ट किया है ॥५५ ॥

३६५९. यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥५६ ॥

जो पैर से गाय का स्पर्श करता है और सूर्य की ओर मुख करके मूत्रोत्सर्ग करता है, मैं उसे समूल विनष्ट करता हूँ । मैं उसके ऊपर छाया (कृपा) भी नहीं करता ॥५६ ॥

३६६०. यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥५७ ॥

जो मुझे छाया में रखने (ढकने) का प्रयास करेगा, मेरा अतिक्रमण करेगा और जो मेरे (सूर्य के) और अग्नि के बीच में अवरोध बनेगा, उसे मैं समूल विनष्ट कर दूँगा ॥५७ ॥

३६६१. यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।

दुष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥५८ ॥

हे सूर्यदेव ! जो हमारे (अग्नि के) और आपके मध्य इस समय विघ्न पैदा करने के इच्छुक हैं, हम उनमें बुरे स्वप्न, दुष्ट कल्पनाओं और पापकर्मों को प्रविष्ट करते हैं ॥५८ ॥

३६६२. मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः । मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥५९ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम अपने श्रेष्ठ मार्ग का कभी परित्याग न करें । हम सोमयाग से कभी दूर न हों । शत्रु हमारे देश की सीमा में न रहें ॥५९ ॥

३६६३. यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतमशीमहि ॥६० ॥

जो यज्ञ सभी देवों में देवत्व के लक्षणरूप में विस्तारित हुआ है, उस यज्ञ का हम सेवन करें ॥६० ॥

[२ - अध्यात्म सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- रोहितादित्य, अध्यात्म । छन्द- त्रिष्टुप्, १,१२-१५, ३९-४१ अनुष्टुप्, २-३,८, ४३ जगती, १० आस्तार पंक्ति, ११ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, १६-२४ आर्षी गायत्री, २५ ककुम्मती आस्तार पंक्ति, २६ पुरोद्व्यतिजागता भुरिक् जगती, २७ विराट् जगती, २९ बार्हतगर्भा अनुष्टुप्, ३० पञ्चपदा उष्णिक् बृहतीगर्भा अतिजगती, ३४ आर्षी पंक्ति, ३७ पञ्चपदा विराड्गर्भा जगती, ४४ चतुष्पदा पुरःशाक्वरा भुरिक् जगती, ४५ अतिजागतगर्भा जगती ।]

३६६४. उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।

आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः ॥१ ॥

सेचन समर्थ सूर्यदेव महान् व्रतशील और मनुष्यों के निरीक्षक हैं, जिनकी किरणें आकाश में उदित होने पर शुद्ध तेजस्वी प्रकाश से चमकती हैं ॥१ ॥

३६६५. दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे ।

स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः ॥२ ॥

अपनी दीप्ति से दिशाओं को प्रकाशित करने वाले, सागर में श्रेष्ठ रश्मियों के साथ विचरने वाले तथा अपनी किरणों से दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले उन त्रिभुवन के संरक्षक सूर्यदेव की हम स्तुति करते हैं ॥२ ॥

३६६६. यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मायया ।

तदादित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥३ ॥

हे आदित्यदेव ! आप पूर्व और पश्चिम दिशा में अपनी धारकक्षमता के साथ शीघ्रतापूर्वक गमन करते हैं, अपनी विलक्षण शक्ति से विभिन्नरूप वाले रात्रि और दिन बनाते हैं । आप संसार में सबसे महान् और अद्वितीय प्रभाव से युक्त हैं ॥३ ॥

३६६७. विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ।

स्रुताद् यमत्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥४ ॥

सात तेजस्वी किरणें भवसागर से पार करने वाले जिन ज्ञानी सूर्यदेव को वहन करती हैं, जिन्हें अत्रि (त्रिगुणातीत) प्रवाहों से उठाकर द्युलोक पहुँचाया गया है; ऐसे आपको हम चारों ओर घूमते हुए देखते हैं ॥४ ॥

३६६८. मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम्।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥५ ॥

हे सूर्यदेव ! आप द्युलोक और पृथ्वी पर दिन और रात्रि की रचना करते हुए विचरण करते हैं, ऐसे आपको शत्रु न दबा पाएँ। आप शीघ्रतापूर्वक सुख के साथ दुर्गम स्थलों को पार करें ॥५ ॥

३६६९. स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥६ ॥

हे सूर्यदेव ! आप जिससे दोनों सीमाओं तक शीघ्र ही पहुँच जाते हैं, उस मंगलकारी रथ का कल्याण हो, जिसे सात किरणें अथवा विचरणशील सौ अश्वरूप किरणें चलाती हैं ॥६ ॥

३६७०. सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम्।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥७ ॥

हे सूर्यदेव ! आप तेजस्वी, सुखदायी सुन्दर अग्नि के समान देदीप्यमान, गतिशील श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ हों। आपके उस रथ का सात या अनेक हरित अश्व गंतव्य स्थल की ओर वहन करते हैं ॥७ ॥

३६७१. सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ॥८ ॥

स्वर्णिम त्वचा वाले सूर्यदेव व्यापक प्रकाशयुक्त सात किरणरूपी हरित अश्वों के साथ अपने रथ में विराजमान होते हैं। पावन प्रकाश से युक्त सूर्यदेव अन्धकार को दूर हटाकर रजोगुण से परे दिव्यलोक में स्वयं प्रविष्ट हुए ॥८

३६७२. उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत्।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥९ ॥

उदित होने वाले महान् ध्वजा (प्रकाश) के साथ सूर्यदेव आ रहे हैं, वे अन्धकार को दूर भगाकर तेजस्विता का आश्रय ले रहे हैं।उस दिव्य प्रकाश से युक्त अदिति के वीरपुत्र (सूर्य) ने सम्पूर्ण विश्व को आलोकित किया ॥९ ॥

३६७३. उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि।
उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वाँल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः ॥१० ॥

हे सूर्यदेव ! आप उदित होते समय अपनी रश्मियों को फैलाते हैं और सभी पदार्थों के रूप (आकार) को परिपुष्ट करते हैं। आप देदीप्यमान होकर अपने यज्ञीय प्रभाव से दोनों समुद्रों और सम्पूर्ण विश्व को आलोकित करते हैं ॥१० ॥

३६७४. पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥११ ॥

ये दोनों शिशुरूप सूर्य और चन्द्रमा क्रीड़ा करते हुए अपनी शक्ति से समुद्र तक भ्रमण करते हुए जाते हैं इनमें एक सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करता है और दूसरे को अश्व अपनी स्वर्णिम किरणों से वहन करते हैं ॥११ ॥

३६७५. दिवि त्वात्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे।
स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥१२ ॥

हे सूर्यदेव ! अत्रि ने आपको मास समूह के निर्माण हेतु द्युलोक में स्थापित किया है । आप तापयुक्त होकर सभी प्राणियों को प्रकाशित करते हुए स्वयं सुस्थिर होकर चलते हैं ॥१२ ॥

३६७६.उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव । नन्वे३तदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ।

जैसे बालक माता-पिता के समीप जाता है, वैसे ही आप दोनों समुद्रों (उदय और अस्त दोनों भागों) को प्राप्त होते हैं । ये देव निश्चित ही यह समझते हैं कि सभी शाश्वत ब्रह्म है ॥१३ ॥

३६७७. यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः । अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः

जो मार्ग समुद्र के आश्रय से युक्त है, सूर्यदेव उन्हें प्राप्त करने के इच्छुक हैं । इनके पूर्व और पश्चिम के मार्ग महिमामय और विस्तृत हैं ॥१४ ॥

३६७८.तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नापचिकित्सति । तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते

हे सूर्यदेव ! उस मार्ग को आप शीघ्रगामी अश्वों (किरणों) से पूर्ण करते हैं, आप उससे सतर्क रहते हुए देवों का अमृतसेवन नहीं रोकते ॥१५ ॥

३६७९. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१६ ॥

रश्मियाँ जातवेदा सूर्यदेव को, समस्त विश्व को दृष्टि प्रदान करने के लिए उच्च स्थान में ले जाती हैं ॥१६ ॥

३६८०. अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥१७ ॥

सबको प्रकाश देने वाले सूर्यदेव के उदित होते ही रात्रि के साथ नक्षत्र (तारागण) वैसे ही छिप जाते हैं , जैसे दिवस का प्रादुर्भाव होते ही चोर छिप जाते हैं ॥१७ ॥

३६८१. अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥१८ ॥

सूर्यदेव की रश्मियाँ जीव-जगत् को प्रकाशित करती हुई अग्नि की किरणों के समान दृष्टिगोचर होती हैं ॥१८

३६८२. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन ॥१९ ॥

हे सूर्यदेव ! आप साधकों का उद्धार करने वाले, सबके द्रष्टा और प्रकाश प्रदाता हैं । सम्पूर्ण विश्व को आप ही प्रकाशित करते हैं ॥१९ ॥

३६८३. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः । प्रत्यङ् विश्वं स्व दृशे ॥२० ॥

हे सूर्यदेव ! आप सभी देवताओं और मनुष्यों के सामने उदित होते हैं, जिससे सभी को आपका दर्शन एवं प्रकाश मिलता है ॥२० ॥

३६८४. येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥२१ ॥

पवित्रता प्रदान करने वाले हे देव ! जिस दृष्टि से आप भरण-पोषण करने वाले लोगों को देखते हैं, उसी से हमें भी देखें ॥२१ ॥

३६८५. वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥२२ ॥

हे सूर्यदेव ! आप जीवों पर अनुग्रह करने हेतु दिन और रात्रि की रचना करते हुए अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में परिभ्रमण करते हैं ॥२२ ॥

३६८६. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥२३ ॥

हे सर्वद्रष्टा सूर्यदेव ! तेजस्वी सप्तवर्णी किरणरूपी अश्व रथ में आपको ले जाते हैं ॥२३ ॥

३६८७. अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥२४ ॥

ज्ञानसम्पन्न ऊर्ध्वगामी सूर्यदेव पवित्रता प्रदायक अपने सप्तवर्णी अश्वों (किरणों) से सुशोभित रथ में अपनी युक्तियों से गमन करते हैं ॥२४ ॥

३६८८. रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी ।
स योनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव ॥२५ ॥

अपनी तपश्चर्या रूप तेजस् से तेजस्वी सूर्यदेव द्युलोक पर आरोहण करते हैं, वे योनि (मूलस्थान) में पहुँचकर पुनः उत्पन्न होते हैं, वे ही सभी देवों के अधिपति बने ॥२५ ॥

३६८९. यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः ।
सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥२६ ॥

जो प्राणियों के द्रष्टा, अनेक मुखों से युक्त, चारों ओर हाथों और भुजाओं से विस्तृत हैं, वे अद्वितीय सूर्य अपनी पतनशील किरणों से द्युलोक और पृथ्वी को उत्पन्न करते हुए अपनी भुजाओं से सबका पोषण करते हैं ॥२६

३६९०. एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं१ समासते ॥२७ ॥

एक पाद द्विपादों से अधिक चलता है, फिर द्विपाद त्रिपादों के साथ मिलता है । द्विपाद निश्चय ही षट्पदों से भी अधिक चलता है । वे एक पाद के शरीर का आश्रय ग्रहण करते हैं ॥२७ ॥

[गोपथ ब्रा० (१.२) में वायु को और परमात्मा को एक पाद कहा है, उनका पाद आकाश है । चन्द्र को द्विपाद (दो पक्षों वाला) तथा सूर्य को त्रिपाद (तीन लोकों वाला) कहा गया है । चन्द्रमा नक्षत्रों में गति करता हुआ सूर्य को भी पीछे से पकड़ लेता है । अग्नि छह पाद, मनुष्य द्विपाद वाला है । ये सभी एक पादवाले परमात्मा अथवा दिव्य प्राण का आश्रय लेते हैं ।]

३६९१. अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि ॥२८ ॥

आलस्यरहित सूर्यदेव गमन करने के लिए जब अश्वारूढ़ होते हैं, उस समय वे अपने दो स्वरूप निर्मित करते हैं । हे आदित्यदेव ! उदित होते हुए प्रकाशरूप ध्वजा वाले आप सभी लोकों को जीतते हुए (वशीभूत करते हुए) प्रकाशित होते हैं ॥२८ ॥

३६९२. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥२९ ॥

हे सूर्यदेव ! आपकी महिमा महान् है, यही सत्य है । हे आदित्यदेव ! आप महान् की महिमामय ख्याति भी महानता युक्त है ॥२९ ॥

३६९३. रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्व१न्तः ।
उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥३० ॥

हे सूर्यदेव ! आप द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी और जल के भीतर प्रकाशित होते हैं । आप अपने तेजस् से दोनों समुद्रों को व्याप्त करते हैं । हे देव ! आप स्वर्गलोक के विजेता महासामर्थ्य से सम्पन्न हैं ॥३० ॥

३६९४. अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः ।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥३१ ॥

ज्ञानसम्पन्न सूर्यदेव दक्षिणायन की ओर जाते हुए शीघ्रता से मार्ग को पार करते हैं। ये सूर्यदेव विशिष्ट ज्ञानी और व्यापक हैं। वे अपनी सामर्थ्य से अधिष्ठित होते हुए, अपने सम्पूर्ण गतिमान् विश्व को धारण करते हैं ॥३१॥

३६९५. चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम्।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥३२॥

अद्भुत ज्ञानसम्पन्न, समर्थ और श्रेष्ठ गतिशील सूर्यदेव अन्तरिक्ष, पृथ्वी और द्युलोक को प्रकाशित करते हैं। वे सूर्यदेव दिन और रात्रि का निर्माण करके सबमें पराक्रमी सामर्थ्य विस्तारित करते हैं ॥३२॥

३६९६. तिग्मो विभ्राजन् तन्वं१ शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ॥३३॥

ये तेजस्वी और तीक्ष्ण सूर्यदेव पर्याप्त गतियुक्त, उच्चस्थान पर विराजमान होने वाले पक्षी के समान आकाश में संचरित होते हुए, शक्तिमान् और अन्न के पोषणकर्त्ता, सभी दिशाओं को तेजस् प्रदान करते हैं ॥३३॥

३६९७. चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन्।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥३४॥

देवों के ध्वजरूप, अद्भुत, मूल आधाररूप तेजस्वी सूर्यदेव दिशाओं में उदित होकर अपने तेजस् से सम्पूर्ण अन्धकार को दूर करते हैं और अपने प्रकाश से दिन का निर्माण करते हैं ॥३४॥

३६९८. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३५॥

जंगम, स्थावर जगत् के आत्मा- सूर्यदेव दैवी शक्तियों के अद्भुत तेजस् के समूह के रूप में उदित हो गये हैं। मित्र, वरुण आदि के चक्षुरूप इन सूर्यदेव ने उदित होते ही द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्ष को अपने तेजस् से भर दिया है ॥३५॥

३६९९. उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम्।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः ॥३६॥

जिसे ऊँचे स्थान से गमन करने वाले पक्षी के समान अन्तरिक्ष में तेजस्वी होकर तैरने वाला और विशिष्ट ज्योतिस्वरूप कहा गया है, जिसे आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक दुःखों से रहित स्वीकार करते हैं, उन सविता देव को हम सदैव देखें ॥३६॥

३७००. दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥३७॥

अन्तरिक्षलोक में पक्षी के समान द्रुतगामी अदिति के पुत्र सूर्यदेव की शरण में भयभीत होकर जाते हैं। हे सूर्यदेव ! आप हमें दीर्घायुष्य प्रदान करें, हम कभी हिंसित न हों और आपकी श्रेष्ठ बुद्धि में रमण करें ॥३७॥

३७०१. सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥३८॥

इस स्वर्गलोक को जाते हुए हरणशील हंस जैसे गतिशील, पापनाशक सूर्यदेव के दोनों दक्षिणायन और उत्तरायणरूप पक्ष हजारों दिन तक अनुशासित रहते हैं । वे सभी देवों को अपने में समाहित करके सभी लोकों के प्राणियों को देखते हुए जाते हैं ॥३८ ॥

३७०२. रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः ।
रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्व१राभरत् ॥३९ ॥

सूर्यदेव ही काल गणना के निर्धारक हुए , आगे वे ही प्रजापालक बने और वे ही यज्ञीय सत्कर्मों में प्रमुख होकर प्रकाशरूप स्वर्गीय सुख प्रदान करते हैं ॥३९ ॥

[समय की गणना का आधार सूर्य के सापेक्ष पृथ्वी की गति ही है, इस आधार पर सूर्यदेव ही काल गणना के निर्धारक कहे गये हैं । सूर्य-निःसृत ऊर्जा से प्राणियों का पालन होता है तथा उसी से यज्ञीय चक्र चलता है , यह भी सत्य है ।]

३७०३. रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम् ।
रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥४० ॥

सूर्यदेव ही सब लोकों के निर्माता होकर द्युलोक को प्रकाशित करने लगे । वही अपनी किरणों से भूमि और समुद्र में संचार करते हैं ॥४० ॥

३७०४. सर्वा दिशः समचरद् रोहितोऽधिपतिर्दिवः ।
दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं विरक्षति ॥४१ ॥

द्युलोक स्वर्ग के स्वामी सूर्य सभी दिशाओं में संचार करके द्युलोक से समुद्र में विचरण करते हैं । वही सभी प्राणियों और पृथ्वी का संरक्षण करते हैं ॥४१ ॥

३७०५. आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमाया यावतो लोकानभि यद् विभाति ॥४२ ॥

ये आलस्य- प्रमाद से विरत बलशाली तेजस्वी सूर्यदेव, विस्तृत दिशाओं में आरूढ़ होकर अपने दो रूपों की रचना करते हैं । अद्‌भुत , ज्ञानसम्पन्न और सामर्थ्ययुक्त गतिशीलता को प्राप्त करते हैं तथा जितने भी लोक विद्यमान हैं, उन सभी को वे प्रकाशमान करते हैं ॥४२ ॥

३७०६. अभ्य१न्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः ।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥४३ ॥

दिन और रात्रि से महिमायुक्त होते हुए ये सूर्यदेव एक भाग से सामने आते हैं और दूसरे भाग से गति करते रहते हैं । हम अन्तरिक्षलोक में विराजमान सूर्यदेव की स्तुति करते हैं, भयाक्रान्त हम सभी को वे श्रेष्ठ मार्गदर्शन प्रदान करें ॥४३ ॥

३७०७. पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव ।
विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥४४ ॥

पृथ्वी के पालनकर्ता, महिमायुक्त, दुःखी मनुष्य के पथप्रदर्शक, दृष्टियुक्त सूर्यदेव विश्व के चारों ओर संव्याप्त हैं । विश्व के द्रष्टा, कल्याणकारी, ज्ञानशक्ति से सम्पन्न और पूजन योग्य सूर्यदेव हमारा निवेदन सुनें ॥४४ ॥

३७०८. पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्यामन्तरिक्षम् ।
सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥४५ ॥

उनकी ख्याति सर्वत्र संव्याप्त है, ये अपनी आभा से पृथ्वी, समुद्र, द्युलोक और अन्तरिक्ष सब में विस्तृत हैं । सभी कर्मों के द्रष्टा, मंगलमयी ज्ञानशक्ति से युक्त और पूजनीय सूर्यदेव हमारे निवेदन को ध्यानपूर्वक सुनें ॥४५ ॥

३७०९. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥४६ ॥

उषःकाल के आगमन के समय जिस प्रकार गौओं को जगाया जाता है, उसी प्रकार मनुष्यों की समिधाओं से यज्ञाग्नि भी प्रदीप्त होती है । तब उस अग्नि की ऊपर उठने वाली विशाल ज्वालाएँ उसी प्रकार सीधी स्वर्गधाम जाती हैं, जिस प्रकार वृक्षों की शाखाएँ आकाश की ओर जाती हैं ॥४६ ॥

[३ अध्यात्म - सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- अध्यात्म, रोहितादित्य । छन्द- चतुरवसाना अष्टपदा आकृति, २ त्र्यवसाना षट्पदा भुरिगष्टि, ३ त्र्यवसाना षट्पदाष्टि, ४ त्र्यवसाना षट्पदा अतिशाक्वरगर्भा धृति, ५-६ शाक्वरातिशाक्वरगर्भा सप्तपदा चतुरवसाना प्रकृति, ७ चतुरवसाना सप्तपदा अनुष्टुब्गर्भातिधृति , ८, २०, २२ त्र्यवसाना षट्पदात्यष्टि, ९-१२ चतुरवसाना सप्तपदा भुरिक् अतिधृति, १३-१४ चतुरवसाना अष्टपदा कृति, १५ चतुरवसाना सप्तपदा निचृत् अतिधृति, १७, २४ चतुरवसाना सप्तपदा कृति, १९ चतुरवसाना अष्टपदा भुरिक् आकृति, २३, २५ चतुरवसाना अष्टपदा विकृति, २६ अनुष्टुप् ।]

३७१०. य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते ।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१ ॥

जिन्होंने इस द्युलोक और पृथ्वी को प्रकट किया, जो सम्पूर्ण लोकों को आच्छादन बनाकर उनमें संव्याप्त हैं । जिनके अंदर छह दिशाएँ और उप दिशाएँ सूर्य से प्रकाशित होकर निवास करती हैं । इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप उस (ब्रह्मघाती) को कम्पायमान करें, उसे क्षीण करें तथा बन्धन में डाल दें ॥१ ॥

३७११. यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२ ॥

जिस देव द्वारा वायुदेव ऋतुओं के अनुसार बहते हैं और जिससे समुद्र (जल प्रवाह) विविध ढंग से प्रवाहित होते हैं । इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को कम्पायमान करें, उसकी शक्ति को विनष्ट करें तथा उसे बंधनों में जकड़ें ॥२ ॥

३७१२. यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥३ ॥

जिससे सभी मनुष्य प्राणशक्ति प्राप्त करते हैं, जिसकी क्षीणता से मृत्यु होती है तथा जिनकी सामर्थ्य से सभी प्राणी जीवन व्यापार (श्वास-प्रश्वास) चलाते हैं । इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह

उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन बनता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को भयभीत करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा उसे बंधनों में जकड़ें ॥३ ॥

३७१३. यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥४ ॥

जो परमात्म सत्ता, प्राणशक्ति द्वारा द्युलोक और पृथ्वी को संतुष्ट करती और अपानशक्ति द्वारा समुद्र के उदर को भरती है । इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्महत्यारे) को भयभीत करें, उसकी शक्ति का क्षय करें तथा पाशों में जकड़ें ॥४ ॥

३७१४. यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः । यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ५ ॥

जिसमें विराट् परब्रह्म प्रजापति अग्नि और वैश्वानर पंक्ति के साथ आश्रित हैं, जिसने उत्तम प्राण और परम तेजस्विता को ग्रहण किया है । इस मर्म के ज्ञाता - विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्महत्यारे) को भयभीत करें, उसकी शक्ति का ह्रास करें तथा पाशों से जकड़ डालें ॥५ ॥

३७१५. यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः । यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥६ ॥

जिसमें छह उर्वियाँ तथा पाँच विस्तृत दिशाएँ, चार प्रकार के जल और यज्ञ के तीन अक्षर आश्रित हैं,जो अन्तर (अन्तःकरण) से उग्र होकर द्युलोक और भूलोक को देखते हैं । इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को कँपाएँ, उसकी शक्ति का ह्रास करें तथा पाशों में जकड़ें ॥६ ॥

३७१६. यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः । भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः । तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥७ ॥

जो अन्न के संरक्षक, अन्नभक्षक और ब्रह्मणस्पति (ज्ञान के अधिपति) हैं , जो भूत और भविष्यत् जगत् के स्वामी हैं । इस मर्म के ज्ञाता -विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है , वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को भयभीत करें, उसकी सामर्थ्य का क्षय करें तथा बन्धनों में बाँधें ॥७ ॥

३७१७. अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥८ ॥

जिन्होंने दिन और रात्रि के तीस अंगों का एक महीना बनाया और जो वर्ष के तेरहवें (अधिक मास) का नेर्माण करते हैं। इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप उसे कम्पायमान करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा पाशों से जकड़ें ॥८ ॥

३११८. कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥९ ॥

सूर्यदेव की श्रेष्ठ किरणें पृथ्वी से जल लेकर आकाश में जाती हैं, फिर वे किरणें जल के स्थान (मेघमण्डल) से बार-बार लौटती हैं। इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी क्षमता का ह्रास करें तथा उसे बन्धनों में जकड़ें ॥९ ॥

३७१९. यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु। यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम्। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१० ॥

हे कश्यप ! आपके द्वारा संगृहीत आनन्ददायक, प्रकाशमान और अति विलक्षण तेजस् में सात सूर्य साथ-साथ रहते हैं। इस मर्म के ज्ञाता - विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को प्रकम्पित करें, उसे क्षीण करें तथा पाशों में बाँधें ॥१० ॥

३७२०. बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात्। ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम्। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥११ ॥

बृहद्गान इसके समक्ष स्थित होते हैं और रथन्तरगान पृष्ठभाग से इसे ग्रहण करते हैं। ये दोनों प्रमाद त्यागकर सदैव ज्योतियों से आच्छादित रहते हैं। इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य क्षीण करें तथा पाशों में जकड़ डालें ॥११ ॥

३७२१. बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथन्तरमन्यतः सबले सध्रीची। यद् रोहितमजनयन्त देवाः। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्। ।१२ ॥

जब देवशक्तियों ने सूर्यदेव को प्रकट किया, तो बृहद्गान का एक पक्ष और रथन्तर गान का दूसरा पक्ष बना। ये दोनों बलशाली और साथ-साथ रहने वाले पक्ष हैं। इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को प्रकम्पित करें, उसे सामर्थ्यहीन करें तथा बन्धनों में जकड़ डालें ॥१२ ॥

३७२२. स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन्।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम्।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१३ ॥

वही (पापनाशक) वरुणदेव सायंकाल के समय अग्नि होते हैं और प्रभात वेला में उदित होते हुए मित्र सूर्य होते हैं। वे अन्तरिक्ष के मध्य में सविता बनकर तथा द्युलोक के मध्य इन्द्र होकर तपते हैं। इस मर्म के ज्ञाता - विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य का ह्रास करें तथा बन्धनों में जकड़ें ॥१३॥

३७२३. सहस्राहण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१४॥

स्वर्ग स्थान को गमन करते हुए गतिशील, पापनाशक सूर्यदेव के दोनों पक्ष हजारों दिन तक नियमित रूप से क्रियाशील रहते हैं। सभी देवों को अपने में धारण करके ये सभी प्राणियों को देखते हुए जाते हैं। इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप ऐसे (ब्रह्मघाती) को प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा उसे बन्धनों में जकड़ें ॥१४॥

३७२४. अयं स देवो अप्स्व१न्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः। य इदं विश्वं भुवनं जजान। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१५॥

जिसने इस सम्पूर्ण जगत् की रचना की, वे देव वही (सूर्य) हैं, जिसके हजारों मूल और शाखाएँ हैं, जो तीनों प्रकार के दुखों से रहित हैं और जल के भीतर विराजमान हैं। इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा उसे बन्धनों में जकड़ें ॥१५॥

३७२५. शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम्।
यस्योर्ध्वा दिवं तन्व१स्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१६॥

अपने वर्चस् (प्रभाव) से देदीप्यमान देव को द्रुतगति वाले अश्व (किरण समूह) द्युलोक में धारण करते हैं। उनके शरीर के ऊपरी भाग की किरणें दिव्यलोक को तपाती हैं तथा श्रेष्ठ वर्णयुक्त किरणें इस ओर (नीचे) पृथ्वी पर प्रकाशित होती हैं। इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव ! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी शक्ति का ह्रास करें तथा उसे बन्धनों से प्रताड़ित करें ॥१६॥

३७२६. येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः। यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१७॥

जिस देव की सामर्थ्य से सूर्य के किरणरूप अश्व उन्हें वहन करते हैं, जिनकी महिमा से विद्वान् मनुष्य यज्ञ क्रिया को सम्पन्न करते हैं तथा जो एक तेज से सम्पन्न होकर भी अनेक प्रकार से प्रकाशित होते हैं। इस मर्म के

ज्ञाता विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा उसे पाशों में जकड़ें ॥१७ ॥

३७२७. सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१८ ॥

एक चक्रवाले सूर्यरथ को सात शक्तियाँ जोतती हैं । सात नाम वाला एक ही अश्व इसे खींचता है । उसका तीन नाभियों (ऋतुओं या लोकों) वाला चक्र जरारहित और नाशरहित है । इसी (कालचक्र) में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अवस्थित है । इस मर्म के ज्ञाता विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा उसे बन्धनों में जकड़ें ॥१८ ॥

३७२८. अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१९ ॥

जो अग्निदेव देवशक्तियों के पालनकर्त्ता और विचारों के उत्पादक हैं, वे उग्र होकर आठ प्रकार से चलते हैं । वायुदेव यज्ञ के ताने- बाने को मन की गति से मापते हुए सम्पूर्ण दिशाओं को शुद्ध करते हैं । इस मर्म के ज्ञाता विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे ब्रह्मघाती को भयभीत करें, उसकी शक्ति का क्षय करें तथा उसे पाशों में जकड़ें ॥१९ ॥

३७२९. सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२० ॥

यज्ञ की भावना का यह सूत्र सभी दिशाओं में विस्तारित हो रहा है, यह गायत्रीरूपी अमृत के भीतर स्थित है । इस मर्म के ज्ञाता विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप ऐसे ब्रह्मघाती को प्रकम्पित करें, उसकी शक्ति का ह्रास करें तथा उसे पाशों से बाँधें ॥२० ॥

३७३०. निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः ।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२१ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपके तीन प्रकार के जन्मों से अवगत हैं, देवशक्तियों के तीन जन्मों के विषय में भी हम जानते हैं । तीन अस्त और तीन उषः काल हैं । अन्तरिक्ष और द्युलोक के भी तीन भेद हैं । इस मर्म के ज्ञाता-विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है । हे सूर्यदेव ! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा पाशों में जकड़ें ॥२१ ॥

३७३१. वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥२२॥

जो देव प्रादुर्भूत होकर पृथ्वी को आच्छादित करते हैं और अन्तरिक्ष में समुद्री जल को धारण करते हैं। इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव के क्रोध का भाजन होता है। हे सवितादेव! आप ऐसे ब्रह्मघाती को प्रकम्पित करें, उसकी सामर्थ्य को निस्तेज करें तथा उसे बन्धनों में जकड़ें॥२२॥

३७३२. त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितोऽर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि।
किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवाः।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥२३॥

हे अग्निदेव! आप ज्ञानयज्ञों में प्रतिष्ठित किये जाते हैं, अच्छी प्रकार प्रज्वलित होकर द्युलोक में प्रकाशित होते हैं। जिस समय देवताओं ने सूर्यदेव को प्रकट किया, उस समय क्या भूमि को मातृवत् स्वीकार करने वाले मरुद्‌गणों ने आपका पूजन- वन्दन किया था? इस मर्म के ज्ञाता - विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे रोहितदेव! आप उस ब्रह्मघाती को कम्पायमान करें, उसकी सामर्थ्य को क्षीण करें तथा बन्धनों में जकड़ें॥२३॥

३७३३. य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥२४॥

जो आत्मिकशक्ति के और शारीरिक सामर्थ्य के प्रदाता तथा सभी देवों के उपास्य हैं। जो दो पैर वाले (मनुष्य आदि) और चार पैर वाले (गौ- अश्वादि) प्राणियों के स्वामी हैं। इस मर्म के ज्ञाता- विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव! आप उसे प्रकम्पित करें, उसकी शक्ति को क्षीण करें तथा ब्रह्महत्या के अपराध स्वरूप पाशों में जकड़ें॥२४॥

३७३४. एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥२५॥

ये देव एक पाद होकर द्विपादों से अधिक चलते हैं, फिर द्विपाद, त्रिपादों के साथ सम्मिलित होते हैं। द्विपाद निश्चित ही षट्पादों से भी अधिक चलते हैं। वे सभी एक पद (ब्रह्म) के शरीर का आश्रय ग्रहण करते हैं। इस मर्म के ज्ञाता - विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ को जो पीड़ित करता है, वह उस देव (परमेश्वर) के क्रोध का भाजन होता है। हे सूर्यदेव! आप ऐसे ब्रह्मघाती को प्रकम्पित करें, क्षीण करें तथा बन्धन में जकड़ें॥२५॥

३७३५. कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः॥२६॥

कृष्णवर्ण वाली रात्रि का पुत्र सूर्य उदित हुआ, वह उदित होते हुए द्युलोक पर चढ़ता है । वह रोहित (सूर्य) रोहणशील वस्तुओं के ऊपर आरोहण करता है ॥२६ ॥

[४ - अध्यात्म सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- प्राजापत्या अनुष्टुप्, १२ विराट् गायत्री, १३ आसुरी उष्णिक् ।]

३७३६. स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ॥१ ॥

ये सूर्यदेव द्युलोक के पृष्ठ भाग में प्रकाशित होते हुए आगमन करते हैं ॥१ ॥

३७३७. रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥२ ॥

इन्होंने अपनी किरणों से आकाश को परिपूर्ण किया । ये महान् इन्द्र (सूर्य) देव तेजस्विता से युक्त होकर चलते हैं ॥२ ॥

३७३८.स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः।

वही धाता, विधाता और वायुदेव हैं , जिनने ऊँचे आकाश को बनाया है, जो अपनी किरणों से आकाश को व्याप्त करके इन्द्ररूप में गतिमान् हैं ॥३ ॥

३७३९. सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥

वही अर्यमा, वरुण, रुद्र और महादेव हैं , जो अपनी किरणों से आकाश को व्याप्त करके इन्द्ररूप में गतिमान् हैं ॥४ ॥

३७४०. सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः।

वही अग्निदेव, सूर्य और महायम हैं , जो अपनी किरणों से आकाश को व्याप्त करके इन्द्ररूप में गतिमान् हैं ॥५ ॥

३७४१.तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः

उनके साथ एक मस्तक वाले दस वत्स संयुक्त होकर रहते हैं , जो अपनी किरणों से आकाश को व्याप्त करके इन्द्ररूप में गतिमान् हैं ॥६ ॥

[पाँच प्राण + पाँच उपप्राण या दस इन्द्रियों के प्रवाह एक ही सिर (संचालन केन्द्र) से संचालित होते हैं ।]

३७४२. पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति ।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥७ ॥

वे उदित होते ही प्रकाशित होते हैं तथा बाद में (पीछे से) उनकी पूजन योग्य किरणें उन्हें चारों ओर से घेर लेती हैं, जो अपनी किरणों से आकाश को व्याप्त करके इन्द्ररूप में गतिमान् हैं ॥७ ॥

३७४३. तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥८ ॥

उनके साथ ये मरुद्गण (एक ही) छीके में रखे हुए के समान चलते हैं ॥८ ॥

३७४४. रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥९ ॥

इन सूर्यदेव ने अपनी किरणों से आकाश को संव्याप्त किया है, ये महान् इन्द्र तेजस्वी किरणों से आवृत होकर चलते हैं ॥९ ॥

३७४५. तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ॥१० ॥

उनके ये नौ कोश विभिन्नरूपों में स्थित नौ प्रकार हैं ॥१० ॥

३७४६. स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥११ ॥

वे (सूर्यदेव) स्थावर, जंगम सभी प्रजाजनों के द्रष्टा और सबके प्राणस्वरूप हैं ॥११ ॥

३७४७. तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥१२ ॥

वे एकत्र हुई शक्ति हैं। वे अद्वितीय एक मात्र व्यापक देव केवल एक ही हैं ॥१२ ॥

३७४८. एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥१३ ॥

ये सभी देवगण इसमें एकरूप होते हैं ॥१३ ॥

[५ अध्यात्म - सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा। देवता- मन्त्रोक्त। छन्द- भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप्, २ आसुरी पंक्ति, ३, ६ प्राजापत्या अनुष्टुप्, ४-५ आसुरी गायत्री, ७ द्विपदा विराट् गायत्री, ८ आसुर्यनुष्टुप्।]

३७४९. कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥१ ॥

३७५०. य एतं देवमेकवृतं वेद ॥२ ॥

जो इन देव को मात्र एक ही समझता है, उसे कीर्ति, यश, जल, आकाश, ब्रह्मवर्चस (परमात्म तेज) अन्न और उपभोग्य सामग्री प्राप्त होती है ॥१-२ ॥

३७५१. न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।य एतं देवमेकवृतं वेद ॥३ ॥

३७५२. न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।य एतं देवमेकवृतं वेद ॥४ ॥

३७५३. नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।य एतं देवमेकवृतं वेद ॥५ ॥

जो इन एक मात्र व्यापक देव के ज्ञाता हैं, वे दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें, नवें और दसवें ऐसे नहीं कहे जाते ॥३-५ ॥

३७५४. स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न। य एतं देवमेकवृतं वेद ॥६ ॥

जो इन एक वरेण्य देव के ज्ञाता हैं, वे जड़ और चेतन सबको देखते हैं और प्राणवान् हैं ॥६ ॥

३७५५. तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव। य एतं देवमेकवृतं वेद ॥७ ॥

वह एकत्र हुई सामर्थ्य है। वह अद्वितीय वरेण्य देव केवल मात्र एक है ॥७ ॥

३७५६. सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति। य एतं देवमेकवृतं वेद ॥८ ॥

इसमें ये सम्पूर्ण देवगण एक रूप होते हैं, जो एक अद्वितीय वरेण्य देव को जानते हैं ॥८ ॥

[६ - अध्यात्म सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा। देवता- मन्त्रोक्त। छन्द- भुरिक् प्राजापत्या त्रिष्टुप्, २ आर्ची गायत्री, ३ आसुरी पंक्ति, ४ एकपदासुरी गायत्री, ५ आर्ची अनुष्टुप्, ६-७ प्राजापत्या अनुष्टुप्।]

३७५७. ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च। य एतं देवमेकवृतं वेद ॥१ ॥

ब्रह्मज्ञान, तपःशक्ति, कीर्ति, यश, जल, आकाश, ब्रह्मवर्चस, अन्न और उपभोग्य सामग्री उन्हें ही उपलब्ध होती है, जो इन एकमात्र वरेण्य देव के ज्ञाता हैं ॥१ ॥

३७५८. भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ॥२ ॥

भूत, भविष्यत्, श्रद्धा, तेजस्विता, कान्ति, स्वर्ग और स्वधा उन्हें ही प्राप्त होते हैं, जो एकमात्र वरेण्य देव के ज्ञाता हैं ॥२ ॥

३७५९. य एतं देवमेकवृतं वेद ॥३ ॥

जो इन एकमात्र वरेण देव के ज्ञाता हैं, उन्हें ही उपर्युक्त सामर्थ्य उपलब्ध होती है ॥३ ॥

३७६०. स एव मृत्युः सो३मृतं सो३भ्वं१ स रक्षः ॥४ ॥

वही मृत्यु, अमृत, महान् और संरक्षक अथवा राक्षस हैं ॥४ ॥

३७६१. स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः ॥५ ॥

वही रुद्रदेव, धनदान के समय धन - प्राप्तकर्त्ता, नमस्कार यज्ञ में श्रेष्ठ विधि से उच्चरित वषट्कार हैं ॥५ ॥

३७६२. तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते ॥६ ॥

सभी यातनादायी शक्तियाँ उनके निर्देशन में ही चलती हैं ॥६ ॥

३७६३. तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ॥७ ॥

उनके ही वश में चन्द्रमा के साथ ये सभी नक्षत्र रहते हैं ॥७ ॥

[७- अध्यात्म सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- आसुरी गायत्री, २, ४, ७-८, १४ प्राजापत्या अनुष्टुप्, ३ विराट् गायत्री, ६, ९-१० साम्नी उष्णिक्, १३ साम्नी बृहती, १५ आर्षी गायत्री, १६ साम्नी अनुष्टुप् ।]

३७६४. स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत ॥१ ॥

वे दिन से प्रकट हुए और दिन उनसे उत्पन्न हुए ॥१ ॥

३७६५. स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ॥२ ॥

वे रात्रि से प्रकट हुए और रात्रि उनसे उत्पन्न हुई ॥२ ॥

३७६६. स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ॥३ ॥

वे अन्तरिक्ष से प्रकट हुए और अन्तरिक्ष उनसे प्रकट हुआ ॥३ ॥

३७६७. स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ॥४ ॥

वे वायुदेव से उत्पन्न हुए और वायुदेव उनसे प्रकट हुए ॥४ ॥

३७६८. स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥५ ॥

वे द्युलोक से प्रकट हुए और द्युलोक उनसे उत्पन्न हुआ ॥५ ॥

३७६९. स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद् दिशोऽजायन्त ॥६ ॥

वे दिशाओं से उत्पन्न हुए और दिशाएँ उनसे उत्पन्न हुईं ॥६ ॥

३७७०. स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ॥७ ॥

वे पृथ्वी से प्रकट हुए और भूमि उनसे उत्पन्न हुई ॥७ ॥

३७७१. स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ॥८ ॥

वे अग्निदेव से उत्पन्न हुए और अग्निदेव उनसे प्रकट हुए ॥८ ॥

३७७२. स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥९ ॥

वे जल से उत्पन्न हुए और जल उनसे प्रकट हुआ ॥९ ॥

३७७३. स वा ऋग्भ्यो ऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ॥१० ॥

वे ऋचाओं से प्रकट हुए और ऋचाएँ उनसे उत्पन्न हुईं ॥१० ॥

३७७४. स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥११ ॥

वे यज्ञदेव से उत्पन्न हुए और यज्ञदेव उनसे प्रकट हुए ॥११ ॥

३७७५. स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥१२ ॥

वे यज्ञ हैं, यज्ञ उन्हीं का है और वे यज्ञ के शीर्षरूप हैं ॥१२ ॥

३७७६. स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ॥१३ ॥

वही गर्जन करते हैं, दीप्तिमान् होते हैं तथा ओलों को गिराते हैं ॥ १३ ॥

३७७७. पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥१४ ॥

३७७८ यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ॥१५ ॥

आप पापकर्मियों, हितकारक पुरुषों अथवा आसुरी वृत्तियों से युक्त मनुष्यों (राक्षसों) और ओषधियों का निर्माण करते हैं, कल्याणकारी वृष्टिरूप में बरसते हैं अथवा उत्पन्न हुए लोगों को उच्चस्तरीय कल्याणमयी दृष्टि से प्रवृद्ध करते हैं ॥१४-१५ ॥

३७७९. तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥१६ ॥

हे मघवन् (ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव) ! ऐसी आपकी महिमा है, ये सभी सैकड़ों शरीर आपके ही हैं ॥१६ ॥

३७८०. उपो ते बध्वे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥१७ ॥

आप अपने समीपस्थ सैकड़ों बँधे हुए लोगों को पार करने वाले तथा असीमित हैं ॥१७ ॥

८- अध्यात्म सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- आसुरी गायत्री, २ यवमध्या गायत्री, ३ साम्नी उष्णिक्, ४ निचृत् साम्नी बृहती, ५ प्राजापत्या अनुष्टुप्, ६ विराट् गायत्री ।]

३७८१. भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ॥१ ॥

इन्द्र अमरता से भी विशाल हैं (श्रेष्ठ हैं) । हे इन्द्रदेव ! आप मृत्यु के मूलभूत कारणों से भी श्रेष्ठतम हैं ॥१ ॥

३७८२. भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ॥२ ॥

हे शक्ति के अधिपति इन्द्रदेव ! आप दुष्ट शत्रुओं से श्रेष्ठ हैं । आप सर्वव्यापक परमेश्वररूप हैं, ऐसा जानते हुए हम आपकी उपासना करते हैं ॥२ ॥

३७८३. नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥३ ॥

हे दर्शन योग्य ! आपके लिए नमन है, हे शोभन तेजस्विन् ! आप हमारी ओर दृष्टिपात करें ॥३ ॥

३७८४. अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥४ ॥

आप हमें अन्न, यश, तेज और ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न करें ॥४ ॥

३७८५. अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम्। नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत। अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५ ॥

जल, पौरुष, महत्ता और सामर्थ्यवान् इन स्वरूपों में हम आपकी उपासना करते है। आप हमें अन्न, यश, तेज और ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न बनाएँ ॥५ ॥

३७८६. अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम्। नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत। अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥६ ॥

जल, अरुण (लाल वर्ण), श्वेत और क्रियाशक्ति रूपों में हम आपकी उपासना करते हैं। आप हमें अन्न, यश, तेज और ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न बनाएँ ॥६ ॥

[९ - अध्यात्म सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा। **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** प्राजापत्या अनुष्टुप्, ३ द्विपदार्षी गायत्री, ४ साम्नी उष्णिक्, ५ निचृत् साम्नी बृहती]

३७८७. उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम्। नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत।अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥१ ॥

महानतायुक्त, विस्तृत, श्रेष्ठ प्राणस्वरूप, तथा दुःखरहित आपके गुणों की हम उपासना करते हैं आप हमें अन्न, यश, तेज और ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न बनाएँ ॥१ ॥

३७८८. प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम्। नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत।अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥२ ॥

विस्तृत, श्रेष्ठ, व्यापक और लोकों में संव्याप्त आपके गुणों की हम उपासना करते हैं, आप हमें अन्न, यश, तेज और ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न बनाएँ ॥२ ॥

३७८९. भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥३ ॥

ऐश्वर्य सम्पन्न, वैभवों से युक्त, सभी ऐश्वर्यों के संग्रहकर्त्ता, सभी सम्पदाओं के भण्डार, ऐसा मानकर हम आपकी उपासना करते हैं, आप हमें अन्न, यश, तेज और ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न बनाएँ ॥३ ॥

३७९०. नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥४ ॥

हे दर्शनीय ! आपके लिए हमारा वन्दन है, हे शोभन तेजस्विन् ! आप हमारी ओर दृष्टिपात करें ॥४ ॥

३७९१. अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५ ॥

आप हमें खाद्य सामग्री, यशस्विता, तेजस्विता और ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न बनाएँ ॥५ ॥

॥ इति त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ चतुर्दशं काण्डम् ॥

[१ - विवाह- प्रकरण सूक्त]

[ऋषि- सावित्री, सूर्या । देवता- सोम, ६ स्वविवाह, ७-२२, २६, २८- ६४ आत्मा, २३ सोमार्क, २४ चन्द्रमा, २५ विवाह मन्त्र आशीष, वधूवास संस्पर्शमोचन, २७ वधूवास संस्पर्श-मोचन । छन्द- अनुष्टुप्, १४ विराट् प्रस्तार पंक्ति, १५ आस्तार पंक्ति, १९-२०, २४, ३२-३३, ३७, ३९, ४०, ४७, ४९-५०, ५३, ५६-५७ ५८-५९, ६१ त्रिष्टुप्, २१, ४६ जगती, २३, ३१, ४५ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, २९, ५५ पुरस्ताद् बृहती, ३४ प्रस्तार पंक्ति, ३८ पुरोबृहती त्रिपदा परोष्णिक्, ४८ पथ्यापंक्ति, ५४, ६४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ६० परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।]

इस पूरे काण्ड (सूक्त १ और २) की ऋषिका सूर्या - सावित्री हैं । ऋक् १०/८५ की ऋषिका भी ये ही हैं । सूक्त में बहुत से मंत्र सूर्या के विवाह एवं दाम्पत्य को लक्ष्य करके कहे गये हैं । लौकिक कन्या विवाह प्रकरण में भी मंत्रों के अर्थ सिद्ध होते हैं । साथ ही वे प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों के भी प्रकाशक हैं । ब्रह्मा की दो सहधर्मिणी शक्तियाँ (१) गायत्री एवं (२) सावित्री कही गयी हैं । गायत्री प्राण विद्या है तथा सावित्री पदार्थ विद्या है । सावित्री का अर्थ सुप्रसविनी श्रेष्ठ सृजनकर्त्री भी होता है । सूर्य के माध्यम से निःसृत होने से वह सूर्या भी है । पदार्थ विद्या का उपयोग करने वाली देवशक्तियों को उसके विभिन्न पतियों के रूप में वर्णित किया गया है । इस काण्ड के सूक्त-२ में वह प्रसंग है । आवश्यकतानुसार टिप्पणियों द्वारा उसका स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है-

३७९२. सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।

ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥१ ॥

सत्य ने पृथ्वी को आकाश में स्थापित किया है । सूर्यदेव द्युलोक को स्तम्भित किये हुए हैं । ऋत से आदित्यगण स्थित हैं और सोम द्युलोक के ऊपर स्थित है ॥१ ॥

३७९३. सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।

अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥२ ॥

आदित्यादि देव सोम के कारण ही बलशाली हैं । सोम द्वारा ही पृथ्वी महिमामयी हुई है । इन नक्षत्रों के बीच भी सोम को ही स्थापित किया गया है ॥२ ॥

[सोम व्योमव्यापी विकिरण है । सूर्यादि प्रकाशोत्पादक पिण्डों का ईंधन सोम ही है । उसी से उन्हें बल प्राप्त होता है । ऋषि इस वैज्ञानिक प्रक्रिया के द्रष्टा थे ।]

३७९४. सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम् ।

सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥३ ॥

जिस समय सोमलतादि वनस्पतियों, ओषधियों की पिसाई की जाती है, उस समय सोमपान करने वाले ऐसा समझते हैं कि हमने सोमपान किया है; परन्तु जिस सोम को ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानीजन जानते हैं, उसे कोई भी व्यक्ति मुख से पीने की सामर्थ्य नहीं रखता ॥३ ॥

[सूक्ष्म सोम प्रवाह प्रकृति एवं प्राणियों को भी शक्ति देते हैं ; किन्तु वे सूक्ष्म प्रवाह मुख से सेवनीय नहीं हैं । वे प्रवाह प्राण - प्रक्रिया द्वारा ग्रहण या धारण किये जाने वाले हैं ।]

३७९५. यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।

वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥४ ॥

हे सोमदेव ! जिस समय लोग ओषधिरूप में आपको ग्रहण करते हैं, उसके बाद आप बारम्बार प्रवृद्ध होते हैं । वायुदेव सोम की उसी प्रकार सुरक्षा करते हैं, जिस प्रकार महीने, वर्ष को सुरक्षित करते हैं ॥४ ॥

३७९६. आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।

ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥५ ॥

हे दिव्यसोम ! आप बृहती विद्या के जानकारों से विदित तथा गुह्य विधियों द्वारा सुरक्षित हैं (संकीर्ण मानस वाले कुपात्र इसे नहीं पा सकते) । आप ग्रावा (सोम निष्पादक यंत्र या गरिमामय वाणी) की ध्वनि को सुनते हैं । आपको पृथ्वी के प्राणी सेवन करने में सक्षम नहीं हैं ॥५ ॥

आगे के मन्त्रों में सूर्या के विवाह-प्रसंग का वर्णन है-

३७९७. चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।

द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥६ ॥

जिस समय सूर्यपुत्री ने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया, उस समय ज्ञान (श्रेष्ठ विचार) ही उसका उपबर्हण (सिरहाना - तकिया) था । नेत्र ही श्रेष्ठ अञ्जन थे । द्युलोक और पृथ्वी ही उसके कोषागार थे ॥६ ॥

३७९८. रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।

सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥७ ॥

सूर्या की विदाई के समय नाराशंसी और रैभी नामक ऋचाएँ (अथवा मनुष्यों की प्रशंसा करने वाली वाणियाँ) उसकी सखीरूपा हुईं । सूर्या का परिधान अतिशोभायमान था, जिसे लेकर दोनों सखियाँ साथ गईं (अर्थात् कल्याणकारी गाथाओं मन्त्रादि से विशेषतः सज्जित होकर सूर्या गई) ॥७ ॥

३७९९. स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।

सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ॥८ ॥

स्तवन (स्तुति मंत्र) ही सूर्या के लिए अन्न था, कुरीर नामक छन्द सिर के आभूषण थे । सूर्या के वर अश्विनी कुमार थे तथा अग्नि अग्रगामी दूतरूप थे ॥८ ॥

३८००. सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।

सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥९ ॥

सूर्या द्वारा हृदय से पति की कामना करने पर जब (सूर्य ने) उन्हें अश्विनीकुमारों को प्रदान किया, तब सोम भी वधूयु (उनके साथ विवाह के इच्छुक) थे; परन्तु अश्विनीकुमार ही उनके वररूप में स्वीकृत किये गये ॥९ ॥

३८०१. मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।

शुक्रावनड्‌वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् ॥१० ॥

जिस समय सूर्या अपने पतिगृह में गई, उस समय मन ही उनका रथ (वाहन) था और आकाश ही रथ के ऊपर की छतरी थी । दो शुक्र (प्रकाशवान् सूर्य-चन्द्र) उनके रथवाहक थे ॥१० ॥

३८०२. ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम् ।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११ ॥

हे सूर्या देवि ! ऋक् और साम स्तवनों (ज्ञान) को सुनने वाले-धारण करने वाले, एक दूसरे के साथ साम्य रखने वाले दो श्रोत्र आपके मनरूपी रथ के चक्र हुए । रथ के गमन का मार्ग आकाश निश्चित हुआ ॥११ ॥

३८०३. शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥१२ ॥

जाने के समय आपके रथ के दोनों पहिये पवित्र अथवा अति उज्ज्वल हुए । उस रथ की धुरी वायुदेव थे । पतिगृह को जाने वाली सूर्या मनरूपी रथ पर आरूढ़ हुईं ॥१२ ॥

३८०४. सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्यु ह्यते ॥१३ ॥

सूर्या के पतिगृह - गमनकाल में सूर्य ने पुत्री के प्रति स्नेहरूप जो धन स्रवित किया (दिया) , उसे पहले ही भेज दिया था । मघा नक्षत्र में विदाई के समय दी गई गौओं को हाँका गया तथा अर्जुनी अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में कन्या को पति के गृह भेजा गया ॥१३ ॥

[नक्षत्रों की संगतियों से होने वाली प्रक्रियाएँ शोध का विषय हैं ।]

३८०५. यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस समय आप दोनों तीनचक्रों से युक्त रथ से सूर्या (सूर्यपुत्री) को ले जाने के लिए पहुँचे थे, तब आपका एक चक्र कहाँ स्थित था ? आप दोनों अपने-अपने क्रिया - व्यापार में प्रेरणा प्रदान करने वाले कौन से स्थान पर रहते थे ? ॥१४ ॥

३८०६. यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप । विश्वे देवा
अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥१५ ॥

हे श्रेष्ठ कर्मों के निर्वाहक अश्विदेवो ! जब आप दोनों सूर्य पुत्री को श्रेष्ठ वधू मानकर उनके समीप वरण करने के लिए पहुँचे थे, तब आपके उस कार्य का सभी देवों ने अनुमोदन किया था । पूषादेव ने पुत्र द्वारा पिता को स्वीकार करने के समान आपको धारण किया ॥१५ ॥

३८०७. द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः । अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥

हे सूर्ये ! ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति) इस बात से परिचित हैं कि आपके रथ के दो (कर्मशील) चक्र ऋतुओं के अनुसार गतिशील होने में प्रसिद्ध हैं । तीसरा (ज्ञान-विज्ञान परक) चक्र जो गोपनीय था, उसे विद्वान् जानते हैं ॥

३८०८. अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव
बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥१७ ॥

पति की प्राप्ति कराने वाले तथा श्रेष्ठ बन्धु-बान्धवों से युक्त रखने वाले अर्यमादेव का हम यजन करते हैं । जिस प्रकार ककड़ी या खरबूजा (पकने पर) बेल के बन्धन से (सहज ही) पृथक् होता है, वैसे ही हम पितृकुल से कन्या को पृथक् करते हैं, परन्तु पतिकुल से उसे पृथक् नहीं करते ॥१७ ॥

३८०९. प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥१८ ॥

हे कन्ये ! इस पितृकुल से आपको मुक्त करते हैं, लेकिन पतिकुल से नहीं। उस (पतिकुल) से आपको भली प्रकार सम्बद्ध करते हैं। हे कामनावर्षक इन्द्रदेव ! यह वधू सुसन्ततियुक्त और सौभाग्यवती हो ॥१८ ॥

३८१०. प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै ॥१९ ॥

हे कन्ये ! आपको हम वरुण के बन्धनों से छुड़ाते हैं। सवितादेव ने सेवा कार्य के लिए आपको बन्धनयुक्त किया था। सत्य के आधार और सत्कर्मों के निवासरूप लोक में अनिष्टरहित पति के साथ आपको विराजमान करते हैं ॥१९ ॥

[सविता द्वारा सूर्या को, पिता द्वारा पुत्री को विवाह से पूर्व जो सेवा कार्य सौंपे जाते हैं, उनके उत्तरदायित्वों से उसे विवाह के समय मुक्त कर दिया जाता है।]

३८११. भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२० ॥

भगदेव आपको यहाँ से हाथ पकड़कर ले जाएँ। आगे अश्विनीकुमार आपको रथ में विराजित करके ले चलें। आप अपने पतिगृह की ओर प्रस्थान करें। वहाँ आप गृहस्वामिनी और सबको अपने नियंत्रण (अनुशासन) में रखने वाली बनें। वहाँ आप विवेकपूर्ण वाणी का प्रयोग करें ॥२० ॥

३८१२. इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥२१ ॥

पतिगृह में सुसन्ततियुक्त होकर आपके स्नेह की वृद्धि हो और इस घर में आप गार्हपत्य अग्नि के प्रति जागरूक रहें अर्थात् गृहस्थधर्म के कर्तव्यों के निर्वाह के लिए सदैव जागरूक रहें। स्वामी के साथ आप संयुक्त (एक प्राण, एक मन वाली) होकर रहें। वृद्धावस्था में आप दोनों (दम्पती) श्रेष्ठ उपदेश (अपनी सन्तानों के लिए) करें ॥२१ ॥

३८१३. इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्य श्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥२२ ॥

हे वर और वधु ! आप दोनों यहीं रहें। कभी भी परस्पर पृथक् न हों। सम्पूर्ण आयु का विशेष रीति से उपभोग करें। अपने गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते हुए पुत्र-पौत्रादि सन्तानों के साथ आमोद-प्रमोदपूर्वक जीवन व्यतीत करें ॥२२ ॥

३८१४. पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥२३ ॥

ये दोनों शिशु (सूर्य और चन्द्रमा) अपने तेज से पूर्व और पश्चिम में विचरते हैं। ये दोनों क्रीड़ा करते हुए यज्ञ में पहुँचते हैं। उन दोनों में से एक (सूर्य) सभी लोकों को देखता है तथा दूसरा (चन्द्र) ऋतुओं का निर्धारण करते हुए बार-बार (उदित-अस्त होता हुआ) नवीन होता है ॥२३ ॥

३८१५. नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।

भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥२४ ॥

हे चन्द्रदेव ! नित्य उदित होकर आप नित-नवीन होते हैं । आप अपनी कलाओं के कारण ह्रास और वृद्धि को प्राप्त होते हुए प्रतिपदा आदि तिथियों के ज्ञापक हैं । आप उषः काल में सूर्य के समक्ष आते हैं और सभी देवों को उनका हविभाग देते हैं । हे चन्द्रदेव ! आप चिरायु प्रदान करते हैं ॥२४ ॥

मंत्र क्र० २५ से २९ तक आलंकारिक वर्णन है, जिसके अन्तर्गत सूर्या या वधू पर कृत्या (आभिचारिक-विनाशक) शक्ति आरोपित होती है, वह लाल-नीली होती है । लाल-नीली होना क्रोधग्रस्त होना अथवा रजोदर्शन के समय लाल अथवा नीला स्राव होने का प्रतीकात्मक उल्लेख हो सकता है । उसकी प्रतिक्रियाएँ बतलाई गई हैं । मंत्र क्र० २५, २६, २७ और २९ में उससे सम्बन्धित उपचारों एवं सावधानियों का उल्लेख है । ये उक्तियाँ लौकिक सन्दर्भ में तो सहज परिलक्षित होती हैं ; किन्तु सूक्ष्म प्रकृतिगत सूर्या के सम्बन्ध में इस पर शोध वाञ्छनीय है-

३८१६ परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।

कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥२५ ॥

शामुल्य (शरीरस्थ मल विकारों अथवा मन पर छाये मलिन आवरणों) का परित्याग करें । ब्राह्मणों (या ब्रह्म विचार) को धन या आवास प्रदान करें । (इस प्रयोग से) कृत्या शक्ति (शमित होकर) जाया (जन्म देने वाली) होकर पति के साथ सहगामिनी बन जाती है ॥२५ ॥

३८१७. नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।

एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥२६ ॥

(सूर्या या वधू) जब नील-लोहित (क्रुद्ध या रजस्वला) होती है, तब उस पर कृत्या शक्ति अभिव्यक्त होती है । उसी के अनुकूल तत्त्व वर्धित होते हैं । पति उसके प्रभाव से बन्धन में बँध (मर्यादित हो) जाता है ॥२६ ॥

३८१८. अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।

पतिर्यद् वध्वो३ वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥२७ ॥

उक्त (कृत्या जन्य) विकारों की स्थिति में स्त्री पीड़ादायक होती है । ऐसी स्थिति में वधू से संयुक्त होने से पति का शरीर भी कान्तिरहित तथा रोगादि से दूषित हो जाता है ॥२७ ॥

३८१९. आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।

सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥२८ ॥

सूर्या का स्वरूप कैसा है, इसे देखें । इसका वस्त्र कहीं एक जगह फटा हुआ है, कहीं बीच में से, तो कहीं चारों ओर से कटा हुआ है, सृष्टि निर्माणकर्त्ता ब्रह्मा ही इसे सुशोभित करते हैं ॥२८ ॥

३८२०. तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।

सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति ॥२९ ॥

यह स्थिति दोषपूर्ण, अग्रहणीय, दूर रखने योग्य एवं विष के समान घातक (पीड़ाजनक) है । यह व्यवहार के योग्य नहीं है, जो मेधावी विद्वान्, सूर्या को भली प्रकार जानते हैं, वे ही वधू के साथ हितकारी सम्बन्ध स्थापित करने योग्य होते हैं ॥२९ ॥

३८२१. स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् ।
प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥३० ॥

उसी मंगलकारी और सुखकर वस्त्र को ब्रह्मा (ब्राह्मण) धारण करते हैं, जिससे प्रायश्चित्त विधान सम्पन्न होता है और धर्मपत्नी असमय (अकाल) मृत्यु से मुक्त रहती है ॥३० ॥

३८२२. युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥३१ ॥

आप दोनों स्त्री- पुरुष सद्व्यवहार में अवस्थित रहकर समृद्धि सौभाग्य को अर्जित करें । हे ब्रह्मणस्पते ! स्त्री के हृदय में पति के सम्बन्ध में आदर-भावना रहे तथा पति भी सुन्दर और मधुर वाणी का प्रयोग करे ॥३१ ॥

३८२३. इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ
शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ॥३२ ॥

गृहस्थ जनों के घर में गौएँ स्थित हों । वे कभी गृह का परित्याग न करें । वे श्रेष्ठ सन्तानों के साथ समृद्ध हों । हे गौओ ! आप मंगल को प्राप्त कराने में सहायक और चन्द्र के समान तेजस्विता युक्त हों । विश्वेदेवा आपके मन को यहीं (गृहों में) स्थिर करें ॥३२ ॥

३८२४. इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम् ।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥३३ ॥

हे गौओ ! आप अपने बछड़ों के साथ इस घर में प्रविष्ट हों, इससे देवों का भाग विलुप्त नहीं होता । पूषादेव, मरुद्‌गण, विधाता तथा सवितादेव इसी मनुष्य के निमित्त आपकी उत्पत्ति करते हैं ॥३३ ॥

३८२५. अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥३४ ॥

जिन मार्गों से हमारे सभी मित्र कन्या के घर की ओर जाते हैं, वे मार्ग आपके लिए निष्कंटक और सुगमतापूर्ण हों । परमात्मा (धातादेव) आपको सौभाग्य, तेजस्विता और सूर्यशक्ति के साथ उचित रीति से संयुक्त करें ॥३४ ॥

३८२६. यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् ।
यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥३५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जो तेजस्विता आँखों में, सम्पत्ति में और गौओं में विद्यमान है, उसी तेज से आप इसका (वधू का) संरक्षण करें ॥३५ ॥

३८२७. येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा ।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥३६ ॥

हे अश्विनीदेवो ! जिस तेज से महान् गौ का जघन अर्थात् दुग्धाशय भाग, जिससे सम्पत्ति और आँखें अभिपूरित हैं, उसी से आप इस (वधू) का संरक्षण करें ॥३६ ॥

३८२८. यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तर्यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्यावान् ॥३७ ॥

स्तोतागण जिसकी यज्ञकाल में प्रार्थना करते हैं तथा जो बिना ईंधन (काष्ठ) के अन्तरिक्ष में विद्युत्‌रूप में प्रदीप्त होते हैं, वे हमें वृष्टिरूप जल प्रदान करें, जिससे इन्द्रदेव तेजस्वी होकर अपनी पराक्रमशक्ति को उत्पन्न करें ॥३७ ॥

३८२९. इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि । यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥३८ ॥

हम शरीर को दोषमुक्त करने वाले रोग बीजों को दूर हटाते हैं और उसमें जो कल्याणकारी तेजस्वी तत्त्व हैं, उसे प्राप्त करते हैं ॥३८ ॥

३८३०. आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः ।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ॥३९ ॥

ब्रह्मनिष्ठ लोग इसके निमित्त स्नान करने योग्य जल लेकर आएँ, यह जल निरर्थक भीरुता को नष्ट करके बल वृद्धि करने वाला हो । हे पूषादेव ! वे अर्यमा और अग्नि की परिक्रमा करें । इसके (वधू के) श्वसुर और देवर ससुराल में इसकी प्रतीक्षा करते हैं ॥३९ ॥

३८३१. शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्व ॥४० ॥

हे सौभाग्यवती वधु ! आपके निमित्त सुवर्ण, जल, गोबन्धन स्तम्भ और युग (जुआ) का छिद्र आदि सभी कल्याणकारी हों । सैकड़ों प्रकार से पवित्रता प्रदान करने वाला जलतत्त्व सुखकारक हो । आप कल्याण के निमित्त पति के शरीर का स्पर्श करें ॥४० ॥

३८३२. खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥४१ ॥

उन शतक्रतु (शतकर्मा- इन्द्रदेव) ने रथ (इन्द्रिययुक्त काया), अनस (शकट की तरह पोषक प्राण) तथा दोनों को जोड़ने वाले 'युग' (मन) इन तीन स्थानों या छिद्रों से अपाला को पवित्र करके उसकी त्वचा (बाहरी संरक्षक सतह) को सूर्यदेव के तेज से युक्त बना दिया ॥४१ ॥

['रथ' अन्नमय कोश को कह सकते हैं, 'अनस' प्राणमय कोश है, मनोमय कोश चेतना एवं पंचभूतों को जोड़ने वाला 'युग' (जुआ) है। अपाला (बुद्धि) की अभिव्यक्ति के यही माध्यम हैं, अतः इन्हें अपाला की त्वचा कह सकते हैं। उपासना से प्राप्त सोम पीकर समर्थ हुआ जीवात्मा (इन्द्र) छिद्रों (दोषों) से अपाला को निर्मल बनाकर उसे सूर्य सदृश कान्तियुक्त विज्ञानमय कोश का अधिकारी बना देता है।]

३८३३. आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥४२ ॥

आप श्रेष्ठ मनोभावों, सुसन्तति, सौभाग्य और वैभव की अभिलाषा करती हुई, पति के अनुकूल सदाचरण से युक्त होकर अमरत्व प्राप्ति के श्रेयस्कर मार्ग पर आरूढ़ हों ॥४२ ॥

३८३४. यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥४३ ॥

जिस प्रकार रत्नवर्षक महासागर नदियों के साम्राज्य का उपभोग करते हैं, उसी प्रकार पतिगृह में पहुँचकर यह वधू स्वयं को उसकी सम्राज्ञी मानकर गृहस्थ- साम्राज्य का संचालन करे ॥४३ ॥

३८३५. सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु । ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ॥४४ ॥

हे वधु ! आप सास, श्वसुर, ननद, और देवरों की सम्राज्ञी (महारानी) के समान हों, आप सबके ऊपर स्वामिनी स्वरूपा हों ॥४४ ॥

३८३६. या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्तौं अभितोऽददन्त ।

तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥४५ ॥

जिन देवी स्वरूपा स्त्रियों ने (सूत्र) कातकर, बुनकर इस वस्त्र को विस्तृत किया है और जो चारों ओर के अन्तिम भागों को उचित रीति से बनाती हैं, वे वृद्धावस्था पर्यन्त आपके लिए उचित वस्त्रों की व्यवस्था करती रहें । हे देवि ! आप दीर्घायु होकर इस वस्त्र को धारण करें ॥४५ ॥

३८३७. जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।

वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥४६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जो पुरुष अपनी पत्नी की जीवन रक्षा के लिए रुदन तक करते हैं, उन्हें यज्ञादि सत्कर्मों में नियोजित करते हैं, गर्भाधानादि संस्कार से सन्तानोत्पादन करके पितृयज्ञ में नियोजित करते हैं, उनकी स्त्रियाँ उन्हें सुख और सहयोग प्रदान करती हैं ॥४६ ॥

३८३८. स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।

तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥४७ ॥

मैं (पति) इस सुखप्रद स्थिर पत्थर जैसे आधार को पृथ्वी देवी की गोद में अपनी सन्तान के लिए स्थापित करता हूँ । आप श्रेष्ठ, तेजस्विता- सम्पन्न और आनन्दित होकर इस पत्थर पर चढ़ें । सवितादेव आपकी आयु में वृद्धि करें ॥४७ ॥

३८३९. येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।

तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥४८ ॥

जिस पवित्र उद्देश्य से अग्निदेव ने इस भूमि के दाहिने हाथ को ग्रहण किया है, उसी पवित्र भावना से मैं (पति) आपका (वधू का) पाणिग्रहण करता हूँ । आप दुःख-कष्टों से रहित होकर मेरे साथ सुसन्तति और ऐश्वर्य सम्पदा के साथ रहें ॥४८ ॥

३८४०. देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।

अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥४९ ॥

हे वधु ! सविता आपका (वधू का) पाणिग्रहण करें, राजा सोम आपको श्रेष्ठ सन्तानों से युक्त करें । जातवेदा अग्नि आपको सौभाग्ययुक्त करते हुए वृद्धावस्था तक पति के साथ वास करने वाली बनाएँ ॥४९ ॥

३८४१. गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।

भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥५० ॥

हे वधु ! आपके हाथ को सौभाग्य वृद्धि के लिए मैं ग्रहण करता हूँ । मुझे पतिरूप में स्वीकार करके, आप वृद्धावस्था पर्यन्त (मेरे) साथ रहना, यही मेरी प्रार्थना है । भग, अर्यमा, सविता और पूषादेवों ने आपको मेरे निमित्त गृहस्थ धर्म का पालन करने के लिए प्रदान किया है ॥५० ॥

३८४२. भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।

पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥५१ ॥

भगदेव और सवितादेव ने ही मुझे माध्यम बनाकर आपके हाथ को ग्रहण किया है । अब आप धर्मानुसार मेरी धर्मपत्नी हैं और मैं आपका गृहस्वामी हूँ ॥५१ ॥

३८४३. ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।

मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥५२ ॥

यह स्त्री मेरा पोषण करने वाली हो, बृहस्पतिदेव ने आपको मेरे लिए सौंपा है । हे सन्तानों से युक्त स्त्री ! आप मुझ पति के साथ सौ वर्ष तक जीवित रहें ॥५२ ॥

३८४४. त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।

तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥५३ ॥

हे शुभकारिणी स्त्री ! बृहस्पतिदेव और मेधावीजनों के आशीर्वाद से त्वष्टादेव ने इस सुखकर वस्त्र को विनिर्मित किया है । सवितादेव और भगदेव जिस प्रकार सूर्यपुत्री को वस्त्र धारण कराते हैं, उसी प्रकार इस स्त्री को सन्तानादि से परिपूर्ण करें ॥५३ ॥

३८४५. इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।

बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥५४ ॥

इन्द्र, अग्नि, द्यावा-पृथिवी, वायु, मित्र, वरुण, भग दोनों अश्विनीकुमार, बृहस्पति, मरुद्‌गण, ब्रह्म और सोम ये सभी देवशक्तियाँ इस नारी को श्रेष्ठ सन्तानों के साथ प्रवृद्ध करें ॥५४ ॥

३८४६. बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।

तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥५५ ॥

पहले बृहस्पतिदेव ने सूर्या का केश विन्यास किया था, उसी का अनुसरण करते हुए दोनों अश्विनीकुमार इस नारी को पति प्राप्ति के लिए सुशोभित करें ॥५५ ॥

३८४७. इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।

तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥५६ ॥

यह वही दर्शनीयरूप है, जिसे युवा स्त्री धारण करती है । युवती के मनोभावों को मैं भली प्रकार समझता हूँ । नूतन गतिवाली सखियों के अनुसार मैं उस (स्त्री) का अनुसरण करता हूँ । इन बालों का गुन्थन किस समझदार स्त्री (सखी) ने किया है ॥५६ ॥

३८४८. अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।

न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥५७ ॥

मैं इस स्त्री के अन्तःकरण को जानता हुआ और उसकी छवि को देखता हुआ, उसे अपने हृदय में प्रतिष्ठित करता हूँ । मैं चोरी का अन्न ग्रहण नहीं करता । मैं स्वयं वरुणदेव के बन्धनों को ढीला करता हुआ मन की अस्थिरता से युक्त होता हूँ ॥५७ ॥

३८४९. प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥५८ ॥

सवितादेव ने जिस वरुणपाश से आपको आबद्ध किया था, हे स्त्री ! उस वरुण पाश से मैं आपको मुक्त करता हूँ । आप सुयोग्या, सहधर्मिणी के लिए विस्तृत स्थान और श्रेष्ठ गमन योग्य मार्ग निर्मित करता हूँ ॥५८ ॥

३८५०. उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥५९ ॥

(धर्मपत्नी को पीड़ित करने वाले) दुष्ट राक्षसों का संहार करने के लिए आप लोग अस्त्र-शस्त्रों को उठाएँ । इस स्त्री को सदैव पुण्यकर्मों में संलग्न रखें, ज्ञान सम्पन्न विधाता के मार्गदर्शन से इसे पति की प्राप्ति हुई है । राजा भग ऐसा जानते हुए विवाह कार्य में अग्रगामी हों ॥५९ ॥

३८५१. भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥६० ॥

भगदेव ने पावों के चार आभूषण और शरीर पर धारण करने के चार कमल पुष्प बनाये; त्वष्टादेव ने कमर में बाँधने योग्य कमरपट्टा बनाया । इन्हें धारण करके यह स्त्री श्रेष्ठ - मंगलकारिणी बने ॥६० ॥

३८५२. सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ॥६१ ॥

हे सूर्य पुत्री ! आप अपने पतिगृह की ओर जाते हुए सुन्दर प्रकाशयुक्त पलाशवृक्ष से बने तथा शाल्मलिवृक्ष या मलरहित (काष्ठ) से विनिर्मित नानारूप, स्वर्णिम वर्ण, श्रेष्ठ और सुन्दर चक्रयुक्त रथ पर आरूढ़ हों । आप पति के निमित्त, अमृत स्वरूप लोक को सुखकारी बनाएँ ॥६१ ॥

३८५३. अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते ।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ॥६२ ॥

हे वरुण, बृहस्पति, इन्द्र और सविता देवो ! आप इस वधू को पतिगृह में भाई, पशु और पति किसी को भी हानि न पहुँचाने वाली (सुखदायी) तथा श्रेष्ठ सन्तति प्रदात्री बनाएँ ॥६२ ॥

३८५४. मा हिंसिष्टं कुमार्यं१ स्थूणे देवकृते पथि ।
शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥६३ ॥

हे दो स्तम्भो ! आप देवशक्तियों द्वारा बनाये मार्ग पर इस वधू को ले जाने वाले रथ को हानि न पहुँचाएँ । हम गृहरूप देवता के द्वार पर वधू के आगमन मार्ग को सुखदायक बनाते हैं ॥६३ ॥

३८५५. ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥६४ ॥

इस वधू के आगे, पीछे, भीतर, मध्य सभी ओर ब्रह्म अर्थात् ईश प्रार्थना के मन्त्र गुञ्जरित हों । आधि-व्याधि रहित पति की गृहरूप देवनगरी को प्राप्त करके यह पतिगृह में मंगलकारिणी और सुख देने वाली होकर विराजमान रहे ॥६४ ॥

[२ - विवाह - प्रकरण सूक्त]

[ऋषि- सावित्री, सूर्या । देवता- १९, १२-३५, ३७-७५ आत्मा, १० यक्ष्मनाशनी, ११ दम्पती परिपन्थनाशनी, ३६ देवगण । छन्द- अनुष्टुप्, ५-६, १२, ३१, ४० जगती, ९ त्र्यवसाना षट्पदा विराट् अत्यष्टि, १३-१४, १७-१९, ४१-४२, ४९, ६१, ७०, ७४-७५ त्रिष्टुप्, २४-२५, ३२, ३४, ३६, ३८ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्, १५, ५१ भुरिक् अनुष्टुप्, २० पुरस्ताद् बृहती, २६ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री, ३३ विराट् आस्तार पंक्ति, ३५ पुरोबृहती त्रिष्टुप्, ३७, ३९ भुरिक् त्रिष्टुप्, ४३ त्रिष्टुब्गर्भा पंक्ति, ४४ प्रस्तार पंक्ति, ४७ पथ्या बृहती, ४८ सतः पंक्ति, ५० उपरिष्टात् निचृद् बृहती, ५२ विराट् परोष्णिक्, ५९-६०, ६२ पथ्यापंक्ति, ६८ विराट् पुरउष्णिक्, ६९ त्र्यवसाना षट्पदा अतिशक्वरी, ७१ बृहती ।]

३८५६. तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह । स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥१

हे अग्निदेव ! दहेज (कन्याधन) के रूप में सूर्या को सर्वप्रथम आप (यज्ञाग्नि) के ही समीप ले जाया जाता है । आप पति को श्रेष्ठ सुसन्तति वाली स्त्री प्रदान करें अर्थात् विवाहितों को सुसन्तति से सम्पन्न बनाएँ ॥१ ॥

३८५७. पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥२ ॥

अग्नि ने पुनः दीर्घायु, तेजस्वी और कान्तियुक्त पत्नी प्रदान की । इसके जो पति हैं, वे चिरंजीवी होकर शतायु तक जीवित रहें ॥२ ॥

मन्त्र क्र० ३ और ४ में सूर्या के अवतरण का क्रम वर्णित है । सूर्या प्रकृतिगत पदार्थ - उत्पादक विधा है । उसका प्रथम स्वामी सोम (सूक्ष्म पोषक विकिरण) हुआ, इस समय वह सावित्री थी । सोम से गन्धर्व (गो- किरणों को धारण करने वाले आदित्य) को वह शक्ति प्राप्त हुई । आदित्य- सूर्य ने उसे भूमि पर अग्नि को प्रदान किया, तब वह सूर्या हुई । अग्नि से वह उर्वरा शक्ति मनुष्यों को प्राप्त हुई । मनुष्यों या प्राणियों को वह भूमिगत तथा नारी जातिगत उर्वरता के रूप में प्राप्त हुई । अश्व सम्बोधन शक्ति का द्योतक है । इस द्विधा (जड़ एवं चेतन प्रकृतिगत) उर्वरता को फलित करने वाले शक्ति-प्रवाहों को अश्विनीकुमार कहना युक्ति संगत है । पृथ्वी की उर्वरता से प्राणियों तथा प्राणियों के कारण भूमि के उत्पादन का क्रम जुड़ा हुआ है, यह दोनों प्रवाह एक साथ जुड़े होने से अश्विनीकुमारों को जुड़वाँ कहा जाना भी समीचीन है । सूर्या का वरण सोम द्वारा, फिर गन्धर्व द्वारा, फिर अग्नि के द्वारा तथा अन्त में अश्विनीकुमारों द्वारा होने का आलंकारिक वर्णन इस प्रक्रिया में भलीप्रकार सिद्ध होता है-

३८५८. सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः

हे सूर्ये ! सोम ने सर्वप्रथम पत्नीरूप में आपको प्राप्त किया । तदनन्तर गन्धर्व आपके पति हुए, आपके तीसरे पति अग्निदेव हैं । मनुष्य वंशज आपके चौथे पति हैं ॥३ ॥

३८५९. सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये । रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् । ।४

सोम ने, (स्त्री को) गन्धर्व को दिया । गंधर्व ने अग्नि को दिया, तदनन्तर अग्नि ने (भूमि से उत्पन्न) ऐश्वर्य और (नारी से उत्पन्न) सन्तानसहित मुझे (मनुष्य को) प्रदान किया ॥४ ॥

३८६०. आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अरंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥५ । ।

हे अन्न और ऐश्वर्ययुक्त अश्विनीकुमारो ! आप हमारे प्रति कृपादृष्टि रखें, हमारी मानसिक इच्छाओं की पूर्ति में सहायक हों तथा आप हमारे लिए कल्याणकारी हों । हम अपने पति की प्रेमपात्र बनकर पतिगृह को सुशोभित करें ॥५ ॥

३८६१. सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।

सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥६ ॥

हे देवि ! आप कल्याणकारी मन से सभी वीरों से युक्त श्लाघ्य धन को पुष्ट करें । हे अश्विनीकुमारो ! आप इस तीर्थ को फलीभूत करते हुए पथ में मिलने वाली दुर्मति का निवारण करें ॥६ ॥

३८६२. या ओषधयो या नद्यो३ यानि क्षेत्राणि या वना ।

तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥७ ॥

हे सौभाग्यवती वधु ! जो ओषधियाँ नदियों, खेत और वन में हैं , वे आपको सन्ततियुक्त करें और आपके पति को आसुरी वृत्तियों से सुरक्षित रखें ॥७ ॥

३८६३. एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।

यस्मिन् वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥८ ॥

हम उन सुगम मार्गों से प्रयाण करें , जो रथादि वाहनों के लिए कल्याणकारी हैं, जिनमें निर्भयता के कारण शौर्य- क्षमता का क्षय न हो अथवा धन-सम्पदा प्राप्त हो ॥८ ॥

३८६४. इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दम्पती वाममश्नुतः ।

ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः ।

स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥९ ॥

हे मनुष्यो ! आप सभी लोग हमारी इस उद्घोषणा को सुनें, जिसके आशीर्वाद से विवाहित स्त्री- पुरुष श्रेष्ठ सांसारिक सुखों का उपभोग करें । इन वनस्पतियों में जो दिव्य गंधर्व और अप्सराएँ हैं, वे इस वधू के लिए सुखदायी हों और इस कन्याधन को ले जाने वाले रथ को विनष्ट न करें ॥९ ॥

३८६५. ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु ।

पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥१० ॥

चन्द्रमा की तरह शोभन वधू के जीवन में जो (शारीरिक- मानसिक) रोग जन्मदाता माता-पिता से स्वभावतः आते हैं, यजनीय देवगण उन्हें उनके पिछले स्थान पर पुनः लौटाएँ, जहाँ से वे आए थे ॥१० ॥

३८६६. मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।

सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥११ ॥

जो रोगरूपी शत्रु दम्पती के समीप आते हैं, वे विनष्ट हों । वे सुगम मार्गों से दुर्गम स्थानों में चले जाएँ। शत्रुसमूह हमारे यहाँ से दूर चले जाएँ ॥११ ॥

३८६७. सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।

पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु ॥१२ ॥

कन्याधन से युक्त रथ को घर के सभी परिजन ज्ञानपूर्वक प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखें । इस प्रकार हम इसे उद्घाटित करते हैं । इसमें जो भी (गृहस्थाश्रम के लिए उपयोगी) विविध-वर्णों की वस्तुएँ बँधी हैं, उन्हें सवितादेव पति-पत्नी के लिए सुखकर बनाएँ ॥१२ ॥

३८६८. शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।

तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥१३ ॥

यह मंगलकारी स्त्री पतिगृह में पहुँच गयी है । विधाता ने इसके लिए यही स्थान (पतिगृह) निर्देशित किया है । दोनों अश्विनीकुमार अर्यमादेव, भगदेव तथा प्रजापति ब्रह्मा- ये सभी देवगण इस वधू को श्रेष्ठ सन्तति से समृद्ध करें ॥१३ ॥

३८६९. आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।

सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ॥१४ ॥

आत्मिक शक्तिसम्पन्न तथा श्रेष्ठ सन्तति की उत्पादन शक्ति से युक्त यह स्त्री वधू के रूप में पति के घर पहुँच गई है । हे पौरुष सम्पन्न मनुष्य ! आप इस स्त्री में अपने वीर्य रूप वंशानुक्रम बीज का वपन करें, तत्पश्चात् यह स्त्री वीर्यवान् पुरुष के वीर्य और दूध को धारण करती हुई अपने गर्भाशय से सन्तान उत्पन्न करे ॥१४ ॥

३८७०. प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।

सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥१५ ॥

हे सरस्वती स्वरूपा स्त्री ! आप पतिगृह में गौरव (प्रतिष्ठा) को प्राप्त करें, आप घर की साम्राज्ञी हैं, आपके पति विष्णुदेव के समान यहाँ हैं और आप लक्ष्मी स्वरूपा हैं । हे अन्नवती देवि ! आपके ऊपर भाग्यदेवता की महान् अनुकम्पा रहे और आपको श्रेष्ठ सन्तति का लाभ प्राप्त हो ॥१५ ॥

३८७१. उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।

मादुष्कृतौ व्येनसावघ्न्यावशुनमारताम् ॥१६ ॥

हे जल ! आपकी तरंगें रथ की धुरी से टकराती रहें । हे दुष्कर्महीना, पापरहिता, अनिन्दनीया नदियो ! आपको (प्रवाहित होने में) कोई बाधा न हो ॥१६ ॥

३८७२. अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।

वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥१७ ॥

हे वधु ! आप सुखकारिणी, स्नेहदृष्टि से युक्त, कल्याणकारिणी, सेवा करने वाली, श्रेष्ठ नियमों पर चलने वाली, वीर सन्तानों को जन्म देने वाली, देवर की (कल्याण) कामना वाली, पति को क्षीण न करने वाली और शुभ अन्तर्भावनाओं से युक्त हो, जिससे हम आपसे वृद्धि को प्राप्त करें ॥१७ ॥

३८७३. अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।

प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥१८ ॥

देवर और पति को कष्ट न पहुँचाती हुई, पशुओं के लिए हितकारिणी, श्रेष्ठ नियमों पर चलने वाली, श्रेष्ठ तेजस्विता - सम्पन्न, सन्तानयुक्त वीर सन्तानों को जन्म देने वाली, पतिगृह में देवर का कल्याण चाहती हुई, सुखदायिनी बनकर आप इस गार्हपत्य अग्नि की हवन द्वारा अर्चना करें ॥१८ ॥

३८७४. उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।

शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥१९ ॥

हे पाप देवी निर्ऋति ! आप यहाँ से उठें, आप कौन सी अभिलाषा से यहाँ उपस्थित हुई हैं ? हम अपने घर से भगाते हुए आपका निरादर करते हैं ; क्योंकि आप घर को सुनसान (मरघट) करने की इच्छा से प्रेरित होकर यहाँ आई हैं, अतएव हे शत्रुरूपिणी निर्ऋति ! आप यहाँ से उठकर भाग जाएँ , यहाँ विचरण न करें ॥१९ ॥

३८७५. यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।

अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥२० ॥

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व वधू गार्हपत्य अग्नि की पूजा- अर्चना करे, तत्पश्चात् हे स्त्री ! आप सरस्वती देवी और पितरजनों को नमन-वन्दन करें ॥२० ॥

३८७६. शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे । सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥

पति अपनी धर्मपत्नी के लिए आसनरूपी मृगचर्म (सुखदायी आसन-बिछौना) और संरक्षण साधन को लेकर आएँ । हे सिनीवालि (अन्नवती देवी) ! यह स्त्री भली प्रकार सन्तान को जन्म दे और सौभाग्य के श्रेष्ठ आशीर्वाद को प्राप्त करे ॥ २१ ॥

३८७७. यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन ।

तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ॥२२ ॥

आपके द्वारा बिछाई गई चटाई और मृगचर्म पर यह श्रेष्ठ सन्तान को जन्म देने वाली और पति को प्राप्त करने वाली कन्या आरोहण करे ॥२२ ॥

३८७८. उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते ।

तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ॥२३ ॥

सर्वप्रथम चटाई फैलाएँ, उस पर मृगचर्म को बिछाएँ, वहाँ श्रेष्ठ सन्तान को जन्म देने वाली स्त्री बैठकर अग्नि की अर्चना करे ॥२३ ॥

३८७९. आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।

इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः ॥२४ ॥

आप मृगछाल पर आरोहण करके अग्निदेव के समीप बैठें । ये अग्निदेव सभी दुष्ट राक्षसों का संहार करने में सक्षम हैं । आप इस घर में अपने पति के लिए सुसन्तति को जन्म दें । आपकी यह प्रथम ज्येष्ठ सन्तान सुयोग्य और सुसंस्कृत बने ॥२४ ॥

३८८०. वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः ।

सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ॥२५ ॥

मातृत्व को धारण करने वाली इस स्त्री के साथ नानाविध रूप- वर्ण वाले, गाय आदि पशु रहें । हे उत्तम मंगलमयी स्त्री ! आप अग्निदेव के समीप बैठकर देवों को सुशोभित करें ॥२५ ॥

३८८१. सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।

स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥२६ ॥

हे वधु ! श्रेष्ठ मंगलकारिणी, गृहव्यवस्था का संचालन करने वाली, पति की सेवा करने वाली, श्वसुर को सुख पहुँचाने वाली तथा सास को आनन्दित करनें वाली आप इस घर में प्रविष्ट हों ॥२६ ॥

३८८२. स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥२७ ॥

आप श्वसुरों के लिए मंगलमयी हों, पति और घर के लिए कल्याणकारिणी हों । आप सभी परिवारीजनों को सुख देती हुई उनकी पुष्टि के लिए सुखदायिनी बनें ॥२७ ॥

३८८३. सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥२८ ॥

यह वधू मंगलकारिणी है । सभी जन एकत्र होकर इसे देखें । इसको सौभाग्य प्रदान करने का आशीर्वाद देकर, दुर्भाग्य दूर करते हुए वापस लौट जाएँ ॥२८ ॥

३८८४. या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्व१स्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥२९ ॥

जो द्वेष भावना से युक्त युवतियाँ और वृद्धा स्त्रियाँ हैं, वे सभी इस वधू को अपनी तेजस्विता देकर अपने-अपने घर वापस चली जाएँ ॥२९ ॥

३८८५. रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥३० ॥

मन को सुन्दर लगने वाले बिस्तरों से युक्त, अनेक शोभा- सज्जा को धारण करने वाले सुखदायक रथ पर सूर्य पुत्री सावित्री विशाल सौभाग्य को उपलब्ध करने के लिए आरोहण करती हैं ॥३० ॥

३८८६. आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥३१ ॥

आप मन में प्रसन्नता के भावों को धारण करती हुई बिस्तर पर आएँ और पति के लिए श्रेष्ठ सन्तति को जन्म दें । इन्द्राणी के समान श्रेष्ठ बुद्धिमती होकर, उषःकाल से पहले जागकर निद्रा से निवृत्त होकर उठ जाएँ ॥३१ ॥

३८८७. देवा अग्रे न्य पद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्व स्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ॥३२ ॥

प्राचीनकाल में देवगण भी अपनी सहयोगी शक्तियों के सहभागी हुए और अपने शरीर को उनके शरीर के साथ संयुक्त करते थे । हे स्त्री ! आप भी सूर्या के समान अपनी महिमा से अनेक रूप होकर श्रेष्ठ संतति निर्माण की इच्छा से पति के साथ संयुक्त होकर वास करें ॥३२ ॥

३८८८. उत्तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।
जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥३३ ॥

हे ऐश्वर्य सम्पन्न वर श्रेष्ठ ! आप यहाँ से उठ खड़े हों, हम आपका स्वागत करते हैं । आप पिता के घर में वास करने वाली शोभायुक्त वधू का वरण करने की अभिलाषा करें, वह आपका ही भाग है । इस स्त्री के जन्म सम्बन्धी वृत्तान्त आप जानें ॥३३ ॥

आगे के विवरण से स्पष्ट हो जाता है, यह सब कथन केवल लौकिक दम्पतियों के लिए नहीं है । लौकिक दम्पतियों पर तो यह लागू होते ही हैं, उस उपलक्षण के साथ प्रकृति के उत्पादक चक्र की ओर ऋषि का संकेत स्पष्ट दिखाई देता है । इस क्रम में

नारी को अप्सरा कहा गया है। अप्सरा का अर्थ होता है - अप् से उत्पन्न। अप् वेद में सृष्टि के मूल उत्पादक- धारक प्रवाह को कहा गया है। उससे ही उर्वर प्रकृति उत्पन्न हुई, इसलिए वह अप्सरा है। सामान्य अर्थों में अप् का अर्थ जल या जीवनरस होता है। अन्तरिक्ष में पर्जन्य की वृष्टि से लेकर गर्भ में जीवन के विकास तक यह सभी जल या जीवन रस की धारक शक्ति से ही सम्भव होते हैं। इस धारक प्रकृति में पुरुष के संयोग से जीवन चक्र आगे बढ़ता है। यहाँ उस पुरुष तत्त्व को गन्धर्व कहा गया है। गन्धर्व का अर्थ होता है, 'गां' अर्थात गौ का धारणकर्ता। गौ सम्बोधन वाणी, किरणों, इन्द्रियों तथा पृथ्वी के लिए प्रयुक्त होता है। धारक प्रकृति-अप्सराओं में इन्हीं के द्वारा रेतस् की स्थापना से जीवन चक्र आगे बढ़ता रहता है। इन सूत्रों को ध्यान में रखकर अध्येता मन्त्रार्थों में ऋषि मेधा की व्यापकता का रस एवं लाभ प्राप्त कर सकते हैं -

३८८९. अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च।

तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥३४॥

इस यज्ञ भूमि और सूर्य के बीच (अन्तरिक्ष) में अप्सराएँ (उर्वरधाराएँ) साथ-साथ मिलकर प्रसन्नतादायक कर्म में संलग्न होती हैं। वही (अन्तरिक्ष) आप (पुरुष) की तथा जनित्री (पत्नी या उर्वर प्रकृति) का (उत्पत्ति) स्थान है, आप (पुरुष) उनके समीप जाएँ। गन्धर्वों की ऋतु सामर्थ्य के साथ आपको नमन है ॥३४॥

३८९०. नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः।

विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ॥३५॥

गन्धर्व के हविर्भाग के लिए हमारा नमस्कार है और उनके तेजस्वी नेत्रों को भी हम नमन करते हैं। हे विश्वावसो ! हम आपको ज्ञान के साथ नमन करते हैं। अप्सरारूप स्त्री की ओर आप बढ़ें ॥३५॥

३८९१. राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम।

अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥३६॥

हम धन- सम्पदा के साथ श्रेष्ठ मनस्वितायुक्त हों, यहाँ से हम गन्धर्वों को ऊपर भेजते हैं। वह ईश्वर (परमदेव) परम उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हुआ है, जहाँ हम आयु को दीर्घ बनाते हुए पहुँचते हैं ॥३६॥

[यहाँ गन्धर्व सम्बोधन यज्ञीय या मंत्र ऊर्जा के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है।]

३८९२. सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः।

मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥३७॥

हे स्त्री- पुरुषो ! आप अपने रेतस् (उत्पादक तेज) की सामर्थ्य से ही माता-पिता बनने में सक्षम होंगे। अतः ऋतुकाल में संयुक्त हों। वीर्यवान् पुरुष के समान इस स्त्री के साथ संयुक्त हों। आप दोनों सन्तान को जन्म दें और धन- सम्पदा भी बढ़ाएँ ॥३७॥

३८९३. तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति।

या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥३८॥

हे पूषन् (पोषण में समर्थ) ! आप उस कल्याणकारिणी स्त्री (उर्वराशक्ति) को प्रेरित करें, जिसमें मनुष्य बीज वपन करते हैं। वह प्रेम प्रदर्शित करती हुई (उल्लसित होती हुई) अपने ऊरु प्रदेश को विस्तारित करती है। उसके गर्भ में उत्साहपूर्वक (फलित होने के विश्वास से) बीज स्थापित किया जाए ॥३८॥

३८९४. आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः।

प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥३९॥

आप स्त्री के साथ प्रेम पूर्वक संयुक्त हों, प्रसन्नचित्त होकर स्त्री का स्पर्श करें । आप दोनों आनन्द विभोर होते हुए सन्तान को जन्म दें । सवितादेव आप दोनों (स्त्री- पुरुषों) की आयु में वृद्धि करें ॥३९ ॥

३८९५. आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।

अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४० ॥

प्रजापालक परमेश्वर आप दोनों के लिए संतान उत्पन्न करें । अर्यमादेव आप दोनों को दिन-रात एक साथ रखें । हे वधु ! आप दोष - दुर्गुणों से रहित होती हुई पति के गृह में प्रविष्ट हों, आप हमारे दो पैर वाले और चतुष्पाद प्रजाओं के लिए सुखदायी हों ॥४० ॥

३८९६. देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद् वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।

यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥४१ ॥

मनु जी के साथ देवों ने इस वधू को वस्त्र प्रदान किया है, जो ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मण के लिए इस वधू के वस्त्र दान करते हैं, वे निश्चित ही शयन स्थान में उत्पन्न होने वाले राक्षसों (कुसंस्कारों) को विनष्ट करते हैं ॥४१ ॥

[उत्पादक प्रकृति का रक्षक आवरण देवताओं द्वारा प्रदान किया गया है । उस संरक्षक आवरण के संरक्षण का अधिकार ब्रह्मनिष्ठों को दिया जाना चाहिए, इससे उत्पादन चक्र में हीन-आसुरी प्रवृत्तियों, शक्तियों के प्रवेश को रोका जा सकता है ।]

३८९७. यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।

युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥४२ ॥

हे बृहस्पति और इन्द्रदेवो ! आप दोनों ही ब्रह्मा के निर्देश से विवाह के समय के वधू - वस्त्र और सामान्य वधू के वस्त्र ब्राह्मण का भाग जानकर हमें प्रदान करें ॥४२ ॥

३८९८. स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।

सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥४३ ॥

हे स्त्री- पुरुषो ! सुखदायक गृह में भली प्रकार जागते हुए, हास्य विनोद करते हुए, स्नेहपूर्वक प्रसन्नचित होते हुए, सुन्दर इन्द्रियों या गौओं से युक्त, सुसन्तति सम्पन्न, श्रेष्ठ गृह सामग्रियों से युक्त, जीवनतत्त्व को धारण करते हुए आप दोनों (नर-नारी अथवा पुरुष एवं प्रकृति) प्रकाशमयी उषाओं (विकासमान जीवन) के साथ तैर जाएँ (पार हो जाएँ) ॥४३ ॥

३८९९ नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः ।

आण्डात् पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ॥४४ ॥

नूतन परिधान पहिनते हुए, सुरक्षित जीवन को धारण करते हुए, सुन्दर निवास से युक्त हम जीवधारी मनुष्य तेजस्वी प्रभात वेला में जागते रहें । अण्डे से पक्षी के बाहर आने के समान हम सभी प्रकार के दुष्कर्मों (पापों) से मुक्ति प्राप्त करें ॥४४ ॥

[जब अन्दर के जीव का शरीर परिपक्व हो जाता है तो वह उस संकीर्ण आवरण को तोड़कर बाहर निकलता है । इसी आधार पर अण्डज पक्षी को द्विज कहते हैं । मनुष्य भी साधना द्वारा परिपक्व होकर जब संकीर्णता से बाहर निकलता है, तो द्विज कहलाता है, तब वह मुक्ति मार्ग पर चल पड़ता है ।]

३९००. शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।

आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४५ ॥

द्युलोक और पृथ्वी दोनों निकटतापूर्वक सुख प्रदान करने वाले महान् व्रत (नियम) पालने वाले तथा विशेष रूप से शोभायमान हैं । इनके मध्य सात दिव्य जल (प्राण) प्रवाह बह रहे हैं । वे जल (प्राण) प्रवाह हमें पाप कर्मों से विमुक्त करें ॥४५ ॥

३९०१. सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥४६ ॥

सूर्या (उषा), देवगण, मित्र और वरुणादि देवों तथा सभी प्राणियों को जो ज्ञान प्रदान करने वाले देव हैं, हम उन्हें प्रणाम करते हैं ॥४६ ॥

३९०२. य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विहुतं पुनः ॥४७ ॥

जो इन्द्रदेव हँसुली (गले से नीचे की हड्डी) को रक्त निकलने से पूर्व संधान द्रव्य के बिना ही जोड़ देते हैं, (जो कठिनतम कार्यों को सुगमता से सम्पन्न कर देते हैं), प्रचुर धन के स्वामी वे इन्द्रदेव छिन्न-भिन्न होने वालों को पुनः जोड़ (एकत्र कर) देते हैं ॥४७ ॥

[शरीर में तथा विराट् प्रकृति में भी जो टूट-फूट होती है, इन्द्रशक्ति बिना किसी जोड़ने वाले (मित्र) पदार्थ की सहायता के उन (अंग-अवयवों या इकाइयों) को पुनः जोड़ देने में समर्थ है । शरीर के रक्त- स्राव अथवा प्रकृति के ऊर्जा-प्रवाहों के नष्ट होने के पहले ही यह उपचार हो जाता है ।]

३९०३. अपास्मत् तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्य१स्मिन् तां स्थाणावध्या सजामि ॥४८ ॥

जो नीला, पीला और लाल वर्ण का अज्ञानरूप धूम्र है, वह हमसे दूर भाग जाए । जो जलाने वाली दोषावस्था इसमें विद्यमान है, उसे हम स्तम्भ में स्थापित करते हैं ॥४८ ॥

३९०४. यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि ॥४९ ॥

इस उपवस्त्र में जितने विघातक तत्त्व, राजा वरुण के पाश (बन्धन), दरिद्रतायुक्त स्थितियाँ तथा विकारों से युक्त दुरवस्थाएँ हैं, उन्हें हम इसी स्तम्भ में स्थापित करते हैं अर्थात् इस वस्त्र से पृथक् करते हैं ॥४९ ॥

३९०५. या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥५० ॥

मेरा शरीर जो सुडौल और हृष्ट-पुष्ट है, वस्त्र धारण करने से उसकी कान्ति घटने लगती है, इसलिए हे वनस्पतिदेव ! सर्वप्रथम आप उसकी ग्रन्थि को (ठीक-ठीक) बनाएँ, जिससे हम व्यथित न हों ॥५० ॥

[यहाँ सूक्ष्म देह द्वारा स्थूल देह का आवरण धारण करते समय बरती गयी सावधानी का संकेत परिलक्षित होता है ।]

३९०६. ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।
वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ॥५१ ॥

जिस वस्त्र में (प्राणों और पंच तत्त्वों के) ताने- बाने वाले सूत्र हैं, जो उत्तम वस्त्र हमारी नारी वर्ग ने बुनकर तैयार किया है, जिसमें सुन्दर किनारियाँ और झालरें लगाई गई हैं, वह वस्त्र हमारे लिए सुखदायी स्पर्श देने वाला हो ॥५१ ॥

३९०७. उशतीः कन्दला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥५२ ॥

पितृगृह से पतिगृह में आती हुई और श्रेष्ठ वर की कामना से युक्त ये कन्याएँ, गृहस्थधर्म के दीक्षाव्रत को धारण करें, यह सुन्दर उक्ति है (अथवा इस संदर्भ में आहुति को समर्पित करते हैं) ॥५२ ॥

३९०८. बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५३ ॥

बृहस्पतिदेव द्वारा रचित इस ओषधि अथवा दीक्षा को सम्पूर्ण देवों ने ग्रहण किया है, उसे हम गौओं (गौओं-इन्द्रियों) में प्रविष्ट हुए वर्चस् से संयुक्त करते हैं ॥५३ ॥

३९०९. बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५४ ॥

बृहस्पतिदेव द्वारा विरचित इस ओषधि या दीक्षा को विश्वेदेवों ने ग्रहण किया, उसे हम गौओं में प्रविष्ट हुई तेजस्विता से संयुक्त करते हैं ॥५४ ॥

३९१०. बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥५५ ॥

बृहस्पतिदेव द्वारा निर्मित इस ओषधि अथवा दीक्षा को विश्वेदेवों ने धारण किया, उसे हम गौओं में प्रविष्ट हुए परम सौभाग्य से संयुक्त करते हैं ॥५५ ॥

३९११. बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५६ ॥

बृहस्पतिदेव द्वारा सृजित यह ओषधि या दीक्षा सभी देवों द्वारा स्वीकार हुई है, उसे हम गौओं में प्रविष्ट हुई यशस्विता से संयुक्त करते हैं ॥५६ ॥

३९१२. बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५७ ॥

बृहस्पति द्वारा रचित इस ओषधि या दीक्षा को समस्त देवों द्वारा धारण किया गया है । उसे हम गौओं में प्रविष्ट हुए दूध से संयुक्त करते हैं ॥५७ ॥

३९१३. बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥५८ ॥

बृहस्पति द्वारा निर्मित इस ओषधि अथवा दीक्षा को सभी देव शक्तियों ने धारण किया है । उसे हम गौओं में प्रविष्ट हुए रस से संयुक्त करते हैं ॥५८ ॥

३९१४. यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोऽघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥५९ ॥

यदि लम्बे केशयुक्त ये लोग आपके घर में कन्या के जाने से दुखित होकर रुदन करते हुए घूमते रहें, तो उस पाप से अग्नि और सवितादेव आपको बचाएँ ॥५९ ॥

३९१५. यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्य१घम् ।

अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६० ॥

यदि यह पुत्री आपके घर में केशों को खोलकर रुदन करती हुई, दुःख को बढ़ाती रहे, तो उससे उत्पन्न पाप-दोष से अग्निदेव और सवितादेव आपको संरक्षित करें ॥६० ॥

३९१६. यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।

अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६१ ॥

जो बहिनें और स्त्रियाँ आपके घर में कन्या के गमन से दुखित होकर रोती रहें , तो (उनके इस कृत्य से) समुत्पन्न पापदोष से अग्नि और सवितादेव आपको संरक्षित करें ॥६१ ॥

३९१७. यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम् ।

अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥६२ ॥

पाप- दुःख फैलाने वालों ने जो आपके परिवार, सन्तति, पशुओं और घर में दुःखद वातावरण बना दिया है, उससे लगे पाप से सविता और अग्निदेव आपको मुक्त करें ॥६२ ॥

३९१८. इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।

दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥६३ ॥

धान्य, खीलों की आहुति समर्पित करती हुई, यह नारी ईश्वर से प्रार्थना करती है कि मेरा पति दीर्घायु बनकर सौ वर्ष तक जीवन यापन करे ॥६३ ॥

३९१९. इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।

प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्य१श्नुताम् ॥६४ ॥

हे देवराज इन्द्र ! इस दम्पती को चक्रवाक(चकवा-चकवी) के जोड़े के समान स्नेहभाव बनाये रखने के लिए प्रेरित करें । ये दोनों श्रेष्ठ गृह और श्रेष्ठ सन्तान से युक्त होकर आजीवन विभिन्न भोगों को प्राप्त करें ॥६४ ॥

३९२०. यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् ।

विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥६५ ॥

बैठक (बैठने की चौकी) पर, बिस्तर (सिरहाना) पर, उपवस्त्र पर तथा विवाह के समय जो कोई पाप या घातक (कृत्या) प्रयोग हुए हों, उन्हें हम स्नान द्वारा (आत्मशुद्धि से) धो डालते हैं ॥६५ ॥

३९२१. यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् ।

तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥६६ ॥

विवाह संस्कार और बरात के रथ में जो कोई दुष्कृत्य और पापकर्म बन गये हों, उन्हें हम मृदुभाषी के कम्बल (आवरण) में स्थापित करते हैं ॥६६ ॥

३९२२. संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६७ ॥

हम याज्ञिक जन, मल को संभल से तथा दुरितों को कम्बल से शुद्ध करके दोषरहित (पवित्र) हों । यज्ञदेव हमारी आयु का विस्तार करें ॥६७ ॥

३९२३. कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।
अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥६८ ॥

सैकड़ों दाँत वाला जो कृत्रिम कंघा है, वह इस वधू (प्रकृति) के सिर की मलीनता को दूर करके उसे स्वच्छ बनाए ॥६८ ॥

[यज्ञ, मन्त्र एवं सद्भाव की शक्ति से प्रकृति को स्वच्छ करने की विद्या ऋषियों के पास थी । अगले मन्त्रों के भाव से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह सब प्रार्थना केवल लौकिक वधू के लिए ही नहीं की गयी है ।]

३९२४. अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।
तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्व१न्तरिक्षम् ।
अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत् पितृंश्च सर्वान् ॥६९ ॥

हम इस वधू या प्रकृति के प्रत्येक अंग से रोगों को दूर करते हैं । यह दोष पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक और देव-शक्तियों को प्राप्त न हो । हे अग्निदेव ! यह मलीनता जल, यम और पितरजनों को भी कष्ट न दे सके ॥६९ ॥

३९२५. सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् ।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥७० ॥

हे वधु (प्रकृति) ! हम आपको पृथ्वी के दूध के समान पोषक तत्त्वों और ओषधियों के पौष्टिकतत्त्व से युक्त करते हैं । आपको श्रेष्ठ सन्तति और वैभव - सम्पदा से युक्त करते हैं । आप इन गुणों से युक्त होकर बलशालिनी हों ॥७० ॥

३९२६. अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं
पृथिवी त्वम् । ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥७१ ॥

हे नारी ! मैं पुरुष प्राणतत्त्व विष्णु हूँ , तो आप रयि (लक्ष्मी) हैं, मैं सामगान हूँ , तो आप ऋक् (ऋचा) हैं, मैं (पुरुष) द्युलोक (सूर्य शक्ति) हूँ , तो आप सहनशीलता की प्रतीक पृथ्वी हैं, हम दोनों पारस्परिक स्नेह से एकत्र होकर श्रेष्ठ सन्तति को जन्म दें ॥७१ ॥

३९२७. जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।
अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥७२ ॥

जैसे अविवाहित हम (दोनों) विवाह की कामना करते हैं, उसी प्रकार दाताजन पुत्र की अभिलाषा रखते हैं । हम जीवित रहने तक अन्न-धन आदि महान् सामर्थ्य की प्राप्ति हेतु एक साथ रहें ॥७२ ॥

३९२८. ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन् ।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥७३ ॥

बरात के आगमन पर नववधू के दर्शनार्थ जो सम्भ्रान्त स्त्री- पुरुष एकत्रित हों, वे सभी सुशीला नववधू को सन्तानवती होने का मंगल आशीर्वाद प्रदान करें ॥७३ ॥

३९२९. येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा ।

तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ॥७४ ॥

जो स्त्री रस्सी के समान अनेक धागों से संयुक्त होकर सर्वप्रथम इस गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने जा रही है, यहाँ उस वधू को धन और सुसंतति का मंगलमय आशीष देकर उसे पूर्व में अनुभवहीन मार्ग से सुरक्षित लेकर जाएँ । वह वधू तेजस्विनी और श्रेष्ठ प्रजावाली होकर विजयश्री प्राप्त करे ॥७४ ॥

३९३०. प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।

गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥७५ ॥

हे श्रेष्ठ ज्ञानवती स्त्री ! आप ज्ञानयुक्त रहकर सौ वर्ष का दीर्घजीवन प्राप्त करने के लिए जाग्रत् रहें । आप अपने पतिगृह जाएँ , वहाँ गृहस्वामिनी बनकर रहें, सर्वप्रेरक सवितादेव आपकी आयु को दीर्घ बनाएँ ॥७५ ॥

॥इति चतुर्दशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ पञ्चदशं काण्डम् ॥

[१ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (प्रथम पर्याय)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- अध्यात्म अथवा व्रात्य । छन्द- साम्नी पंक्ति, २ द्विपदा साम्नी बृहती, ३ एकपदा यजुर्ब्राह्मी अनुष्टुप्, ४ एकपदा विराट् गायत्री, ५ साम्नी अनुष्टुप्, ६ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती, ७ आसुरी पंक्ति, ८ त्रिपदा अनुष्टुप् ।]

इस काण्ड के सभी सूक्तों के देवता 'व्रात्य' हैं। 'व्रात्य' का प्रचलित अर्थ व्रतों का उल्लंघन करने वाला है। स्मृतियों में 'व्रात्य' सम्बोधन इसी सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है; किन्तु वेद में 'व्रात्य' का प्रयोग श्रेष्ठता के सन्दर्भ में किया गया है। यथा- 'व्रात' = समूह - समाज, तेभ्यः हितः अर्थात् उसका हितकारी 'व्रात्य' है। 'व्राते भवः' समूह में उत्पन्न व्रात्य है। मन्त्रों के भाव भी यही सिद्ध करते हैं कि वेद में व्रात्य का अर्थ विधेयात्मक गुणवाला है। मन्त्रों के भाव के अनुसार व्रत- संकल्पपूर्वक सृष्टि रचना में प्रवृत्त ईश्वरीय सत्ता एवं श्रेष्ठ व्रतों, ब्रह्मचर्यादि में प्रवृत्त देव - मानवों के लिए 'व्रात्य' सम्बोधन प्रयुक्त किया गया प्रतीत होता है-

३९३१. व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् ॥१ ॥

व्रात्य समूहपति ने व्रात्य स्थिति को प्राप्त करते ही प्रजापालक ब्रह्मा को श्रेष्ठ मार्गदर्शन प्रदान किया ॥१ ॥

३९३२. स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् ॥२ ॥

उस प्रजापति ब्रह्मा ने अपने में तेजस्वी आत्मा का दर्शन किया, तत्पश्चात् सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन किया ॥२ ॥

३९३३. तदेकमभवत् तल्ललाममभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत ॥३ ॥

वही प्रजापति देव महान्, विलक्षण, ज्येष्ठ (विशाल), ब्रह्मा (सृष्टि रचयिता), तपः शक्ति से युक्त और सत्यनिष्ठ बनें। मात्र उसी एक के द्वारा इस (व्रात्य) को उत्पन्न किया गया ॥३ ॥

३९३४. सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ॥४ ॥

वही प्रजापति वृद्धि को प्राप्त करके महान् बने और महादेव (महान् देवत्व के गुणों से सुशोभित) हुए ॥४ ॥

३९३५. स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत् ॥५ ॥

वही देवों के स्वामी और ईशान अथवा ईश्वरत्व के पद से अलंकृत हुए ॥५ ॥

३९३६. स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ॥६ ॥

वही व्रात्यसमूह के एकमात्र अधिपति हैं, उनके द्वारा जिस धनुष का स्पर्श किया गया (धारण किया गया), वही इन्द्रधनुष के नाम से कहा गया ॥६ ॥

३९३७. नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥७ ॥

इसकी पीठ लाल वर्ण और उदर (मध्य भाग) नील वर्ण से सुशोभित है ॥७ ॥

३९३८. नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥८॥

नील वर्ण के भाग से यह अप्रिय अर्थात् दुष्ट शत्रु को घेरता है और लाल वर्ण के पृष्ठभाग से, द्वेषभावना से ग्रसित शत्रुओं को विदीर्ण करता है, ऐसा तत्त्वज्ञानियों का कथन है ॥८ ॥

[इन्फ्रारेड और अल्ट्रावायलेट किरणों से रोगों के उपचार की विधि तो विज्ञान के हाथ लग गयी है, भावनात्मक परिष्कार की प्रक्रिया अभी शोध का विषय है। ध्यान योग के क्रम में विभिन्न रंगों के ध्यान से मानसिक प्रवृत्तियों के उपचार की प्रक्रिया योग विद्या में अवश्य उपलब्ध है।]

[२ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (द्वितीय पर्याय)]

[ऋषि- अथर्वा। देवता- अध्यात्म अथवा व्रात्य। छन्द- साम्नी अनुष्टुप्, २, १६, २२ साम्नी त्रिष्टुप्, ३ द्विपदार्षी पंक्ति, ४, १८, २४ द्विपदा ब्राह्मी गायत्री, ५, १३, १९, २५ द्विपदार्ची जगती, ७, १४(२), २०(२), २७ पदपंक्ति, ८, १४(३), २०(३), २८ त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप्, १० एकपदोष्णिक्, ११ द्विपदार्षी भुरिक् त्रिष्टुप्, १२ आर्षी परानुष्टुप्, १४(१) साम्नी पंक्ति, १७ द्विपदा विराट् आर्षी पंक्ति, २० आसुरी गायत्री, २३ निचृत् आर्षी पंक्ति ।]

३९३९. स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनुव्यचलत् ॥१ ॥

वह (व्रात्य) उन्नत हुआ और प्रगति मार्ग की प्रतीक पूर्व दिशा की ओर चल दिया ॥१ ॥

३९४०. तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्य चलन् ॥२ ॥

उसके पीछे बृहत्साम, रथन्तर साम, आदित्यगण तथा सभी दैवी शक्तियाँ चल पड़ीं ॥२ ॥

३९४१. बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य
आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥३ ॥

जो मनुष्य ज्ञानवान् व्रात्य (व्रतचारी) को अपमानित करते हैं, वे बृहत्, रथन्तर आदित्यगण तथा समस्त देवताओं के प्रति ही अवज्ञा- अवहेलना करते हैं ॥३ ॥

३९४२. बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च
देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि ॥४ ॥

जो उस (व्रात्य का) आदर करते हैं। वे बृहत्, रथन्तर आदित्यदेवों तथा समस्त देवशक्तियों की प्रिय पूर्व दिशा में अपना प्रियधाम बनाते हैं ॥४ ॥

३९४३. श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥५ ॥

उसके लिए श्रद्धा पुंश्चली (स्त्री रूप) मित्र (सूर्य मागधरूप स्तुति करने योग्य), विज्ञान लज्जा निवारक वस्त्र रूप, दिन शिरोवस्त्र (पगड़ी) रूप, रात्रि केश (बालों के) समान, सूर्य किरणें कर्णकुण्डल (आभूषण रूप) तथा आकाशीय तारागण मणिमुक्ताओं के समान होते हैं ॥५ ॥

३९४४. भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥६ ॥

अतीत (भूत) और भविष्यत्काल ये इसके परिष्कन्द (संरक्षक) होते हैं तथा मन जीवन-संग्राम रथ के समान होता है ॥६ ॥

३९४५. मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥७ ॥

मातरिश्वा (श्वास) और पवमान (उच्छ्वास) ये दो इसके रथ के घोड़े, प्राणवायु सारथि तथा रेष्मा (वायु), उसका चाबुकरूप होता है ॥७ ॥

३९४६. कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥८ ॥

जो व्रात्य इस प्रकार से योग्यता वृद्धि करते हैं, उनकी कीर्ति-यशस्विता अग्रसर (बढ़ती) होती है ॥८ ॥

३९४७. स उदतिष्ठत् स दक्षिणां दिशमनु व्य चलत् ॥९ ॥

वही व्रात्य उठकर (उन्नतिशील होकर) दक्षिण दिशा की ओर अनुकूलतापूर्ण स्थिति में विचरण करता है ॥९ ।

३९४८. तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥१० ॥

उसके पीछे यज्ञायज्ञीय, साम, वामदेव्य, यज्ञ (यज्ञीय सत्कर्म), यजमान (साधक) और पशुधन (गवादिपशु) भी अनुकूल होते हुए अर्थात् लाभप्रद होते हुए गमन करते हैं ॥१० ॥

३९४९. यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय
च पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥११ ॥

जो मनुष्य ज्ञान सम्पन्न व्रात्य की अवमानना करते हैं, वे यज्ञायज्ञीय और वामदेव्य साम, यज्ञीय सत्कर्मों, यजमान साधकों तथा पशुओं की ही अवज्ञा करते हैं ॥११ ॥

३९५०. यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य च
पशूनां च प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि ॥१२ ॥

(जो मनुष्य उस व्रात्य का आदर करते हैं) वे दक्षिण दिशा में यज्ञायज्ञीय और वामदेव्य साम, यज्ञादिकर्मों, यजमान साधकों तथा गौ आदि पशुओं के प्रियधाम बनते हैं ॥१२ ॥

३९५१. उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥१३ ॥

उसके निमित्त उषा पुंश्चली (स्त्रीरूप) , मंत्र प्रशंसा करने वाले (मागध), विशिष्ट ज्ञान (लज्जा निवारक) वस्त्ररूप, दिन (सिर के वस्त्र के समान) पगड़ीरूप, रात्रि (कृष्णवर्ण) बाल के समान, सूर्य किरणें कर्णकुण्डल (आभूषण) रूप तथा आकाशीय तारे मणि के समान होते हैं ॥१३ ॥

३९५२. अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् । मातरिश्वा च
पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः । कीर्तिश्च यशश्च
पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥१४ ॥

अमावास्या और पूर्णिमा उसके परिष्कन्द (संरक्षक) रूप होते हैं । मन उसका जीवन समर के रथ के समान होता है । मातरिश्वा (श्वास) और पवमान (उच्छ्‌वास) उसके जीवन रथ के घोड़े, प्राणवायु सारथिरूप तथा रेष्मा (वायु), उसका चाबुकरूप होता है । जो व्रात्य इस प्रकार से योग्यता वृद्धि करते हैं, उनकी कीर्ति अग्रसर होती है ॥

३९५३. स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥१५ ॥

वही व्रात्य उठकर (उन्नत होकर) पश्चिम दिशा की ओर अनुकूलतापूर्ण स्थिति में विचरण करता है ॥१५ ॥

३९५४. तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥१६ ॥

ऐसे में वैरूप तथा वैराज साम, जल और राजा वरुण ये सभी उसके लिए अनुकूलतापूर्वक गमन करते हैं ॥१६ ॥

३९५५. वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञ
आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥१७ ॥

जो मनुष्य विद्वान् व्रात्य के प्रति निन्दा का भाव रखते हैं, वे परोक्षरूप में वैरूप तथा वैराज साम, जल और राजावरुण की अवहेलना करते हैं ॥१७ ॥

३९५६. वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च
राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥१८ ॥

(इसके विपरीत जो उसके अनुकूल होकर रहते हैं) वे वैरूप तथा वैराज साम, जल और राजावरुण के प्रियधाम बनते हैं ॥१८ ॥

३९५७. इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥१९ ॥

उसके निमित्त भूमि पुंश्चली (स्त्री रूप) , हास्य प्रशंसा करने वाला (मागध) , विशिष्ट ज्ञान वस्त्ररूप, दिन शिरोवस्त्ररूप, रात्रि केश (बाल) रूप, किरणें कर्णकुण्डलरूप तथा आकाशीय तारागण मणियों के समान होते हैं ॥१९ ॥

३९५८. अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम् । मातरिश्वा च
पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः । कीर्तिश्च
यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥२० ॥

रात्रि और दिन उसके परिष्कन्द (संरक्षक) रूप हैं, मन उसके जीवन- समर के रथतुल्य है । मातरिश्वा (श्वास) और पवमान (उच्छ्वास) वायु उसके रथ के दो घोड़े, प्राणवायु सारथिरूप तथा रेष्मा (वायु) उसके चाबुक के समान हैं । जो व्रात्य इस प्रकार से योग्यता वृद्धि करते हैं, उनकी कीर्ति उसी स्तर से अग्रसर होती है ॥२० ॥

३९५९. स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥२१ ॥

वही व्रात्य उठकर (उन्नत होकर) उत्तर दिशा की ओर अनुकूल रीति से चलता है ॥२१ ॥

३९६०. तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्यचलन् ॥२२ ॥

श्यैत, नौधस, सप्तर्षि और राजा सोम भी ऐसे व्रात्य के अनुगामी होकर चलते हैं ॥२२ ॥

३९६१. श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च
राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥२३ ॥

जो मनुष्य ऐसे ज्ञानसम्पन्न व्रात्य की निन्दा करते हैं, वे श्यैत, नौधस, सप्तर्षि और राजा सोम को ही परोक्ष रूप में अपमानित करते हैं ॥२३ ॥

३९६२. श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमस्य च
राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि ॥२४ ॥

(परन्तु इसके विपरीत जो उसे आदर- सम्मान देते हैं) वे उत्तर दिशा में श्यैत, नौधस, सप्तर्षि और राजा सोम के ही प्रियधाम बनते हैं ॥२४ ॥

३९६३. विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥२५ ॥

उसके लिए विद्युत् स्त्रीरूप, गरजने वाले मेघमण्डल प्रशंसक, विज्ञान वस्त्ररूप, दिन (शिरोवस्त्र) पगड़ीरूप, रात्रि का अँधेरा केशरूप, सूर्यकिरणें कर्णकुण्डल (आभूषण) रूप तथा आकाश के तारे मणियों के समान होते हैं ॥२५ ॥

३९६४. श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥२६ ॥

श्रुत (सुना हुआ ज्ञान) और विश्रुत (विज्ञान) ये उसके परिष्कन्द (संरक्षक) रूप होते हैं तथा मन उसका (जीवन समर का) रथरूप है ॥२६ ॥

३९६५. मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥२७ ॥

मातरिश्वा (श्वास), पवमान (उच्छ्‌वास) वायु उसके जीवन रथ के दो घोड़े, प्राणवायु सारथिरूप और रेष्मा (वायु) उसके चाबुक के समान होते हैं ॥२७ ॥

३९६६. कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥२८ ॥

ऐसी योग्यता की वृद्धि करने वाले व्रात्य की कीर्ति और यशस्विता उसी स्तर से प्रवृद्ध होती है ॥२८ ॥

[३ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (तृतीय पर्याय)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- अध्यात्म अथवा व्रात्य । छन्द- १ पिपीलिकमध्या गायत्री, २ साम्नी उष्णिक्, ३ याजुषी जगती, ४ द्विपदार्ची उष्णिक्, ५ आर्ची बृहती, ६ आसुर्यनुष्टुप्, ७ साम्नी गायत्री, ८ आसुरी पंक्ति, ९ आसुरी जगती, १० प्राजापत्या त्रिष्टुप्, ११ विराट् गायत्री ।]

३९६७. सं संवत्सरमूर्ध्वो ऽतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् व्रात्य किं नु तिष्ठसीति ॥१ ॥

व्रात्य एक वर्ष पर्यन्त खड़ा रहा, ऐसी स्थिति में देवशक्तियों ने उससे कहा कि हे व्रात्य ! आप किस उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर तपश्चर्यारत हैं ॥१ ॥

३९६८. सो ऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥२ ॥

व्रात्य ने कहा कि आप हमारे निमित्त चौकी (बैठने का आसन) प्रदान करें ॥२ ॥

३९६९. तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥३ ॥

तब देवशक्तियों ने व्रात्य के निमित्त बैठने के लिए चौकी की रचना की ॥३ ॥

३९७०. तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥४ ॥

उस चौकी के दो पाये ग्रीष्म- वसन्त तथा दो पाये शरद- वर्षा ऋतुरूप हुए ॥४ ॥

३९७१. बृहच्च रथन्तरं चानूच्ये३ आस्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥५ ॥

दो बाजू के फलक (अनूच्य) बृहत् और रथन्तर साम तथा दो तिरछे फलक (तिरच्य) यज्ञायज्ञीय और वामदेव्य साम कहलाए ॥५ ॥

३९७२. ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥६ ॥

ऋग्वेद मंत्र लम्बाई (प्राञ्च) के तन्तु हुए तथा यजुर्वेद मंत्र तिरछे (तिर्यक्) तन्तु कहलाए ॥६ ॥

३९७३. वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥७ ॥

वेद ज्ञान उस व्रात्य का शयन बिछौना तथा ब्रह्म विद्या उसका ओढ़ने का ऊपरी वस्त्र था ॥७ ॥

३९७४. सामासाद उद्‌गीथो ऽपश्रयः ॥८ ॥

सामवेदीय ज्ञान उसका गद्दा तथा उद्‌गीथ उसका तकिया था ॥८ ॥

३९७५. तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥९ ॥

ऐसी ज्ञानरूप चारपाई (चौकी) पर व्रात्य ने आरोहण किया ॥९ ॥

३९७६.तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पाः प्रहाय्या३ विश्वानि भूतान्युपसदः ॥

देवशक्तियाँ उसकी परिष्कन्द (संरक्षणकर्त्री), सत्य संकल्प उसके सहायक तथा समस्त प्राणी उसके साथ बैठने वाले हुए ॥१० ॥

३९७७. विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ॥११ ॥

जो तत्वदर्शी हैं, वे सभी प्राणी उसके (व्रात्य के) साथ बैठने के योग्य होते हैं ॥११ ॥

[४- अध्यात्म- प्रकरण सूक्त (चतुर्थ पर्याय]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- अध्यात्म अथवा व्रात्य । छन्द- दैवी जगती, २, ८ आर्ची अनुष्टुप्, ३, १२ द्विपदा प्राजापत्या जगती, ४, ७, १० प्राजापत्या गायत्री, ५ प्राजापत्या पंक्ति, ६ आर्ची जगती, ९ आर्ची त्रिष्टुप्, ११ साम्नी त्रिष्टुप्, १४ प्राजापत्या बृहती, १५, १८ द्विपदार्ची पंक्ति, १७ आर्ची उष्णिक् ।]

३९७८. तस्मै प्राच्या दिशः ॥१ ॥

३९७९. वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥२ ॥

उस (व्रात्य) के लिए देवसमूह ने पूर्व दिशा की ओर से वसन्त ऋतु के दो महीनों को संरक्षक नियुक्त किया तथा बृहत् और रथन्तर साम को उस व्रात्य का अनुष्ठाता (सेवक) बनाया ॥१-२ ॥

३९८०. वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च
रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥३ ॥

जो (व्रात्य के सम्बन्ध में) इस प्रकार से जानकारी रखते हैं, उनके पूर्व दिशा से वसन्त ऋतु के दो महीने संरक्षणकर्त्ता होते हैं तथा बृहत् और रथन्तर साम उसके लिए अनुकूलतापूर्ण बनते हैं ॥३ ॥

३९८१. तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥४ ॥

३९८२. ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥५ ॥

देवसमूह ने उस (व्रात्य) के लिए दक्षिण दिशा से ग्रीष्म ऋतु के दो महीनों को संरक्षक रूप में नियुक्त किया । यज्ञायज्ञीय और वामदेव्य साम उस व्रात्य के अनुष्ठाता बनाये गये ॥४-५ ॥

३९८३. ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च
वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥६ ॥

जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) ऐसा ज्ञान रखते हैं, उनके दक्षिण दिशा से ग्रीष्म ऋतु के दो महीने, संरक्षणकर्त्ता होते हैं । और यज्ञायज्ञीय तथा वामदेव्य साम उनके अनुकूल होकर रहते हैं ॥६ ॥

३९८४. तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥७ ॥

३९८५. वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥८ ॥

देवशक्तियों ने उस (व्रात्य समूह) के लिए पश्चिम दिशा से वर्षाऋतु के दो महीनों को संरक्षण कार्य हेतु नियुक्त किया । वैरूप तथा वैराजसाम को अनुष्ठाता (अनुगामी) बनाया ॥७-८ ॥

३९८६. वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च
वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥९ ॥

जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) इस प्रकार का ज्ञान रखते हैं, उनके पश्चिम दिशा से वर्षा ऋतु के दो महीने संरक्षणकर्त्ता होते हैं । वैरूप और वैराजसाम दोनों उनके अनुकूल होकर रहते हैं ॥९ ॥

३९८७. तस्मा उदीच्या दिशः ॥१० ॥

३९८८. शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ॥११ ॥

देवशक्ति समूह ने उस (व्रात्य समूह) के लिए उत्तर दिशा से शरद् ऋतु के लिए दो महीनों को संरक्षण कार्य हेतु नियुक्त किया । श्यैत और नौधस को उसका सेवक बनाया ॥१०-११ ॥

३९८९. शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च
नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥१२ ॥

जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) इस प्रकार की जानकारी रखते हैं, उत्तर दिशा से शरद ऋतु के दो महीने उनका संरक्षण करते हैं । श्यैत और नौधस उनका अनुसरण करते हैं ॥१२ ॥

३९९०. तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥१३ ॥

३९९१. हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥१४ ॥

उसके (व्रात्य समूह) लिए देवशक्तियों द्वारा ध्रुव दिशा से हेमन्त ऋतु के दो महीनों को संरक्षण कार्य हेतु नियुक्त किया गया । भूमि और अग्निदेव को अनुष्ठाता बनाया गया ॥१३-१४ ॥

३९९२. हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥

जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) इस प्रकार का ज्ञान रखते हैं, उनकी सुरक्षा ध्रुव दिशा की ओर से हेमन्त ऋतु के दो मास करते हैं । भूमि और अग्निदेव भी उनके अनुगामी बनते हैं ॥१५ ॥

३९९३. तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥१६ ॥

३९८४. शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥१७ ॥

उस (व्रात्य समूह) के निमित्त देवताओं ने ऊर्ध्व दिशा की ओर से शिशिर ऋतु के दो महीनों को संरक्षण हेतु नियुक्त किया। आदित्यदेव (सूर्य) और द्युलोक को अनुष्ठाता (अनुपालनकर्त्ता) बनाया ॥१६-१७ ॥

३९९५. शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥

जो (व्रात्य समूह के सम्बन्ध में) ऐसी जानकारी रखते हैं , उनका संरक्षण ऊर्ध्व दिशा से शिशिर ऋतु के दो मास करते हैं । सूर्य और द्युलोक भी उनके अनुकूल होकर रहते हैं ॥१८ ॥

[५ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (पंचम पर्याय)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- रुद्र । छन्द- १ त्रिपदा समविषमा गायत्री, २त्रिपदा भुरिक् आर्ची त्रिष्टुप् , ३, ५ (२), ७(२) , ९ (२) , ११ (२) , १३ (२) , १६ द्विपदा प्राजापत्या अनुष्टुप् , ४ स्वराट् प्राजापत्या पंक्ति, ५ (१), ७ (१), ९ (१) १३ (१) त्रिपदा ब्राह्मी गायत्री, ६, ८, १२ त्रिपदा ककुप् उष्णिक् , १०, १४ भुरिग्विषमा गायत्री,११ (१) निचृद् ब्राह्मी गायत्री, १५ विराट् गायत्री ।]

३९९६. तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१ ॥

उस (व्रात्य) के निमित्त देवताओं ने पूर्व दिशा के कोण से बाण का सन्धान करने वाले (धनुर्धारी) भवदेव को अनुष्ठाता बनाया ॥१ ॥

३९९७. भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥२ ॥

३९९८. नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥३ ॥

जो (व्रात्य के सम्बन्ध में) ऐसा ज्ञान रखते हैं, धनुर्धारी भव पूर्व दिशा के कोण से उनके अनुकूल होकर रहते हैं और भव, शर्व तथा ईशान भी उनका घात नहीं करते । उनके गाय आदि पशुओं और सामान्य श्रेणी के बन्धु-बान्धवों को रुद्रदेव हिंसित नहीं करते ॥२-३ ॥

३९९९. तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥४ ॥

उस (व्रात्य) के निमित्त देवशक्तियों द्वारा दक्षिण दिशा के कोने से बाण चलाने वाले (धनुर्धारी) शर्व को अनुष्ठाता बनाया गया ॥४ ॥

४०००. शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं
शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥५ ॥

जो ऐसा जानते हैं, उनके लिए धनुर्धारी शर्व दक्षिण दिशा के कोने से अनुकूल होकर रहते हैं । भव, शर्व तथा ईशान भी इसे हिंसित नहीं करते । रुद्रदेव उनके गौ, आदि पशुओं तथा समवयस्क बन्धुओं को नहीं मारते ॥५

४००१ तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥६ ॥

उसके निमित्त देवशक्तियों ने पश्चिम दिशा के कोने से बाण चलाने वाले पशुपति को अनुष्ठाता नियुक्त किया ।

४००२. पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं
शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥७ ॥

जो इस तत्त्व के ज्ञाता हैं, उनके निमित्त बाण सन्धानकर्ता पशुपति दक्षिण दिशा के कोने से अनुकूलता पूर्ण होकर रहते हैं । भव, शर्व तथा ईशान भी उन्हें हिंसित नहीं करते ॥७ ॥

४००३. तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥८ ॥

उनके निमित्त देवसमूह ने उत्तर दिशा के कोने से उग्रदेव को धनुर्धारी अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥८ ॥

४००४. उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं
शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥९ ॥

जिन्हें ऐसा ज्ञान है, धनुर्धारी उग्रदेव उत्तर दिशा के कोने से उनके अनुकूल होकर रहते हैं। भव, शर्व तथा ईशान भी उन्हें हिंसित नहीं करते औन न उनके पशुओं तथा समवयस्क बांधवों को विनष्ट करते हैं ॥९ ॥

४००५. तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१० ॥

उनके निमित्त देवसमूह ने ध्रुव दिशा के कोण से रुद्रदेव को धनुर्धारी अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥१० ॥

४००६. रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं
शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥११ ॥

जो इस तथ्य के ज्ञाता हैं, अनुष्ठाता रुद्रदेव उनके हितकारी होकर रहते हैं। भव, शर्व तथा ईशान उन पर घात नहीं करते और उनके पशुओं तथा समवयस्क बन्धुओं को भी ये देव विनष्ट नहीं करते ॥११ ॥

४००७. तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१२ ॥

उनके निमित्त देवों ने ऊर्ध्व दिशा के कोने से धनुर्धारी महादेव को अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥१२ ॥

४००८. महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं
शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१३ ॥

जो इसे जानते हैं, धनुर्धारी महादेव ऊर्ध्व दिशा के कोने से उनके अनुकूल होकर रहते हैं। भव, शर्व तथा ईशान भी इनके लिए घातक नहीं होते और इनके पशुओं तथा समवयस्कों के लिए भी संहारक नहीं होते ॥१३ ॥

४००९. तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१४ ॥

उनके निमित्त देवशक्तियों द्वारा समस्त दिशाओं के कोने से बाण सन्धानकर्त्ता ईशान को अनुष्ठाता बनाया ॥

४०१०. ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं
शर्वो न भवो नेशानः ॥१५ ॥

४०११. नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१६ ॥

जो इस तथ्य के ज्ञाता हैं, धनुर्धारी ईशान सभी दिशाओं के कोने से उनके अनुकूल होकर रहते हैं। भव, शर्व तथा ईशान उनका संहार नहीं करते। उनके पशुओं तथा समवयस्क बन्धुओं का भी वे विनाश नहीं करते ॥१५-१६ ॥

[६ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (षष्ठ पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** १, ४ आसुरी पंक्ति, २, १७ आर्ची पंक्ति, ३ आर्षी पंक्ति, ५, ११ साम्नी त्रिष्टुप्, ६, १२ निचृत् बृहती, ७, १०, १३, १६, २४ आसुरी बृहती, ८ साम्नी पंक्ति, ९ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, १४, २३ आर्ची त्रिष्टुप्, १५, १८ विराट् जगती, १९ आर्ची उष्णिक्, २० साम्नी अनुष्टुप्, २१ आर्ची बृहती, २२ परोष्णिक्, २५ आर्ची अनुष्टुप्, २६ विराट् बृहती ।]

४०१२. स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ॥१ ॥

उस (व्रात्य) ने ध्रुव दिशा की ओर प्रस्थान किया ॥१ ॥

४०१३. तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्य चलन् ॥२ ॥

भूमि, अग्नि, ओषधियाँ, वनस्पतियाँ छोटे और बड़े वृक्ष सभी उसके अनुकूल होकर चलें ॥२ ॥

४०१४. भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च
वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥३ ॥

जो इस सम्बन्ध में जानते हैं, वे भूमि, अग्नि, ओषधियों, वनस्पतियों तथा छोटे और बड़े वृक्षों के प्रियधाम बनते हैं ॥३ ॥

४०१५. स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ॥४ ॥

उस (व्रात्य) ने ऊर्ध्व दिशा की ओर गमन किया ॥४ ॥

४०१६. तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ॥५ ॥

तब ऋत, सत्य, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र उसके अनुगामी होकर चल दिये ॥५ ॥

४०१७. ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥६ ॥

इस तथ्य के ज्ञाता सत्य, ऋत, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों के प्रियधाम बनते हैं ॥६ ॥

४०१८. स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ॥७ ॥

अब (व्रात्य) के द्वारा उत्तम दिशा की ओर गमन किया गया ॥७ ॥

४०१९. तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ॥८ ॥

तब साम, ऋचाएँ , यजु: और ब्रह्म अर्थात् अथर्ववेद उसके अनुगामी होकर चले ॥८ ॥

४०२०. ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥९ ॥

जो इस तत्त्व को जानने वाले हैं, वे साम, ऋचाओं, यजुः और ब्रह्म (अथर्व) के प्रियधाम होते हैं ॥९ ॥

४०२१. स बृहतीं दिशमनु व्यचलत् ॥१० ॥

उस व्रात्य ने बृहती दिशा में प्रस्थान किया ॥१० ॥

४०२२. तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्य चलन् ॥११ ॥

उस समय इतिहास, पुराण और नाराशंसी गाथाएँ उसके अनुगामी होकर चले ॥११ ॥

४०२३. इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१२ ॥

जो इस बात के ज्ञाता हैं, वे इतिहास पुराण और नाराशंसी गाथाओं के प्रिय स्थान बनते हैं ॥१२ ॥

४०२४. स परमां दिशमनु व्यचलत् ॥१३ ॥

उस (व्रात्य) ने परम दिशा की ओर गमन किया ॥१३ ॥

४०२५. तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्य चलन् ॥

तब आहवनीय, गार्हपत्य अग्नि, दक्षिणाग्नि, यज्ञ, यजमान तथा पशु उसके अनुगामी होकर चल दिये ॥१४

४०२६. आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य च
यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५ ॥

इस प्रकार जानने वाले, आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, यज्ञ, यजमान तथा पशुओं के प्रियधाम बनते हैं ॥१५

४०२७. सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥१६ ॥

उस व्रात्य ने अनादिष्ट दिशा की ओर प्रस्थान किया ॥१६ ॥

४०२८. तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्य चलन् ॥१७

तब ऋतु और ऋतु पदार्थ, लोक और लोक सम्बन्धी पदार्थ, महीने, पक्ष, दिन-रात्रि उसके अनुगामी होकर चले ॥१७ ॥

४०२९. ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां
चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१८ ॥

जो इस तत्त्व के ज्ञाता हैं, वे ऋतु- ऋतु सम्बन्धी, लोक- लोक सम्बन्धी पदार्थ, मास, पक्ष तथा दिन और रात्रि के प्रिय धाम बनते हैं ॥१८ ॥

४०३०. सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत ॥१९ ॥

उस (व्रात्य) ने अनावृत दिशा की ओर गमन किया और वहाँ से वापस न लौटने का मन में चिन्तन किया ॥१९ ॥

४०३१. तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् ॥२० ॥

तब उसके पीछे दिति, अदिति, इडा और इन्द्राणी ने गमन किया ॥२० ॥

४०३२. दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२१ ॥

जो ऐसा जानते हैं, वे दिति, अदिति, इडा और इन्द्राणी के प्रिय धाम बनते हैं ॥२१ ॥

४०३३. स दिशोऽनु व्य चलत् तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः ॥२२ ॥

उस (व्रात्य) ने सभी दिशाओं की ओर गमन किया, तब विराट् आदि समस्त देव उसके अनुकूल होकर पीछे-पीछे चले ॥२२ ॥

४०३४. विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां ।
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२३ ॥

इस प्रकार का ज्ञान रखने वाले, विराट् आदि देवसमूह तथा (अन्य) समस्त देवों के प्रिय धाम बनते हैं ॥२३ ॥

४०३५. स सर्वानन्तर्देशाननु व्य चलत् ॥२४ ॥

वह व्रात्य सभी अन्तर्देशों (सभी दिशाओं के कोणों) में अनुकूल होकर चला ॥२४ ॥

४०३६. तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्य चलन् ॥२५ ॥

तब प्रजापति परमेष्ठी, पिता और पितामह भी उसके अनुगामी होकर चले ॥२५ ॥

४०३७. प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२६ ॥

ऐसा जानने वाले, प्रजापति, परमेष्ठी पिता और पितामह के प्रियधाम बनते हैं ॥२६ ॥

[७- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (सप्तम पर्याय)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- अध्यात्म अथवा व्रात्य । छन्द- १ त्रिपदा निचृत् गायत्री, २ एकपदा विराट् बृहती, ३ विराट् उष्णिक्, ४ एकपदा गायत्री, ५ पंक्ति ।]

४०३८. स महिमा सद्रुर्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रो ऽभवत् ॥१ ॥

वह विराट् व्रात्य समर्थ होकर तीव्रतापूर्वक पृथ्वी के अन्तिम छोर तक गया और समुद्र में परिवर्तित हो गया

४०३९. तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्य वर्तयन्त ॥

प्रजापति, परमेष्ठी, पिता, पितामह, जल और श्रद्धा वृष्टिरूप होकर इसके अनुशासन में (अनुकूल) रहने लगे ॥

४०४०. ऐनमापो गच्छन्त्यैनं श्रद्धा गच्छन्त्यैनं वर्षं गच्छति य एवं वेद ॥३ ॥

जो व्रात्य के सम्बन्ध में इस प्रकार से ज्ञान रखते हैं, उन्हें जल, श्रद्धा और वृष्टि की प्राप्ति होती है ॥३ ॥

४०४१. तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ॥४ ॥

उनके चारों ओर श्रद्धा, यज्ञ, लोक, अन्न और अन्नादि खाद्य-सामग्री अपनी सत्ता में उत्पन्न हुए ॥४ ॥

४०४२. ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैनमन्नं
गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ॥५ ॥

जो व्रात्य के सम्बन्ध में ऐसा ज्ञान रखते हैं, उन्हें श्रद्धा, यज्ञ, लोक, अन्न और अन्न को ग्रहण करने की शक्ति भी प्राप्त होती है ॥५ ॥

[८ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (अष्टम पर्याय)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- अध्यात्म अथवा व्रात्य । छन्द- १ साम्नी उष्णिक्, २ प्राजापत्या अनुष्टुप्, ३ आर्ची पंक्ति ।]

४०४३. सो ऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥१ ॥

वह (व्रात्य) सबका रञ्जन करने वाला होकर राजा के पद से सुशोभित हुआ ॥१ ॥

४०४४. स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् ॥२ ॥

तब प्रजाजन, बान्धवगण, अन्न तथा अन्न के पाचन की सामर्थ्य उसके अनुकूल रहने लगे ॥२ ॥

४०४५. विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥३ ॥

जो इस मर्म के ज्ञाता हैं, वे प्रजाजनों, बन्धु-बांधवों, अन्न और अन्न पाचन की सामर्थ्य के प्रियधाम बनते हैं ॥३

[९-अध्यात्म-प्रकरणसूक्त (नवमपर्याय)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- अध्यात्म अथवा व्रात्य । छन्द- १ आसुरी जगती, २ आर्ची गायत्री, ३ आर्ची पंक्ति]

४०४६. स विशोऽनु व्य चलत् ॥१ ॥

वह (व्रात्य) प्रजाजनों के अनुकूल व्यवहार करने लगा ॥१ ॥

४०४७. तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्य चलन् ॥२ ॥

तब सभा, समिति, सैन्यशक्ति तथा सुरा (तीक्ष्णौषधि रस) या धनकोश उसकी अनुकूलता में रहने लगे ॥२ ॥

४०४८. सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥३ ॥

जो इस तथ्य के वेत्ता हैं, वे सभा, समिति, सैन्यशक्ति तथा तीक्ष्णौषधिरस (धन कोष) के प्रियधाम बनते हैं ॥३

[१०-अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (दशम पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** १ द्विपदा साम्नी बृहती, २ त्रिपदार्ची पंक्ति, ३ द्विपदा प्राजापत्या पंक्ति, ४ त्रिपदा वर्धमाना गायत्री, ५ त्रिपदा साम्नी बृहती, ६, ८, १० द्विपदासुरी गायत्री, ७, ९ साम्नी उष्णिक्, ११ आसुरी बृहती ।]

४०४९. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१ ॥

४०५०. श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥२ ॥

ऐसे ज्ञाननिष्ठ व्रात्य जिस अधिपति-राजा के गृह में आतिथ्य सत्कार हेतु प्रस्तुत हों, तो इसे अपना हितकारक मानकर राजा उसे सम्मानित करे, ऐसी क्रिया करने पर क्षात्रबल का क्षय नहीं होता तथा राष्ट्रीय गौरव को भी किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती ॥१-२ ॥

४०५१. अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥३ ॥

इसके बाद ज्ञान (ब्रह्मबल) और वीर्य (क्षात्रबल) की उत्पत्ति होती है, वे दोनों बल प्रश्न करते हैं कि हम किसमें प्रविष्ट होकर वास करें ? ॥३ ॥

४०५२. अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रा विशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥४ ॥

ब्रह्मज्ञान को बृहस्पतिदेव और पराक्रमशक्ति (क्षात्रबल) को इन्द्रदेव में निःसन्देह प्रवेश करना चाहिए ॥४ ॥

४०५३. अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ॥५ ॥

तब ब्रह्मज्ञान में बृहस्पतिदेव और पराक्रम शक्ति ने इन्द्रदेव में प्रवेश किया ॥५ ॥

४०५४. इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥६ ॥

(निश्चित रूप से) यह पृथ्वी ही बृहस्पतिदेव और द्युलोक ही इन्द्रदेव हैं ॥६ ॥

४०५५. अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥७ ॥

(निश्चित रूप से) यह अग्नि ही ब्रह्मशक्ति और आदित्य (सूर्य) ही पराक्रम (क्षात्र-शौर्य) शक्ति है ॥७ ॥

४०५६. ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥८ ॥

४०५७. यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ॥९ ॥

जो पृथ्वी को बृहस्पतिदेव तथा अग्नि को ब्रह्मस्वरूप जानते हैं, उन्हें ब्रह्मज्ञान तथा ब्रह्मतेज की प्राप्ति होती है ॥८-९ ॥

४०५८. ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥१० ॥

४०५९. य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥११ ॥

जो आदित्य को क्षत्र (पराक्रम शक्ति) और द्युलोक को इन्द्रशक्ति के रूप में जानते हैं, उनके समीप इन्द्र की (इन्द्रियशक्ति) पराक्रम शक्ति आती है और वे इन्द्रियवान् (शौर्यवान्) हो जाते हैं ॥१०-११ ॥

[११- अध्यात्म -प्रकरण सूक्त (एकादश पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** निचृत् आर्ची बृहती, १ दैवी पंक्ति, २ द्विपदा पूर्वात्रिष्टुप् अतिशक्वरी, ७, ९ द्विपदा प्राजापत्या बृहती, १० भुरिक् आर्ची बृहती, ११ द्विपदा आर्ची अनुष्टुप्।]

४०६०. तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१ ॥

४०६१. स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वा ऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥२ ॥

जिसके घर में ऐसा ज्ञानी व्रात्य आतिथ्य सत्कार हेतु उपस्थित हो, तब गृहपति स्वयं उनसे पूछे कि हे व्रात्य ! आपका निवास कहाँ है ? यह जल आपके निमित्त (प्रस्तुत) है । हमारे घर के सदस्य आपको तृप्ति प्रदान करें । जो आपको रुचे वही हो, जैसी आपकी इच्छा हो वही बने, जैसा आपका निकाम (अभिलाषा) हो, वैसा ही हो ॥१-२

४०६२. यदेनमाह व्रात्य क्वा ऽवात्सीरिति पथ एव तेन देवयानानव रुन्द्धे ॥३ ॥

व्रात्य से यह पूछने पर कि आप कहाँ निवास करते हैं ? देवयान पथ अपने (प्रश्नकर्त्ता के) अधीन हो जाता है अर्थात् देवयान मार्ग खुल जाता है ॥३ ॥

४०६३ यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे ॥४ ॥

व्रात्य से यह कहने पर कि हे व्रात्य ! यह जल आपके लिए है, (स्वागतकर्त्ता को) पर्याप्त जल मिलता है ॥४ ।

४०६४. यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥५ ॥

ये जो कहते हैं कि हे व्रात्य ! ये हमारे परिवारी स्वजन आपको सेवा शुश्रूषा द्वारा संतुष्ट करें, इस वचन से वे अपनी प्राण ऊर्जा को ही बढ़ाते हैं ॥५ ॥

४०६५. यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विति प्रियमेव तेनाव रुन्द्धे ॥६ ॥

जो ये कहते हैं कि हे व्रात्य ! जो आपके लिए प्रीतिप्रद हो, वही हो, तो इस कथन से वे अपने स्नेहयुक्त पदार्थों को ही उपलब्ध करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं ॥६ ॥

४०६६. ऐनं प्रियं गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद ॥७ ॥

जो इस विषय के ज्ञाता हैं, वे प्रीतियुक्त (पुरुष) को उपलब्ध करते हैं तथा अपने प्रिय के भी प्रिय हो जाते हैं ॥

४०६७. यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विति वशमेव तेनाव रुन्द्धे ॥८ ॥

जो ये कहते हैं कि हे व्रात्य ! जैसी आपकी कामनाएँ हैं, वैसा ही हो, तो इस कथन से वे अपनी श्रेष्ठ कामनाओं की पूर्ति के द्वार को ही खोलते हैं ॥८ ॥

४०६८. ऐनं वशो गच्छति वशी वशिनां भवति य एवं वेद ॥९ ॥

जो (व्रात्य के सम्बन्ध में) जानते हैं , उन्हें सभी अभीष्ट फल (वश) उपलब्ध होते हैं तथा वे वशीभूत करने वालों को भी अपने वश में करने वाले होते हैं ॥९ ॥

४०६९. यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति निकाममेव तेनाव रुन्द्धे ॥१० ॥

जो ये कहते हैं कि हे व्रात्य ! आप अपनी अभिलाषाओं के अनुरूप उपलब्ध करें , तो इससे वे मानो अपने लिए अभिलाषाओं के द्वार को उद्घाटित करते (खोल देते) हैं ॥१० ॥

४०७०. ऐनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ॥११ ॥

व्रात्य की अभिलाषाओं की पूर्ति होती है, जो इस विषय के मर्मज्ञ हैं, उन्हें निश्चित रूप से अभीष्ट प्राप्त होते हैं ॥११ ॥

[१२- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (द्वादश पर्याय)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- अध्यात्म अथवा व्रात्य । छन्द- आसुरी गायत्री, १ त्रिपदा गायत्री, २ प्राजापत्या बृहती , ३ भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप् ४ भुरिक् साम्नी अनुष्टुप् , ७, ११ त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप् , ८ विराट् गायत्री ।]

४०७१. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्निहोत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥

४०७२. स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्यातिसृज होष्यामीति ॥२ ॥

अग्निहोत्र प्रारम्भ होने पर अग्नि प्रदीपन के समय यदि किसी अग्निहोत्री (याज्ञिक) के गृह पर ज्ञाननिष्ठ व्रात्य उपस्थित हों , तो ऐसी स्थिति में (याज्ञिक) स्वयं उसे आसन देकर कहे कि हे व्रात्य ! आप निर्देश दें, मैं यज्ञकर्म करने के लिए तत्पर होऊँगा ॥१- २ ॥

४०७३. स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात् ॥३ ॥

यदि विद्वान् व्रात्य अनुमति प्रदान करें , तभी आहुतियाँ समर्पित करें, अनुमति न दें तो आहुतियाँ समर्पित न करें ॥३ ॥

४०७४. स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥४ ॥

४०७५. प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥५ ॥

यदि याज्ञिक विद्वान् व्रात्य के कथन के अनुसार आहुति प्रदान करता है , तो वह पितृयान मार्ग और देवयानमार्ग का ज्ञान उपलब्ध करता है ॥४-५ ॥

४०७६. न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥६ ॥

४०७७. पर्यस्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥७ ॥

ऐसे अग्निहोत्री द्वारा प्रदत्त आहुतियाँ देवत्व संवर्धक शक्तियों को ही प्राप्त होती हैं । देवशक्तियों में इसका किसी प्रकार का दोष नहीं माना जाता । इससे उसका आश्रयस्थल संसार में चतुर्दिक् सुरक्षित रहता है ॥६-७ ॥

४०७८. अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥८ ॥

४०७९. न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥९ ॥

इसके विपरीत जो ज्ञानवान् व्रात्य के दिशा निर्देश न देने पर भी आहुतियाँ प्रदान करते हैं , वे इसके दोषस्वरूप पितृयान मार्ग और देवयान मार्ग दोनों के ही ज्ञान से वञ्चित रह जाते हैं ॥८-९ ॥

४०८०. आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥१० ॥

देवों के प्रति इस अपराध के साथ उसका यज्ञ भी निष्फल हो जाता है ॥१० ॥

४०८१. नास्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥११

जो विद्वान् व्रात्य के दिशा निर्देश के बिना यज्ञ कार्य करते हैं, उनका इस विश्व में किसी प्रकार का आधार (आश्रय) नहीं रहता ॥११ ॥

[१३- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (त्रयोदश पर्याय)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- अध्यात्म अथवा व्रात्य । छन्द- १ साम्नी उष्णिक्, २, ६ प्राजापत्या अनुष्टुप्, ३, ५, ७ आसुरी गायत्री, ४, ८ साम्नी बृहती, ९ द्विपदा निचृत् गायत्री, १० द्विपदा विराट् गायत्री, ११ प्राजापत्या पंक्ति, १२ आसुरी जगती, १३ सतः पंक्ति, १४ अक्षर पंक्ति ।]

४०८२. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥१ ॥

४०८३. ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥२ ॥

जिसके गृह में ऐसे ज्ञानवान् व्रात्य का एक रात्रि के लिए अतिथिरूप में वास रहता है । वह गृहस्थ इसके पुण्यफल से पृथ्वी के सभी पुण्यलोकों को जीत लेता है ॥१-२ ॥

४०८४. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥३ ॥

४०८५. येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥४ ॥

ऐसे ज्ञानी व्रात्य, जिसके गृह में आतिथ्य सत्कार हेतु दूसरी रात्रि भी रुकते हैं, उसके फलस्वरूप वह गृहस्थ अन्तरिक्ष के पुण्यदायी लोकों को उपलब्ध करता है ॥३-४ ॥

४०८६. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥५ ॥

४०८७. ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥६ ॥

ऐसे ज्ञानसम्पन्न व्रात्य जिसके गृह में आतिथ्य सत्कार हेतु तीसरी रात्रि तक ठहरते हैं, उसके पुण्य फल स्वरूप वह गृहस्थ द्युलोक के पुण्यप्रद लोकों को प्राप्त करता है ॥५-६ ॥

४०८८. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥७ ॥

४०८९. ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥८ ॥

ऐसे ज्ञानवान् व्रात्य, जिसके घर में अतिथिक्रम में चतुर्थ रात्रि तक रुकते हैं, उससे उपलब्ध फल से वह गृहस्थ पुण्यात्माओं के पुनीत लोकों को प्राप्त करता है ॥७-८ ॥

४०९०. तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ॥९ ॥

४०९१. य एवापरिमिताः पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥१० ॥

ऐसे विद्वान् व्रात्य जिस सद्‌गृहस्थ के घर में अतिथिरूप में असंख्य रात्रियों तक निवास करते हैं, उसके फलस्वरूप वह गृहस्थ अपने लिए असंख्य पुण्यदायी लोकों को प्राप्त करता है ॥९-१० ॥

४०९२. अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥११ ॥

४०९३. कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत् ॥१२ ॥

जिसके गृह में व्रात्य गुणों से हीन तथा स्वयं को विद्वान् व्रात्य प्रदर्शित करने वाला अव्रात्य अतिथि रूप में आगमन करे, तो क्या उसे अपने निवास से भगा दें ? नहीं उसका भी तिरस्कार न करें ॥११-१२ ॥

४०९४. अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां देवतां परि वेवेष्मीत्येनं परि वेविष्यात् ॥१३ ॥

सद्‌गृहस्थ कहे कि हम इस (व्रात्य अतिथि) देव के लिए जल की स्तुति (प्रार्थना) करते हैं । इस अतिथिदेव को गृह में निवास प्रदान करते हैं तथा देवस्वरूप समझकर इसे परोसते हैं ॥१३ ॥

४०९५. तस्यामेवास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद ॥१४ ॥

जो इस तत्वज्ञान का मर्मज्ञ है, उसी देवता में उस सद्‌गृहस्थ का अतिथि सत्कार रूप हवन होता है ॥१४ ॥

[१४- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (चतुर्दश पर्याय)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- अध्यात्म अथवा व्रात्य । छन्द- द्विपदासुरी गायत्री, १ त्रिपदानुष्टुप्, ३, ९ पुर उष्णिक्, ५ अनुष्टुप्, ७ प्रस्तार पंक्ति, ११ स्वराट् गायत्री, १२, १४, १६, १८ भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप्, १३, १५, १७ आर्ची पंक्ति, १९ भुरिक् नागी गायत्री, २१ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, २३ निचृत् आर्ची पंक्ति ।]

४०९६. स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्य चलन्मनोऽन्नादं कृत्वा ॥१॥

जब उसने पूर्वदिशा की ओर प्रस्थान किया, तब बलशाली होकर वायुदेव के अनुकूल चलते हुए, उसने अपने मन को अन्न भक्षण करने वाला बनाया ॥१ ॥

४०९७. मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२ ॥

जो इस विषय का मर्मज्ञ है, वह अन्न भक्षण करने की मनोवृत्ति से अन्न सेवन करता है ॥२ ॥

४०९८. स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्य चलद् बलमन्नादं कृत्वा ॥३ ॥

जिस समय उसने दक्षिण दिशा में गमन किया, तब बल- सामर्थ्य को अन्नाद बनाकर और स्वयं को इन्द्र (पराक्रमशील) बनाते हुए वह गतिशील हुआ ॥३ ॥

४०९९. बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥४ ॥

जो इस विषय के ज्ञाता हैं, वह अन्नाद (अन्न भक्षक) बल- सामर्थ्य से अन्न का भक्षण करता है ॥४ ॥

४१००. स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद् वरुणो राजा भूत्वानुव्य चलदपो ऽन्नादीः कृत्वा ॥

जब उसने पश्चिम दिशा की ओर गमन किया, उस समय जल को अन्नाद (अन्न सेवन करने वाला) बनाते हुए स्वयं राजा वरुण बनकर चला ॥५ ॥

४१०१. अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥६ ॥

जो इस बात का मर्मज्ञ है, वह अन्न-भक्षक जल के साथ अन्न का उपभोग करता है ॥६ ॥

४१०२. स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्य
चलत् सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥७ ॥

जब उसने उत्तर दिशा की ओर गमन किया, तब सप्तर्षियों द्वारा प्रदत्त आहुतियों को अन्न भक्षक आहुति बनाकर राजा सोम की अनुकूलता में चला ॥७ ॥

४१०३. आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥८ ॥

जो इस बात का ज्ञाता है, वह अन्नभक्षक आहुतियों द्वारा अन्न का उपभोग करता है ॥८ ॥

४१०४. स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्य चलद् विराजमन्नादीं कृत्वा ॥९॥

जब वह ध्रुवदिशा की ओर प्रस्थान किया, तब विराट् पृथ्वीको अन्नमयी बनाकर विष्णुरूप बन संचरित हुआ

४१०५. विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥१० ॥

जो इस विषय का ज्ञाता है, वह अन्नमयी विराट् पृथ्वी द्वारा अन्न का सेवन करता है ॥१० ॥

४१०६. स यत् पशूननु व्यचलद् रुद्रो भूत्वानुव्य चलदोषधीरन्नादीः कृत्वा ॥११ ॥

जब वह (व्रात्य) पशुओं (अज्ञानी प्राणियों) की ओर बढ़ा, तब ओषधियों को अन्न भक्षणरूप बनाते हुए स्वयं रुद्रदेव बनकर चला ॥११ ॥

४१०७. ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥१२ ॥

जो इस विषय का ज्ञाता है, वह अन्न भक्षक ओषधियों द्वारा अन्न का उपभोग करता है ॥१२ ॥

४१०८. स यत् पितॄननु व्यचलद् यमो राजा भूत्वानुव्य चलत् स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ॥१३

जब वह (व्रात्य) पितरजनों की ओर (उनके अनुकूल) चला, तो स्वधाकार को अन्नाद (अन्नभक्षक) बनाते हुए स्वयं यम राजा बनकर अनुकूल रीति से चला ॥१३ ॥

४१०९. स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१४ ॥

जो इस तथ्य को जानता है, वह स्वधाकार द्वारा खाद्य सामग्री का सेवन करता है ॥१४ ॥

४११०. स यन्मनुष्या३ननु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्य चलत् स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा ॥१५ ॥

जब वह मनुष्यों की ओर चला, तो स्वाहाकार को अन्न के सेवन योग्य बनाकर, स्वयं अग्निरूप होकर चला ।

४१११. स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१६ ॥

जो इस मर्म का ज्ञाता है, वह स्वाहाकार के माध्यम से खाद्य सामग्री का उपभोग करता है ॥१६ ॥

४११२. स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानुव्य चलद् वषट्कारमन्नादं कृत्वा ॥१७

जब वह (व्रात्य) ऊर्ध्व दिशा की ओर गतिशील हुआ, तो वषट्कार को अन्न के सेवन योग्य बनाकर तथा स्वयं बृहस्पति बनकर अनुकूल रीति से चला ॥१७ ॥

४११३. वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१८ ॥

जो इस तथ्य का ज्ञाता है, वह वषट्कार के माध्यम से खाद्य सामग्री का उपभोग करता है ॥१८ ॥

४११४. स यद् देवाननु व्यचलदीशानो भूत्वानुव्य चलन्मन्युमन्नादं कृत्वा ॥१९ ॥

जब वही (व्रात्य) देवशक्तियों की अनुकूलता में गतिशील हुआ, तो वही मन्यु (उत्साह) को सेवित अन्न बनाकर तथा स्वयं ईशान बनकर देवताओं के अनुशासन में गतिमान् हुआ ॥१९ ॥

४११५. मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२० ॥

जो इस तत्त्व ज्ञान का ज्ञाता है, वह उत्साह (मन्यु यज्ञ) से खाद्य सामग्री का उपभोग करता है ॥२० ॥

४११६. स यत् प्रजा अनु व्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानुव्य चलत् प्राणमन्नादं कृत्वा ॥२१ ॥

जब वही (व्रात्य) प्रजाजन अर्थात् जन- साधारण के लिए उपयोगी बनकर गतिशील हुआ, तो प्राणशक्ति को अन्न भक्षण योग्य बनाते हुए तथा स्वयं प्रजापतिरूप बनकर गतिमान् हुआ ॥२१ ॥

४११७. प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२२ ॥

जो इस तत्त्व का ज्ञाता है, वह प्राणतत्त्व (प्राणशक्ति) खाद्य सामग्री का सेवन करता है ॥२२ ॥

४११८. स यत् सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् परमेष्ठी भूत्वानुव्य चलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा ॥२३

जब वही (व्रात्य) सभी अन्तर्देशों (दिशा के कोणों) के लिए उपयोगी बनकर चला, तो वही ब्रह्म को अन्न भक्षण योग्य बनाते हुए तथा स्वयं परमेष्ठी रूप बनकर विचरणशील हुआ ॥२३ ॥

४११९. ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२४ ॥

जो इस तथ्य को इस प्रकार जानता है, वह ब्रह्म (ब्रह्मज्ञान) द्वारा अन्न (खाद्य सामग्री) का सेवन करता है ॥२४ ॥

[१५- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (पंचदश पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप्, १ दैवी पंक्ति, २ आसुरी बृहती, ३ प्राजापत्या अनुष्टुप्, ५, ६ द्विपदा साम्नी बृहती, ९ विराट् गायत्री ।]

४१२०. तस्य व्रात्यस्य ॥१ ॥

४१२१. सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥२ ॥

उस व्रात्य (समूहपति) के सप्त प्राण, सप्त अपान और सप्त व्यान हैं ॥१-२ ॥

४१२२. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ॥३ ॥

इस व्रात्य का जो सर्वप्रथम प्राण है, उसे ऊर्ध्व नामक अग्नि से सम्बोधित किया गया है ॥३ ॥

४१२३. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥४ ॥

इस व्रात्य का जो द्वितीय प्राण है, उसे प्रौढ़ नामक आदित्य कहा गया है ॥४ ॥

४१२४. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः प्राणो३भ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥५ ॥

इस व्रात्य का जो तीसरा प्राण है, उसे अभ्यूढ़ नामक चन्द्रमा कहा गया है ॥५ ॥

४१२५. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः ॥६ ॥

इस व्रात्य के विभू नामक चौथे प्राण को पवमान वायु की संज्ञा दी गई है ॥६ ॥

४१२६. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः ॥७ ॥

इसी व्रात्य के योनि नामक पाँचवें प्राण को अप् (जल) बताया गया है ॥७ ॥

४१२७. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः ॥८ ॥

इस व्रात्य के प्रिय नामक छठें प्राण को पशु कहा गया है ॥८ ॥

४१२८. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥९ ॥

इस व्रात्य का अपरिचित नामक जो सातवाँ प्राण है, वह प्रजा नाम से सम्बोधित है ॥९ ॥

[१६-अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (षोडश पर्याय)]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** अध्यात्म अथवा व्रात्य । **छन्द-** १, ३ साम्नी उष्णिक् (दैवी पंक्ति), २, ४-५ प्राजापत्या उष्णिक्, ६ याजुषी त्रिष्टुप्, ७ आसुरी गायत्री ।]

४१२९. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी ॥१ ॥

उस व्रात्य के प्रथम अपान को पौर्णमासी कहा गया है ॥१ ॥

४१३०. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयोऽपानः साष्टका ॥२ ॥

उस व्रात्य के दूसरे अपान को अष्टका कहा गया है ॥२ ॥

४१३१. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ॥३ ॥

उस व्रात्य के तृतीय अपान को अमावस्या कहा गया है ॥३ ॥

४१३२. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा श्रद्धा ॥४ ॥

उस व्रात्य के चौथे अपान को श्रद्धा कहा गया है ॥४ ॥

४१३३. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमोऽपानः सा दीक्षा ॥५ ॥

उस व्रात्य का जो पाँचवाँ अपान है, वह दीक्षा नाम से जाना जाता है ॥५ ॥

४१३४. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठोऽपानः स यज्ञः ॥६ ॥

उस व्रात्य के छठे अपान को यज्ञ कहा गया है ॥६ ॥

४१३५. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा दक्षिणाः ॥७ ॥

उस व्रात्य के सातवें अपान को दक्षिणा कहा गया है ॥७ ॥

[१७ - अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (सप्तदश पर्याय)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- अध्यात्म अथवा व्रात्य । छन्द- १, ५ प्राजापत्या उष्णिक् (दैवी पंक्ति) २, ७ आसुरी अनुष्टुप्, ३ याजुषी पंक्ति, ४ साम्नी उष्णिक्, ६ याजुषी त्रिष्टुप्, ८ त्रिपदा प्रतिष्ठार्ची पंक्ति, ९ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्, १० साम्नी अनुष्टुप् ।]

४१३६. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः ॥१ ॥

उस व्रात्य के प्रथम व्यान को "भूमि" कहा गया है ॥१ ॥

४१३७. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् ॥२ ॥

उस व्रात्य के द्वितीय व्यान को अन्तरिक्ष कहा गया है ॥२ ॥

४१३८. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ॥३ ॥

उस व्रात्य का तृतीय व्यान द्यौ संज्ञक है ॥३ ॥

४१३९. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ॥४ ॥

उस व्रात्य का चतुर्थ व्यान नक्षत्र संज्ञक है ॥४ ॥

४१४०. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतवः ॥५ ॥

उस व्रात्य के पञ्चम व्यान को ऋतुएँ कहा गया है ॥५ ॥

४१४१. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तवाः ॥६ ॥

उस व्रात्य के छठे प्राण को (आर्तव) ऋतुओं में प्रकट होने वाला पदार्थ कहा गया है ॥६ ॥

४१४२. तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सरः ॥७ ॥

उस व्रात्य के सातवें व्यान को संवत्सर कहा गया है ॥७ ॥

४१४३. तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः संवत्सरं वा एतदृतवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च ॥८ ॥

देवशक्तियाँ उस व्रात्य के समान गुणों से युक्त अर्थ को ग्रहण करती हैं तथा संवत्सर और ऋतुएँ भी निश्चित रूप से उनका अनुसरण करती हैं ॥८ ॥

४१४४. तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत् पौर्णमासीं च ॥९ ॥

अमावास्या और पूर्णिमा के समय जो भाव आदित्य (सूर्य) में प्रविष्ट होते हैं, वे इस व्रात्य के भाव ही होते हैं ॥९ ॥

४१४५. तस्य व्रात्यस्य । एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव ॥१० ॥

उस व्रात्य और इन (उक्त सभी) भावों का एक अमरत्व है, ऐसा कहा गया है ॥१० ॥

[१८- अध्यात्म-प्रकरण सूक्त (अष्टादश पर्याय)]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- अध्यात्म अथवा व्रात्य । छन्द- दैवी पंक्ति, २, ३ आर्ची बृहती, ४ आर्ची अनुष्टुप् , ५ साम्नी उष्णिक् ।]

४१४६. तस्य व्रात्यस्य ॥१ ॥

४१४७. यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः ॥२ ॥

उस व्रात्य का दक्षिण नेत्र सूर्यरूप तथा बायाँ नेत्र चन्द्ररूप है ॥१-२ ॥

४१४८. योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः ॥३ ॥

इसका दाहिना कान अग्निरूप और बायाँ कान पवमानरूप है ॥३ ॥

४१४९. अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ॥४ ॥

दिन-रात्रि उसकी नासिका, दिति और अदिति सिर के दोनों कपाल भाग तथा वर्ष उसका सिररूप है ॥४ ॥

४१५०. अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ॥५ ॥

दिन में पूर्व की ओर तथा रात्रि में पश्चिम की ओर व्रात्य को हमारा नमन है ॥५ ॥
[इस मन्त्र के भाव से व्रात्य सम्बोधन सूर्य के लिए प्रयुक्त लगता है ।]

॥ इति पञ्चदशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ षोडशं काण्डम् ॥

[१ - दुःखमोचन सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- प्रजापति । छन्द- १, ३ द्विपदा साम्नी बृहती, २, १० याजुषी त्रिष्टुप्, ४ आसुरी गायत्री, ५ द्विपदा साम्नी पंक्ति, ६ साम्नी अनुष्टुप्, ७ निचृत् विराट् गायत्री, ८ साम्नी पंक्ति, ९ आसुरी पंक्ति, ११ साम्नी उष्णिक्, १२-१३ आर्ची अनुष्टुप् ।]

सूक्त के देवता प्रजापति हैं । इसमें सृष्टि के विभिन्न घटकों-अवयवों के अतिसृष्ट (अदिति अखण्ड प्रवाह या अखण्ड ब्रह्म में से मुक्त होकर प्रकट) होने का वर्णन है । सृष्टि उद्भव की वैदिक अवधारणा यही है कि उस अखण्ड ब्रह्म के संकल्प से उसी के अन्दर से कुछ मूल घटक या तत्त्व मुक्त होकर निकल पड़े, उन्हीं से सृष्टि के नाना रूपों और पदार्थों का निर्माण हुआ -

४१५१. अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥१ ॥

वृषभ (बलशाली अथवा वर्षणशील) अप् (मूल सक्रिय द्रव्य) विमुक्त होकर प्रकट हुआ, (उसी से) दिव्य अग्निदेव भी प्रकट हुए ॥१ ॥

४१५२. रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥२ ॥

४१५३. म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥३ ॥

४१५४. इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥४ ॥

४१५५. तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५ ॥

(इन ब्रह्म द्वारा अतिसृष्ट तत्त्वों में से) तोड़ने-फोड़ने वाले, नष्ट-भ्रष्ट करने वाले, घातक खोदने वाले, दाह उत्पन्न करने वाले, दाह उत्पन्न करने वाले मन का भञ्जन करने वाले, आत्म दूषण उत्पन्न करने वाले, काया को दूषित करने वाले, इन सबको हम त्यागते हैं और उन्हें कभी प्राप्त न करें । जिनसे हमें द्वेष है एवं जिन्हें हमसे द्वेष है, उन्हीं के माध्यम से हम उन (घातक पदार्थों) को त्यागते हैं ॥२-५ ॥

४१५६. अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥६ ॥

हे जल के भीतर के उत्तम अंश ! हम आपको समुद्र की ओर विसर्जित करते हैं ॥६ ॥

४१५७. यो३प्स्व१ग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ॥७ ॥

जल के मध्य घातक, खादक और शरीर को दोषयुक्त करने वाले अग्नि को हम दोष मुक्त करते हैं ॥७ ॥

४१५८. यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥८ ॥

हे जल ! आपमें जिस अग्नि तत्त्व ने प्रवेश लिया है, उनमें आपके लिए भयंकर अंश यह है ॥८ ॥

४१५९. इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥९ ॥

आपके परम वैभवयुक्त अंशों का इन्द्रिय शक्ति से अभिषेक करना चाहिए ॥९ ॥

४१६०. अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥१० ॥

विकार रहित जल हमसे सभी प्रकार के पाप- विकारों को दूर हटाए ॥१० ॥

४१६१. प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु ॥११ ॥

यह जल हमारे पाप- विकारों को प्रवाहित करके दूर ले जाए और दुःस्वप्नों के प्रभाव को भी दूर करे ॥११ ॥

४१६२. शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥१२ ॥

हे जल !आप हमें अनुग्रह- दृष्टि से देखें और अपने कल्याणकारक अंगों से हमारी त्वचा का स्पर्श करें ॥१२॥

४१६३. शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः ॥१३ ॥

जल में संव्याप्त मंगलकारी अग्नियों को हम आमन्त्रित करते हैं, यह दिव्य जल हमारे अन्दर क्षात्रबल (पराक्रमशक्ति) और तेजस्विता प्रतिष्ठित करे ॥१३ ॥

[२ - दुःखमोचन सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- वाक् । छन्द- १ आसुरी अनुष्टुप् , २ आसुरी उष्णिक् , ३ साम्नी उष्णिक् , ४ त्रिपदा साम्नी बृहती, ५ आर्ची अनुष्टुप् , ६ निचृत् विराट् गायत्री ।]

४१६४. निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ॥१ ॥

हम विकारजनित नेत्र रोग (अर्म) से सर्वथा मुक्त रहें, हमारी वाणी मधुर और ओजस्वी हो ॥१ ॥

४१६५. मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥२ ॥

(हे ओषधियो !) आप मधुरता सम्पन्न हैं, अतएव हम भी मधुर वाणी का प्रयोग करें ॥२ ॥

४१६६. उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥३ ॥

हम इन्द्रियों के पालनकर्त्ता मन को बुलाते हैं और (सोमपान करने वाले) मुख को बुलाते हैं ॥३ ॥

४१६७. सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥४ ॥

हमारे दोनों कान श्रेष्ठ ज्ञान, कल्याणकारी वचन और हितकारी वार्तालाप का ही श्रवण करें ॥४ ॥

४१६८. सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥५ ॥

श्रेष्ठ श्रवणशक्ति और दूर से सुनने की क्षमता मेरा परित्याग कदापि न करे । हम सदैव गरुड़ के नेत्र के समान तेजस्वी दृष्टि से युक्त रहें ॥५ ॥

४१६९. ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥६ ॥

आप ऋषियों के पाषाण हैं, देवरूप आप (पाषाण) को हमारा नमन है ॥६ ॥

[३ - दुःखमोचन सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- आदित्य । छन्द- १ आसुरी गायत्री, २-३ आर्ची अनुष्टुप् , ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप् , ५ साम्नी उष्णिक् , ६ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।]

४१७०. मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥१ ॥

धन- सम्पदा की दृष्टि से हम मूर्धन्य बनें और समान स्पर्धी लोगों के अग्रणी बनें ॥१ ॥

४१७१. रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् ॥२ ॥

तेजस्विता और कान्ति हमारा परित्याग न करे । मूर्धा (विचार) और धर्म भी हमारा परित्याग न करे ॥२ ॥

४१७२. उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ॥३ ॥

आचमन पात्र, चमसपात्र, धारक और आश्रय देने वाले भी कभी हमें परित्यक्त न करें ॥३ ॥

४१७३. विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥४ ॥

मुक्तिप्रद और आर्द्र शस्त्र हमें न छोड़ें । आर्द्रता देने वाला जल और मातरिश्वा (प्राण) हमें छोड़कर न जाएँ ॥४ ॥

४१७४. बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥५ ॥

प्रसन्नता देने वाले, अनुकम्पा प्रदायक तथा मन को एकाग्र करने वाले बृहस्पतिदेव हमारी अन्तरात्मा हैं ॥५ ॥

४१७५. असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥६ ॥

हमारे हृदय सन्तापरहित हों, विशाल गौ (पृथ्वी) हो । धारण क्षमता के द्वारा हम समुद्र के समान हों ॥६ ॥

[४ - दुःखमोचन सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- आदित्य । छन्द- साम्नी अनुष्टुप्, २ साम्नी उष्णिक्, ४ त्रिपदा अनुष्टुप्, ५ आसुरी गायत्री, ६ आर्ची उष्णिक्, ७ त्रिपदा विराड्गर्भा अनुष्टुप् ।]

४१७६. नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥१ ॥

हम वैभव, सम्पदा और समान जातीय बन्धुओं दोनों के नाभि (केन्द्र) बनकर रहें ॥१ ॥

४१७७. स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥२ ॥

मरणधर्मा मनुष्यों में तेजस्वी उषा अमरत्व प्रदान करने वाली और उत्तम रीति से विराजमान होने वाली हो ॥

४१७८. मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ॥३ ॥

जीवनतत्त्व, प्राण और अपान कभी भी हमें छोड़कर दूर न जाएँ ॥३ ॥

४१७९. सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥४ ॥

सूर्यदेव दिन से, अग्निदेव पृथ्वी से, वायुदेव अन्तरिक्ष से, यमदेव मनुष्यों से तथा देवी सरस्वती पृथ्वी से उत्पन्न हुए पदार्थों से हम सभी की सुरक्षा करें ॥४ ॥

४१८०. प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥५ ॥

जीवनतत्त्व प्राण और अपान हमारा परित्याग न करें, हमारा अस्तित्व बना रहे ॥५ ॥

४१८१. स्वस्त्य१द्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ॥६ ॥

आज (की प्रभातवेला) और रात्रि हमारे लिए कल्याणप्रद हो । हम सभी प्रकार के जल-समूह और सभी गणों से सम्पन्न होकर सुख का उपभोग करें ॥६ ॥

४१८२. शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥७॥

हे पशुओ ! आप सामर्थ्यवान् हों, हमारे समीप उपस्थित रहें । मित्र और वरुणदेव हमारे प्राण-अपान तत्त्व को परिपुष्ट करें तथा अग्निदेव हमारी सामर्थ्य को सुदृढ़ करें ॥७ ॥

[५ - दुःखमोचन सूक्त]

[ऋषि- यम । देवता- दुःस्वप्ननाशन । छन्द- १,४-६ (१) विराट् गायत्री, २, ४-७(२), ९ प्राजापत्या गायत्री, ३, ४-७ (३), १० द्विपदा साम्नी बृहती, ७ (१) भुरिक् विराट् गायत्री, ८ स्वराट् विराट् गायत्री ।]

४१८३. विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१ ॥

हे स्वप्न !हम तुम्हारी उत्पत्ति के ज्ञाता हैं, तुम ग्राह्यापिशाची (व्याधि) के पुत्र हो और यमदेव के उपकरण हो ॥

४१८४. अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२ ॥

तुम अन्त करने वाले और मत्युरूप हो ॥२ ॥

४१८५. तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारे उस स्वरूप के ज्ञाता हैं, अतएव दुः स्वप्नों से तुम हमें बचाओ ॥३ ॥

४१८६. विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥४ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारी उत्पत्ति के ज्ञाता हैं । तुम पाप देवी (निर्ऋति) के पुत्र और यमदेव के साधनभूत हो ॥४ ॥

४१८७. विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥५ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारी उत्पत्ति को भली प्रकार जानते हैं । तुम अभूति के पुत्र और यमदेव के साधन भूत हो ।

४१८८. विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥६ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारे उद्‌भव के ज्ञाता हैं । तुम निर्भूति (निर्धनता) के पुत्र और मृत्युदेव के साधन हो ॥६ ॥

४१८९. विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रो ऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥७ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारी उत्पत्ति के ज्ञाता हैं, तुम पराभव के पुत्र और मृत्यु की ओर ले जाने के साधन हो ॥७ ॥

४१९०. विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥८ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारे ज्ञाता हैं, तुम इन्द्रिय विकारों के पुत्र और मृत्युदेव की ओर ले जाने के साधन हो ॥८ ॥

४१९१. अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥९ ॥

तुम जीवन को अन्त करने वाले और साक्षात् मृत्यु की प्रतिमूर्ति हो ॥९ ॥

४१९२. तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥१० ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हारे उस स्वरूप के ज्ञाता हैं । अतएव तुम हमें बुरे स्वप्न के प्रभाव से मुक्त रखो ॥१० ॥

[६ - दुःखमोचन सूक्त]

[**ऋषि-** यम । देवता- उषा, दुःस्वप्ननाशन । **छन्द-** प्राजापत्या अनुष्टुप् , ५ साम्नी पंक्ति, ६ निचृत् आर्ची बृहती, ७ द्विपदा साम्नी बृहती, ८ आसुरी जगती, ९ आसुरी बृहती, १० आर्ची उष्णिक् , ११ त्रिपदा यवमध्या गायत्री अथवा आर्ची अनुष्टुप् ।]

४१९३. अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् ॥१ ॥

हम विजय प्राप्त करें, भूमि उपलब्ध करें और पाप- तापों से मुक्त रहें ॥१ ॥

४१९४. उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥२ ॥

हे उषःकाल ! जिस बुरे स्वप्न से हम भयभीत होते हैं, वह भय विनष्ट हो जाए ॥२ ॥

४१९५. द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ॥३ ॥

(हे देव !) आप इस भय को उनके समीप ले जाएँ, जो हमसे विद्वेष रखते हैं और जो हमारे निन्दक हैं ॥३ ॥

४१९६. यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ॥४ ॥

जो हमारे प्रति द्वेष रखते हैं और हम जिनसे द्वेष रखते हैं, उनकी ओर हम इस भय को प्रेरित करते हैं ॥४ ॥

४१९७. उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्यु१षसा संविदाना ॥५ ॥

देवी उषा वाणी के साथ और वाग्देवी उषा के साथ सम्मति रखती हुई मिलें ॥५ ॥

४१९८. उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ॥६ ॥

उषा के पति वाचस्पति के साथ तथा वाचस्पति उषा के स्वामी के साथ सहमत होते हुए परस्पर मिलें ॥६ ॥

४१९९. ते३मुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ॥७ ॥

४२००. कुम्भीका दूषीकाः पीयकान् ॥८ ॥

वे इस दुष्ट शत्रु के लिए दूषित नाम वाले दुःख और अन्य आपदाओं, कुम्भ के समान बढ़ने वाले उदर रोगों, शरीरजन्य दूषित रोगों और प्राण घातक रोगों को प्रेरित करें ॥७-८ ॥

४२०१. जाग्रद्दुष्वप्न्यं स्वप्नेदुष्वप्न्यम् ॥९ ॥

४२०२. अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥१० ॥

जाग्रत् अवस्था के समय बुरे स्वप्न से मिलने वाले फलों, सुषुप्त अवस्था में बुरे स्वप्न से प्राप्त होने वाले फलों, दरिद्रता के भूतकालीन संकल्पों, न प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ पदार्थों और न मुक्त होने योग्य द्रोहजनित पाशों से हम आपको मुक्त करते हैं ॥९-१० ॥

४२०३. तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! उन सभी प्रकार की आपदाओं को शत्रु की ओर सम्पूर्ण देवगण ले जाएँ, जिससे वह शत्रु पौरुषहीन, व्यथायुक्त और सज्जनोचित गरिमा से रहित हो जाए ॥११ ॥

[७ - दुःखमोचन सूक्त]

[**ऋषि-** यम । **देवता-** दुःस्वप्ननाशन । **छन्द-** १ पंक्ति, २ साम्नी अनुष्टुप्, ३ आसुरी उष्णिक्, ४ प्राजापत्या गायत्री, ५ आर्ची उष्णिक्, ६, ९, ११ साम्नी बृहती, ७ याजुषी गायत्री, ८ प्राजापत्या बृहती, १० साम्नी गायत्री, १२ भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप्, १३ आसुरी त्रिष्टुप् ।]

४२०४. तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि पराभूत्यैनं
विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥१ ॥

हम इसे अभिचार क्रिया से, अभूति (दुर्गति) से, दारिद्र्य (निर्भूति) से, पराभूति (पराभव) से, ग्राह्य (रोग) से और अन्धकार (अज्ञान) से विदीर्ण करते हैं ॥१ ॥

४२०५. देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥२ ॥

हम इसे देवशक्तियों के भयानक और क्रूरतापूर्ण निर्देशों के सामने उपस्थित करते हैं ॥२ ॥

४२०६. वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥३ ॥

हम इसे वैश्वानर अग्नि की दाढ़ों में स्थापित करते हैं ॥३ ॥

४२०७. एवानेवाव सा गरत् ॥४ ॥

वह आपदा इस शत्रु का इस रीति अथवा अन्य रीति से भक्षण करे ॥४ ॥

४२०८. यो३स्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥५ ॥

जो हमसे द्वेष करते हैं, आत्मचेतना उससे द्वेष करे तथा जिसके प्रति हम द्वेषभाव रखते हैं, वह अपनी चेतना के प्रति द्वेष करे ॥५ ॥

४२०९. निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥६ ॥

हम ईर्ष्या-द्वेष रखने वाले को द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष से दूर फेंकते हैं ॥६ ॥

४२१०. सुयामंश्चाक्षुष ॥७ ॥

४२११. इदमहं मामुष्यायणे३मुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ॥८ ॥

हे श्रेष्ठ नियामक निरीक्षणकर्त्ता ! हम बुरे स्वप्नों से प्राप्त होने वाले फल को अमुक गोत्र में उत्पन्न, अमुक के पुत्र में प्रेषित करते हैं ॥७-८ ॥

४२१२. यददोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥९ ॥

४२१३. यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥१० ॥

४२१४. यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥११ ॥

पूर्वरात्रि में जिन अमुक कर्मों को हम प्राप्त कर चुके हैं, जो जाग्रत् स्थिति, सुषुप्त स्थिति, दिन में , रात्रि में अथवा नित्यप्रति हम पापजन्य दोषों को प्राप्त करते हैं, उन दोषों से हम इसे (शत्रु को) विनष्ट करते हैं ॥९-११ ॥

४२१५. तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥१२ ॥

हे देव ! आप उस शत्रु के साथ चलते हुए उसका संहार करें और उसकी पसलियों को भी भग्न करें ॥१२ ॥

४२१६. स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥१३ ॥

प्राणतत्त्व उसका परित्याग करे, वह जीवित न रहे ॥१३ ॥

[८ - दुःखमोचन सूक्त]

[**ऋषि-** यम । **देवता-** दुःस्वप्ननाशन । **छन्द-** १, ५- २९ (१) , ३० यजुर्ब्राह्मी एकपदा अनुष्टुप् , २, ५-२९ (२), ३१ त्रिपदा निचृत् गायत्री, ३ प्राजापत्या गायत्री, ४, ५-२९ (४), ३३ त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप् , ५-७ (३), १२ (३), २० (३), २२ (३), २७ (३) आसुरी जगती, ८ (३), १०-११ (३), १३-१४ (३), १६ (३), २१ (३) आसुरी त्रिष्टुप् , ९ (३), १५ (३), १७-१९ (३), २३-२६ (३), ३२ आसुरी पंक्ति, २८-२९ (३) आसुरी बृहती।]

४२१७. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१ ॥

विजयश्री प्राप्त करके लाये गये और शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करके लाये गये पदार्थ हमारे हैं । सत्य

तेजस्विता, सद्ज्ञान, स्वर्गीय सुख (आत्मज्ञान) , यज्ञीय सत्कर्म , गौ आदि दुधारू पशु, प्रजारूप सन्तति और शूरवीर हमारे गौरव को बढ़ाएँ ॥१ ॥

४२१८. तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२ ॥

जो अमुक गोत्र में उत्पन्न, अमुक की सन्तान हमारी शत्रु है, उसे इस अपराध कर्म के फलस्वरूप, हम इस लोक से दूर भगाते हैं ॥२ ॥

४२१९. स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥३ ॥

वह शत्रु ग्राह्य (रोग) के बन्धन से मुक्त न हो ॥३ ॥

४२२०. तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४ ॥

हम उसकी तेजस्विता, वर्चस्व, प्राणऊर्जा और आयुष्य को घेरकर उसे औंधे मुँह गिराते हैं ॥४ ॥

४२२१. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥५ ॥

विजय प्राप्ति से उपलब्ध पदार्थ शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करने से प्राप्त पदार्थ, सत्यनिष्ठा, तेजस्विता, सद्ज्ञान, (ब्रह्म) , स्वर्गीय सुख (आत्मज्ञान) , यज्ञीय सत्कर्म, गौ आदि पशु, प्रजारूप सन्तति और वीर सन्तानें हमारे गौरव को बढ़ाएँ । अमुक गोत्र में उत्पन्न अमुक की सन्तान को हम इस लोक से दूर भगाते हैं । वह पाप देवता के पाश बन्धन से जकड़ा रहे । हम उसकी तेजस्विता वर्चस्व, प्राण और आयुष्य को क्षीण करके, उसे अधोगामी करते हुए धराशायी करते हैं ॥५ ॥

मन्त्र क्र. ५ से २१ तक मन्त्रों और उनके अर्थ में केवल एक छोटा - सा चरण (अमुक बन्धन में बाँधते हैं) भर भिन्न है, बाकी सब अंश एक ही जैसे हैं । अतः आगे भावार्थ में केवल भिन्नता वाले चरण का अर्थ लिखकर शेष भाग को यथावत् (.....) चिह्न लगाकर छोड़ दिया गया है-

४२२२. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥६ ॥

विजय प्राप्ति से..... भगाते हैं । वह दरिद्रता के पाश से मुक्त न हो । हम उसको..... धराशायी करते हैं ॥६ ॥

४२२३. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥७ ॥

विजय प्राप्ति से..... भगाते हैं । वह दुर्गतिजन्य दुर्दशा (निर्भूति) के पाश से विमुक्त न हो सके । हम उसको..... धराशायी करते हैं ॥७ ॥

४२२४. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥८ ॥

विजय प्राप्ति से___ भगाते हैं । वह पराभव (पराभूति) के बन्धन से मुक्त न होने पाए । हम उसको___ धराशायी करते हैं ॥८ ॥

४२२५. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स देवजामीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥९ ॥

विजय प्राप्ति से___ भगाते हैं । वह इन्द्रिय विकारों (देवजामि) के बन्धन से मुक्ति प्राप्त न कर सके । हम उसको___ धराशायी करते हैं ॥९ ॥

४२२६. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१० ॥

विजय प्राप्ति से___ भगाते हैं । वह बृहस्पतिदेव के बन्धन से मुक्त न हो सके । हम उसको___ धराशायी करते हैं ॥१० ॥

४२२७. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥११ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह प्रजापतिदेव के पाश से न छूट पाए । हम उसको___ धराशायी करते हैं ॥११ ॥

४२२८. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स ऋषीणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१२ ॥

विजय प्राप्ति से___ भगाते हैं । वह ऋषियों के पाश से मुक्त न हो सके । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥१२ ॥

४२२९. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं
निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१३ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह ऋषियों से उत्पन्न (आर्षेय) बन्धनों से न छूटे । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥१३ ॥

४२३०. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं
निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१४ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह अङ्गिराओं के बन्धन से विमुक्त न हो । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥१४ ॥

४२३१. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं
निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१५ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह आङ्गिरस के बन्धन से विमुक्त न हो । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥१५ ॥

४२३२. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं
निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१६ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह अथर्वाओं के पाश से न छूटे । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥१६ ॥

४२३३. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं
निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१७ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह आथर्वणों के बन्धन से छूट न पाये । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥१७ ॥

४२३४. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१८ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह वनस्पतियों के पाश से छुटकारा न पा सके । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥१८ ॥

४२३५. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥१९ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह वनस्पति से जन्य पाश में जकड़ा रहे । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥१९ ॥

४२३६. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स ऋतूनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२० ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह ऋतुओं के पाश से न छूटे । हम उसको ___ उसे अधोगामी करते हुए धराशायी करते हैं ॥२० ॥

४२३७. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स आर्तवानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२१ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह (आर्तव) ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले पदार्थों के बन्धन से जकड़ा रहे । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥२१ ॥

४२३८. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स मासानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२२ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह मासों (महीनों) के बन्धन में आबद्ध रहे । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥२२ ॥

४२३९. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२३ ॥

विजय प्राप्ति से ____ भगाते हैं । वह अर्ध मासों के बन्धन में बँधा रहे । हम उसको ____ धराशायी करते हैं ॥२३ ॥

४२४०. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२४ ॥

विजय प्राप्ति से ____ भगाते हैं । वह दिन और रात्रि के बन्धन में बँधा रहे । हम उसको ____ धराशायी करते हैं ॥२४ ॥

४२४१. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२५ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह दिन- रात्रि के संयत भागों के पास से बँधा रहे । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥२५ ॥

४२४२. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२६ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह द्युलोक और पृथ्वी के बन्धन से जकड़ा रहे । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥२६ ॥

४२४३. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२७ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह इन्द्र और अग्निदेव के पाशों से जकड़ा रहे । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥१७ ॥

४२४४. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२८ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह मित्र और वरुणदेव के बन्धन में बँधा रहे । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥२८ ॥

४२४५. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् । तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२९ ॥

विजय प्राप्ति से ___ भगाते हैं । वह राजा, वरुण के पाश में जकड़ा रहे । हम उसको ___ धराशायी करते हैं ॥२९ ॥

४२४६. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥३० ॥

विजयश्री से अर्जित पदार्थ, शत्रुओं को छिन्न-भिन्न (विदीर्ण) करने से प्राप्त पदार्थ, सत्यनिष्ठा, तेजस्विता, सद्ज्ञान (ब्रह्म), स्वर्गीय आनन्द (आत्मज्ञान), यज्ञीयसत्कर्म, गौ आदि पशु , प्रजारूप सन्तति और वीर सन्तानें हमारी गरिमा के अनुरूप हों ॥३० ॥

४२४७. तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥३१ ॥

अमुक गोत्र में उत्पन्न, अमुक की सन्तान को हम इस लोक से निष्कासित करते हैं ॥३१ ॥

४२४८. स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥३२ ॥

वह मृत्युदेव के पाश बन्धन से न छूटे ॥३२ ॥

४२४९. तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥३३ ॥

उसकी उस तेजस्विता, वर्चस्व (बल- सामर्थ्य) प्राणशक्ति और आयुष्य आदि का ह्रास करते हुए हम उसे अधोगामी करके गिराते हैं ॥३३ ॥

[९ - दुःखमोचन सूक्त]

[ऋषि- यम । देवता- १ प्रजापति, २ सोम, पूषा, ३-४ सूर्य । छन्द- १ आर्ची अनुष्टुप् , २ आर्ची उष्णिक् , ३ साम्नी पंक्ति, ४ परोष्णिक् ।]

४२५०. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥१ ॥

विजयश्री से उपलब्ध पदार्थ और छिन्न - भिन्न उपार्जित किए (हथियाए) गये पदार्थ हमारे वर्चस्व को बढ़ाएँ , हम समस्त शत्रु सैन्य शक्ति पर प्रतिष्ठित रहें ॥१ ॥

४२५१. तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके ॥२ ॥

अग्निदेव और सोमदेव इसी आशय का अनुमोदन कर रहे हैं। पूषादेव हमें पुण्यलोक में अधिष्ठित (विराजमान) करें ॥२ ॥

४२५२. अगन्म स्व१: स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥३ ॥

हम आत्मज्योति (स्वर्गलोक) को प्राप्त हों, हम अपनी तेजस्विता को प्राप्त करें। हम सूर्य की ज्योति से संयुक्त होकर भली प्रकार स्वर्गीय सुखों को प्राप्त करें ॥३ ॥

४२५३. वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ॥४ ॥

ऐश्वर्य- सम्पदा की वृद्धि के लिए हमें धन- सम्पदा का स्वामी बनाएँ। हे देव ! ऐश्वर्य भी यज्ञ स्वरूप है, अत: आप हममें वैभव- सम्पदा स्थापित करें ॥४ ॥

॥ इति षोडशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ सप्तदशं काण्डम् ॥

[१ - अभ्युदयार्थप्रार्थना सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- आदित्य । छन्द- त्र्यवसाना षट्पदा अतिजगती, १त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ६-७,१९ त्र्यवसाना सप्तपदात्यष्टि, ८, ११, १६ त्र्यवसाना सप्तपदातिधृति, ९, १४-१५ पञ्चपदा शक्वरी, १० त्र्यवसाना अष्टपदा धृति, १२ त्र्यवसाना सप्तपदा कृति, १३ त्र्यवसाना सप्तपदा प्रकृति, १७ पञ्चपदा विराट् अतिशक्वरी, १८ त्र्यवसाना सप्तपदा भुरिक् अष्टि, २० ककुप् उष्णिक् , २१ चतुष्पदा उपरिष्टात् बृहती, २२द्विपदा अनुष्टुप्, २३द्विपदा निचृद् बृहती, २४ विराडत्यष्टि, २५-२६ अनुष्टुप् , २७, ३० जगती, २८-२९ त्रिष्टुप् ।]

४२५४. विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् । सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम् । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥१ ॥

अतिसमर्थ, सहनशील, शत्रुहनन के सहज स्वभाव से युक्त, वैरी को दबा डालने में सक्षम, नित्य विजेता, महाबली, अपने पराक्रम से दिग्विजय करने में समर्थ, स्वर्ग के विजेता , गौ (भूमि, इन्द्रियों और गौओं) के विजयी, वैभव सम्पदा के विजेता, इन्द्ररूप सूर्यदेव को हम आवाहित करते हैं, उनकी अनुकम्पा से हम दीर्घायुष्य प्राप्त करें

४२५५. विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् । सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम् । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् ॥२ ॥

अतिसमर्थ, सहिष्णुतायुक्त, शत्रुहनन के सहज स्वभाव से युक्त, वैरी पर दबाव डालने में सक्षम, नित्य विजेता, महाबलिष्ठ, अपने पराक्रम से दिग्विजय में सक्षम, स्वर्ग के विजेता, पृथ्वी, इन्द्रियों और गौओं के विजेता, ऐश्वर्यों को जीतने वाले, इन्द्ररूप सूर्यदेव को हम आवाहित करते हैं । उनकी अनुकम्पा से हम, देवशक्तियों के प्रियपात्र बनें ॥२

४२५६. विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् । सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम् । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥३ ॥

अति सक्षम, सहिष्णु, शत्रुओं के स्वाभाविक हन्ता, शत्रु को दबा डालने में समर्थ, नित्य विजेता, महाबलशाली, स्वसामर्थ्य से दिग्विजय में सक्षम, स्वर्ग को जीतने वाले, भूमि, इन्द्रियों और गौओं तथा ऐश्वर्यों के विजेता, इन्द्र-रूप सूर्य को हम आवाहित करते हैं । उनके अनुग्रह से हम प्रजाजनों के प्रिय पात्र बनें ॥३ ॥

४२५७. विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् । सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम् । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥४ ॥

अति सक्षम, सहनशील, शत्रुओं के सहज हननकर्त्ता, वैरी को दबा डालने में समर्थ, महाबलिष्ठ, नित्य विजेता, स्वर्गीय सुखों, भूमि, इन्द्रियों और गौओं तथा वैभव सम्पदा के विजेता, इन्द्ररूप सूर्यदेव को हम आवाहित करते हैं । उनकी अनुकम्पा से हम पशुओं (गाय, भैंस, बकरी, भेड़, हाथी, घोड़े- ऊँट आदि) के प्रियपात्र बनें ॥४ ॥

४२५८. विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् । सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम् । ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ॥५ ॥

अत्यन्त समर्थ, सहनशील, शत्रुओं के स्वाभाविक हन्ता, शत्रुओं को दबाने में सक्षम, महाबली, नित्य विजेता, स्वर्गीय सुखों, भूमि, इन्द्रियों, गौओं तथा धन- सम्पदा के विजेता, इन्द्ररूप सूर्यदेव को हम आवाहित करते हैं । उनकी कृपादृष्टि से हम समवयस्क मनुष्यों के प्रिय रहें ॥५ ॥

४२५९. उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि। द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥६ ॥

हे सूर्यदेव ! उदित हों, उदित होकर अपने वर्चस् से हमें प्रकाशित करें, हमसे द्वेष- भाव रखने वाले, हमारे वशीभूत हों; परन्तु हम भूलकर भी विद्वेषी शत्रुओं के चंगुल में न आएँ। हे विष्णुरूप सूर्यदेव ! आपका असीम (अनन्त) पराक्रमी शौर्य (कार्य) है, आप हमें विभिन्न आकृतियों से युक्त, पशुओं से परिपूर्ण करें तथा अन्त में परमव्योम (स्वर्ग) में प्रतिष्ठित करें और सुधारस से परितृप्त करें ॥६ ॥

[मन्त्र क्र. ६ से १९ तक मन्त्रों और उनके अर्थ के अन्तिम चरण एक जैसे हैं। अतः आगे के भावार्थ में अन्तिम भाग को यथावत् (....) चिह्न लगाकर छोड़ दिया गया है।]

४२६०. उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि। यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥७ ॥

हे सूर्यदेव ! आप उदित हों, उदित होकर अपनी तेजस्विता से हमें प्रकाशित करें। जिन प्राणियों को हम देखते हैं तथा जिन्हें देखने में सक्षम नहीं हैं, उन दोनों के सम्बन्ध में हमें श्रेष्ठ विचारों से प्रेरित करें। हे विष्णुरूप !__ परितृप्त करें ॥७ ॥

४२६१. मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्व१न्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र। हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥८ ॥

हे सूर्यदेव ! जल के बीच पाशधारी (प्रच्छन्नचारी) राक्षस आपको अन्तरिक्षीय जल में दबाने में समर्थ न हो सकें। हे सूर्यदेव ! आप निन्दा भाव त्यागकर द्युलोक में आरूढ़ हों और हमें सुख प्रदान करें। हम आपके अनुग्रहपूर्ण मार्गदर्शन में रहें। हे विष्णुरूप सूर्यदेव !__ परितृप्त करें ॥८ ॥

४२६२. त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! सौभाग्य की प्राप्ति के लिए आप अदम्य प्रकाश से हमारा संरक्षण करें। हे विष्णुरूप सूर्यदेव !__ परितृप्त करें ॥९ ॥

४२६३. त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव। आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारा कल्याण करें, अपने संरक्षण साधनों से कल्याणप्रद हों। आप तृतीय स्थान द्युलोक में आरूढ़ होकर सोमरस का पान करते हुए, प्रकाश प्रदान करते हुए और लोक कल्याण करते हुए हमारा संरक्षण करें। हे विष्णुरूप सूर्यदेव !__ परितृप्त करें ॥१० ॥

४२६४. त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र। त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥११॥

हे परम ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्ररूप सूर्य ! आप समस्त विश्व के विजेता, सर्वज्ञ और प्रशंसनीय हैं। आप उत्तम स्तोत्रों को प्रेरित करें, हमें सुख प्रदान करें, हम आपकी कृपाबुद्धि में स्थित रहें। हे विष्णुरूप सूर्यदेव !.... परितृप्त करें ॥११॥

४२६५. अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे। अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षञ्छर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१२॥

हे इन्द्रात्मक सूर्य ! आप द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथ्वी में अदम्य हैं ; क्योंकि आप अजस्र शक्ति के स्रोत ब्रह्म द्वारा निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते रहते हैं। हे विष्णुरूप सूर्यदेव !.... परितृप्त करें ॥१२॥

४२६६. या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि। ययेन्द्र तन्वा३न्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा३ शर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्

हे इन्द्ररूप सूर्यदेव ! आप जल में स्थित ओषधि के सारभूत तत्त्वों से हमें सुख प्रदान करें। पृथ्वी और अग्नितत्त्व में जो सुख विद्यमान है , वह हमें प्रदान करें तथा अन्तरिक्ष में संव्याप्त अपने स्वरूप से आप हमारा कल्याण करें। हे विष्णुरूप सूर्यदेव !.... परितृप्त करें ॥१३॥

४२६७. त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१४॥

हे इन्द्रात्मक सूर्यदेव ! अभीष्ट फल की कामना से युक्त प्राचीन ऋषि आपको स्तोत्रों से प्रवृद्ध करते हुए सत्र नामक यज्ञ सम्पन्न करने के लिए अनुशासित होकर बैठते थे। हे विष्णुरूप सूर्यदेव !.... परितृप्त करें ॥१४॥

४२६८. त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१५॥

हे इन्द्रात्मक सूर्यदेव ! आप विस्तृत अन्तरिक्ष में संव्याप्त अनन्त धाराओं से युक्त मेघों को प्राप्त होते हैं। ये मेघ ओषधियों के संवर्धक और यज्ञ के साधनभूत होकर यज्ञ की प्रतिमूर्ति हैं। हे सर्वव्यापक सूर्यदेव !.... परितृप्त करें ॥१५॥

४२६९. त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि। त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१६॥

हे सूर्यदेव ! आप चारों दिशाओं के संरक्षक हैं। आप अपनी तेजस्विता से द्युलोक और पृथ्वी को आलोकित करते हैं और इन सभी लोकों के अनुकूल होकर प्रतिष्ठित होते हैं। ऋत (यज्ञ-सत्य) को समझकर उसी मार्ग का अनुसरण करते हैं। हे सर्वव्यापक सूर्यदेव !.... परितृप्त करें ॥१६॥

४२७०. पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो
बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्।

हे सूर्यदेव ! आप पाँच (किरणों) से ऊपर के लोकों को प्रकाशित करते हैं तथा एक (किरण) से नीचे की ओर प्रकाश फैलाते हैं। इस प्रकार (कुहरे, मेघ आदि से रहित) सुदिन की स्थिति में सभी लोगों द्वारा आप प्रार्थित होते हैं। हे विष्णुरूप सूर्यदेव !__ परितृप्त करें ॥१७ ॥

[अन्तरिक्ष (भुवः) में स्थित सूर्य ऊपर के पाँच लोकों (स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्) को प्रकाशित करते हैं और नीचे के एक (भूः) लोक को प्रकाशित करते हैं- यही पाँच और एक किरण का तात्पर्य है।]

४२७१. त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः। तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं
जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि
पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१८ ॥

हे सूर्यदेव ! आप ही स्वर्गलोक के अधिपति इन्द्र हैं, आप ही पुण्यात्माओं को प्राप्त होने वाले पुण्यलोक हैं। सम्पूर्ण प्रजा के उत्पादक (स्रष्टा) आप ही हैं। साधकगण आपके लिए ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ सम्पन्न करते हैं। हे सर्वव्यापक देव !__ परितृप्त करें ॥१८ ॥

४२७२. असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम्। भूतं ह भव्य आहितं
भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१९ ॥

असत् (प्राकृतिक) जगत् में सत् (चेतन तत्त्व) है और सत् तत्त्व (चेतन तत्त्व) में उत्पन्न हुआ यह जगत् प्रतिष्ठित है। भूत (अतीत) समूह भविष्यत् (आगे होने वाले भूत समूह) में विद्यमान रहता है और भविष्यत् विगत भूत समूह पर आश्रित रहता है। हे विष्णुरूप सूर्यदेव !__ परितृप्त करें ॥१९ ॥

४२७३. शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि। स यथा त्वं भ्राजता
भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥२० ॥

हे सूर्यदेव ! आप तेजस्वी होकर देदीप्यमान रहते हैं। हे देव ! जिस प्रकार आप सम्पूर्ण विश्व को अपनी तेजस्विता से प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार हम (उपासक) भी तेजोमय प्रकाश को प्राप्त करें ॥२० ॥

४२७४. रुचिरसि रोचोऽसि। स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं
पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ॥२१ ॥

हे सूर्यदेव ! आप दीप्तिरूप और देदीप्यमान रहने वाले हैं। जिस प्रकार आप विश्व की प्रकाशक दीप्ति से देदीप्यमान हैं, उसी प्रकार हम भी गौ, अश्वादि पशुओं और ब्रह्मतेजस् से प्रकाशमान रहें ॥२१ ॥

४२७५. उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२२ ॥

हे सूर्यदेव ! उदीयमान को नमस्कार है, ऊपर उठने वाले को नमस्कार है, उदय हो चुकने वाले को नमस्कार है, विशेष दीप्तिमान् को नमन है, स्वकीय तेजस्विता से जाज्वल्यमान को नमन है तथा उत्कृष्टरूप से प्रकाशमान को हमारा वन्दन है ॥ २२ ॥

४२७६. अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२३ ॥

अस्त होने की स्थिति वाले, अर्द्धास्त हो चुकने वाले और सम्पूर्णरूप से अस्त हो चुकने वाले आदित्य को नमन है । विशेष तेजवान् , श्रेष्ठ प्रकाशमान तथा स्वकीय तेजस्विता से प्रकाशित होने वाले सूर्यदेव के निमित्त हमारा वन्दन है ॥२३ ॥

४२७७. उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो
बहुधा वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां
मा धेहि परमे व्योमन् ॥२४ ॥

अपने किरण समूह से सम्पूर्ण लोकों को भली प्रकार प्रकाशित करते हुए सूर्यदेव, हमारे आधि-व्याधि रूप शत्रुओं (विकारों) को दूर करते हुए उदित हो गये हैं । हे सूर्यदेव ! आपकी कृपादृष्टि से हम दुष्ट- विकारों के वशीभूत न हो सकें । हे व्यापक सूर्यदेव ! आपके अनन्त पराक्रम हैं, आप हमें विभिन्न आकारों से युक्त पशुओं से परिपूर्ण करें । देहत्याग के पश्चात् हमें परम व्योम में अधिष्ठित करें और अमृतरस से तृप्त करें ॥२४ ॥

४२७८. आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय ॥२५ ॥

हे सूर्यदेव ! आप हमारे कल्याण के निमित्त सैकड़ों अरित्रों (डाँडों) से युक्त नाव पर आरोहण करें । आप दिन में और रात्रि के समय भी हमारे साथ रहकर हमें पार करें ॥२५ ॥

४२७९. सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय ॥२६ ॥

हे सूर्यदेव ! आप (आकाश सागर से पार जाने के लिए) विश्व के मंगलार्थ (वायुरूपी) सैकड़ों पतवारों के साथ (रथरूपी) नाव पर आरूढ़ हुए हैं । आपने हमें सकुशल रात्रि के पार पहुँचा दिया है, इसी प्रकार आप हमें दिन के भी पार उतारें ॥२६ ॥

४२८०. प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥२७ ॥

प्रजापतिरूप सूर्य के ज्ञानरूप कवच से आच्छादित होते हुए हम कश्यप (सर्वदर्शक) के तेज और शक्ति से युक्त होकर वृद्धावस्था पर्यन्त नीरोग रहकर सुदृढ़ अंग- अवयवों से युक्त रहते हुए चिरकाल तक विभिन्न भोगों का उपभोग करें । हमारी गति कहीं अवरुद्ध न हो । हम दीर्घायु पाकर लौकिक और वैदिक सम्पूर्ण क्रियाकलापों को भली प्रकार सम्पन्न करके स्वयं को धन्य बनाएँ । हे सूर्यदेव ! हम आपके कृपापात्र रहें ॥२७ ॥

४२८१. परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥२८ ॥

हम कश्यप (द्रष्टा) आदित्यदेव के मन्त्ररूप कवच, उनके तेज और रश्मि प्रकाश से संरक्षित रहें । अतएव हमारे संहारार्थ देवों और मनुष्यों द्वारा भेजे गये बाण (आयुध) हमें प्रभावित न करें (अर्थात् हमारे संहार में समर्थ न हों) ॥२८ ॥

४२८२. ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम्।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥२९ ॥

हम सत्यनिष्ठा से वसन्तादि ऋतुओं से तथा पूर्वकाल और भविष्यत्काल में उत्पन्न होने वाले समस्त पदार्थों से संरक्षित रहें। नरक का निमित्त कारण पाप कर्म और मृत्यु हमें प्राप्त न हो। हम मन्त्ररूपी वाणी से स्वयं को रक्षित (परिष्कृत) करते हैं ॥२९ ॥

४२८३. अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥३० ॥

संरक्षक अग्निदेव सभी ओर से हमारी सुरक्षा करें, सूर्यदेव उदित होते समय मृत्यु के रूप में विस्तृत सर्प, अग्नि, व्याघ्र आदि के बन्धनों से मुक्त करें। प्रकाशयुक्त उषःकाल और स्थिर पर्वत मृत्यु के बन्धनों का निवारण करें। प्राणशक्ति विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों में सचेष्ट होता हुआ हमारी आयुष्य वृद्धि में संलग्न रहे, इन्द्रिय शक्तियाँ भी सतत हममें चेष्टाशील रहें ॥३० ॥

॥ इति सप्तदशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥अथाष्टादशं काण्डम्॥

[१ - पितृमेध सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- यम, मन्त्रोक्त, ४० रुद्र, ४१-४३ सरस्वती, ४४-४६, ५१-५२ पितरगण । छन्द- त्रिष्टुप्, ८, १५ आर्षी पंक्ति, १४, ४९-५० भुरिक् त्रिष्टुप्, १८-२३ जगती, ३७-३८ परोष्णिक्, ५६-५७, ६१ अनुष्टुप्, ५९ पुरोबृहती ।]

इस सूक्त के मंत्र क्रमांक १ से १६ तक ऋग्. १०/१० की तरह यम-यमी प्रसंग है। ऋग्. १०/१० में १४ मंत्र हैं, क्रमांक ६ अधिक है तथा क्रं. १४ एवं १५ में आधे-आधे चरण अतिरिक्त हैं, शेष मंत्र एक जैसे हैं। इस प्रसंग को स्पष्ट करने के लिए ऋग्. १०/१० में पर्याप्त समीक्षात्मक टिप्पणी दी गई है। संक्षेप में पौराणिक सन्दर्भ से यम और यमी विवस्वान् के पुत्र-पुत्री हैं। यमी ने एक बार यम से प्रणय निवेदन किया, यम ने विवेक सम्मत तर्क देकर उसके आग्रह को टाल दिया। स्थूल सम्बन्धों में यदि एक पक्ष कमजोरी दिखाये, तो दूसरे को उसे सँभाल लेना चाहिए।

प्रकृति-सृष्टि के सन्दर्भ में 'विवस्वान्' परम व्योम में संव्याप्त दिव्य चेतना का प्रकाश या प्रवाह है। उसके विभाजन से नियामक शक्ति युक्त दो प्रकार उभरे- यम और यमी। यदि वे दोनों आपस में ही मिल जाएँ, तो पुनः वही एक रस तत्व 'विवस्वान्' बन जाएँ, इसलिए यम, यमी से आग्रह करते हैं कि हम अलग-अलग रहकर सृष्टि चक्र को आगे बढ़ाएँ। यह प्रक्रिया पदार्थ विज्ञान द्वारा स्थापित सृष्टि उद्भव के क्रम से भी मेल खाती है-

४२८४. ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥१॥

(यमी ने कहा) हे यमदेव ! विशाल समुद्र (व्योम) के एकान्त प्रदेश में सख्य भाव या मित्ररूप से आपसे मैं मिलना चाहती हूँ। विधाता की इच्छा है कि नौका के समान संसार-सागर में तैरने के लिए पिता के नाती सदृश श्रेष्ठ सन्तति को जन्म देने के लिए हम परस्पर संगत हों ॥१॥

४२८५. न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

(यम का कथन) हे यमी ! आपका सहयोगी यम आपके साथ इस प्रकार के सम्पर्क की कामना से रहित है, क्योंकि आप सहोदरा बहिन हैं। हमें यह अभीष्ट नहीं। असुर (प्राणरक्षक, शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों या तत्वों) के वीर पुत्र, जो दिव्य लोकादि के धारणकर्त्ता हैं, वे सर्वत्र विचरण करते हैं (उनकी संगति ही अभीष्ट हो) ॥२॥

४२८६. उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥३॥

(यमी का कथन है) हे यम ! यद्यपि मनुष्यों में ऐसा संयोग त्याज्य है, तो भी देवशक्तियाँ इस प्रकार के संसर्ग की इच्छुक होती हैं। मेरी इच्छा का अनुसरण आप भी करें। पतिरूप में आप ही हमारे लिए उपयुक्त हैं ॥३॥

४२८७. न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

(यम का कथन) हे यमी ! हमने पहले भी इस प्रकार का कृत्य नहीं किया। हम सत्यवादी हैं, असत्य वचन नहीं बोलते। अप् (सृष्टि का मूल तत्त्व) से ही गन्धर्व और अप् से ही योषा (नारी-माता) की उत्पत्ति हुई है, वे ही हम दोनों के उत्पादक हैं, यही हमारा विशिष्ट सम्बन्ध है (जिसे हमें निभाना चाहिए) ॥४॥

[अप् का सामान्य अर्थ जल लिया जाता है; किन्तु विद्वानों ने इसे मूल उत्पादक तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था कहा है। वर्तमान भौतिक विज्ञान के सन्दर्भ में इसे पदार्थ की 'क्वान्टम' अवस्था कह सकते हैं। सायण ने भी लिखा है "आपो वै सर्वा देवता:"। गोपथ ब्राह्मण ने 'अपांगर्भ: पुरुष' 'अप् का गर्भ ब्रह्म' कहा है। पौराणिक सन्दर्भ में गन्धर्व से सूर्य तथा योषा से सूर्य पत्नी सरण्यु का भाव लिया जाता है।]

४२८८. गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूप:।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौ: ॥५ ॥

(यमी का कथन) हे यम ! सर्वप्रेरक और सर्वव्यापी उत्पादनकर्ता त्वष्टा (गढ़ने वाले) देव ने हमें गर्भ में ही (एक साथ रहकर) दम्पति के रूप में सम्बद्ध किया है। उस प्रजापालक परमेश्वर की इच्छा (विधि-व्यवस्था) को रोकने में कोई सक्षम नहीं, हमारे इस सम्बन्ध का पृथ्वी और द्युलोक को भी परिचय है ॥५ ॥

४२८९. को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥६ ॥

सामर्थ्यवान् शत्रुओं पर क्रोध करने वाले, बाण धारण करके लक्ष्यभेद करने वाले, इन्द्रदेव के रथ, जिसकी धुरी ऋत (सत्य अथवा यज्ञ) है, उसके साथ अश्वों को आज कौन योजित कर सकता है ? वही (ऐसा करने वाला) जीवित (प्राणवान) रहता है ॥६ ॥

[जीवन के शत्रुओं-दोषों को पराजित करने के लिए जो व्यक्ति ऊर्जा (शक्ति) को ऋत के साथ जोड़ने में समर्थ होता है, वही प्राणवान् होकर जीवित रहता है।]

४२९०. को अस्य वेद प्रथमस्याह्न: क ईं ददर्श क इह प्र वोचत्।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥७ ॥

हे यम ! इस प्रथम दिवस की बात से कौन परिचित है ? इसे कौन देखता है ? इस पारस्परिक सम्बन्ध को कौन बतलाने में समर्थ है ? मित्रावरुण देवों के इस महान् धाम में अध:पतन की बात आप किस प्रकार कहते हैं ? ॥

४२९१. यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥८ ॥

पति के प्रति पत्नी के समर्पण के समान ही, तुम्हें अपने आपको सौंपती हूँ। एक ही स्थान पर साथ-साथ रहकर कर्म करने की कामना मुझे प्राप्त हुई है। हम रथ के दो पहियों की तरह समान कार्यों में प्रेरित हों ॥८ ॥

४२९२. न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥९ ॥

(यम का कथन) हे यमी ! इस लोक में जो देवताओं के पार्षद हैं, वे रात-दिन विचरण करते हैं, वे कभी रुकते नहीं, उनकी दृष्टि से कुछ भी छिपा सकने की सामर्थ्य नहीं। हे आक्षेपकारिणि ! आप कृपया इस भावना से मेरे समीप से चली जाएँ और किसी दूसरे को पतिरूप में वरण करें ॥९ ॥

४२९३. रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि ॥१० ॥

(यमी का कथन) हे यम ! रात्रि और दिवस दोनों ही हमारी कामनाओं को पूर्ण करें, सूर्य का तेज यम के लिए तेजस्विता प्रदान करे। द्युलोक और पृथ्वी के समान ही हमारा सम्बन्ध अभिन्न साथी का है; अतएव यमी, यम का साहचर्य प्राप्त करे, इसमें दोष नहीं है ॥१० ॥

४२९४. आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥११ ॥

(यम का कथन) हे यमी ! ऐसा समय भविष्य में आ सकता है, जिसमें बहिनें बन्धुत्व भावरहित भाइयों को ही पतिरूप में स्वीकार करें; किन्तु हे सुभगे ! आप मुझसे पतित्व सम्बन्ध की अपेक्षा न रखें । आप किसी दूसरे से सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करें ॥११ ॥

४२९५. किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्।
काममूता बह्वे३तद् रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥१२ ॥

(यमी का कथन) हे यम ! वह कैसा भाई जिसके रहते बहिन अनाथ फिरे ? वह कैसी बहिन; जो लाचार की तरह पलायन कर जाए ? काम भावना से प्रेरित होकर मेरे द्वारा बहुत बात कही जा रही है, इसीलिए परस्पर काया को संयुक्त करें ॥१२ ॥

४२९६. न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्याम्।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१३ ॥

हे यमी ! यहाँ मैं (यम) तुम्हारा स्वामी नहीं हूँ; अतएव तुम्हारे शरीर के साथ अपने शरीर को संयुक्त करना उपयुक्त नहीं; तुम मेरे प्रति इस अभिलाषा को त्यागकर अन्य पुरुष के साथ आनन्द का उपभोग करो । हे सौभाग्यवति ! आपका भाई यम इस प्रकार का (दाम्पत्य) सम्बन्ध तुम्हारे साथ स्थापित नहीं कर सकता ॥१३ ॥

४२९७. न वा उ ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥१४ ॥

पूर्वोक्त कथन को सुदृढ़ता प्रदान करते हुए यम कहते हैं- हे यमी ! आपके साथ मैं अपने शरीर को किसी भी स्थिति में संयुक्त करने में सहमत नहीं । धर्मवेत्ता ज्ञानियों ने भाई- बहिन के पवित्र सम्बन्ध में इसे धर्म विरुद्ध, पापकर्म कहा है । मैं भाई होते हुए बहिन की शय्या पर शयन करूँ, यह भावना (हृदय) तथा बुद्धि (मन) दोनों दृष्टियों से असंगत है ॥१४ ॥

४२९८. बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ॥१५ ॥

(यमी का कथन) अरे यम ! तुम बहुत दुर्बल हो । तुम्हारे मन और हृदय के भावों को समझने में मुझ से भूल हुई । क्या रस्सी द्वारा घोड़े को बाँधने के समान तथा लता द्वारा वृक्ष को आच्छादित करने के समान तुम्हें कोई अन्य स्त्री (नारी) स्पर्श कर सकती है (फिर मैं क्यों नहीं ?) ॥१५ ॥

४२९९. अन्यमू षु यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम्।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥१६ ॥

(यम का कथन) हे यमी ! जब आप इस जानकारी से परिचित हैं, तो आप भी अन्य पुरुष का, वृक्ष की लता के समान आश्रय ग्रहण करें, अन्य पुरुष को पतिरूप में आप स्वीकार करें, परस्पर एक दूसरे की हार्दिक इच्छाओं के अनुरूप, आचरण करें तथा उसी से अपने मंगलकारी सुख को प्राप्त करें ॥१६ ॥

४३००. त्रीणि च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ॥१७ ॥

ज्ञानियों ने इस संसार को आच्छादित करने वाले जल, वायु और प्राण तत्त्व को निर्वाह के लिए नाना प्रकार के कार्यों में संलग्न किया है । इन तीनों में प्रत्येक, अनेक रूपों से युक्त हैं । वह अद्भुत और सबके दर्शन योग्य है । इन जल, वायु और ओषधियों को देव शक्तियों ने भूगोल में निर्वाह हेतु स्थापित किया है ॥१७ ॥

४३०१. वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियाँ ऋतून् ॥१८ ॥

वर्षणशील, महिमायुक्त और अदम्य अग्निदेव ने अन्तरिक्षीय मेघों का दोहन करके यज्ञ-सम्पादक यजमानों के लिए जल बरसाया । जिस प्रकार वरुणदेव अन्तर्ज्ञान से सम्पूर्ण संसार के ज्ञाता हैं । यज्ञ में प्रयुक्त अग्निदेव की ऋचाओं के अनुरूप अर्चना करें ॥१८ ॥

४३०२. रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥१९ ॥

अग्निदेव की महिमा का गान करने वाली गन्धर्व-पत्नी (वाणी) और जल द्वारा शुद्ध हुई हवियों ने अग्निदेव को सन्तुष्ट किया । एकाग्रतापूर्वक स्तोत्रगान करने वाले साधकों को अखण्ड अग्निदेव यज्ञीय सत्कर्मों की ओर प्रेरित करें । यजमानों में प्रमुख, हमारे ज्येष्ठ भ्राता के समान, यज्ञ संचालक इन अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं ॥१९ ॥

४३०३. सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥२० ॥

जब यश की कामना से साधकगण ब्राह्ममुहूर्त में यज्ञादि कर्म के लिए अग्निदेव को प्रकट करते हैं । निश्चित ही उसी समय सबका कल्याण करने वाली, पोषक तत्त्वों से सम्पन्न, सविता के तेज से देदीप्यमान, उषा प्रकाशित होती है ॥२० ॥

४३०४. अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥२१ ॥

इस (दिव्य उषा के आवरण) के बाद यज्ञ प्रेरित श्येन (सुपर्ण-सूर्य) द्वारा बलशाली, महिमामय, दर्शनीय सोम को समुचित मात्रा में लाया गया । जिस समय श्रेष्ठ जन, सम्मुख जाने योग्य, दर्शनीय तथा देवों के आवाहनकर्त्ता, अग्निदेव की स्तुति करते हैं; उसी (यज्ञ के) समय धी (बुद्धि अथवा धारण करने की क्षमता) उत्पन्न होती है ॥२१ ॥

४३०५. सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो३ वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥२२ ॥

हे अग्निदेव ! पशुओं के लिए जिस प्रकार घास आदि आहार विशेष रुचिकर होते हैं, उसी प्रकार आप सदैव रमणीय होकर श्रेष्ठ यज्ञों से मनुष्यों के लिए कल्याणप्रद हों । स्तोताओं के स्तोत्रगान से प्रशंसित होकर आप हविष्यान्न ग्रहण करते हुए विभिन्न देव शक्तियों के साथ हमारे यज्ञ को सफल बनाएँ ॥२२ ॥

४३०६. उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥२३ ॥

हे अग्ने !सूर्यदेव अपने प्रकाशरूपी तेज से सर्वत्र फैलते हैं, वैसे आप भी अपने ज्वालारूपी तेज को माता-पिता (पृथ्वी-आकाश) में विस्तृत करें । सन्मार्गाभिलाषी यजमान अन्तःकरण से यज्ञ करने के इच्छुक हैं ।अग्निदेव स्तोत्रों को संवर्द्धित करते हैं तथा यज्ञकर्म में कोई त्रुटि न रह जाए, इसलिए सदैव जागरूक रहते हैं । है ॥२३ ॥

४३०७. यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् ॥२४ ॥

बल से उत्पन्न हे अग्निदेव ! जो मनुष्य आपकी सुमति को प्राप्त कर लेते हैं । वे विशेष ख्याति को प्राप्त होते हैं । अन्नादि से सम्पन्न, अश्वादि से युक्त, तेजस्-सम्पन्न और शक्तिशाली होकर वे मनुष्य दीर्घजीवन तथा सुख-सौभाग्य को प्राप्त करते हैं ॥२४ ॥

४३०८. श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥२५ ॥

हे अग्निदेव ! इन सम्पूर्ण देवताओं से सम्पन्न यज्ञस्थल में रहते हुए आप हमारे द्वारा की गई प्रार्थनाओं के अभिप्राय को जानें । आप अपने अमृतवर्षक रथ को योजित करें । देव शक्तियों के माता-पिता रूप द्यावा-पृथिवी को हमारे यज्ञ में लेकर आएँ । कोई भी देव हमारे यज्ञ कर्म से असन्तुष्ट न हो , अतएव आप यहीं रहें । देवों के आतिथ्य से पृथक् न हों ॥२५ ॥

४३०९. यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥२६ ॥

हे स्वधायुक्त यज्ञीय अग्निदेव ! जिस अवसर पर, हम यजनीय देवताओं के लिए, प्रार्थना सम्पन्न करें तथा जिस समय आप विभिन्न प्रकार के रत्नादि द्रव्यों को यजमानों में वितरित करते हों, उस समय आप हमारे भी धन का हिस्सा हमें प्रदान करें ॥२६ ॥

४३१०. अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥२७ ॥

अग्निदेव सर्वप्रथम उषा और उसके बाद दिन को प्रकट करते हैं । वे ही सूर्यात्मक होकर उषा, किरण तथा द्यावा-पृथिवी में संव्याप्त हैं । सभी उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता अग्निदेव ही इन सबमें भिन्न-भिन्न रूपों में संव्याप्त हैं । वास्तव में सूर्य भी अग्नि तत्त्व से पृथक् नहीं ॥२७ ॥

४३११. प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥२८ ॥

अग्निदेव नित्य उषःकाल में प्रकाशित होते हैं तथा वे ही दिन के साथ प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं । श्रेष्ठ, जातवेदा अग्निदेव नाना रूपों में, सूर्य की रश्मियों में भी स्वयमेव प्रकाशित होते हैं तथा द्युलोक और पृथ्वीलोक में अपना आलोक फैलाते हैं ॥२८ ॥

४३१२. द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥२९ ॥

सत्य वचनों के द्वारा द्युलोक और पृथ्वी, यज्ञीय अवसर पर नियमानुसार अग्निदेव का आवाहन करें । तत्पश्चात् तेजस्-सम्पन्न अग्निदेव भी यज्ञीय कर्म की ओर मनुष्यों को प्रेरित करें । वे अपनी प्रज्वलित ज्योति से अग्नि में प्रतिष्ठित होकर देवों के आवाहन के लिए उद्यत हों ॥२९ ॥

४३१३. देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥३० ॥

दिव्यगुण-सम्पन्न, देवताओं में ऋत (यज्ञ या सत्य) के प्रमुख ज्ञाता, सर्वोत्तम अग्निदेव हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को देवताओं के समीप पहुँचाएँ। धूम्र-ध्वजा वाले, समिधाओं द्वारा ऊर्ध्वगामी, कान्ति द्वारा उज्ज्वल, प्रशंसनीय, देवों के आवाहक, नित्य अग्निदेव को प्रार्थनापूर्वक आहुतियाँ समर्पित की जाती हैं ॥३० ॥

४३१४. अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे।
अहा यद् देवा असुनीतिमायन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥३१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे यज्ञीय कर्मों को सम्पन्न करें। हे जलवर्षक द्यावापृथिवी ! हम आपकी स्तुति करते हैं। आप इस अभिप्राय को जानें। स्तोता जिस समय यज्ञ के अवसर पर आपकी प्रार्थना करते हैं, उसी समय माता-पिता रूपी पृथ्वी और द्युलोक यहाँ जल-वृष्टि करके हमारे लिए विशेष सहायक सिद्ध हों ॥३१ ॥

४३१५. स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥३२ ॥

अग्निदेव द्वारा सुखों को प्रदान करने वाले जल का उत्पादन होता है, उससे उत्पादित ओषधियों का द्यावा-पृथिवी द्वारा पोषण किया जाता है। हे अग्निदेव ! आपकी दीप्तिमान् ज्वालाएँ, स्वर्गस्थ दिव्य पोषक रस के रूप में जल का दोहन करती हैं। सभी देवताओं द्वारा, आपके इस जल-वृष्टि रूपी अनुदान की महिमा का गान किया जाता है ॥३२ ॥

४३१६. किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥३३ ॥

क्या प्रज्वलित अग्निदेव हमारी प्रार्थनाओं और हविष्यान्न को ग्रहण करेंगे ? क्या हमारे द्वारा उनके नियमों- व्रतों का उचित रीति से निर्वाह किया गया है ? इसे जानने में कौन समर्थ है ? श्रेष्ठ मित्रों को बुलाने के समान ही अग्निदेव भी हमारे आवाहन पर प्रकट होते हैं। हमारी ये प्रार्थनाएँ और हविष्यान्न देवताओं की ओर गमन करें ॥३३ ॥

४३१७. दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥३४ ॥

जल इस भूमि पर अमृतस्वरूप गुणों से सम्पन्न और नानाविध रूपों में संव्याप्त है, जो यमदेव के अपराधों को क्षमा करता है। हे महिमावान्, तेजस्वी अग्निदेव ! आप इस जल का संरक्षण करें ॥३४ ॥

४३१८. यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥३५ ॥

यमराज की यज्ञवेदी (पूजावेदी) पर प्रतिष्ठित होने वाले देवगण, अग्निदेव के सान्निध्य को प्राप्त करके हर्षित होते हैं। इनके द्वारा ही सूर्य में तेजस्विता (दिवस) तथा चन्द्रमा में रात्रि को स्थापित किया गया है। ये दोनों सूर्य और चन्द्र अनवरत तेजस्विता को धारण किये हुए हैं ॥३५ ॥

४३१९. यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥३६ ॥

जिन ज्ञान-सम्पन्न अग्निदेव की उपस्थिति में देव शक्तियाँ अपने कार्यों का निर्वाह करती हैं। हम उनके रहस्यमय स्वरूप को जानने में असमर्थ हैं ॥३६ ॥

४३२०. सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ॥३७ ॥

हे मित्रो ! स्तोत्रों से, वज्र धारण करने वाले इन्द्रदेव की स्तुति करते हुए, हम उनसे आशीर्वाद की याचना करते हैं । श्रेष्ठ वीर तथा शत्रुओं को पराजित करने वाले इन्द्रदेव की, आप सभी के कल्याण के लिए हम स्तुति करते हैं ॥३७ ॥

४३२१. शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा । मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥३८ ॥

हे मित्र याजको ! वज्र धारण करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त हम स्तुति पाठ करते हैं । आप भी उन रिपुसंहारक तथा महान् नायक इन्द्रदेव की भली प्रकार से प्रार्थना करें ॥३८ ॥

४३२२. स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥३९ ॥

जिस प्रकार वर्षाकाल में मेढक पृथ्वी को छोड़कर जल में छलाँग लगाता है, उसी प्रकार आप भी विस्तृत भू-भाग को लाँघकर ऊपर की ओर गमन करें । वायुदेव, अग्नि के सहयोग से हमारे निमित्त सुखकारक बनकर बहें । प्राणि- समुदाय के सखारूप मित्रदेव और वरुणदेव अग्नि द्वारा घास को पूर्णरूप से भस्मसात् करने के समान ही हमारे दुःख और कष्टों को दूर करें ॥३९ ॥

४३२३. स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ॥४० ॥

हे स्तोताओ ! यशस्वी रथ में विराजमान तरुण सिंह के समान भय उत्पन्न करने वाले, शत्रुसंहारक, बलशाली रुद्रदेव की स्तुति करो । हे रुद्रदेव ! आप स्तोताओं को सुखी बनाएँ तथा आपकी सेना शत्रुओं का संहार करे ॥४० ।

४३२४. सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥४१ ॥

दैवी गुणों के इच्छुक मनुष्य, देवी सरस्वती का आवाहन करते हैं । यज्ञ के विस्तारित होने पर वे देवी सरस्वती की ही स्तुति करते हैं । श्रेष्ठ पुण्यात्माओं द्वारा देवी सरस्वती के आवाहन किये जाने पर, वे दानियों की आकांक्षाओं को परिपूर्ण करती हैं ॥४१ ॥

४३२५ सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४२ ॥

हमारे आवाहन पर दक्षिण दिशा से आने वाले सभी पितर जिन माँ सरस्वती को पाकर संतुष्ट होते हैं । वे माता सरस्वती हमारे इस पितृयज्ञ में उपस्थित हों । हम उनका आवाहन करते हैं । वे प्रसन्नतापूर्वक हमें उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करने वाला अन्न प्रदान करें ॥४२ ॥

४३२६. सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥४३ ॥

हे सरस्वती देवि ! जो आप स्वधायुक्त अन्न द्वारा परितृप्त होती हुईं पितरजनों के साथ एक ही रथ पर आगमन करती हैं । आप मनुष्यों को परितृप्त करने वाला अन्न भाग और वैभव-सम्पदा, हम साधकों को प्रदान करें ॥४३ ॥

४३२७. उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४४ ॥

हमारे तीनों प्रकार (उत्तम, मध्यम और अधम) के पितर अनुग्रहपूर्वक इस यज्ञानुष्ठान में उपस्थित हैं । वे पुत्रों की प्राणरक्षा के उद्देश्य से यज्ञ में समर्पित हविष्यान्न ग्रहण करें तथा हमारी रक्षा करें ॥४४ ॥

४३२८. आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥४५ ॥

हमने यज्ञानुष्ठान सम्पन्न करने का विधि-विधान अपने पितरों से ही सीखा है । वे इससे भली-भाँति परिचित हैं । सभी पितर यज्ञशाला में कुश-आसन पर प्रतिष्ठित होकर हविष्यान्न एवं सोमरस ग्रहण करें ॥४५ ॥

४३२९. इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ॥४६ ॥

जो पितामहादि पूर्वज या उसके पश्चात् मृत्यु को प्राप्त पितरगण हैं या जो पृथ्वी के राजसी भोगों का उपभोग करने के लिए उत्पन्न हुए हैं या जो सौभाग्यवान्, वैभव-सम्पन्न बांधवों के रूप में हैं, उन सभी को नमन है ॥४६ ॥

४३३०. मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४७ ॥

इन्द्रदेव कव्यों से, यमदेव अंगिरसों से तथा बृहस्पतिदेव ज्ञान से, पोषण प्राप्त करके संतुष्ट होते हैं । देवों को बढ़ाने वाले वे कव्य अंगिरस् आदि पितर हमारी रक्षा करें । हम उनका आवाहन करते हैं ॥४७ ॥

४३३१. स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥४८ ॥

सोमरस तीक्ष्ण, मधुर एवं रुचिकर स्वाद वाला होता है । इस सोम के पीने वाले इन्द्रदेव को युद्ध में कोई जीत नहीं सकता ॥४८ ॥

४३३२. परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥४९ ॥

विस्तृत पृथ्वी को पार करके अतिदूरस्थ लोक में ले जाने वाले, अनेक पितरजनों द्वारा चले गये मार्ग में जाने वाले विवस्वान् के पुत्र, राजा यम की हविष्यान्न समर्पित करते हुए अर्चना करें ॥४९ ॥

४३३३. यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥५० ॥

यमदेव ने हमारे गमन पथ को सर्वप्रथम जाना है । उसे कोई परिवर्तित करने में सक्षम नहीं है । जिस मार्ग से हमारे पूर्वकालीन पूर्वज गये हैं, उसी मार्ग से सभी मनुष्य भी स्व-स्व कर्मों के अनुसार लक्ष्य की ओर जाएँगे । हे सर्वोत्तम यमदेव ! आप सभी मनुष्यों के पापरूपी दुष्कर्म और पुण्यरूपी सत्कर्मों को जानने में समर्थ हैं ॥५० ॥

४३३४. बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥५१ ॥

हे पितृगण ! हमारे आवाहन पर उपस्थित होकर कुश-आसन पर प्रतिष्ठित हों, इनको स्वीकार कर आप हमारा हर प्रकार से कल्याण करें । पाप से बचाकर रक्षा करें ॥५१ ॥

४३३५. आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे ।

मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम ॥५२ ॥

हे पितृगण !आप हमारी रक्षा के लिए पधारें । यज्ञशाला में दक्षिण की ओर घुटनों के बल विराजमान होकर यज्ञ में समर्पित हवियों को ग्रहण करें । हमसे मानवीय भूलों के कारण जो अपराध बन पड़े हैं, उनके कारण हमें पीड़ित न करें ॥५२ ॥

४३३६. त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति ।

यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥५३ ॥

त्वष्टा (स्रष्टा) अपनी पुत्री (प्रकृति) को वहन करने योग्य अथवा विवाहित करते हैं । (इस प्रक्रिया में) समस्त विश्व के प्राणी सम्मिलित होते हैं । यम की माता (सरण्यू) का जब सम्बन्ध हुआ, उस समय विवस्वान् (सूर्य) की महिमामयी पत्नी लुप्त हुई ॥५३ ॥

[**प्रसिद्ध है कि त्वष्टा की पुत्री अपनी छाया (प्रतिकृति-डुप्लीकेट) को सूर्य के साथ करके लुप्त हो गई थी । यम उसी प्रतिकृति से उत्पन्न हुए थे ।**]

४३३७. प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।

उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥५४ ॥

हे पिता ! जिन पुरातन मार्गों से हमारे पूर्वज पितरगण गये हैं, उन्हीं से आप भी गमन करें । वहाँ स्वधारूप अमृतान्न से तृप्त होकर राजा यम और वरुणदेवों के दर्शन करें ॥५४ ॥

४३३८. अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।

अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥५५ ॥

हे दुष्ट पिशाचो ! पितरगणों ने इस मृतात्मा के लिए यह स्थान निर्धारित किया है अर्थात् दाहस्थल निश्चित किया है । अतः आप इस स्थान को त्यागकर दूर चले जाएँ । यमदेव ने दिन-रात जल से सिञ्चित इस स्थल को मृत देहों के लिए प्रदान किया है ॥५५ ॥

४३३९. उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।

उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥५६ ॥

हे पवित्र यज्ञाग्ने ! हम श्रद्धापूर्वक यत्न करते हुए आपको प्रतिष्ठित करते हैं तथा अधिक प्रज्वलित करने का प्रयत्न करते हैं । जो देव एवं पितृगण यज्ञ की कामना करते हैं, आप उन तक समर्पित हव्य को पहुँचाते हैं ॥५६ ॥

४३४०. द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि ।

द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥५७ ॥

हे अग्निदेव ! हम दीप्तिमान् होते हुए आपको आवाहित करते हैं, कान्तियुक्त होकर हम आपको भली प्रकार प्रज्वलित करते हैं । दीप्तिमान् होकर आप हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए पितरगणों को साथ लेकर पधारें ॥५७ ॥

४३४१. अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।

तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥५८ ॥

अंगिरा, अथर्वा और भृगु आदि हमारे पितरगण अभी-अभी पधारे हैं । वे सभी सोम के इच्छुक हैं । उन पितरगणों की कृपादृष्टि हमें उपलब्ध हो, हम उनके अनुग्रह से कल्याणकारी मार्ग की ओर बढ़ें ॥५८ ॥

४३४२. अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व।

विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥५९ ॥

हे यमदेव ! आप विरूप ऋषि के वंश में उत्पन्न हुए अंगिरादि पूजनीय पितरजनों (पूर्वजों) के साथ यहाँ पधारें और यज्ञ में परितृप्ति प्राप्त करें। आपके साथ पिता विवस्वान् को भी आवाहित करते हैं। वे भी इस यज्ञ में पहुँचकर फैलाये गये कुशा के आसन पर बैठें। आप दोनों हविष्यान्न को ग्रहण करके आनंदित हों ॥५९ ॥

४३४३. इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।

आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ॥६० ॥

हे यमदेव ! अंगिरादि पितरजनों सहित आप हमारे इस उत्तम यज्ञ में आकर विराजमान हों। ज्ञानी ऋत्विजों के स्तोत्र आपको आमंत्रित करें। हे मृत्युपति यम ! इन आहुतियों से तृप्त होकर आप हमें आनन्दित करें ॥६० ॥

४३४४. इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन्। प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥

यहाँ से पितरगण ऊर्ध्वलोक की ओर प्रस्थान करते हैं। तत्पश्चात् उन्हें दिव्यलोक के उपभोग्य स्थानों पर प्रतिष्ठापित किया जाता है। जिस मार्ग से भूमि पर विजयश्री प्राप्त करने वाले आंगिरस आदि पूर्वज गये हैं, उसी मार्ग से अन्य पितर भी दिव्यलोक में पहुँचते हैं ॥६१ ॥

[२ - पितृमेध सूक्त]

[**ऋषि**- अथर्वा। **देवता**- यम, मन्त्रोक्त, ४, ३४ अग्नि, ५ जातवेदा, २९ पितरगण। **छन्द**- अनुष्टुप्, ४, ७, ९, १३ जगती, ५, २६, ४९, ५७ भुरिक् त्रिष्टुप्, ८, १०-१२, २१, २७-२९, ३१-३३, ३५, ४७, ५३-५५, ५८-६० त्रिष्टुप्, १९ त्रिपदार्षी गायत्री, २४ त्रिपदा समविषमार्षी गायत्री, ३७ विराट् जगती, ३८-३९, ४१ आर्षी गायत्री, ४०, ४२-४४ भुरिक् आर्षी गायत्री, ४५ ककुम्मती अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त में यम के अतिरिक्त पितर देवों का वर्णन है। 'पितर' सम्बोधन केवल मृतात्माओं - प्रेतात्माओं के लिए ही प्रयुक्त होने लगा है, लेकिन वेद में इसके प्रयोग अनेकार्थक हैं। शत० १३.४.३.६ के अनुसार वैवस्वत राजा यम की प्रजाएँ पितर हैं। शत० ब्रा० २.१.३.४ में मर्त्य मरणधर्मा को पितर कहा गया है। गो०ब्रा० २.१.२४ में देवों को पितर कहा है। इसी प्रकार शत० ब्रा० १३.८.१.२ में ओषधियों को तथा २.४.२.२४ में षड्ऋतुओं को पितर कहा गया है। मंत्रों के स्वाभाविक अर्थों के अनुसार पितरों की अवधारणा करना उचित है। जहाँ द्विवचनपरक 'पितरौ' सम्बोधन है, वहाँ माता-पिता का भाव लिया जाना ही उचित है-

४३४५. यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः।

(ऋषिगण) यम (देवता अथवा अनुशासन) के निमित्त (यज्ञ में) सोम का अभिषव करते हैं। आहुतियाँ वे यमदेव को समर्पित करते हैं। सोम और हवियों से अलंकृत अग्निदेव को दूत बनाकर यज्ञदेव यम की ओर (निकट) ही जाते हैं ॥१ ॥

४३४६. यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत।

इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥२ ॥

हे ऋत्विजो ! आप यमदेव के निमित्त अति मधुर आहुतियाँ प्रदान करें और प्रतिष्ठा भी यम के लिए समर्पित करें। इस प्रकार पूर्वकालीन पितृलोक के मार्ग को विनिर्मित करने वाले मंत्रद्रष्टा ऋषियों को नमन करें ॥२ ॥

४३४७. यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन। स नो जीवेष्वा यमेद् दीर्घमायुः प्र जीवसे

हे ऋत्विजो ! यमराज के निमित्त घृतयुक्त खीर को हविरूप में समर्पित करें। वे हविष्यान्न को स्वीकार करके हमारे जीवन को संरक्षित करते हुए हमें शतायु प्रदान करें ॥३ ॥

४३४८. मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्।
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितृँरुप ॥४॥

हे अग्ने ! इस मृतात्मा को पीड़ित किये बिना (अन्त्येष्टि) संस्कार सम्पन्न करें। इस मृतात्मा को छिन्न-भिन्न न करें। हे सर्वज्ञदेव !जब आपकी ज्वालाएँ इस देह को भस्मीभूत कर दें, तभी इसे पितरगणों के समीप भेज दें।

४३४९. यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ॥५॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! जब आप मृत शरीर को पूर्णरूप से दग्ध कर दें, तब इस मृतात्मा को पितरजनों को समर्पित करें। जब यह मृतात्मा पुनः प्राणधारी हो, तो देवाश्रय में ही रहे ॥५॥

४३५०. त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत्।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ॥६॥

एक यम ही त्रिकद्रुक (ज्योति, गौ और आयु) नामक यज्ञ में संव्याप्त हैं। वे यमदेव छह स्थानों (द्युलोक, भूलोक, जल, ओषधियों, ऋक् और सूनृत) में निवास करने वाले हैं। त्रिष्टुप्, गायत्री एवं दूसरे सभी छन्दों के माध्यम से हम उनका स्तुतिगान करते हैं ॥६॥

४३५१. सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥७॥

हे मृत मनुष्य ! आपके प्राण और नेत्र वायु और सूर्य से संयुक्त हों। आप अपने पुण्य कर्मों के फल की प्राप्ति के लिए स्वर्ग, पृथ्वी अथवा जल में निवास करें। यदि वृक्ष- वनस्पतियों में आपका कल्याण निहित है, तो सूक्ष्म शरीर से उन्हीं में आप प्रवेश करें ॥७॥

४३५२. अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥८॥

हे अग्निदेव ! इस मृत पुरुष में जो अविनाशी ईश्वरीय अंश है, उसे आप अपने तेज से तपाएँ, प्रखर बनाएँ। आपकी ज्वालाएँ उसे सुदृढ़ बनाएँ। हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप अपनी कल्याणकारी विभूतियों से उन्हें पुण्यात्माओं के लोक में ले जाएँ ॥८॥

४३५३. यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम्।
अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥९॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आपकी जो पवित्र एवं तीव्रगामी ज्वालाएँ हैं, जिससे आप द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक में संव्याप्त हो जाते हैं, उन ज्वालाओं से आप इस अज भाग (आत्मा) को प्राप्त हों। दूसरी मंगलमय ज्वालाओं से इस मृत देह को हवि के समान ही पूर्णतया भस्मीभूत करें ॥९॥

४३५४. अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान्।
आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥१०॥

हे अग्निदेव ! जो मृतदेह आहुति रूप में आपको समर्पित की गयी है; जो हमारे द्वारा प्रदत्त स्वधान्न से युक्त होकर आपमें गतिशील है, उसे आप पुनः पितृलोक के लिए मुक्त करें। इसकी संतानें दीर्घायु प्राप्त करती हुईं गृह की ओर लौट जाएँ। यह श्रेष्ठ तेजस्विता युक्त और पितृलोक में आश्रय योग्य शरीर प्राप्त करें ॥१०॥

४३५५. अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अधा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥११ ॥

हे मृतात्मा ! चार नेत्रों वाले, अद्भुत स्वरूप वाले, जो ये दो सारमेय (सरमा के पुत्र अथवा साथ रमण करने वाले) श्वान हैं, इनके सान्निध्य में आप गमन करें । तदनन्तर जो पितरगण यम के साथ सदैव हर्षित रहते हैं, उन विशिष्ट ज्ञानी पितरों का सान्निध्य भी आप प्राप्त करें ॥११ ॥

[सारमेय श्वान का अर्थ यहाँ सरमा से उत्पन्न कुत्ते करना असंगत लगता है । साथ रमण करने वाले या शीघ्र गमनशील अर्थ यहाँ सटीक बैठता है । मनुष्य के साथ रहने वाले तथा लोकान्तरों तक साथ जाने वाले चित्रगुप्त के दो दूतों-गुप्त संस्कारों के रूप में इन्हें देखा जा सकता है । यह चार अक्षि-चार भाग (मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार) वाले हैं ।]

४३५६. यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा।
ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥१२ ॥

हे मृत्युदेव यम ! आपके गृहरक्षक, मार्गरक्षक तथा ऋषियों द्वारा ख्यातिप्राप्त चार नेत्रों वाले जो दो श्वान हैं, उनसे मृतात्मा को संरक्षित करें तथा इस मृतात्मा को कल्याण का भागी बनाकर पापकर्मों से मुक्त करें ॥१२ ॥

४३५७. उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१३ ॥

यमदेव के ये दो दूत (कुक्कुर) लम्बी नाक वाले, प्राणहन्ता और अति सामर्थ्यवान् हैं । ये मनुष्यों के प्राणहरण का लक्ष्य लेकर घूमते हैं । दोनों (यमदूत) हमें सूर्य दर्शन लाभ के लिए इस स्थान पर कल्याणकारी प्राणदान देने की कृपा करें ॥१३ ॥

४३५८. सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१४ ॥

किन्हीं पितरजनों के निमित्त सोमरस उपलब्ध रहता है और कोई घृताहुति का सेवन करते हैं । हे प्रेतात्मन् ! जिनके लिए मधुर रस की धारा प्रवाहित होती है, आप उन्हीं के समीप पहुँचें ॥१४ ॥

४३५९. ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥१५ ॥

पूर्वकालीन जो पुरुष सत्य का पालन करने वाले और सत्यरूप यज्ञ के संवर्द्धक थे, तपः ऊर्जा से अनुप्राणित उन अतीन्द्रिय द्रष्टा ऋषियों के समीप ही यमदेव के अनुशासन से युक्त यह मृतात्मा भी पहुँचे ॥१५ ॥

४३६०. तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१६ ॥

जो तपश्चर्या के प्रभाव से किसी भी प्रकार पराभूत नहीं हो सकते, जो तपश्चर्या के कारण स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं तथा जिन्होंने कठिन तप- साधना सम्पन्न की है; हे प्रेतात्मन् ! आप उन्हीं के समीप जाएँ ॥१६ ॥

४३६१. ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१७ ॥

हे प्रेत ! जो शूरवीर संग्राम में अपने प्राणों की आहुति देकर वीरगति को प्राप्त हुए हैं अथवा जो लोग अनेकों प्रकार के दान देकर अपनी कीर्ति से इस संसार में अमर हो गये हैं । आप उन लोगों के समीप पहुँचें ॥१७ ॥

४३६२. सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम्।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥१८ ॥

जिन पूर्वज मनीषियों ने जीवन की हजारों श्रेष्ठ विधाओं को विकसित किया । जो सूर्य की शक्तियों के संरक्षक हैं और तप से उत्पन्न जिन पितरों ने तपस्वी जीवन जिया, हे मृतात्मन् ! आप उन्हीं के समीप पहुँचें ॥१८ ॥

४३६३. स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी । यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥१९ ॥

हे पृथिवी देवि ! आप इसके निमित्त सुखकारिणी, दुःख-कष्टों से रहित, प्रवेश करने योग्य और विस्तारयुक्त होकर शान्ति प्रदान करने वाली हों ॥१९ ॥

४३६४. असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।
स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः ॥२० ॥

हे मुमूर्षो ! आपने यज्ञवेदी रूप विस्तृत दर्शनीय स्थल पर स्थित होकर सर्वप्रथम पितरों और देवों के लिए जिन स्वधायुक्त आहुतियों को समर्पित किया था, वे आपको मधु आदि रसों के प्रवाहरूप में उपलब्ध हों ॥२० ॥

४३६५. ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उप जुजुषाण एहि ।
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः ॥२१ ॥

हे प्रेतपुरुष ! अपने मन से आपके मन को हम बुलाते हैं । (जहाँ पितृकर्म किया जाता है) आप उन गृहों में आगमन करें । (संस्कार क्रिया के पश्चात्) पिता, पितामह और प्रपितामह के साथ (सपिण्डीकरण के द्वारा) संयुक्त होकर यमराज के समीप प्रस्थान करें, सुखप्रद वायुदेव आपके लिए बहते रहें ॥२१ ॥

४३६६. उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः ।
अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥२२ ॥

हे प्रेत पुरुष ! मरुद्‌गण आपको अन्तरिक्ष में धारण करें अथवा वायुदेव आपको ऊपरी लोक में पहुँचाएँ । जल के धारणकर्ता और वर्षक मेघ गर्जना करते हुए समीपस्थ अज के साथ तुम्हें वृष्टिजल से सिञ्चित करें ॥२२ ॥

४३६७. उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितॄँरुप द्रव ॥२३ ॥

(हे पितरो !) हम आपको दीर्घायु, प्राण, अपान तथा जीवन के लिए आमंत्रित करते हैं । तुम्हारा मन संस्कार क्रिया से प्रकट हुए नये शरीर को उपलब्ध करे । इसके बाद आप वसुरूप पितरगणों के समीप पहुँचें ॥२३ ॥

४३६८. मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते । मा ते हास्त तन्वः१ किं चनेह ॥२४ ॥

(हे पितरो !) इस संसार में वास करते हुए तुम्हारा मन तुम्हें त्याग कर न जाए । तुम्हारे प्राण का कोई भी अंश क्षीण न हो और तुम्हारे हाथ- पैर आदि में कोई विकार उत्पन्न न हो । आपकी देह के रुधिर आदि रस भी किसी मात्रा में देह का परित्याग न करें । इस लोक में कोई भी शारीरिक अंग आपसे पृथक् न हों ॥२४ ॥

४३६९. मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥२५ ॥

(हे पितर पुरुष !) जिस पेड़ के नीचे आप आराम करें , वह पेड़ आपके लिए बाधक न हो । आप जिस दिव्य गुण सम्पन्न पृथ्वी का आश्रय लें, वह भी आपको व्यथित न करे । यमदेव जिनके राजा हैं , उन पितरजनों में स्थान प्राप्त करके आप वृद्धि को प्राप्त करें ॥२५ ॥

४३७०. यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।
तत् ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु ॥२६ ॥

हे प्रेतात्मन् ! जो अंग आपके शरीर से पृथक् हो चुका है तथा जो अपान आदि सप्तप्राण दुबारा प्रवेश न करने के लिए शरीर से बाहर जा चुके हैं , उन सबको आपके साथ निवास करने वाले पितरगण घास से घास को बाँधने के समान दूसरे शरीर में प्रविष्ट कराएँ ॥२६ ॥

४३७१. अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार ॥२७ ॥

हे प्राणधारी बन्धुगण ! इस प्रेतात्मा को घर से बाहर ले जाएँ । इस मृत देह को उठाकर ग्राम से बाहर ले जाएँ; क्योंकि श्रेष्ठ ज्ञान सम्पन्न, यमराज के दूत मृत्यु ने इस मृत पुरुष के प्राणों को पितरजनों में प्रविष्ट कराने के लिए प्राप्त कर लिया है ॥२७ ॥

४३७२. ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ॥२८ ॥

जो दुष्ट प्रेतात्मा ज्ञानवानों के समान आकृति बनाकर पिता, पितामह और प्रपितामह आदि पितरों में घुसपैठ करते हैं और आहुति प्रदान करने पर छल से उस हविष्यान्न का सेवन करते हैं, जो पिण्डदान करने वाले पुत्र-पौत्रों को विनष्ट कर डालते हैं, हे अग्निदेव ! पितरों के लिए किये जाने वाले इस यज्ञ से प्रसन्न होकर आप उन छद्म-वेशधारी असुरों को बाहर करें ॥२८ ॥

४३७३. सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥२९ ॥

इस यज्ञ में हमारे गोत्र में उत्पन्न पिता, पितामह, प्रपितामह आदि पितरगण, भली प्रकार प्रतिष्ठित हों, वे हमें सुख-समृद्धि के साथ दीर्घजीवन प्रदान करें । वृद्धि प्राप्त करते हुए हम उन पितरों को हविष्यान्न समर्पित करते हैं, वे हमें दीर्घायुष्य का सुख प्रदान करें ॥२९ ॥

४३७४. यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः ॥३० ॥

हे मृतात्मन् ! हम आपके निमित्त जिस गौ का दान करते हैं तथा दूध मिश्रित जिस भात को समर्पित करते हैं , उस भाग द्वारा आप यमलोक में अपने जीवन को परिपुष्ट करें ॥३० ॥

४३७५. अश्वावतीं प्र तर या सशेवार्क्षाकं वा प्रतरं नवीयः ।
यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद् विदत भागधेयम् ॥३१ ॥

हे प्रेत पुरुष ! आप हमें अश्वावती नदी से पार उतारें; यह नदी हमारे लिए सुखप्रदायिनी हो । हम रीछ आदि हिंसक पशुओं से परिपूर्ण निर्जन वन- प्रदेश को पार करें । हे प्रेत ! जिसने तुम्हारा संहार किया है, वह पुरुष वध योग्य है । वह पापी पुरुष पूर्व में उपभोग किये गये पदार्थों के अतिरिक्त दूसरी उपभोग्य सामग्री को प्राप्त करने में सक्षम न हो ॥३१ ॥

४३७६. यमः परोऽवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किं चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान ॥३२ ॥

सूर्य के पुत्र यमदेव अपने पिता सूर्य से भी अधिक तेजस्वी हैं । हम किसी भी प्राणी को यमराज से उत्कृष्ट नहीं मानते । हमारे यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों की सफलता यमदेव के अनुग्रह पर ही आधारित है । यज्ञ की सफलता के लिए सूर्यदेव ने अपनी किरणों से भूमण्डल को प्रकाशित किया है ॥३२ ॥

४३७७. अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥३३ ॥

मरणधर्मा मनुष्यों से देवों ने अपने अमरत्व को छिपा लिया । (उन्होंने) सूर्यदेव के लिए समान वर्णयुक्त स्त्री बनाकर प्रदान की । सरण्यू ने घोड़ी की आकृति धारण करके अश्विनीकुमारों का भरण- पोषण किया । त्वष्टा की कन्या सरण्यू ने सूर्यदेव के घर का त्याग करते समय स्त्री- पुरुष (यम-यमी) के जोड़े को वहीं पर छोड़ दिया था ॥

४३७८. ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥३४ ॥

हे अग्निदेव ! आप उन सभी पितरजनों के हवि सेवनार्थ आएँ, जो भूमि में गाड़ने, खुली हवा या एकान्त स्थल में छोड़ देने अथवा अग्नि दहन द्वारा अन्त्येष्टि संस्कार के विधान से संस्कारित हुए हों तथा जो संस्कार क्रिया के पश्चात् ऊपरी पितृलोक में विराजमान हों ॥३४ ॥

४३७९. ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥३५ ॥

अग्नि संस्कार अथवा अग्निरहित संस्कारयुक्त जो पितरगण स्वधा प्रक्रिया द्वारा द्युलोक में सुखपूर्वक स्थित हैं, हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप उन सभी पितरों को उनकी सन्तानों द्वारा किये जाने वाले पितृयज्ञ में लेकर आएँ ॥३५ ॥

४३८०. शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं१ तपः ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥३६ ॥

हे अग्निदेव ! प्रेतदेह को जिस प्रकार सुख प्राप्त हो, उसी प्रकार उसे भस्मीभूत करें । आपकी शोषण करने वाली लपटें वन की ओर प्रस्थान करें और आपका जो रस को हरने वाला तेज है, वह पृथ्वी में ही रहे ॥३६ ॥

४३८१. ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह ।
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥३७ ॥

यम का कथन-यदि यह आने वाला पुरुष हमारी सेवा में संलग्न रहे, तो हम इसे आश्रय- स्थल प्रदान कर दें, क्योंकि यह पुरुष हमारे पास आया है; ऐसा मानने वाले यमदेव मृतात्मा से पुनः कहते हैं कि यह मृतपुरुष हमारी अर्चना करते हुए समीप रहे ॥३७ ॥

४३८२. इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥३८ ॥

हम इस (जीवन काल) की मात्रा इस प्रकार नापते (तय करते) हैं , जैसे पहले किसी अन्य ने इसे नहीं नापा हो । सौ शरद् ऋतुओं से पूर्व हमारी जीवन यात्रा समाप्त न हो ॥३८ ॥

४३८३. प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥३९ ॥

हम इस (जीवनकाल) की मात्रा को भली प्रकार नापते हैं, जिससे सौ वर्ष से पूर्व बीच में दूसरा श्मशान कर्म हमें प्राप्त न हो ॥३९ ॥

४३८४. अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥४० ॥

हम इस (जीवन की) मात्रा का दोष हटाकर नापते हैं, जिससे हमें सौ वर्ष से पूर्व मध्य में दूसरा मृत कर्म न करना पड़े ॥४० ॥

४३८५. वी३मां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥४१ ॥

हम इस (जीवन की) मात्रा को विशेष प्रकार से नापते हैं, जिससे हमें सौ वर्ष से पूर्व दूसरा मृत कर्म न करना पड़े ॥४१ ॥

४३८६. निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥४२ ॥

हम इस (जीवन की) मात्रा को निश्चित रूप से नापते हैं , जिससे हमारे सामने सौ वर्षों के बीच कोई दूसरा श्मशान कर्म करने की स्थिति न आए ॥४२ ॥

४३८७. उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥४३ ॥

हम इस (जीवन) की मात्रा को उत्तम ढंग से नापते हैं, जिससे सौ वर्ष से पूर्व दूसरा श्मशान कर्म करने की स्थिति न बन सके ॥४३ ॥

४३८८. समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ॥४४ ॥

हम इस (जीवन) की मात्रा को सम्यक् रूप से नापते हैं , जिससे सौ वर्ष से पहले दूसरे श्मशान कर्म करने की आवश्यकता न हो ॥४४ ॥

४३८९. अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम् ।
यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा ॥४५ ॥

हम इस (जीवन) की मात्रा को नापें, सुख प्राप्त करें और दीर्घायु बनें । हमने पूर्वोक्त विधि से श्मशान भूमि को नाप लिया, उस नाप के आधार पर हम इस मृतक को स्वर्ग भेज चुके हैं, उसी सत्कर्म के प्रभाव से हम सौ वर्ष की आयु से सम्पन्न हों । हमें सौ वर्ष से पूर्व श्मशान कर्म न करना पड़े ॥४५ ॥

४३९०. प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ॥४६ ॥

प्राण, अपान, व्यान, आयु और नेत्र ये सभी सूर्य के दर्शनार्थ अर्थात् संसार में जीवन धारण करने के निमित्त हों । हे मनुष्यो ! आयु की पूर्णता पर देहावसान की अवस्था में आप यमराज के कुटिलतारहित सरल मार्ग से पितरों को प्राप्त करें ॥४६ ॥

४३९१. ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः ।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥४७ ॥

जो अग्रगामी, प्रशंसनीय, सन्ततिरहित मनुष्य द्वेष भावों को त्याग करके दिवंगत हुए हैं; वे अन्तरिक्ष को लाँघकर, दुःखों से रहित, स्वर्ग के ऊपरी भाग को प्राप्त करते हुए पुण्यफलों का उपभोग करते हैं ॥४७ ॥

४३९२. उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥४८ ॥

उदन्वती (जलयुक्त) द्युलोक सबसे नीचे है, पीलुमती (नक्षत्र मण्डल वाला) मध्य में है, उससे ऊपर जो तीसरा प्रद्यौ नाम से प्रख्यात है, वहीं पितर निवास करते हैं ॥४८ ॥

४३९३. ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्व१न्तरिक्षम् ।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥४९ ॥

हम अपने पिता के पितरों, पितामह आदि, विशाल अन्तरिक्ष, द्युलोक और पृथ्वी पर वास करने वाले सभी पितरों को स्वधापूर्वक हव्य प्रदान करते हैं । नमन करते हुए उनकी पूजा- अर्चना करते हैं ॥४९ ॥

४३९४. इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम् ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्ये नं भूम ऊर्णुहि ॥५० ॥

हे मृतात्मन् ! आप द्युलोक में जो सूर्य देखते हैं, वही आपका (स्थान) है, कोई अन्य नहीं । हे पृथ्वी देवि ! आप उसी प्रकार इस मृत पुरुष को अपने तेज से आच्छादित करें, जिस प्रकार माता अपने पुत्र को आच्छादित रखती है ॥५० ॥

४३९५. इदमिद् वा उ नापरं जरस्यन्यदितोऽपरम् ।
जाया पतिमिव वाससाभ्ये नं भूम ऊर्णुहि ॥५१ ॥

वृद्धावस्था के बाद शरीर के लिए यही (अन्त्येष्टि) कार्य शेष रह जाता है, दूसरा अन्य कार्य नहीं । अतएव हे भूमे ! आप इस (शव) को ऐसे ढक लें, जिस प्रकार पत्नी अपने वस्त्र से मृतक पति के शरीर को ढक लेती है ॥५१ ॥

४३९६. अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥५२ ॥

हे मृतक ! हम तुम्हें पृथ्वी माता के मंगलकारी वस्त्र से आच्छादित करते हैं । इस लोक में जो कल्याणमय है, उसे हम प्राप्त करें तथा पितृलोक में (परलोक में) जो स्वधान्न है, उसे आप (मृतात्मा) प्राप्त करें ॥५२ ॥

४३९७. अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥५३ ॥

हे अग्नि और सोम देवो ! आप पुण्यलोक में जाने के लिए मार्ग का निर्माण करने वाले हैं । देवताओं ने पुण्यात्माओं के लिए साधन- सम्पन्न स्वर्गलोक की रचना की है । जो लोक सूर्यदेव के समीपस्थ है, इस प्रेतात्मा को उसी लोक में सुगमतापूर्वक पहुँचाने का अनुग्रह करें ॥५३ ॥

४३९८. पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥५४ ॥

हे मृतात्मन् ! जगत् को प्रकाशित करने वाले, सभी को पोषण देने वाले, हमारे पशुओं को विनाश से बचाने वाले पूषा देवता तुम्हें पृथ्वी लोक से ऊर्ध्व लोक की ओर अन्य पितरों के समीप ले जाएँ । अग्निदेव तुम्हें ऐश्वर्यशाली देवताओं तक पहुँचाएँ ॥५४ ॥

४३९९. आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥५५ ॥

हे प्रेतात्मन् ! जीवन के अधिष्ठाता देव 'आयु' आपके संरक्षक हों । पूषादेव पूर्व दिशा की ओर जाने वाले मार्ग में आपके संरक्षक हों । जहाँ पुण्यात्माएँ निवास करती हैं, उस पुण्यलोक के श्रेष्ठ भाग में सत्प्रेरक सवितादेव आपको प्रतिष्ठित करें ॥५५ ॥

४४००. इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ॥५६ ॥

हे मृतात्मन् ! हम तुम्हारे प्राणरहित शरीर को ले जाने के लिए भार खींचने वाले दो बैलों को बैलगाड़ी में जोतते हैं । इन बैलों से आप भली प्रकार यमराज के गृह को प्राप्त करें ॥५६ ॥

[वैदिक मत से शव ले जाने के लिए गाड़ी का प्रयोग भी किया जा सकता है, कंधों पर ले जाना ही अनिवार्य नहीं है ।]

४४०१. एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा ।
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ॥५७ ॥

हे मृत पुरुष ! जिस वस्त्र को आप पहले धारण किया करते थे, उस वस्त्र का परित्याग करके श्मशान के नवीन वस्त्र को धारण करें । जिन इच्छाओं की पूर्णता के लिए आपने सगे-सम्बंधियों को धन- सम्पदा प्रदान की थी, उसे जानते हुए उसके फल को प्राप्त करें ॥५७ ॥

[कायारूपी वस्त्र का त्याग करने के बाद जीवात्मा अपने कर्मों के अनुरूप देहरूप नये वस्त्र का ताना- बाना बुनता है ।]

४४०२. अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च ।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै ॥५८ ॥

हे मृतात्मन् ! आप गौ (वाणियों-वेदमंत्रों अथवा इन्द्रियों से प्रज्वलित) अग्नि से स्वयं को भली प्रकार आवृत कर लें । वह (अग्नि) तुम्हारे स्थूल मेद आदि को अच्छादित करे । इस प्रकार तेजोमय तथा हर्षित अग्निदेव (तुम्हारी काया को) दग्ध करते हुए उसे इधर-उधर बिखेरेंगे नहीं ॥५८ ॥

४४०३. दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥५९ ॥

हे जीवात्मन् ! जो चला गया है, उसके हाथ से दण्ड , श्रवण- सामर्थ्य, वर्चस् तथा बल लेकर आप यहीं रहें । हम वहाँ भली प्रकार सुखी रहते हुए समस्त संग्रामों और अहंकारी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥५९ ॥

४४०४. धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ॥६० ॥

मृत (राजा या क्षत्रिय) के हाथ से धनुष को धारण करते हुए क्षात्र धर्म की असाधारण तेजस्विता और सामर्थ्य-शक्ति से सम्पन्न बनें । प्रचुर धन- सम्पदा को हमारे पोषण के लिए आप ग्रहण करें । इस प्रकार सम्पदा से परिपूर्ण होकर जीवलोक में हमारे सम्मुख उपस्थित हों ॥६० ॥

[३ - पितृमेध सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- यम, मन्त्रोक्त, ५-६ अग्नि, ४४, ४६ पितरगण, ५० भूमि, ५४ इन्दु , ५६ आपः । छन्द- त्रिष्टुप् , ४, ८, ११, २३ सतः पंक्ति, ५ त्रिपदा निचृत् गायत्री, ६, ५६, ६८, ७०, ७२ अनुष्टुप्, १८, २५, २७, ४४, ४६ जगती, २६, २८ भुरिक् जगती, २९ विराट् जगती, ३० पञ्चपदातिजगती, ३१ विराट् शक्वरी, ३२-३५, ४७, ४९, ५२ भुरिक् त्रिष्टुप् , ३६ एकावसाना आसुरी अनुष्टुप् , ३७ एकावसाना आसुरी गायत्री, ३९ परात्रिष्टुप् पंक्ति, ५० प्रस्तार पंक्ति, ५४ पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्, ५८ विराट् त्रिष्टुप्, ६० त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ६४ भुरिक्पथ्यापंक्ति अथवा भुरिक् आर्षी पंक्ति, ६७ पथ्या बृहती, ६९, ७१ उपरिष्टात् बृहती ।]

४४०५. इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥१ ॥

हे मृत मनुष्य ! यह नारी पतिकुल (के हित) की अभिलाषा करती हुई स्वधर्म का निर्वाह करने हेतु आपके निकट आई है । धर्म में निरत इस नारी के लिए संसार में पुत्र, पौत्रादि श्रेष्ठ संतानें और धन-संपदा प्रदान करें ॥१ ॥

[पति के बाद पत्नी उसके कुल एवं सम्पदा की स्वामिनी मानी जाए, यह भाव मंत्र में व्यक्त हो रहा है ।]

४४०६. उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।

हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥२ ॥

हे नारी ! तू मृत पति के समीप ही सो रही है, यह उचित नहीं । इसे छोड़कर तुम इस संसार की ओर चलो । यहाँ पाणिग्रहण के बाद तुम्हारी सुरक्षा करने वाले पति के पुत्र-पौत्रादि स्वजन हैं, उनके समीप रहो ॥२ ॥

४४०७. अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।

अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥३ ॥

मृतपुरुष के पीछे-पीछे श्मशान भूमि में जाती हुई तरुणी स्त्री को पुनः घर की ओर वापस होती हुई हमने देखा है । यह स्त्री शोक से उत्पन्न घने अँधेरे से आवृत थी । उस स्त्री को यहाँ सामने लेकर आये हैं ॥३ ॥

[उस समय पत्नी, पति की अन्त्येष्टि में भाग लेती थी, यह भाव स्पष्ट है । सतीप्रथा बाद में प्रचलित हुई प्रतीत होती है ।]

४४०८. प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।

अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥४ ॥

हे अवध्य स्त्री ! तुम इस संसार को ठीक-ठीक जानकर देवत्व का मार्ग को अनुसरण करो । अपने उस पति से प्रीति करो । उसके सत्कर्मों में सहायिका बनकर उसे स्वर्गलोक का अधिकारी बनाओ ॥४ ॥

४४०९. उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् । अग्ने पित्तमपामसि ॥५ ॥

नदियों का जल, काई (सिवार) और वेतस (नदी के किनारे उगने वाले नड़) में अत्यन्त संरक्षक सारभूत तत्त्व है । हे अग्निदेव ! आप जल और पित्त का शोधन करने वाले हैं ॥५ ॥

४४१०. यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।

क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! जिस मृत पुरुष को आपने भस्म किया है, उसे भली प्रकार सुखी करें । इस दहन स्थल पर क्याम्बु (ओषधियुक्त जल) का सिञ्चन करें, ताकि विविध शाखाओं से युक्त दुःखनाशक दूर्वा (घास) उगे ॥६ ॥

४४११. इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।

संवेशने तन्वा३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥७ ॥

हे प्रेतपुरुष ! तुम्हारे परलोक की ओर जाने के लिए यह (गार्हपत्य) अग्नि एक ज्योति के रूप में है । तुम (अन्वाहार्य पचन नामक) द्वितीय ज्योति तथा (आवाहनीय नामक) तृतीय ज्योति में भली प्रकार स्वयं को प्रविष्ट करो । इस प्रकार अग्नि संस्कार से उत्पन्न देवत्व प्रधान शरीर से शोभायुक्त होकर वृद्धि को प्राप्त करो ॥७ ॥

४४१२. उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।

तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥८ ॥

हे प्रेत ! तुम इस स्थान से ऊपर उठो, उठने के बाद शीघ्रता से चलते हुए अन्तरिक्ष लोक में अपना आश्रय बनाओ । उस लोक में पितरजनों से मतैक्य (सामञ्जस्य) करके सोमपान से भली-प्रकार आनन्दित हो । श्राद्धकर्म के समय प्रदान किये गये स्वधान्न से तृप्त होकर आनन्द प्राप्त करो ॥८ ॥

४४१३. प्र च्यवस्व तन्वं१ सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥९ ॥

हे प्रेतपुरुष ! तुम इस स्थान से आगे बढ़कर शरीर का भली प्रकार पोषण करो । तुम्हारे हाथ- पैर आदि अंग तुम्हें छोड़कर न जाएँ, तुम्हारा शरीर भी तुम्हें पृथक् न करे, तुम्हारा मन जिसे अपना ध्येय मान रहा है, उस स्वर्गादि लोक में प्रवेश करे । तुम जिस भू-भाग से स्नेह रखते हो, उस क्षेत्र को प्राप्त करो ॥९ ॥

४४१४. वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥१० ॥

सोम सम्पादनशील पितृदेव हम याजकों को तेजस्विता से सम्पन्न करें । समस्त देवगण मधुरतायुक्त घृत से हमें सम्पन्न करें । हमें लम्बे समय तक दर्शन लाभ के लिए रोग इत्यादि से पृथक् करें । हमें वृद्धावस्था तक समर्थ-सक्रिय बनाते हुए दीर्घायु प्रदान करें ॥१० ॥

४४१५. वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्य नक्त्वासन् ।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु ॥११ ॥

अग्निदेव से हमें तेजस्विता की प्राप्ति हो । सर्वदेव, विष्णुदेव हमारे मस्तक में विवेक बुद्धि को भली प्रकार स्थापित करें । सम्पूर्ण देवशक्तियाँ कल्याणप्रद वैभव की हमें प्राप्ति कराएँ तथा जल अपने शुद्धतायुक्त वायु के अंशों से हमें पावन बनाएँ ॥११ ॥

४४१६. मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु ।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ॥१२ ॥

दिन और रात्रि के अधिष्ठाता देव एवं मित्रावरुण देव हमें वस्त्रादि से युक्त करें । अदिति के पुत्र आदित्यगण हमारे वैरियों को संताप देते हुए हमें बढ़ाएँ । ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव हमारे हाथों में शौर्य स्थापित करें । सर्वप्रेरक सवितादेव हमें दीर्घ- आयुष्य प्रदान करें ॥१२ ॥

४४१७. यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥१३ ॥

मनुष्यों में सर्वप्रथम विवस्वान् के पुत्र राजा यम को मृत्यु की प्राप्ति हुई, पश्चात् वे लोकान्तर को प्राप्त हुए । उसी सूर्य- पुत्र यम को सभी प्राणी प्राप्त करते हैं । हे ऋत्विजो ! सभी प्राणियों के पुण्य-पाप के अनुसार फल-प्रदाता राजा यम की आप सब अर्चना करें ॥१३ ॥

४४१८. परा यात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः ।
दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥१४ ॥

हे पितरो ! हमारे द्वारा किये गये पितृयज्ञ रूपी कर्म से परितृप्त होकर आप अपने स्थान को वापस जाएँ, पुनः आवाहन करने पर आगमन की कृपा करें । हमने आपके लिए मधुर घृत से युक्त आहुतियाँ प्रदान की हैं, उन्हें ग्रहण करके आप हमारे लिए इस गृह में कल्याणकारी धन प्रतिष्ठित करें । पुत्र-पौत्रादि प्रजा तथा पशुधन से हमें सम्पन्न बनाएँ ॥१४ ॥

४४१९. कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥१५ ॥

कण्व, कक्षीवान्, पुरुमीढ, अगस्त्य, श्यावाश्व, सोभरि, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि, कश्यप और वामदेव आदि सभी पूजनीय ऋषि हमारी रक्षा करें ॥१५ ॥

४४२०. विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥१६ ॥

विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गोतम, वामदेव आदि हे ऋषियो ! आप सभी हमें सुख प्रदान करें। अत्रि ऋषि ने हमारे गृह को संरक्षण हेतु स्वीकार किया है। हे स्वधान्न से स्तुति योग्य पितृगण ! आप सभी हमारे लिए सुखकारी हों ॥१६ ॥

४४२१. कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥१७ ॥

हम श्मशान स्थल में बन्धु की मृत्यु के शोक का परित्याग करते हुए शवस्पर्श से उत्पन्न पाप से विमुख होकर घर जाते हैं। इससे हम दुखों से रहित हों। पुत्र-पौत्रादि प्रजा, स्वर्ण, रजत, गौ, अश्वादि पशुधन से बढ़ें तथा घरों में श्रेष्ठ (कर्मों की) सुगन्ध भरी रहे ॥१७ ॥

४४२२. अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते ॥१८ ॥

(पितरों की तुष्टि-वृद्धि के लिए किये जाने वाले सोमनामक) यज्ञ में मधुर रस (आज्य अथवा सोमरस) का ही प्रयोग करते हैं। इस आज्य (रस) से यज्ञ को संयुक्त करते हैं, इसी से यज्ञ में आहुतियाँ देते हैं तथा इसी से यज्ञ का विस्तार करते हैं। इसी सोमरस (चन्द्रमा की रश्मियों) के संसर्ग से सुवर्ण आदि धन की रक्षा करने वाले सागर के जल में वृद्धि होती है। वही सोम (चन्द्रमा) सभी को अपनी धाराओं (शीतल रश्मियों) से अभिषिञ्चित करते हैं ॥१८ ॥

४४२३. यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ॥१९ ॥

हे पितरगण ! हर्ष एवं सौम्यता को बढ़ाने वाले आपके जो कार्य हैं, उनसे आप हमें संयुक्त करें। आप निश्चित रूप से यशस्वी हैं, अतः अभीष्ट फल प्रदान करें। गतिशील, क्रान्तदर्शी तथा श्रेष्ठ धन-सम्पन्न आप यज्ञ में बुलाये जाने पर पधार कर हमारी उपर्युक्त प्रार्थनाएँ सुनें ॥१९ ॥

४४२४. ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥२० ॥

हे पितरगण ! आप अत्रि और अंगिरा ऋषियों के गोत्र में उत्पन्न हुए हैं, नौ महीनों तक सत्रयज्ञ (नवग्व) करके स्वर्ग के अधिकारी बन चुके हैं तथा दर्श पूर्णमास आदि यज्ञ सम्पन्न कर चुके हैं। इसलिए आप बिछाये गये कुशा के आसनों पर विराजमान होकर हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों से परितृप्त हों ॥२० ॥

४४२५. अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः।
शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥२१ ॥

हमारे पूर्वजों ने श्रेष्ठ, प्राचीन और ऋतरूप यज्ञ कर्मों में नियत स्थान तथा ओज को प्राप्त किया। उन लोगों ने स्तोत्रों को उच्चारित करके तम को नष्ट किया तथा अरुण रंगवाली उषा को प्रकाशित किया ॥२१ ॥

४४२६. सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् ॥२२ ॥

जिस प्रकार लोहार धौंकनी द्वारा लोहे को पवित्र बनाता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ यज्ञादि कर्म में निरत तथा अभिलाषा करने वाले याजक यज्ञादि कर्म से मनुष्य जीवन को पवित्र बनाते हैं। वे अग्निदेव को प्रदीप्त करके इन्द्रदेव को समृद्ध करते हैं। चारों तरफ से घेर करके उन्होंने महान् गौओं (पोषक प्रवाहों) के झुण्ड को प्राप्त किया था ॥२२ ॥

४४२७. आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥२३ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! जैसे अन्न से सम्पन्न घर में पशुओं के झुण्ड की सराहना की जाती है, उसी प्रकार जो लोग देवताओं के निकट उनकी प्रार्थना करते हैं, उनकी संतानें समर्थ होती हैं और उनके स्वामी पालन करने में सक्षम होते हैं ॥२३ ॥

४४२८. अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥२४ ॥

हे पालनकर्ता अग्निदेव ! हम आपके सेवक हैं, आपकी तेजस्विता से हम श्रेष्ठ कर्मों से युक्त हों, प्रभातवेला हमारे यज्ञ, दानादि कर्मफल को सत्य सिद्ध करे । देवशक्तियाँ जिस शास्त्रोक्त कर्म की सुरक्षा करती हैं, वे सभी हमारे लिए कल्याणकारक हों । हम श्रेष्ठ संतति से युक्त यज्ञ में बृहत् स्तुतियाँ बोलें ॥२४ ॥

४४२९. इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२५ ॥

मरुद्गणों के साथ इन्द्रदेव हम संस्कारकर्त्ता मनुष्यों को पूर्वदिशा में संव्याप्त भय से सुरक्षित करें । पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार आप हमारा संरक्षण करें । जिन देवों के निमित्त यज्ञभाग आहुति स्वरूप दिया गया है, जो देवमार्ग का निर्माण करने वाले तथा देवलोक तक ले जाने वाले हैं, उनकी हम अर्चना करते हैं ॥२५ ॥

४४३०. धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२६ ॥

सबके धारणकर्त्ता धातादेव दक्षिण दिशा से आने वाली आपदाओं से हमारी सुरक्षा करें । पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार आप हमारा संरक्षण करें । जिन देवों के निमित्त यज्ञ भाग आहुति स्वरूप दिया गया है, जो देवमार्ग का निर्माण करने वाले तथा देवलोक तक पहुँचाने वाले हैं, उनकी हम अर्चना करते हैं ॥२६ ॥

४४३१. अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२७ ॥

अपने पुत्रों के साथ देवमाता अदिति हमें पश्चिम दिशा की आसुरी वृत्तियों से संरक्षित करें । पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार आप हमारा संरक्षण करें । जिन देवों के लिए यज्ञीय भाग दिया जा चुका है, जो देव मार्ग प्रवर्तक और स्वर्गलोक तक ले जाने वाले हैं , उनकी हम अर्चना करते हैं ॥२७ ॥

४४३२. सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२८ ॥

समस्त देवों के साथ सोमदेव उत्तर दिशा में स्थित श्मशान में रहने वाले असुरों के भय से हमें संरक्षित करें । पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार आप हमारा संरक्षण करें । जिन देवों के लिए यह यज्ञीय भाग आहुत हो चुका है, उन स्वर्ग के मार्गदर्शक और स्वर्ग तक ले जाने वाले देवों की हम वन्दना करते हैं ॥२८ ॥

४४३३. धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२९ ॥

हे प्रेतपुरुष ! सम्पूर्ण विश्व के धारणकर्त्ता धरुणदेव ऊर्ध्वदिशा में जाने के लिए तुझे धारण करें, जिस प्रकार सर्वप्रेरक सूर्यदेव दीप्तिमान् द्युलोक को ऊपर ही धारण किये रहते हैं । पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक का संरक्षण करती है, उसी प्रकार आप हमारा भी संरक्षण करें । जिन देवों के लिए यज्ञीय अंश दिया जा चुका है, उन स्वर्ग के मार्गदर्शक देवों का हम वन्दन करते हैं ॥२९ ॥

४४३४. प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी
द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३० ॥

दहन स्थल से पूर्व दिशा की ओर कम्बल आदि द्वारा आच्छादित हुए हे प्रेतपुरुष ! हम तुम्हें पितरों को परितृप्त करने वाली स्वधा में स्थापित करते हैं । पृथिवी जैसे द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है , वैसे भूमि तुम्हारी सुरक्षा करे । हे देवगण ! जिनके निमित्त यज्ञीय भाग दिया जा चुका है, उनकी हम अर्चना करते हैं ॥३० ॥

४४३५. दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी
द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३१ ॥

हे प्रेतपुरुष ! दहन स्थल से दक्षिण दिशा की ओर कम्बल से आच्छादित तुम्हें, हम पितरों की तृप्तिप्रद स्वधा समर्पित करते हैं । पृथ्वी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार वह तुम्हारा भी संरक्षण करे । हे देवगण ! जिनके निमित्त यज्ञीय भाग निष्पन्न किया जा चुका है, उनकी हम अर्चना करते हैं ॥३१ ॥

४४३६. प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी
द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३२ ॥

दहन स्थल से पश्चिम की ओर वस्त्रादि से आच्छादित हुए हे प्रेतपुरुष ! हम तुम्हें पितरों के लिए तृप्तिदायक स्वधा में प्रतिष्ठित करते हैं । पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार वह तुम्हारा भी संरक्षण करे । हे देवगण ! जिनके निमित्त यज्ञीय भाग आहुत हो चुका है, ऐसे स्वर्ग के मार्गदर्शक देवों की हम अर्चना करते हैं ॥३२ ॥

४४३७. उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी
द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३३ ॥

दहनस्थल से उत्तराभिमुख वस्त्रादि से आच्छादित हुए हे प्रेतपुरुष ! हम तुम्हें पितरजनों के लिए तृप्तिप्रद स्वधा में प्रतिष्ठित करते हैं । पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार वह तुम्हारा भी संरक्षण करे । हे देवगण ! जिनके निमित्त हव्यभाग आहुत किया जा चुका है, ऐसे स्वर्ग के मार्गदर्शक देवों की हम अर्चना करते हैं ॥३३ ॥

४४३८. ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी

द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३४ ॥

दहन दिशा से ध्रुव दिशा की ओर वस्त्रादि से ढके हुए हे प्रेतपुरुष ! पितरों को परितृप्त करने वाली स्वधा में हम तुम्हें प्रतिष्ठित करते हैं। पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार वह तुम्हारा भी संरक्षण करे । जिनके निमित्त हव्यभाग दिया जा चुका है, ऐसे स्वर्ग के मार्गदर्शक देवगणों की हम अर्चना करते हैं ॥३४ ॥

४४३९. ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी

द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥३५ ॥

दहन स्थल से ऊपरी (ऊर्ध्व) दिशा की ओर वस्त्रादि से ढके हुए हे प्रेतपुरुष ! पितरों को परितृप्त करने वाली स्वधाहुति में हम तुम्हें प्रतिष्ठित करते हैं। पृथिवी जिस प्रकार द्युलोक को संरक्षण प्रदान करती है, उसी प्रकार वह तुम्हारा भी संरक्षण करे, जिनके निमित्त हव्यभाग आहुत हो चुका है, ऐसे मार्गप्रेरक स्वर्ग प्राप्तिरूप देवों की हम अर्चना करते हैं ॥३५ ॥

४४४०. धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥३६ ॥

हे अग्निदेव ! आप सबके धारणकर्ता और सबके द्वारा धारण किये जाने वाले हैं। आप संभजनीय पदार्थों के प्राप्तिरूप हैं ॥३६ ॥

४४४१. उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥३७ ॥

हे अग्निदेव ! आप सम्पूर्ण विश्व में जल पहुँचाने वाले, मधुर गुणों से युक्त रसों को पहुँचाने वाले तथा प्राण वायु को प्रवाहित करने वाले हैं ॥३७ ॥

४४४२. इतश्च मामुतश्चावतां यमे इव यतमाने यदैतम् ।

प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तो आ सीदतां स्वमु लोकं विदाने ॥३८ ॥

हे हविर्धाना (हविष्य को धारण करने वाली) द्यावापृथिवी ! इस पृथ्वी और स्वर्ग में विद्यमान सभी विपदाओं से हमारा संरक्षण करें। हे हविर्धाना ! आप दोनों जुड़वाँ उत्पन्न हुई सन्तति के समान विश्व को पोषण करने के लिए साथ-साथ प्रयत्नशील होकर विचरण करती हैं। देवशक्तियों के अनुग्रह के इच्छुक साधक जब आपके निमित्त हवि समर्पित करें, तब आप अपने उपयुक्त स्थान को जानकर आसन ग्रहण करें ॥३८ ॥

४४४३. स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः ।

वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ॥३९ ॥

हे हविर्धाना ! हमारी वैभव-सम्पन्नता हेतु आप दोनों श्रेष्ठ आसन पर विराजमान हों। जिस प्रकार विद्वान् सन्मार्ग पर चलकर अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हम आपको पुरातन स्तोत्रों सहित नमन करते हैं, ताकि ये स्तुतियाँ आप तक पहुँचती रहें। हमारी इन स्तुतियों को सभी अमरत्व प्राप्त देवगण सुनें ॥३९ ॥

४४४४. त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैतद् व्रतेन ।

अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति ॥४० ॥

मोहमाया से ग्रस्त मृतात्मा इस संस्कार से अनुस्तरणी गौ को ध्यान में रखकर तीनों लोकों पर आरोहण करती है ।वह इस नाशवान् देह को त्यागकर अविनाशी आत्मस्वरूप से स्वर्गादि पुण्य फल को प्राप्त करती है ।

४४४५. देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्व१मा रिरेच ॥४१ ॥

मृत्यु देवों का वरण क्यों नहीं करती ? देवों के अमरत्व के निमित्त बृहस्पतिदेव ने ऋषित्व पद को प्राप्त करके यज्ञ सम्पन्न किया, उसके फलस्वरूप देवों को अमरत्व पद की प्राप्ति हुई । मनुष्यादि प्रजाजनों के लिए विधाता ने अमरत्व का विधान नहीं बनाया, इसलिए वे 'मर्त्य' कहलाये । इसी कारण प्राणों के अपहरणकर्त्ता यमराज मनुष्यों की देह से प्राण को पृथक् करते हैं ॥४१ ॥

४४४६. त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥४२ ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! हम आपके प्रति स्तुति-प्रार्थना करते हैं । आप हमारी श्रेष्ठ- सुगन्धित आहुतियों को स्वीकार करके पितरगणों को प्रदान करें । पितरगण स्वधा द्वारा समर्पित आहुतियों को ग्रहण करें । हे अग्निदेव ! आप भी श्रद्धा-भावनापूर्वक समर्पित आहुतियों का सेवन करें ॥४२ ॥

४४४७. आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥४३ ॥

अरुणिम ज्वालाओं के सन्निकट बैठने वाले (यज्ञादि कर्म सम्पन्न करने वाले) यजमान को धन-धान्य प्रदान करें । हे पितरो ! आप यजमान के पुत्र-पौत्रों को भी धन- ऐश्वर्य प्रदान करें, जिससे वे यज्ञादि कर्मों के निमित्त धन नियोजित करते रहें ॥४३ ॥

४४४८. अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥४४ ॥

हे अग्निष्वात्ता पितरो ! आप यहाँ आएँ और निर्धारित स्थानों में विराजमान हों । हे पूजनीय पितरो ! पात्रों में स्थित हविष्यान्न का सेवन करें तथा सन्तानादि से युक्त ऐश्वर्य एवं साधन हमें प्रदान करें ॥४४ ॥

४४४९. उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥४५ ॥

अपने पितृगणों का आवाहन करते हैं । कुश- आसन पर विराजमान होकर प्रस्तुत सोमरस आदि हविष्यान्न का उपभोग करें । हमारी प्रार्थना को स्वीकार करके प्रसन्न होते हुए हमारी रक्षा करें ॥४५ ॥

४४५०. ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥४६ ॥

सोमरस तैयार करने वाले वसिष्ठ आदि (याजक) वैभव-सम्पन्न होकर सोमपायी पितरों को हविरूप सोम प्रदान करते हैं । पितरों के साथ पितृपति यम के हविष्य की कामना करते हैं, वे सभी उनका सेवन करें ॥४६ ॥

४४५१. ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥४७ ॥

देवत्व को प्राप्त हुए, यज्ञों के विशेषज्ञ, स्तोत्रों के रचयिता, जो पितरजन पूजनीय स्तुतियों द्वारा इस संसार रूप सागर से पार हो गये हैं, उन हजारों बार देवों द्वारा स्तुत, वचनपालक, क्रान्तदर्शी ऋषियों एवं यज्ञ में विराजमान होने वाले पितरों के साथ हे अग्निदेव ! आप हमारे पास पधारें ॥४७ ॥

४४५२. ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥४८ ॥

जो पितरगण वचनपालक, हवि की रक्षा करके उसे ग्रहण करने वाले तथा वेगसम्पन्न इन्द्रादि देवों के साथ रथारूढ़ होते हैं। उन कल्याणमयी विद्या वाले ऐसे प्राचीन व नवीन ऋषियों के साथ यज्ञ में बैठने वाले पितरगणों सहित हे अग्निदेव ! आप हमारे निमित्त पधारें ॥४८ ॥

४४५३. उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥४९ ॥

हे मृतक ! आप इस मातृ- स्वरूपा, महिमामयी, सर्वव्यापिनी तथा सुखदायिनी धरतीमाता की गोद में विराजमान हों। यह धरतीमाता ऊन के समान कोमल स्पर्श वाली तथा दानी पुरुष की स्त्री के समान ही सभी ऐश्वर्यों की स्वामिनी है। यह (पृथ्वी माता) तुम्हारे प्रशस्त पथ की रक्षा करे ॥४९ ॥

४४५४. उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥५० ॥

हे धरतीमातः ! मृतक को पीड़ादायक सन्ताप से रक्षित करने के लिए आप इसे ऊपर उठाएँ। इसका भली प्रकार स्वागत-सत्कार करने वाली तथा सुख में साथ रहने वाली बनें। हे भूमातः ! जिस प्रकार माता पुत्र को अञ्चल से ढँकती है, उसी प्रकार आप भी इसे सभी ओर से आच्छादित करें ॥५० ॥

४४५५. उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥५१ ॥

हे मृतक ! देह को आच्छादित करने वाली धरती माता भली प्रकार स्थित हों तथा हजारों प्रकार के धूलिकण इसके ऊपर समर्पित करें। यह धरती घृत की स्निग्धता के समान आश्रय प्रदान करने वाली होकर सुखदायी हो ॥

४४५६. उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥५२ ॥

हे अस्थि कुम्भ ! आपके ऊपर पृथ्वी (मिट्टी) को भली प्रकार स्थापित करते हैं, आप इस भार को वहन करें। यह आपको पीड़ा न पहुँचाए। आपके इस अवलम्बन को पितरगण धारण करें। यमदेव यहाँ आपके निमित्त निवास स्थल प्रदान करें ॥५२ ॥

४४५७. इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम्।
अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ॥५३ ॥

हे अग्ने ! देवों और पितरगणों के प्रिय इस चमस पात्र को आप हिंसित न करें। यह चमसपात्र मात्र देवताओं के सोमपान के निमित्त ही सुरक्षित है। इसी से सम्पूर्ण अविनाशी देव तथा पितरगण आनन्दित होते हैं ॥५३ ॥

४४५८. अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ॥५४ ॥

अथर्वा (अविचल बुद्धिवाले) ऋषि ने हवि से परिपूर्ण जिस अन्नयुक्त चमस पात्र को इन्द्रदेव के निमित्त धारण किया था, उस चमस में ऋत्विग्गण भली प्रकार सम्पन्न किये गये यज्ञ में यज्ञावशिष्ट हवि का सेवन करते हैं। उसी अथर्वा द्वारा विनिर्मित चमस में रसरूप अमृत सदैव बहता रहता है ॥५४ ॥

४४५९. यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥५५ ॥

हे मृत मनुष्य ! आपके शरीर (जिस अंग-अवयव) को कौए, चींटी, साँप अथवा किसी दूसरे हिंसक पशु ने व्यथित किया हो, तो सर्वभक्षक अग्निदेव उस अंग को पीड़ारहित करें । शरीर के अन्दर जो पोषण- रसरूप सोम विद्यमान है, वह भी उसे कष्टमुक्त करे ॥५५ ॥

४४६०. पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः ।
अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥५६ ॥

हमारे लिए ओषधियाँ सारयुक्त हों । हमारा सार ही सार सम्पन्न हो, जल इत्यादि रसों के साररूप सत्त्व अंश से जलाभिमानी वरुणदेव हमें शुद्ध करें ॥५६ ॥

४४६१. इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥५७ ॥

सधवा (सौभाग्यवती) और सुन्दर नारियाँ घृताञ्जन से शोभायमान होकर अपने घरों में प्रविष्ट हों । ये नारियाँ आँसुओं को रोककर मानसिक विकारों का त्याग करती हुई, आभूषणों से सुसज्जित होकर आदरपूर्वक आगे-आगे चलती हुई घरों में प्रविष्ट हों ॥५७ ॥

४४६२. सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥५८ ॥

हे पिता ! आप उत्तम लोक स्वर्ग में यज्ञ आदि दान - पुण्य कर्मों के फलस्वरूप अपने पितरगणों के साथ संयुक्त हों । पाप कर्मों के प्रभाव से मुक्त होकर पुनः घर में प्रविष्ट हों तथा तेजस्वी देवरूप को प्राप्त करें ॥५८ ॥

४४६३. ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्व१न्तरिक्षम् ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥५९ ॥

पितामह, प्रपितामह तथा हमारे गोत्र में उत्पन्न हुए जिन पितरों ने विस्तृत अन्तरिक्षलोक में प्रवेश लिया है, उनके निमित्त स्वयं प्रकाशमान प्राणस्वरूप परमेश्वर हमारी देहों को इच्छानुरूप विनिर्मित करते हैं ॥५९ ॥

४४६४. शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम् । शीतिके शीतिकावति ह्लादिके
ह्लादिकावति । मण्डूक्य१प्सु शं भुव इमं स्व१ग्निं शमय ॥६० ॥

हे प्रेतपुरुष ! दहन से उत्पन्न तुम्हारी जलन को यह कुहरा शान्त करे । धीरे- धीरे बरसते हुए बादल तुम्हें सुख प्रदान करें । हे शीतिका ओषधि सम्पन्न और ह्लादिका ओषधियुक्त माता पृथिवि ! आप इस दग्ध हुए प्रेतात्मा के लिए मण्डूकपर्णी ओषधि से सुख प्रदान करें, आप इस दाहक अग्नि को अच्छी तरह शान्त कर दें ॥६० ॥

४४६५. विवस्वान् नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥६१ ॥

सब प्रकार से संरक्षक, जीवनदाता सूर्यदेव हमें अभय प्रदान करें । इस संसार में हमारी पुत्र-पौत्रादि सन्तति की वृद्धि हो, हम गाय, अश्वादि पशुओं से परिपूर्ण रहें ॥६१ ॥

४४६६. विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु।

इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मो ष्वे षामसवो यमं गु: ॥६२ ॥

सूर्यदेव हमें अमरत्व प्रदान करें । उनकी कृपादृष्टि से मृत्यु का भय समाप्त हो । हम अमरत्व पद के अधिकारी बनें तथा वे वृद्धावस्था तक इन पुत्र-पौत्रादि की सुरक्षा करें । इनमें से किसी के प्राण वैवस्वत यम को प्राप्त न हों ॥

४४६७. यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितॄणां कवि: प्रमतिर्मतीनाम्।

तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भि: स नो यम: प्रतरं जीवसे धात् ॥६३ ॥

वे प्रखर प्रतिभा- सम्पन्न और क्रान्तदर्शी यमदेव मेधा- सम्पन्न पितरों को अपनी सामर्थ्य से अन्तरिक्षलोक में धारण किये हुए हैं । हे सम्पूर्ण विश्व के मित्ररूप मानवो ! आप यमराज की आहुतियों से अर्चना करें । वे पूजनीय यम हमारे जीवन को दीर्घायु प्रदान करें ॥६३ ॥

४४६८. आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन।

सोमपा: सोमपायिन इदं व: क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥६४ ॥

हे मंत्रद्रष्टा ऋषिगण ! आप यज्ञीय सत्कर्मों के प्रभाव से श्रेष्ठ स्वर्गलोक में आरूढ़ हों, किसी प्रकार से भयभीत न हों । हे ऋषियो ! आप सोमपानकर्त्ता और अन्यों को सोमपान में सहयोग करने वाले हैं, आपके निमित्त हम हविष्यान्न समर्पित करते हैं, जिससे हम उत्तम ज्योति (अर्थात् चिरजीवन) प्राप्त करें ॥६४ ॥

४४६९. प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।

दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥६५ ॥

वे अग्निदेव धूम्ररूप विशाल पताका से युक्त होकर , द्युलोक और पृथ्वी में संव्याप्त होते हैं । वे देवों के आवाहन काल में वर्षणशील एवं शब्द करने वाले होते हैं । वे द्युलोक के समीपस्थ प्रदेश में व्याप्त होते हैं तथा जल के आश्रय- स्थान अन्तरिक्ष में विद्युतरूप में संवर्द्धित होते हैं ॥६५ ॥

४४७०. नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।

हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥६६ ॥

पक्षी की तरह आकाश में गतिशील सुनहले पंख वाले, सबको पोषण देने वाले वरुण (वरणीय) के दूत हे वेनदेव ! आपको लोग हृदय से चाहते हैं । अग्नि के उत्पत्ति स्थल अन्तरिक्ष में आपको पक्षी की तरह विचरण करते हुए (द्रष्टागण) देखते हैं ॥६६ ॥

४४७१. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥६७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमें उत्तम कर्मों (यज्ञों) का फल प्राप्त हो । जैसे पिता पुत्रों को धन आदि प्रदान करके उनका पोषण करता है, वैसे ही आप हमें पोषित करें । अनेकों द्वारा सहायता के लिए पुकारे गये हे इन्द्रदेव ! यज्ञ में आप हमें दिव्य तेजस् प्रदान करें ॥६७ ॥

४४७२. अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन्।

ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुत: ॥६८ ॥

हे प्रेतपुरुष ! जिन घृत, मधु आदि से निर्मित मालपुओं से परिपूर्ण घड़ों को आपके उपभोग के लिए देवों ने धारण किया है, वे घड़े आपके लिए स्वधायुक्त, मधुरतायुक्त तथा घृत से परिपूर्ण हों ॥६८ ॥

४४७३. यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥६९ ॥

हे प्रेतपुरुष ! तिल मिश्रित स्वधायुक्त जो जौ की खीलें हम समर्पित कर रहे हैं, वे आपको ऐश्वर्य गुणसम्पन्न और तृप्तिदायी हों । राजा यम आपको खीलों का उपयोग करने की अनुमति प्रदान करें ॥६९ ॥

४४७४.पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥७० ॥

हे वनस्पतिदेव ! आपमें जिस अस्थिरूप पुरुष की स्थापना की गई थी, आप उसे हमें पुनः लौटाएँ, जिससे यमराज के घर में वह यज्ञीय कर्मों को प्रकाशमान करता हुआ विराजमान हो ॥७० ॥

४४७५. आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥७१ ॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आप दहन कार्य के लिए तत्पर हों, आपका रस हरणशील तथा दहन ऊर्जा (लपटों) से युक्त हो । इस मृतदेह को आप अच्छी प्रकार से भस्मीभूत करें और पुण्यात्माओं के श्रेष्ठलोक स्वर्ग में प्रतिष्ठित करें ॥७१ ॥

४४७६. ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यै तु शतधारा व्युन्दती ॥७२ ॥

पहले उत्पन्न होकर जो पितरजन परलोक सिधारे हैं और जो बाद में उत्पन्न हुए अर्वाचीन पितर परलोक वासी हुए हैं, उन सभी प्राचीन व अर्वाचीन पितरों के लिए घृत की नदी प्रवाहित हो । उसकी असंख्य धाराएँ आपको अभिषिञ्चित करती रहें ॥७२ ॥

४४७७. एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥७३ ॥

हे मृतात्मन् ! आप इस देह से निकलकर स्वयं को शुद्ध करके इस अन्तरिक्ष में आरोहण करें । इस लोक में आपके बन्धुगण वैभव- सम्पन्न होकर रहें । बान्धवों की आसक्ति को त्यागकर उच्चलोक को लक्षित करके आरोहण करें । द्युलोक में जो पितरों का प्रमुख लोक है, उसका परित्याग न करें ॥७३ ॥

[४ - पितृमेध सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** यम, मन्त्रोक्त, ८१-८७ पितरगण, ८८ अग्नि, ८९ चन्द्रमा । **छन्द-** त्रिष्टुप्, १,४,७,१४,३६,६० भुरिक् त्रिष्टुप्, २, ५, ११, २९, ५०-५१, ५८ जगती, ३ पञ्चपदा भुरिक् अतिजगती, ६ पञ्चपदा शक्वरी, १२ महाबृहती, १३ त्र्यवसाना पञ्चपदा शक्वरी, १६-२४ त्रिपदा भुरिक् महाबृहती, २५, ३१-३२, ३८, ४१-४२, ५५, ५७, ५९, ६१ अनुष्टुप्, २६ विराट् उपरिष्टाद् बृहती, २७ याजुषी गायत्री, ३३, ४३ उपरिष्टाद् बृहती, ३९ पुरोविराट् आस्तार पंक्ति, ४९ अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्, ५३ पुरोविराट् सतः पंक्ति, ५६ ककुम्मती अनुष्टुप्, ६२ भुरिक् आस्तार पंक्ति, ६३ स्वराट् आस्तार पंक्ति, ६६ त्रिपदा स्वराट् गायत्री, ६७ द्विपदा आर्ची अनुष्टुप्, ६८, ७१ आसुरी अनुष्टुप्, ७२- ७४, ७९ आसुरी पंक्ति, ७५ आसुरी गायत्री, ७६ आसुरी उष्णिक्, ७७ दैवी जगती, ७८ आसुरी त्रिष्टुप्, ८० आसुरी जगती, ८१ प्राजापत्या अनुष्टुप्, ८२ साम्नी बृहती, ८३, ८४ साम्नी त्रिष्टुप्, ८५ आसुरी बृहती, ८६ चतुष्पदा ककुम्मती उष्णिक्, ८७ चतुष्पदा शङ्कुमती उष्णिक्, ८८ त्र्यवसाना पथ्यापंक्ति, ८९ पञ्चपदा पथ्यापंक्ति ।]

४४७८. आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि ।
अवाड्हव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके ॥१ ॥

हे (जन्म से ही ज्ञानी) अग्नियो ! आप अपनी जन्मदात्री (वनस्पतियों , अन्तरिक्षीय धाराओं) तक पहुँचें । हम आपको पितृयान मार्ग द्वारा वहाँ भली प्रकार पहुँचाते हैं । प्रिय हव्यों के वहनकर्त्ता अग्निदेव हविष्यान्न को वहन करते हैं । हे अग्नियो ! आप परस्पर मिलकर यज्ञीय सत्कर्मों के निष्पन्नकर्त्ता यजमान को श्रेष्ठ पुण्यात्माओं के लोक में प्रतिष्ठित करें ॥१ ॥

[अग्निदेव जातवेदा (जन्म से ही ज्ञानी अथवा जन्म को जानने वाले) हैं ; क्योंकि हर प्राणी के जन्म में उनकी सुनिश्चित भूमिका होती है । वे अन्तरिक्षीय प्रवाहों एवं वनस्पतियों से उत्पन्न किए जा सकते हैं तथा यज्ञीय प्रयोगों द्वारा पुनः उर्वर संस्कारों के साथ उन्हें उन स्थानों तक पहुँचाया जा सकता है ।]

४४७९. देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि ।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥२ ॥

इन्द्रादि देवगण ऋतुओं के अनुसार यज्ञ की क्रिया करते हैं । हव्य सामग्री , घृत , पुरोडाश, स्रुवा आदि यज्ञ पात्र, जुहू आदि यज्ञीय आयुध भी यज्ञ को सम्पादित करते हैं । हे पुरुष ! आप देवयान मार्ग का अनुगमन करें । यज्ञ के निष्पन्नकर्त्ता मनुष्य जिन मार्गों से प्रस्थान करते हैं, उन्हीं देवत्व की प्राप्ति कराने वाले मार्गों से आप आगे बढ़ें ॥२ ॥

४४८०. ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति ।
तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व।

हे पुरुष ! आप यज्ञ के सत्य मार्ग को भली प्रकार समझें । जिन यज्ञ से सम्बन्धित मार्गों से पुण्यकर्म करने वाले अङ्गिरस जाते हैं, उन्हीं मार्गों से आप स्वर्गलोक को जाएँ । जिस स्वर्ग में अदिति पुत्र देवगण मधुर अमृत का उपभोग करते हैं, उस दुःख- क्लेश रहित तृतीय स्वर्गलोक में जाकर आप विश्रान्ति ग्रहण करें ॥३ ॥

४४८१. त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः ।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ॥४ ॥

उत्तम रीति से गमनशील अग्नि, वायु और सूर्य तथा मेघों से सम्बन्धित शब्दध्वनि करने वाले वायु और पर्जन्य, ये सम्पूर्ण देव स्वर्ग के ऊपर विराजमान हैं । स्वर्गलोक सुधारस से परिपूर्ण है । यह (लोक) यज्ञ के अनुष्ठानकर्त्ता याजकों को अभीष्ट अन्न और बल प्रदान करे ॥४ ॥

४४८२. जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय दुह्राम् ॥५ ॥

जुहू (घृताहुति देने वाले पात्र या साधन) ने द्युलोक को धारण किया । उपभृत (पुनः भर देने वाले) पात्र अन्तरिक्ष को धारण किये हैं, ध्रुव (स्थिर स्वभाव वाले पात्र या संसाधन) ने आश्रयदाता पृथ्वी को धारण कर रखा है । इस ध्रुवा से धारित भूमि को लक्षित करके देदीप्यमान पृष्ठभागयुक्त स्वर्गलोक, यज्ञकर्त्ता यजमान की सम्पूर्ण अभिलाषाओं को पूर्ण करें ॥५ ॥

[ऋषि स्थूल यज्ञ के साथ प्रकृति में संचालित विराट् यज्ञ को भी देख रहे हैं । द्युलोक से घृत-तेजस्-सारतत्त्व की आहुति देने की क्षमता जुहू रूप है । अन्तरिक्ष उपभृत (पुनः भर देने वाले पात्र) के रूप में है । ध्रुवा (हव्य को स्थिरता से धारण करने वाले) पात्र की समता स्वाभाविक रूप से पृथ्वी से ही बैठती है । आहुति करने वाली, आपूर्ति करने वाली तथा स्थिरता से धारण करने वाली क्षमताएँ ही द्यु , अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी के लिए आधार रूप हैं ।]

४४८३. ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व । जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा धुक्ष्वाहृणीयमानः ॥६ ॥

हे ध्रुवा (स्थिर रहकर धारण करने वाली क्षमता) ! सम्पूर्ण विश्व की पालनकर्त्री पृथ्वी पर यजमान के साथ आरोहण करके विराजमान हों । हे उपभृत ! आप यजमान के साथ अन्तरिक्ष लोक में आरोहण करें । हे जुहू ! आप द्युलोक में यजमान के साथ जाएँ । इस प्रकार से हे यजमान ! आप संकोच त्यागकर स्रुवा रूपी वत्स से भली प्रकार (दूध देने के लिए) तैयार की गई दिशा रूपी गौओं से अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करें ॥६ ॥

[बछड़े के प्रभाव से गाय स्नेहपूर्वक दूध देने की स्थिति में आ जाती है । इसी प्रकार स्रुवा द्वारा दी गयी आहुतियों से प्रकृतिरूपी गौ अपने दिव्य पय प्रवाहित करने के लिए प्रेरित होती है ।]

४४८४. तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति । अन्नादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥७ ॥

तीर्थ और यज्ञ जैसे सत्कर्म सम्पन्न करने वाले सत्पुरुष बड़ी से बड़ी आपदाओं से छुटकारा पा जाते हैं, यह विचार करने वाले यज्ञकर्त्ता पुरुष जिस रास्ते से स्वर्ग में पहुँचते हैं, उस मार्ग की खोज करते हुए याज्ञिक, इस यजमान के लिए भी वह श्रेष्ठ पथ- प्रशस्त करें ॥७ ॥

४४८५. अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः । महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः ॥८

पूर्व दिशा में आहवनीय अग्नि, अङ्गिरसों का अयन नामक सत्र (यज्ञ) है । गार्हपत्य अग्नि, आदित्य देवों का अयन नामक सत्र यज्ञ है । दक्षिण दिशा में दक्षिणाग्नि, दक्षायन नामक सत्र है । हे पुरुष ! आप सुदृढ़तायुक्त एवं सम्पूर्ण अवयवों से युक्त होकर वेद मन्त्रों से यज्ञ में स्थापित की गई अग्नि की महत्ता को सुखपूर्वक प्राप्त करें ॥८ ॥

४४८६. पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः । दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोदिशो अग्ने परि पाहि घोरात् । ॥९ ॥

पूर्व दिशा की अग्नि आपको अग्रभाग से सुखपूर्वक तपाये । गार्हपत्य अग्नि पृष्ठ भाग से आपको सुखपूर्वक तपाये । दक्षिण दिशा में दक्षिणाग्नि (कवच) के समान चारों ओर से आपका रक्षण करती हुई आपको सुखपूर्वक तपाये । हे अग्निदेव ! आप उत्तर आदि समस्त दिशाओं से आने वाले क्रूर हिंसकों से इस समर्पित व्यक्ति की सुरक्षा करें ॥९ ॥

४४८७. यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् । अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! भिन्न-भिन्न स्थलों पर प्रतिष्ठित हुए आप अपने आधानकर्ता को परम मंगलकारी अपने शरीरों से (घोड़ों के समान अपनी पीठ पर बैठाकर) स्वर्गलोक की ओर ले जाएँ । उस लोक में यज्ञकर्त्ता यजमान देवों के साथ आनंद का उपभोग करते हुए हर्ष को प्राप्त हों ॥१० ॥

४४८८. शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् । एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! इस यज्ञकर्त्ता को पश्चिम भाग से, पूर्व भाग से, उत्तर और नीचे से सुखपूर्वक तपाएँ । हे उत्पन्न पदार्थों को जानने वाले जातवेदा अग्ने ! एक होते हुए भी आपको पूर्वाग्नि, गार्हपत्याग्नि और दक्षिणाग्नि इन तीन तरह से प्रतिष्ठित किया जाता है । ऐसे अग्निहोत्री को पुण्यात्माओं के लोक में भली प्रकार से स्थापित करें ॥११ ॥

४४८९. शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥१२ ॥

समिधाओं से प्रदीप्त जातवेदा आदि अग्नियाँ इस प्रजापति के मेध्य (यजनीय पदार्थ, जीव या आत्मा) को यहाँ (यज्ञीय वातावरण में) प्रेरित करें, पतित या पथभ्रष्ट न होने दें ॥१२ ॥

४४९०. यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् । तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः । शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥१३ ॥

विशाल पितृमेधयज्ञ समुचित रूप से सम्पन्न होकर यज्ञकर्त्ता को स्वर्गीय सुखों को प्राप्त कराता है । अतएव जातवेदा आदि अग्नियाँ सर्वस्व होम करने वाले (यज्ञकर्त्ता) को भली प्रकार तृप्त-संतुष्ट करें ॥१३ ॥

४४९१. ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥१४ ॥

स्वर्ग से ऊपरी द्युलोक की अभिलाषा से युक्त यह पुरुष, चयन की गई अग्नि को प्रदीप्त करता है । उस श्रेष्ठ याजक के निमित्त अन्तरिक्ष का प्रकाशमान देवयान मार्ग, उसके स्वर्ग में आरोहण करते हुए प्रकाशित हो ॥१४ ॥

[आगे के मन्त्रों का उपयोग अन्त्येष्टि के कृत्यों में किए जाने की परम्परा होने से कुछ आचार्यों ने इन मन्त्रों के अर्थ उन क्रियाओं के साथ जोड़कर, करने का प्रयास किया है । इस भावानुवाद में यज्ञपरक स्वाभाविक अर्थ इस प्रकार किये गये हैं कि वे विशिष्ट प्रयोग के साथ-साथ व्यापक संदर्भों में भी फलित हों ।]

४४९२. अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ॥१५ ॥

हे यज्ञनिष्ठ ! आपके यज्ञ में अग्निदेव 'होता', बृहस्पतिदेव 'अध्वर्यु' तथा इन्द्रदेव 'ब्रह्मा' बनकर दाहिनी ओर (शुभ दिशा में) स्थित हों । इस प्रकार से सम्पन्न यह यज्ञ उसी स्थान पर जाता है, जहाँ पूर्वकाल में आहुति स्वरूप दिये गये यज्ञ स्थित हैं ॥१५ ॥

४४९३. अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१६ ॥

यहाँ इस यज्ञ में पुए (अन्न- घी में पकाकर बनाये गये) तथा क्षीर (दूध में अन्न पकाकर बनाये गये) आदि पकवान स्थित हों । हम श्रेष्ठ लोकों के तथा उनमें ले जाने वाले मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥१६ ॥

४४९४. अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१७ ॥

पुओं और दधियुक्त चरु यहाँ इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता, उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥१७ ॥

४४९५. अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१८ ॥

पुओं तथा अन्य रसों से युक्त चरु यहाँ इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो इस यज्ञ में पधारे हैं ॥१८ ॥

४४९६. अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१९ ॥

पुओं तथा घृत से युक्त चरु यहाँ इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥१९ ॥

४४९७. अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२० ॥

अपूपों और गूदे से बना चरु इस यज्ञशाला में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥२० ॥

४४९८. अपूपवानन्नवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२१ ॥

अपूपों और अन्न से युक्त चरु इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥२१ ॥

४४९९. अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२२ ॥

अपूपों और मधु से युक्त चरु इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥२२ ॥

४५००. अपूपवान् रसवांश्चरुरेह सीदतु । लोककृतः पथिकृतो
यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२३ ॥

अपूपों और रसों से युक्त चरु इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारें हैं ॥२३ ॥

४५०१. अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२४ ॥

अपूपों और जल से निर्मित चरु इस यज्ञ में स्थित हो । हम श्रेष्ठ लोकों तथा उनके मार्गों के निर्माता उन देवों का यजन करते हैं, जो यहाँ इस यज्ञ में पधारे हैं ॥२४ ॥

४५०२. अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥२५ ॥

जिन अपूपों (पुओं) से भरे हुए कलशों को आपके उपभोग हेतु देवों ने ग्रहण किया है, वे कलश आपके निमित्त स्वधायुक्त, मधुरतापूर्वक तथा घृतादि से सम्पन्न हों ॥२५ ॥

४५०३. यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥२६ ॥

तिल मिश्रित जिन स्वधान्नयुक्त जौ की खीलों को हम समर्पित करते हैं, वे खीलें तुम्हारे परलोक प्रस्थान पर विस्तृत सत्परिणाम देने वाली हों । राजा यम आपको खीलों का उपभोग करने की आज्ञा प्रदान करें ॥२६ ॥

४५०४. अक्षितिं भूयसीम् ॥२७ ॥

बहुत समय तक के लिए (यमराज इन विस्तृत खीलों के उपभोग की अनुमति) प्रदान करें ॥२७ ॥

४५०५. द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥२८ ॥

सोमरस पृथ्वी पर ऋषियों तथा देवताओं के लिए अन्तरिक्षलोक से उत्पन्न हुआ है । जो हमारे प्रखर-तेजस्वी पूर्वज थे, उन्हें ही यह सोमरस उपलब्ध हुआ । हम सात याज्ञिक समानलोक में रहने वाले, उस दिव्य सोमरस को आहुतिरूप में समर्पित करते हैं ॥२८ ॥

४५०६. शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् ॥२९ ॥

सैंकड़ों मार्गों से प्रवाहित वायु के लिए, स्वर्ग को प्राप्त कराने वाले आदित्यगण के लिए, अन्य सभी मनुष्यों के लिए तथा कल्याणकारी देवों को ऐश्वर्य अर्पित करने के लिए वे यजमान तत्पर रहते हैं । जो लोग देवों को संतुष्ट करते तथा यज्ञादि में अन्न, द्रव्यादि का दान देते हैं, वे सात होताओं की दक्षिणा पाने के पात्र होते हैं ॥२९ ॥

४५०७. कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥३० ॥

मंगलकारी कार्यों के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चार स्तनरूपी छिद्र वाली, नानाविध वस्तुओं के कोश (खजाने) से परिपूर्ण, मधुर अन्नप्रदात्री भूमिरूपी गाय को दुहते हैं । हे अग्निदेव ! जन समाज में अपने दूधरूपी अन्न से तृप्ति- प्रदात्री अखण्डनीय अदिति (न मारने योग्य गाय) देवी और बलप्रदायक अन्न को क्षति न पहुँचाए ॥३० ॥

[यज्ञों के प्रभाव से प्रकृति को प्रसन्न करके इच्छित मात्रा में पोषक- पदार्थ प्राप्ति का प्रयास करने वाले ऋषि प्रकृति का संतुलन न बिगड़ने देने के लिए जागरूक रहते थे ।]

४५०८. एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ॥३१ ॥

हे पुरुष ! सब प्रकार सवितादेव आपके आच्छादन हेतु इस वस्त्र को देते हैं । तृप्तिप्रद इस वस्त्र को ओढ़कर आप यमराज के राज्य में विचरण करें ॥३१ ॥

[यह वस्त्र यज्ञीय ताने- बाने द्वारा तैयार होता है , जिसे ओढ़कर व्यक्ति यम के यहाँ निर्भय जा सकता है ।]

४५०९. धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥३२ ॥

हे प्रेतपुरुष ! आप वत्सरूप तिल और क्षयरहित धेनुरूपा खीलों से अपना जीवन व्यापार चलाएँ ; क्योंकि ये भुने हुए जौ की खीलें कामधेनु स्वरूपा और तिल ही इसके वत्स (बछड़े) रूप हैं ॥३२ ॥

४५१०. एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।
एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ॥३३ ॥

हे अमुक पुरुष ! ये लाल एवं श्वेत वर्ण वत्स के समान और उनसे भिन्न स्वरूपवाली तिलात्मक वत्सरूपा खीलें तुम्हारे लिए कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु स्वरूप हों तथा इस यमगृह में अभीष्ट फल प्रदान करने के लिए तुम्हारे समीप विद्यमान रहें ॥३३ ॥

४५११. एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥३४ ॥

आपके हरितवर्ण धान, अरुण व श्वेत वर्णवाली गौएँ हों, कृष्ण वर्ण के धान, लालवर्ण की गौएँ हों, तिल वत्सा गौएँ कभी विनष्ट न हों और इसे सदैव ऊर्जाप्रदायक दुग्धरस प्रदान करती रहें ॥३४ ॥

४५१२. वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् ।
स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ॥३५ ॥

वैश्वानर अग्नि में हम इन हवियों को समर्पित करते हैं, जो हवियाँ नानाप्रकार के जल प्रवाहों से युक्त हैं, वे जलवर्षा के मेघ के समान सींचती हुई, अपने उपजीवी पितरजनों के लिए तृप्तिप्रद हों । इन हवियों से हर्षित होकर वैश्वानर अग्निदेव, पितर श्रेणी को प्राप्त हमारे पिता, दादा, परदादा इत्यादि सभी पूर्वजों का पोषण करें ॥३५ ॥

४५१३. सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ॥३६ ॥

सैकड़ों-हजारों धाराओं के स्रोत से सम्पन्न, मेघों की तरह जल से परिपूर्ण, अन्तरिक्ष के ऊपरी भाग में व्याप्त, अन्न-बल प्रदाता, कभी चलायमान न होने वाले हविष्य को पितरजन स्वधारूप आहुति के साथ ग्रहण करते हैं ॥३६

४५१४. इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥३७ ॥

सञ्चयन प्रक्रिया द्वारा संगृहीत किये हुए इस जल से गीले अस्थि समूह को हे सजातीय बन्धुगण ! यहाँ आकर भली प्रकार देखें । यह मरणधर्मा प्रेतपुरुष (जिसका कि अस्थि सञ्चयन किया गया है) अमरत्व को प्राप्त कर रहा है । उपस्थित सभी सजातीय बन्धु इसके लिए आश्रय स्थानों का निर्माण करें ॥३७ ॥

४५१५. इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः ।
इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ॥३८ ॥

हे मनुष्य ! आप यहीं पर रहते हुए वृद्धि को प्राप्त करें । यहीं पर ज्ञानवान् और कर्मशील होकर हमारे लिए धन- सम्पदा देने वाले बनें । यहीं पर अति बलशाली और शत्रुओं से अपराजेय होकर अन्न से दूसरों का परिपोषण करते हुए प्रवृद्ध हों ॥३८ ॥

४५१६. पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः ।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥३९ ॥

आचमन करने योग्य यह मधुरतापूर्ण जल पुत्र-पौत्रादि को परितृप्त करता है । इस पिण्ड पर जीवन को चलाने वाले पितरों के निमित्त अमृतरूप यह जल, स्वयं को प्रसन्नता देने वाली स्वधा को प्रदान करता है । ये दिव्य जल मातृवंश और पितृवंश के दोनों प्रकार के पितरों को परितृप्त करें ॥३९ ॥

४५१७. आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् ।
आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान् ॥४० ॥

हे जलप्रवाहो ! आप इस अग्नि को पितरजनों के समीप भेजें । हमारे पितृगण इस यज्ञान्न का सेवन करें । जो पितर हमारे द्वारा प्रदत्त अन्न को ग्रहण करने हेतु समीप उपस्थित होते हैं, वे सभी पितर हमें पराक्रम- सम्पन्न वीर पुत्रोंसहित प्रचुर धन- सम्पदा प्रदान करें ॥४० ॥

४५१८. समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम् ।
स वेद निहितान् निधीन् पितॄन् परावतो गतान् ॥४१ ॥

अविनाशी, घृतप्रिय, हवियों को ले जाने वाले अग्निदेव को कार्यकुशल पुरुष समिधाओं द्वारा प्रज्वलित करते हैं । यही अग्निदेव अदृश्य निधियों के समान अतिदूर- देश में विद्यमान पितरों को जानते हैं, अतएव वही पितरों को हविष्यान्न पहुँचाएँ , वही पहुँचा पाने में सक्षम भी हैं ॥४१ ॥

४५१९. यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥४२ ॥

हे पितरो ! जिस मंथन प्रक्रिया से प्राप्त पदार्थ मक्खन, भात और अन्न आदि को हम आपके लिए समर्पित करते हैं, वह आपके लिए स्वधायुक्त, मधुरता सम्पन्न और घृतादि से परिपूर्ण हो ॥४२ ॥

४५२०. यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥४३ ॥

हे पितरो ! तुम्हारे निमित्त जिन काले तिलों से युक्त स्वधान्न तथा भूनकर तैयार की गई जौ की खीलों को हम समर्पित कर रहे हैं, वही खीलें परलोक गमन पर तुम्हें बृहद् आकार और बड़ी मात्रा में प्राप्त हों । इन खीलों को उपभोग करने की यमदेव तुम्हें आज्ञा प्रदान करें ॥४३ ॥

४५२१. इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ॥४४ ॥

यह जो सामने शकट (संवाहक तंत्र-शरीर या यज्ञीय प्रवाह) है, वह प्राचीन के साथ नवीन भी है । इसी से तुम्हारे पूर्वज गये थे । इस समय योजित किये जाते इस शकट के दोनों तरफ जो दो वृषभ हैं, वे तुम्हें पुण्यात्माओं के लोक में लेकर जाएँ ॥४४ ॥

४५२२. सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥४५ ॥

देवत्व प्राप्त करने के लिए मनुष्य सरस्वती का आवाहन करते हैं । श्रेष्ठ कर्मशील मनुष्य भी वाणी की देवी सरस्वती को बुलाते हैं । देवी सरस्वती हविप्रदाता यजमान को वरण करने योग्य अभिलषित पदार्थ प्रदान करें ॥४५

४५२३. सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४६ ॥

वेदी की दक्षिण दिशा में विराजमान पितर, सरस्वती का आवाहन करते हैं । हे पितृगण ! आप यज्ञ में पधारकर हर्षित हों । सरस्वती को परितृप्त करते हुए हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों से स्वयं तृप्ति प्राप्त करें । हे सरस्वती देवि ! पितरों द्वारा आवाहित किये जाने पर आप आरोग्यप्रद अन्न प्रदान करके हमें कृतार्थ करें ॥४६ ॥

४५२४. सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥४७ ॥

हे सरस्वती देवि ! आप उक्थ, शस्त्र और स्वधान्न से परितृप्त होती हुई पितरजनों के साथ एक ही रथ पर आती हैं । आप इस यज्ञ में यजमान साधक के लिए हजारों (व्यक्तियों) द्वारा वन्दनीय अन्नभाग और धन को पुष्ट करें ॥४७ ॥

४५२५. पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः ।
परापरैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ॥४८ ॥

हे पृथिवि (पार्थिव काया) ! तुम्हें हम पृथ्वी तत्त्व में प्रविष्ट करते हैं । धाता देव हमें दीर्घायु बनाएँ । हे दूर चले गये (प्राणो) ! तुम्हारे लिए (धाता देव) आवास प्रदायक हों । मृतात्माएँ पितरों के साथ जा मिलें ॥४८ ॥

४५२६. आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।
अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ॥४९ ॥

तुम दोनों (प्राण और अपान अथवा सूक्ष्म एवं कारण देह) इस शकट (धारक काया) से विलग हो जाओ । हे अहिंसनीय ! इस (नाशवान् काया) के कारण (तुमसे) जो निन्दनीय वचन कहे जाते हैं, उनसे मुक्त होकर शुद्ध हो जाओ । इस (पितृमेध) में प्रदत्त (आहुति अथवा दान दक्षिणा) हमारा पालन करने वाली हों ॥४९ ॥

४५२७. एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः ।
यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य उपसंपराणयादिमान् ॥५० ॥

(इस पितृमेध में) श्रेष्ठ दुग्ध (पोषण) तथा बल देने वाली यह दक्षिणा हमें (याजकों) को कल्याणकारी (माध्यमों अथवा स्थानों ` से प्राप्त हुई है, जिससे हमारा अमंगल नहीं होगा । जिस प्रकार युवावस्था के पश्चात् जीवों को जरावस्था निश्चित रूप से आती है, उसी प्रकार यह दक्षिणा इन प्राणियों (संस्कारित आत्माओं) को पितरों के समीप श्रेष्ठ रीति से अवश्य पहुँचाएगी ॥५० ॥

४५२८. इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ॥५१ ॥

इन कुशों को हम पितरजनों के निमित्त (आसनरूप में) बिछाते हैं और देवों के लिए जीवों से भिन्न या उच्चस्तर पर कुश के आसन बिछाते हैं । हे पुरुष ! पितृमेध के लिए उपयोगी बनकर, आप इन कुशाओं पर आरोहण करें; ताकि पितरजन आपको परलोक में प्रस्थान किया हुआ मानें ॥५१ ॥

४५२९. एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्वं१ सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥५२ ॥

हे पितरो ! इन बिछाये गये कुशों पर आप आरूढ़ हो गये हैं, पितृयज्ञ के निमित्त आप पवित्रता धारण कर चुके हैं । पितरजन आपको परे (उच्च लोकों में) गया हुआ जानें । अपनी सूक्ष्म देह के जोड़ों को (घटकों को) पूर्ण बनाएँ । हम आपके अंगों को ब्रह्मशक्ति के द्वारा (योग्य) स्वरूप प्रदान करते हैं ॥५२ ॥

४५३०. पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो वि दधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥५३ ॥

राजा (प्रकाशमान) पर्ण (पत्ता या पालनकर्त्ता) इस (दिव्य) चरु का आवरण है । वह (चरु) हमें अन्न, बलिष्ठता संघर्षशक्ति, ओजस् प्रदान करे एवं जीवों को सौ शरद ऋतुओं (वर्षों) की आयु धारण कराए ॥५३ ॥

४५३१. ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥५४ ॥

(हे मित्रो !) अश्म (कूटने वाले पत्थरों) के द्वारा अन्न के स्वामी को जो (चरु) प्राप्त हुआ है, अन्न का विभाजन करने वाले जिस (यम) के द्वारा यह उत्पन्न हुआ है, हवियों द्वारा उनका अर्चन करो । वे हमें दीर्घायु प्रदान करें ॥५४ ॥

४५३२. यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।

एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥५५ ॥

पाँच श्रेणी के जन समुदाय ने जैसे यमराज के लिए आश्रयस्थल बनाया है, वैसे ही पितरों के लिए इस पितृगृह को हम ऊँचा उठाते हैं । हे बन्धुगण ! इससे आप प्रचुर संख्या में निवास स्थान प्राप्त कर सकेंगे ॥५५ ॥

४५३३. इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पिताबिभः पुरा ।

स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥५६ ॥

(हे पुरुष !) आप इस हिरण्य (स्वर्ण निर्मित आभूषण अथवा तेजस्वी आवरण) को धारण करें, जिसे आपके पिता ने भी पहले धारण किया था । इस प्रकार आप स्वर्ग की ओर जाते हुए पिता के दाहिने हाथ (अथवा दक्षिणा देने की प्रवृत्ति) की शोभा बढ़ाएँ ॥५६ ॥

४५३४. ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।

तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥५७ ॥

जीवित प्राणियों, दिवंगत हुए प्राणियों , उत्पन्न हुए प्राणियों तथा उत्पन्न होने वाले प्राणियों, ऐसे सभी श्रद्धास्पदों को मधु - प्रवाह से उमड़ती हुई घृत अथवा जल की नदी उपलब्ध हो ॥५७ ॥

४५३५. वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।

प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया ॥५८ ॥

स्तोताओं को अभीष्ट फलदायक, विशिष्ट- दर्शनीय, सोम पवित्र स्थिति में गमन करता है । यह सोमरूप सूर्य अहोरात्र का निष्पन्नकर्त्ता है । यही उषाकाल और द्युलोक की वृद्धि का निमित्त कारण है । वर्षा का कारण भूत होने से नदियों का प्राणरूप है । यह सोम कलशों को लक्षित करके (कलशों की ओर गमन करते हुए) भयंकर क्रन्दन करता है । यह तीनों प्रकार के सवनों में पूजनीय इन्द्रदेव के हृदय में (उदर में) प्रवेश करता है ॥५८ ॥

४५३६. त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षञ्छुक्र आततः ।

सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥५९ ॥

हे पवित्रकारक अग्ने ! प्रदीप्त होने के पश्चात् आपका धवल धूम्र अन्तरिक्ष में फैलकर दृष्टिगोचर होता है । हे पावन अग्निदेव ! स्तुति के प्रभाव से आप सूर्य की तरह प्रकाशित होते हैं ॥५९ ॥

४५३७. प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः ।

मर्य इव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥६० ॥

यह अभिषुत सोमरस इन्द्रदेव के उदर में ही जाता है । मित्रवत् हितैषी सोम, अभिषवण और स्तोत्रादि से मित्ररूप यजमान की कामनाओं को निष्फल नहीं, अपितु पूर्ण करते हैं । पुरुष के स्त्री से संगत होने के समान ही सोम द्रोणकलश में हजारों-असंख्य धाराओं से भली प्रकार आता है ॥६० ॥

४५३८. अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत ।

अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥६१ ॥

मेधावी पितरगण पिण्डों का सेवन करके तृप्ति को प्राप्त हुए , तृप्ति द्वारा वे अपनी प्रियदेह को कान्तिमान् बनाते हैं । ये पितर स्वयं प्रकाशमान होकर हमारी प्रशंसा करते हैं । पिण्डसेवन से संतुष्ट पितरों से हम युवापुरुष अपने अभीष्ट फलों की याचना करते हैं ॥६१ ॥

४५३९. आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।

आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥६२ ॥

हे सोमपानकर्त्ता पितरो ! आप गम्भीर पितृयान मार्गों से आगमन करें तथा हमें आयुष्य, प्रजा (सन्तति) और धन-सम्पदा से भली प्रकार परिपुष्ट करें ॥६२ ॥

४५४०. परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।

अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ॥६३ ॥

हे सोमपानकर्त्ता पितृगण ! आप अपने पितृलोक के गम्भीर असाध्य पितृयान मार्गों से अपने लोक को जाएँ । मास की पूर्णता पर अमावस्या के दिन हविष्य का सेवन करने के लिए हमारे गृहों में आप पुनः आएँ । हे पितृगण ! आप ही हमें उत्तम प्रजा और श्रेष्ठ सन्तति प्रदान करने में सक्षम हैं ॥६३ ॥

४५४१. यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयञ्जातवेदाः ।

तद् व एतत् पुनरा प्याययामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥६४ ॥

हे पितरो ! आपको पितृलोक में ले जाते समय जातवेदा अग्नि ने आपके जिस एक भाग को चिताग्नि में भस्म नहीं किया है, आपके उस अंग को हम पुनः अग्नि को सौंपकर आपको अगली यात्रा के लिए तैयार करते हैं । अपने सभी अङ्ग-अवयवों से परिपूर्ण होकर हे पितृगण ! आप स्वर्गलोक में पहुँचकर आनन्दपूर्वक वास करें ॥

४५४२. अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः ।

प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥६५ ॥

मनुष्यों द्वारा प्रातः - सायं वन्दित अग्निदेव को हमने पितरजनों के समीप भेजा है । हे अग्निदेव ! आप हमारे द्वारा प्रदत्त हवियों को पितरों के लिए समर्पित करें । स्वधापूर्वक प्रदत्त आहुतियों को पितरजन ग्रहण करें, तदनंतर हे अग्निदेव ! आपके निमित्त दी गई आहुतियों को आप स्वयं भी ग्रहण करें ॥६५ ॥

४५४३. असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः । अभ्ये नं भूम ऊर्णुहि ॥६६ ॥

हे अमुक नामवाले प्रेतपुरुष ! आपकी आसक्ति इन ईंटों द्वारा बनाये गये स्थान के प्रति है । हे श्मशान स्थल रूप भूमे ! आप उसी प्रकार इस स्थल पर स्थित प्रेत को आच्छादित करें, जिस प्रकार कुलीन स्त्रियाँ अपने कन्धे (सिर) को वस्त्र से ढक लेती हैं ॥६६ ॥

४५४४. शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ॥६७ ॥

हे प्रेतात्मा ! जिनमें पितरगण विराजमान होते हैं, वे लोक आपके लिए शोभायमान हों । हम आपको उसी लोक में प्रतिष्ठित करते हैं ॥६७ ॥

४५४५. ये३स्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥६८ ॥

हे कुश से निर्मित बर्हि ! आप हमारे पूर्वपितरों के आसीन होने के स्थान बनें ॥६८ ॥

४५४६. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।

अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥६९ ॥

हे वरुणदेव ! आप तीनों तापरूपी बंधनों से हमें मुक्त करें । आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक पाश हमसे दूर हों तथा मध्य एवं नीचे के बन्धन हमसे अलग करें । हे सूर्यपुत्र ! पापों से रहित होकर आपके कर्मफल सिद्धांत में अनुशासित हम दयनीय स्थिति में न रहें ॥६९ ॥

४५४७. प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे ।
अथा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ॥७० ॥

हे वरुणदेव ! आप उन सभी प्रकार के पाश-बन्धनों से हमें भली प्रकार मुक्त करें, जिन बन्धनों से मनुष्य समाम अर्थात् जकड़ जाता है तथा व्याम अर्थात् उससे भी अधिक संकीर्ण बन्धन में जकड़ जाता है । तदनन्तर हे राजा वरुण ! आपके द्वारा संरक्षित हम शतायु प्राप्त करें ॥७० ॥

४५४८. अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥७१ ॥

कव्य के वहनकर्त्ता (पितरों के लिए हवि पहुँचाने को 'कव्य' कहा गया है) अग्निदेव के लिए स्वधा उच्चारण से आहुति समर्पित हो और नमन स्वीकार हो ॥७१ ॥

४५४९. सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥७२ ॥

श्रेष्ठ पिता वाले सोमदेव के निमित्त यह स्वधान्न और नमन प्राप्त हो ॥७२ ॥

४५५०. पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥७३ ॥

सोमयुक्त पितृगण के लिए यह स्वधाकार आहुति और वन्दन प्राप्त हो ॥७३ ॥

४५५१. यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥७४ ॥

पितरों के अधिष्ठाता यमदेव को यह स्वधाकार आहुति और प्रणाम प्राप्त हो ॥७४ ॥

४५५२. एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥७५ ॥

हे प्रपितामह ! आपके निमित्त पिण्डरूप में प्रदत्त यह आहुति स्वधा से युक्त हो । धर्मपत्नी, पुत्रादि पितर जो आपके अनुगामी होकर रहते हैं , उन्हें भी यह स्वधान्न प्राप्त हो ॥७५ ॥

४५५३. एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥७६ ॥

हे पितामह ! आपके लिए यह पिण्डरूप में प्रदत्त स्वधाकार आहुति समर्पित है । धर्मपत्नी, पुत्रादि पितर जो आपके अनुगामी होकर रहते हैं, उन्हें भी यह स्वधान्न उपलब्ध हो ॥७६ ॥

४५५४. एतत् ते तत स्वधा ॥७७ ॥

हे पिता ! आपके लिए यह पिण्डादिरूप में स्वधाकार आहुति समर्पित हो ॥७७ ॥

४५५५. स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥७८ ॥

पृथ्वी पर वास करने वाले पितरों के निमित्त स्वधाकार से यह आहुति समर्पित हो ॥७८ ॥

४५५६. स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥७९ ॥

अन्तरिक्षवासी पितरगण के निमित्त यह आहुति स्वधारूप में समर्पित हो ॥७९ ॥

४५५७. स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥८० ॥

द्युलोकवासी पितरगण के निमित्त स्वधा रूप प्रदत्त यह आहुति समर्पित हो ॥८० ॥

४५५८. नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ॥८१ ॥

हे पितृगण ! आपके अन्न , बल और मधुरादि रस के लिए हमारा नमन है ॥८१ ॥

४५५९. नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ॥८२ ॥

हे पितृगण ! आपके क्रोध और मन्यु के लिए हमारा नमन हो ॥८२ ॥

४५६०. नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै ॥८३ ॥

हे पितरो ! विध्वंसकारियों के लिए आपके विकरालरूप और क्रूर स्वरूप के लिए हमारा नमन हो ॥८३ ॥

४५६१. नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत् स्योनं तस्मै ॥८४ ॥

हे पितरो ! आपके कल्याणप्रद और सुखकारी स्वरूप के लिए हमारा प्रणाम है ॥८४ ॥

४५६२. नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥८५ ॥

हे पितरो ! आपके निमित्त नमनपूर्वक यह स्वधाकार आहुति समर्पित हो ॥८५ ॥

४५६३. येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्मांस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ॥८६ ॥

हे पितरगण ! इस पितृयज्ञ में आप देवस्वरूप में विराजमान हों । अपने आश्रित अन्य पितरों से आप श्रेष्ठतर हों, वे आपके अनुगामी हों . आप उनके श्रेष्ठ अनुगमन के निमित्त बनें ॥८६ ॥

४५६४. य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः । अस्मांस्तेऽनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥८७ ॥

हे पितरगण ! इस पितृयज्ञ में जो पितर पितृत्वगुण से युक्त हैं, उनमें आप श्रेष्ठतम बनें । इस भूलोक में पिण्डदानकर्ता हम लोग श्रेष्ठ जीवनयुक्त आयुष्य का उपभोग करें । हम समान आयु, वंश, विद्या और धन- सम्पदा से सम्पन्न लोगों में भी श्रेष्ठ हों ॥८७ ॥

४५६५. आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद् घ सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८८ ॥

हे प्रकाशमान अग्निदेव ! आप देदीप्यमान और जीर्णतारहित हैं, हम अपने समक्ष आपको प्रज्वलित करते हैं । आपकी अभिनन्दनीय आभा अन्तरिक्ष में (सूर्य में) प्रकाशित होती है । हे जाज्वल्यमान अग्निदेव ! आप हम स्तोताओं को अभीष्ट अन्नरूप फल प्रदान करें ॥८८ ॥

४५६६. चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८९ ॥

अन्तरिक्ष में चन्द्रमा तथा द्युलोक में सूर्य दौड़ रहे हैं । (हे विज्ञ पुरुषो !) तुम्हारा स्तर सुनहरी धारवाली विद्युत् को जानने योग्य नहीं है । हे द्युलोक एवं भूलोक ! आप हमारे भावों को समझें (हमें उनका बोध करने की सामर्थ्य प्रदान करें) ॥८९ ॥

[(क) वेद ने अन्तरिक्ष को अप्सु अन्तः जल क्षेत्र का अन्त कहा है । वर्तमान विज्ञान के अनुसार पृथ्वी के वायु मण्डल की सीमा तक जलवाष्प है, उसी के कारण आकाश नीला दिखता है । वायुमण्डल के बाहर निकलने पर आकाश नीला नहीं दिखता है । पृथ्वी का प्रभाव क्षेत्र वायुमण्डल तक ही है, उसके बाद अन्तरिक्ष प्रारम्भ होता है । इसीलिए अन्तरिक्ष को अप्सुअन्तः कहा गया है (ख) चन्द्रमा अन्तरिक्ष में है तथा सूर्य उससे ऊपर द्युलोक में है, यह तथ्य ऋषि देखते रहे हैं । (ग) द्युलोक एवं पृथ्वी से प्रार्थना की गयी है कि जिन सूक्ष्म प्रवाहों को हम नहीं जान पाते, उनका भी लाभ हमें प्रदान करें ।]

॥ इत्यष्टादशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ एकोनविंशं काण्डम् ॥

[१ - यज्ञ सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- यज्ञ और चन्द्रमा । छन्द- पथ्याबृहती, ३ पंक्ति ।]

इस सूक्त में यज्ञ को प्रकृति में संव्याप्त व्यापक प्रक्रिया के रूप में प्रतिपादित किया गया है-

४५६७. सं सं स्रवन्तु नद्य१: सं वाताः सं पतत्रिणः ।

यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१ ॥

नदियाँ सम्यक् रूप से प्रवहमान रहें । वायुदेव अनुकूल होकर प्रवाहित रहें । पक्षी भी स्वाभाविक रूप से उड़ते रहें । यज्ञों को हमारी स्तुतियाँ संवर्द्धित करें । सुख- सौभाग्य का संचार करने वाली आहुतियों से हम यजन करते हैं ॥१ ॥

४५६८. इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।

यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥२ ॥

हे होमे गये पदार्थो ! आप इस यज्ञ की सुरक्षा करें । हे सुखदायक प्रवाहो ! आप भी इस यज्ञ की रक्षा करें । हमारी स्तुतियाँ यज्ञ को संवर्द्धित करें । सुख- सौभाग्य को संचरित करने वाली आहुतियों से हम यजन करते हैं ॥२ ॥

४५६९. रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे ।

यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३ ॥

हम (याजक) विविध रूपों और विविध बलों से युक्त इस (यजमान अथवा यज्ञ) की सुरक्षा करते हैं । चारों दिशाएँ इस यज्ञ को संवर्द्धित करें । हम सुख- संचार करने वाली आहुतियों से यजन करते हैं ॥३ ॥

[२ - आपः सूक्त]

[ऋषि- सिन्धुद्वीप । देवता- आपः । छन्द- अनुष्टुप् ।]

४५७०. शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।

शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥१ ॥

(हे साधको !) हिम से उत्पन्न जल- प्रवाह, स्रोत (झरने) से प्रवाहित होने वाले, अनवरत तीव्रवेग से बहने वाले तथा वर्षा द्वारा नदियों में आये जल- प्रवाह , ये सभी आपके लिए सुखदायक एवं कल्याणकारी हों ॥१ ॥

४५७१. शं त आपो धन्वन्या३: शं ते सन्त्वनूप्याः ।

शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥२ ॥

हे यजमान ! मरुस्थल के जल, जल सम्पन्न भू- भाग में होने वाले जल, खोदकर प्राप्त किये गए (कुएँ, बावड़ी आदि के) जल तथा घड़ों में भरकर लाये गए जल , ये सभी प्रकार के जल आपके लिए कल्याणप्रद हों ॥२ ॥

४५७२. अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।

भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥३ ॥

कुदाल आदि खनन उपकरणों के न रहते हुए भी जो दोनों ओर के तटों को गिराने में सक्षम हैं । जो स्वयं का जीवन- व्यापार चलाने वाले मनुष्यों की बौद्धिक सामर्थ्य को बढ़ाते हैं तथा जो अतिगहन स्थलों में रहते हैं, ऐसे वैद्यों (ओषधि विशेषज्ञों) से भी अधिक हितकारी जल की हम स्तुति करते हैं ॥३ ॥

४५७३. अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् । अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥४ ॥

हे ऋत्विजो ! वर्षा द्वारा आकाश मार्ग से प्राप्त होने वाले तथा स्रोतों से प्राप्त होने वाले जल के सदुपयोग के लिए अश्व की भाँति शीघ्रता करें ॥४ ॥

४५७४. ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः । यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥

हे ऋत्विजो ! आप मंगलकारी, हानिकारक रोगों के शमनकर्ता, ओषधिरूप जल को लेकर शीघ्र आएँ, जिससे सुखों की वृद्धि हो ॥५ ॥

[३ - जातवेदा सूक्त]

[ऋषि- अथर्वाङ्गिरा । देवता- अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप्, २ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

४५७५. दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः ।

यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥१ ॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आप पृथ्वी, द्युलोक, अन्तरिक्षलोक, वनस्पतियों और ओषधियों में जहाँ कहीं भी विशेष रूप से विद्यमान हों, प्रसन्नतापूर्वक हमारे अनुकूल होकर पधारें ॥१ ॥

४५७६. यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः ।

अग्ने सर्वास्तन्व१: सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी महत्ता जो जल में (बड़वाग्निरूप में), जंगल में (दावानलरूप में), ओषधियों में (फल पाकरूप में), पशु आदि सभी प्राणियों में (वैश्वानररूप में) तथा अन्तरिक्षीय मेघों में (विद्युत् रूप में) विद्यमान है ।अपने उन सभी स्वरूपों के साथ आप पधारें और हमारे लिए अक्षय धन प्रदान करने वाले सिद्ध हों ॥

४५७७. यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वाविवेश ।

पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथेऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! देवों में स्वाहाकार हव्य को पहुँचाने वाले, पितरों में स्वधाकार कव्य को पहुँचाने वाले तथा मनुष्यों में आहार को पचाने वाले के रूप में आपकी महिमा है । इन सभी रूपों में आप अनुकूल होकर पधारें तथा हमें धन प्रदान करें ॥३ ॥

४५७८. श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।

यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज हेडो अग्ने ॥४ ॥

स्तुतियों को सुनने में समर्थ, अतीन्द्रिय क्षमतायुक्त, सबके जानने योग्य, अभीष्ट फलप्रदाता अग्निदेव की हम वन्दना करते हैं । हे अग्निदेव ! जिनसे हमें भय है, उनसे निर्भयता की प्राप्ति हो । आप हमारे प्रति देवों के क्रोध को शान्त करें ॥४ ॥

[४ - आकूति सूक्त]

[ऋषि- अथर्वाङ्गिरा। देवता- अग्नि, २ आकूति। छन्द- त्रिष्टुप्, १ पञ्चपदा विराडतिजगती, २ जगती।]

४५७९. यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥१ ॥

सर्वप्रथम अथर्वा ऋषि ने जो आहुति प्रदान की थी, जिस आहुति को जातवेदा अग्निदेव ने सबसे पहले देवों तक पहुँचाया था। हे अग्निदेव ! वही आहुति सभी यजमानों से पूर्व मैं आपको प्रदान करता हूँ। प्रसन्नतापूर्वक आप इसे वहन करें, यह आहुति आपको समर्पित है ॥१ ॥

४५८०. आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥२ ॥

सौभाग्य प्रदायिनी (सरस्वती) देवी को हम पहले स्थापित करते हैं। मातृवत् चित्तवृत्तियों को नियन्त्रित करने वाली ये देवी हमारे आवाहन पर अनुकूल हों। हमारी इच्छाएँ पूर्ण हों । मन में स्थित संकल्प पूर्ण हों ॥२ ॥

४५८१. आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥३ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! प्रबल इच्छाशक्ति के रूप में आप हमें प्राप्त हों। आप हमें ज्ञानरूप ऐश्वर्य प्रदान करें तथा हमारे लिए सुगम रीति से आवाहन योग्य हों ॥३ ॥

४५८२. बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम्।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥४ ॥

आंगिरस कुल में उत्पन्न बृहस्पतिदेव हमारे निमित्त वाणी की अधिष्ठात्री शक्ति की स्तुति करें। देवशक्तियाँ जिनके नियंत्रण में रहती हैं, जो सभी के संगठक हैं; वे अभीष्ट फलों के प्रदाता बृहस्पतिदेव हमारे अनुकूल हों ॥४ ॥

[५ - जगद् - राजा सूक्त]

[ऋषि- अथर्वाङ्गिरा। देवता- इन्द्र। छन्द- त्रिष्टुप्।]

४५८३. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥१ ॥

इन्द्रदेव समस्त स्थावर और जंगम जगत् के एकमात्र सर्वप्रथम राजा (शासक) हैं। हविप्रदाता को अनेक प्रकार का वैभव प्रदान करने वाले, वे हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमें धन प्रदान करें ॥१ ॥

[६ - जगद्बीजपुरुष सूक्त]

[ऋषि- नारायण। देवता- पुरुष। छन्द- अनुष्टुप्।]

यह सूक्त भी यजुर्वेद अध्याय ३१ की तरह १६ मन्त्रों वाला पुरुष सूक्त कहा गया है। १५ मन्त्र कुछ यथावत् तथा कुछ में थोड़ा पाठभेद है। १६ वाँ मन्त्र पूर्णतया भिन्न है। इनमें विराट् पुरुष से ही सृष्टि के उद्भव का भाव व्यक्त हुआ है -

४५८४. सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥१ ॥

जो सहस्रों भुजाओं वाले, सहस्रों नेत्रों वाले और सहस्रों चरण वाले विराट् पुरुष हैं, वे सम्पूर्ण भूमि को आवृत करके भी दस अंगुल शेष रहते हैं ॥१ ॥

४५८५.त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः । तथा व्य क्रामद् विष्वङशनानशने अनु

चार भागों वाले विराट् पुरुष के एक भाग में यह सारा संसार (जड़ और चेतन) विविध रूपों में समाहित है । इसके तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में समाए हुए हैं ॥२ ॥

४५८६. तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३ ॥

विराट् पुरुष की महिमा अति विस्तृत है । इस श्रेष्ठ पुरुष के एक चरण में सभी प्राणी समाए हैं । तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में स्थित हैं ॥३ ॥

४५८७.पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥४ ।

जो सृष्टि बन चुकी, जो बनने वाली है, यह सब विराट् पुरुष ही है । इस अमर जीव- जगत् के भी वही स्वामी हैं । जो अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त करते हैं, उनके भी वही स्वामी हैं ॥४ ॥

४५८८. यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥५ ॥

संकल्प द्वारा प्रकट हुए जिस विराट् पुरुष का ज्ञानीजन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं । वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करते हैं ?उसका मुख क्या है ? भुजाएँ , जंघाएँ और पाँव कौन से हैं ?शरीर संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना ? ॥५ ॥

४५८९. ब्राह्मणो ऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यो ऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥६ ॥

विराट् पुरुष के मुख (से) ज्ञानीजन ब्राह्मण (उत्पन्न) हुए । क्षत्रिय उसके बाहुओं से (समुद्भूत) हुए । वैश्य उसके मध्य भाग एवं सेवाधर्मी शूद्र उसके पैर (से प्रकट) हुए ॥६ ॥

४५९०.चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ।

विराट् पुरुष परमात्मा के मन से चन्द्रमा, नेत्रों से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि तथा प्राण से वायु का प्रकटीकरण हुआ ॥७ ॥

४५९१. नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥८ ॥

विराट् पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्युलोक, पाँवों से भूमि तथा कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं । इसी प्रकार (उसके द्वारा अनेकानेक) लोकों को कल्पित किया (रचा) गया ॥८ ॥

४५९२. विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥९ ॥

उस विराट् पुरुष से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ । उसी विराट् से समष्टि जीव उत्पन्न हुए । वही देहधारी रूप में सबसे श्रेष्ठ हुआ, जिसने सबसे पहले पृथ्वी को, तत्पश्चात् शरीरधारियों को उत्पन्न किया ॥९ ॥

४५९३. यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१० ॥

जब देवों ने विराट् पुरुष को हवि मानकर यज्ञ का शुभारम्भ किया, तब घृत वसन्त ऋतु, ईंधन (समिधा) ग्रीष्म ऋतु एवं हवि शरद् ऋतु हुई ॥१० ॥

४५९४. तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः । तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ।

देवताओं एवं प्राण तथा इन्द्रियों को वश में करने वाले साधकों ने सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाले विराट् पुरुष का पवित्र जल से अभिषेक किया । उसी परम पुरुष से यज्ञ का प्रादुर्भाव हुआ ॥११ ॥

४५९५. तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥१२ ॥

उसी विराट् यज्ञ पुरुष से दोनों तरफ दाँतवाले घोड़े और उसी विराट् पुरुष से गौएँ, भेड़-बकरी आदि पशु उत्पन्न हुए ॥१२ ॥

४५९६. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥१३ ॥

उस विराट् यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद एवं सामवेद का प्रकटीकरण हुआ । उसी से यजुर्वेद एवं अथर्ववेद का प्रादुर्भाव हुआ ॥१३ ॥

४५९७. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।

पशूँस्तांश्चक्रे वायव्या नारण्या ग्राम्याश्च ये ॥१४ ॥

उस सर्वश्रेष्ठ विराट् प्रकृति यज्ञ से दधियुक्त घृत प्राप्त हुआ । उसी से वायु में रहने वाले (उड़ने वाले), वनों और ग्रामों में रहने वाले पशु उत्पन्न हुए ॥१४ ॥

४५९८. सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।

देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५ ॥

देवों ने जिस (सृष्टि विस्तारक) यज्ञ का विस्तार किया, उसकी सात परिधियाँ हुईं तथा त्रिसप्त (तीन प्रकार की सात-सात) समिधाएँ प्रयुक्त की गईं । उस यज्ञ में विराट् पुरुष को ही पशु (हव्य) के रूप में बाँधा (नियुक्त या अनुबन्धित किया) गया ॥१५ ॥

[तीनों लोकों में सात-सात विभाग हैं, शरीर में सप्त धातु हैं, ऊर्ध्व भाग (द्युलोक) , मध्य भाग (अन्तरिक्ष) तथा अधोभाग (भूलोक) में संचरित है । इन सभी को समिधा की तरह प्रयुक्त करने पर ब्रह्माग्नि-ब्रह्मविद्या विकसित होती है । ब्रह्मविद्या से उत्पन्न पदार्थों में ब्राह्मीचेतना की आहुतियों से ही सृष्टि में जीवन का संचार हुआ है । इस प्रकार समिधाओं को प्रज्वलित करने वाला तथा आहुति रूप में होमा जाने वाला वह विराट् पुरुष ही है ।]

४५९९. मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः । राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि

यज्ञ पुरुष से निष्पन्न हुए राजा सोम के मस्तक से सात रंग वाली सत्तर बार (चार सौ नब्बे) महान् दीप्ति युक्त किरणें प्रकट हुईं ॥१६ ॥

[विराट् पुरुष के संकल्प से सृष्टि के मूल पोषक- प्रवाह को सोम कहा गया है । ऋषि के अनुसार इसमें ७ X ७० = ४९० किरणें या विभिन्न प्रवाह समाहित हैं । यह वैज्ञानिक स्तर पर शोध का विषय है ।]

[७-नक्षत्र सूक्त]

[ऋषि- गार्ग्य । देवता- नक्षत्रादि । छन्द- त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त में अभिजित् सहित सभी नक्षत्रों का वर्णन है। ज्योतिर्गणित में सवा दो नक्षत्रों की एक राशि मानी जाती है, इस प्रकार १२ x २.२५ = २७ नक्षत्रों का ही प्रयोग होता है; किन्तु अभिजित् भी २८ वाँ मान्य नक्षत्र है। राशि गणना 'मेष' से तदनुसार नक्षत्र गणना 'अश्विनी' से की जाती है। इस सूक्त में कृत्तिका नक्षत्र से वर्णन प्रारम्भ करके चक्र पूरा किया गया है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ओरायन' (सन् १८९३ ई०) की भूमिका में इसी 'कृत्तिका' नक्षत्र की प्रमुखता के आधार पर 'वेदों का काल निर्धारण' सुनिश्चित किया है। उनका मानना है कि जिन दिनों कृत्तिका नक्षत्र की प्रमुखता थी, कृत्तिका नक्षत्र से नक्षत्र चक्र प्रारम्भ होता था; उसी नक्षत्र को आधार मानकर दूसरे नक्षत्रों की गतिविधि तथा दिन-रात की गणना होती थी, वही ब्राह्मण काल था, संहिताकाल इससे भी पूर्व था, उसे 'मृगशिराकाल' कहते थे; क्योंकि उस समय 'मृगशिरा' नक्षत्र की प्रमुखता थी। उनके मतानुसार इस समय से भी पूर्व, जिसे अदितिकाल (६०००-४००० ई०पू०) कहते हैं, मन्त्रों का प्रादुर्भाव हो चुका था-

४६००. चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥१ ॥

हम अनिष्ट निवारक श्रेष्ठ बुद्धि की कामना करते हुए, द्युलोक में विचित्र वर्णों से एक साथ चमकते हुए, नष्ट न होने वाले, तीव्र वेग से सतत गतिशील नक्षत्रों एवं स्वर्गलोक की अपनी वाणी से स्तुति करते हैं ॥१ ॥

४६०१. सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र हमारे लिए सुखपूर्वक आवाहन करने योग्य हों । मृगशिरा नक्षत्र कल्याणप्रद हो ।आर्द्रा शान्तिकारक हो । पुनर्वसु श्रेष्ठ वक्तृत्व कला (वाक्शक्ति) देने वाला एवं उत्तम फलदायी हो । आश्लेषा प्रकाश देने वाला तथा मघा नक्षत्र हमारे लिए प्रगतिशील मार्ग प्रशस्त करने वाला हो ॥२ ॥

४६०२. पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥३ ॥

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र पुण्यदायी, हस्त और चित्रा नक्षत्र कल्याणकारी, स्वाति नक्षत्र सुखदायी, राधा-विशाखा नक्षत्र आवाहन योग्य तथा अनुराधा, ज्येष्ठा एवं मूल नक्षत्र मंगलप्रद हों ॥३ ॥

४६०३. अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥४ ॥

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हमारे लिए अन्नप्रद और उत्तराषाढ़ा बलदायक अन्नरस प्रदान करे । अभिजित् हमारे लिए पुण्यदायी, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्र हमारे लिए उत्तम रीति से पालन करने वाले हों ॥४ ॥

४६०४. आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥५ ॥

शतभिषक् नक्षत्र महान् वैभव प्रदाता तथा दोनों श्रेष्ठपदा नक्षत्र हमें श्रेष्ठ सुख प्रदान करने वाले हों । रेवती और अश्वयुग (अश्विनी) नक्षत्र ऐश्वर्यदाता तथा भरणी नक्षत्र भी हमें वैभव प्रदान करने वाले हों ॥५ ॥

[८- नक्षत्र सूक्त]

[ऋषि- गार्ग्य । देवता- १-५, ७ नक्षत्र- समूह, ६ ब्रह्मणस्पति । छन्द- अनुष्टुप्, १ विराट् जगती, २ महाबृहती त्रिष्टुप्, ३ विराट्स्थाना त्रिष्टुप्, ७ द्विपदा निचृत् त्रिष्टुप् ।]

४६०५. यानि नक्षत्राणि दिव्य१न्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥१ ॥

जो नक्षत्र द्युलोक में, अन्तरिक्ष लोक में, जल में, पृथ्वी में, पर्वतश्रेणियों तथा दिशाओं में दिखाई देते हैं । चन्द्रमा जिनको प्रदीप्त करते हुए प्रादुर्भूत होते हैं, वे सभी नक्षत्र हमें सुख प्रदान करने वाले हों ॥१ ॥

४६०६. अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥२ ॥

कृत्तिकादि कल्याणप्रद जो २८ नक्षत्र हैं, वे हमें अभीष्ट प्रदान करें । नक्षत्रों का सहयोग हमारे लिए लाभप्रद हो । हम प्राप्त वस्तु के संरक्षण में समर्थ हों । हम अहोरात्र के प्रति वन्दना करते रहें, हमें योग-क्षेम प्राप्त हो ॥२ ॥

४६०७. स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्य१मर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥३ ॥

प्रातः- सायं हमारे लिए सुखप्रद हो । हम श्रेष्ठ प्रयोजन हेतु अनुकूल नक्षत्र में गमन करें, जिसमें हरिण आदि पशु-पक्षी शुभ संकेत वाले हों । हे अमर्त्य अग्ने ! आप हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर यहाँ पधारें ॥३ ॥

४६०८.अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् । सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान्त्सवितः सुव ॥४ ।

हे सवितादेव !स्पर्धा, संघर्ष, निन्दा, घृणा आदि दुर्गुणों को सारहीन खाली घड़े के समान हमसे दूर कर दें ।

४६०९. अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम् ।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥५ ॥

पापयुक्त त्याज्य अन्न को हमसे दूर करें तथा पुण्य से प्राप्त अन्न का हम सेवन करें । हे पाप पुरुष ! तेरी निर्लज्ज नाक पर श्रेष्ठ मार्गगामी स्त्री-पुरुष अपमान सूचक शब्द कहें ॥५ ॥

४६१०. इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते । सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि

हे ब्रह्मणस्पति इन्द्रदेव ! पूर्व आदि जिन दिशाओं में आँधी-तूफान के रूप में वायुदेव चलते हैं, उन्हें आप उपयुक्त मार्ग से चलने वाला बनाकर हमारे लिए मंगलमय बनाएँ ॥६ ॥

४६११. स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥७ ॥

हमारा हर तरह से कल्याण हो, हमें निर्भयता की प्राप्ति हो । अहोरात्ररूप देव को हमारा नमस्कार है ॥७ ॥

[९ - शान्ति सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- शान्ति, मन्त्रोक्त । छन्द- अनुष्टुप्, १ विराट् उरोबृहती, ५ पञ्चपदा पथ्यापंक्ति, ९ पञ्चपदा ककुम्मती त्रिष्टुप्, १२ त्र्यवसाना सप्तपदाष्टि, १४ चतुष्पदा सङ्कृति ।]

४६१२. शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्व१न्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥१ ॥

द्युलोक, पृथ्वी, विस्तृत अन्तरिक्षलोक, समुद्री जल और ओषधियाँ ये सभी उत्पन्न होने वाले अनिष्टों का निवारण करके हमारे लिए सुख- शान्ति प्रदान करें ॥१ ॥

४६१३. शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥२ ॥

पूर्वजन्म में किये गये कर्म हमारे लिए शान्ति प्रदायक हों । हमारे द्वारा सम्पन्न किये गये और न किये गये कार्य भी शान्ति प्रदान करें । भूत और भविष्यत् दोनों हमारे लिए शान्ति प्रदायक सिद्ध हों । सभी कर्म हमें शान्ति और सुख प्रदान करें ॥२ ॥

४६१४.इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता । ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः

परमपद पर विराजमान, तेजस्वी ज्ञान से देदीप्यमान जो वाणी की देवी सरस्वती हैं, वे हमारे द्वारा दूसरों के प्रति बोले गये अपशब्दों के दोष से हमें मुक्त करें तथा हमारे लिए शान्ति प्रदान करने वाली सिद्ध हों ॥३ ॥

४६१५.इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् । येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥४

यह जो परम स्थान में विराजमान ज्ञान से देदीप्यमान इस जगत् का मूल कारण 'मन' है । यदि इसके द्वारा दुष्कर्म की उत्पत्ति हुई हो, तो यही हमारे द्वारा किये गये बुरे कर्मों के प्रभाव को शान्ति प्रदान करे ॥४ ॥

४६१६. इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥५ ॥

चेतना द्वारा संचालित मन के साथ जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे हृदय में वास करती हैं, उनसे यदि अपराध कर्म बन पड़ा हो, तो उनके द्वारा रचित उस दुष्कर्म की हमारे प्रति शान्ति हो ॥५ ॥

४६१७. शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥६ ॥

दिन के अधिष्ठाता देवता सूर्य (मित्र) , रात्रि के अभिमानी देव वरुण, पालनकर्त्ता विष्णुदेव, प्रजा के पालक प्रजापति, परम वैभवयुक्त इन्द्रदेव, बृहस्पति तथा अर्यमादेव, ये सभी देवता हमें शान्ति प्रदान करने वाले हों ॥६ ॥

४६१८. शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाञ्छमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥७ ॥

मित्र, वरुण, अन्धकारनाशक विवस्वान् , सभी प्राणियों के संहारकर्त्ता अन्तकदेव, हमें सुख प्रदान करने वाले सिद्ध हों । पृथ्वी और अन्तरिक्षलोक में होने वाले उत्पात और द्युलोक में विचरणशील मंगल आदि ग्रह हमारे दोष का निवारण करके हमारे लिए शान्तिप्रद सिद्ध हों ॥७ ॥

४६१९. शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् ।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥८ ॥

कम्पायमान पृथ्वी हमारे लिए शान्तिदायक हो । उल्कापात भी शान्तिप्रद हो । लोहित दूध देने वाली गौएँ भी हमारे लिए सुखदायी हों तथा कटी हुई पृथ्वी भी हमारे लिए कल्याणमयी हो ॥८ ॥

[भूकम्प-उल्कापात जैसी भयजनक क्रियाओं को ऋषि प्रकृति के सहज प्रवाह के अंग के रूप में देखते हैं । उन्हें रोकने की प्रार्थना नहीं करते, बल्कि वे परिवर्तन, कल्याणकारी प्रभाव उत्पन्न करने वाले हों, ऐसी भावना करते हैं ।]

४६२०. नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः ।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥९ ॥

उल्काओं से फेंका गया नक्षत्र हमें शान्ति प्रदान करने वाला हो । अभिचार क्रियाएँ तथा कृत्या प्रयोग भी हमारे लिए शान्तिप्रद हों । भूमि में खोदकर किये गए प्रयोग भी हमारे लिए घातक न हों । उल्काएँ शान्त हों । देश में होने वाले सभी प्रकार के विघ्न भी शान्त हो जाएँ ॥९ ॥

४६२१.शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा । शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः

चन्द्र मण्डल के मंगल आदि ग्रह, राहु से ग्रस्त आदित्य ग्रह, मारक धूमकेतु के अनिष्ट और रुद्र के तीखे सन्तापक उत्पात ये सभी शान्त हों ॥१० ॥

४६२२.शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः । शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः

एकादश रुद्रगण, आठ वसुगण, बारह आदित्य, सभीप्रकार की अग्नियाँ , इन्द्रादि देव शक्तियाँ, सप्तर्षि और बृहस्पतिदेव ये सभी शान्ति प्रदान करते हुए हमारे लिए कल्याणकारी सिद्ध हों ॥११ ॥

४६२३. ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥१२ ॥

परब्रह्म, धाता, प्रजापति, ब्रह्मा, सभी वेद, सात लोक, सात ऋषि और सभी अग्नियाँ - इन सबके द्वारा हमारे कल्याण का मार्ग प्रशस्त हुआ है । इन्द्र, ब्रह्मा, विश्वेदेवा और समस्त देव हमारे श्रेय के मार्ग को प्रशस्त करें ॥१२ ॥

४६२४. यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥१३ ॥

अतीन्द्रिय द्रष्टा सप्तर्षिगण शान्तिप्रद जितनी भी विद्याओं के ज्ञाता हैं, वे सभी युक्तियाँ हमारे लिए कल्याणकारी हों । हमें सभी ओर से सुख-शान्ति एवं निर्भयता की प्राप्ति हो ॥१३ । ।

४६२५. पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः ।
ताभिः शान्तिभिः सर्वशान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह
पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥१४ ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, जल, ओषधियाँ, वनस्पतियाँ और समस्त देव हमारे लिए शान्तिप्रद हों । शान्ति से बढ़कर असीम शान्ति को हम प्राप्त करें । इन सभी प्रकार की शान्ति- प्रक्रियाओं द्वारा हम घोर कर्म, क्रूर-कर्मफल और पापपूर्ण फल को दूर हटाते हैं, वे शान्त होकर कल्याणप्रद हों । वे सभी हमारे लिए मंगलप्रद हों ॥

[१० - शान्ति सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६२६. शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१ ॥

हवि ग्रहण करके इन्द्र और अग्निदेव तथा इन्द्र और वरुणदेव हम सभी का कल्याण करें । इन्द्र और पूषादेव मंगलकारी अन्न और ऐश्वर्य प्रदान करें । इन्द्र और सोमदेव सुसन्तति प्राप्ति के लिए तथा रोगों के शमन और भय दूर करने के लिए, हमारे लिए मंगलमय हों ॥१ ॥

४६२७. शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२ ॥

भग देवता हमें शान्ति प्रदान करें । यह शान्ति मनुष्यों द्वारा प्रशंसित हो । बुद्धि एवं धन हमें शान्ति प्रदान करें । श्रेष्ठ एवं शिष्ट बोले गये वचन हमें शान्ति देने वाले हों । अर्यमादेव हमें शान्ति देने वाले हों ॥२ ॥

४६२८. शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३ ॥

धाता (आधार प्रदान करने वाले), धर्ता (धारण करने वाले), द्यावा-पृथिवी, पृथ्वी का अन्न, पर्वत तथा देवताओं की उपासना- ये सभी हम सबके लिए शान्तिदायक-कल्याणप्रद हों ॥३ ॥

४६२९. शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४ ॥

तेजस्वी अग्निदेव, मित्रावरुणदेव, सूर्यदेव, चन्द्रदेव, दोनों अश्विनीकुमार , सत्कर्मा एवं गमनशील वायुदेव हमें शान्ति प्रदान करें ॥४ ॥

४६३०. शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५ ॥

द्यावा - पृथिवी हमें प्रथम बार प्रार्थना में शान्ति प्रदान करें । श्रेष्ठ दर्शन के निमित्त अन्तरिक्ष हमें शान्ति प्रदान करे । वनस्पति एवं ओषधियाँ हमें शान्ति प्रदान करें । विजयशील लोकपाल भी हमें शान्ति प्रदान करें ॥५ ॥

४६३१. शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६ ॥

इन्द्र देवता वसुगणों सहित हमें शान्ति प्रदान करें । आदित्यों सहित वरुणदेव, रुद्रगणों सहित जलदेव हमें शान्ति प्रदान करें । त्वष्टादेव, देवपत्नियों सहित हमें शान्ति दें । (सभी देवगण) हमारी विनय सुनें ॥६ ॥

४६३२. शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्व१ः शम्वस्तु वेदिः ॥७ ॥

सोम एवं ग्रावा (सोम कूटने वाला पत्थर) हमें शान्ति दें । ब्रह्मा एवं यज्ञदेव हमें शान्ति प्रदान करें । यूपों का प्रमाण, ओषधियाँ, वेदिका आदि सभी हमें शान्ति प्रदान करें ॥७ ॥

४६३३. शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८ ॥

विशाल तेजधारी सूर्यदेव हमें शान्ति प्रदान करने के लिए उदित हों । चारों दिशाएँ हमें शान्ति दें, स्थिर पर्वत, जल एवं समुद्र हमें शान्ति प्रदान करें ॥८ ॥

४६३४. शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।

शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९ ॥

अदिति अपने व्रतों द्वारा हमें शान्ति प्रदान करें । उत्तम तेजस्वी मरुद्गण हमें शान्ति प्रदान करें । विष्णुदेव, पूषादेव, अन्तरिक्ष एवं वायुदेव हमें शान्ति प्रदान करें ॥९ ॥

४६३५. शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।

शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥१० ॥

त्राण प्रदाता सवितादेव हमें शान्ति प्रदान करें । तेजस्वी उषाएँ हमें शान्ति प्रदान करें । पर्जन्य एवं क्षेत्रों के कल्याणकारी अधिपति हमारी प्रजा के लिए शान्ति प्रदायक-मंगलकारी हों ॥१० ॥

[११ - शान्ति सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६३६. शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।

शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१ ॥

सत्य के अधिपति, अश्व एवं गौएँ हमें सुख - शान्ति प्रदान करें । श्रेष्ठ कर्म करने वाले एवं श्रेष्ठ भुजाओं वाले ऋभुगण हमें शान्ति प्रदान करें । हमारे पितरगण हमारी प्रार्थना सुनकर हमें शान्ति प्रदान करें ॥१ ॥

४६३७. शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।

शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥२ ॥

विश्वदेव (समस्त देवगण) हमें शान्ति प्रदान करें । सद्बुद्धि देने वाली देवी सरस्वती हमें शान्ति प्रदान करें । यज्ञकर्त्ता, दानदाता, द्युलोक , पृथ्वी और जल के देवगण हमें शान्ति प्रदान करें ॥२ ॥

४६३८. शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्य१: शं समुद्रः ।

शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥३ ॥

एक पाद अजदेव हमारा कल्याण करें । अहिर्बुध्न्य और समुद्रदेव हमें शान्ति प्रदान करें । अपांनपात् देव शान्ति दें । देवताओं से संरक्षित गौ (किरणें या प्रकृति) हमें शान्ति प्रदान करें ॥३ ॥

४६३९. आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।

शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥४ ॥

नवरचित स्तोत्रों को आदित्यगण, वसुगण एवं रुद्रगण ग्रहण करें । द्युलोक, पृथ्वी एवं स्वर्ग में उत्पन्न देवगण और भी जो यजनीय देव आदि हैं, वे सब हमारी स्तुति स्वीकार करें ॥४ ॥

४६४०. ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।

ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ॥

यजनीय देवताओं के लिए भी जो पूज्य हैं एवं मनुष्य के लिए भी जो पूज्य हैं, ऐसे अमर, ऋतज्ञदेव आज प्रसन्न होकर हमें यशस्वी पुत्र दें तथा हमारा पालन एवं कल्याण करें ॥५ ॥

४६४१. तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम्।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥६ ॥

हे मित्रावरुण और अग्निदेवो ! हमारे लिए सब कुछ शान्तिप्रद हो । आप हमारे दुःखों को दूर कर सुख का मार्ग प्रशस्त करें । हमें सांसारिक वैभव और प्रतिष्ठा प्राप्त हो । हम, सबके आश्रयभूत द्युलोक को नमन करते हैं ।

[१२ - सुवीर सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६४२. उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१ ॥

रात्रि के अन्धकार को दूर कर भली प्रकार उत्पन्न होने वाली उषा सबको प्रगति का मार्ग दिखाती है । इससे हम देवत्व के विकास के लिए आवश्यक शक्ति प्राप्त करें । हम बलवान् सन्तानों से युक्त होकर सौ वर्ष (पूर्ण आयु) तक जीवित रहें ॥१ ॥

[१३ - एकवीर सूक्त]

[ऋषि- अप्रतिरथ । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप्, ३-६, ११ भुरिक् त्रिष्टुप् ।]

४६४३. इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत् ॥१ ॥

इन्द्र के दृढ़, अभीष्ट (शक्ति या सुखों के) वर्षक, अद्भुत, बलशाली, (संकटों से) पार ले जाने वाले बाहुओं को हम अभिषिक्त करते हैं, समय आने पर जिनसे असुरों का स्वत्व जीता जाता है ॥१ ॥

४६४४. आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥२ ॥

स्फूर्तिवान्, विकराल, वृषभ की तरह शत्रु को भयभीत करने वाले, दुष्टनाशक, शत्रुओं को रुलाने वाले, द्वेष करने वालों को क्षुब्ध करने वाले, आलस्यहीन वीर इन्द्रदेव सैकड़ों शत्रुओं को पराजित करके विजयी होते हैं ॥२ ॥

४६४५. संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥३ ॥

हे योद्धाओ ! शत्रुओं को रुलाने वाले, आलस्यरहित, विजयी, निपुण, अविचल तथा बाणधारी इन्द्रदेव की सहायता से युद्ध जीतकर शत्रुओं को भगाओ ॥३ ॥

४६४६. स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥४ ॥

वे इन्द्रदेव बाण और तलवारधारी योद्धाओं के सहयोग से शत्रुओं को वश में करते हैं । वे युद्ध में अतिकुशल, विजेता, सोम पीने वाले, बाहु-बल सम्पन्न, धनुर्धारी तथा शत्रु - संहारक हैं ॥४ ॥

४६४७. बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सबके बलों के ज्ञाता, उत्तम वीर, शत्रु के आक्रमण को सहने वाले, बलवान्, शत्रु-विजेता, उग्र, महावीर, शक्तिशाली होकर भी जन्म लेने वाले, गौ-पालक तथा विजय रथ पर प्रतिष्ठित हों ॥५ ॥

४६४८. इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥६ ॥

हे समान कर्म और बुद्धिशाली वीरो ! आप इन उग्रवीर इन्द्र को प्रसन्न करके उनका अनुगमन करें । वे शत्रुओं के गाँवों, गौओं और युद्ध में भूमि के विजेता हैं । वे वज्रबाहु और वेगपूर्वक शत्रुओं का मर्दन करने वाले हैं ॥६ ॥

४६४९. अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्यो३स्माकं सेना अवतु प्रयुत्सु ॥७ ॥

बल से शत्रु के किलों को भेदने वाले पराक्रमी, शत्रुओं पर दया न करने वाले वीर, अविचल, शत्रु-विजेता, अद्वितीय योद्धा इन्द्रदेव हमारी सेना को संरक्षण प्रदान करें ॥७ ॥

४६५०. बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जञ्छत्रून् प्रमृणन्नमित्रानस्माकमेध्यविता तनूनाम् ॥८ ॥

हे सर्वपालक इन्द्रदेव ! राक्षसों को मारते हुए, शत्रुओं को त्रास देकर उन्हें कुचलते हुए और अमित्रों का ध्वंस करते हुए यहाँ आएँ । हमारे शरीरों की रक्षा करते हुए आप आगे बढ़ें ॥८ ॥

४६५१. इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये ॥९ ॥

हमारी सेनाओं के नेतृत्वकर्ता इन्द्रदेव हों ! बृहस्पतिदेव सबसे आगे- आगे चलें । दक्षिणा यज्ञ संचालक सोम भी आगे चले । शत्रु- नाशक मरुद्‌गण विजयी देवों की सेना के बीच में रहें ॥९ ॥

४६५२. इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥१० ॥

बलशाली इन्द्रदेव, राजा वरुण, आदित्यों और मरुतों का तीक्ष्ण बल हमारा सहायक हो । शत्रु- नगरों के विध्वंसक, विशालमना और विजयी देवों का जयघोष गुञ्जायमान हो ॥१० ॥

४६५३. अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता हवेषु ॥११ ॥

(युद्ध में) ध्वज एकत्रित होने पर इन्द्रदेव हमें सुरक्षा प्रदान करें । हमारे बाण शत्रुओं पर विजय पाने वाले हों । हमारे वीर विजयी हों । हे देवो ! आप युद्ध में हमें सुरक्षा प्रदान करें ॥११ ॥

[१४ - अभय सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- द्यावापृथिवी । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६५४. इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥१ ॥

श्रेय के लक्ष्य तक हम पहुँच चुके हैं। द्युलोक और पृथ्वी हमारे लिए कल्याणकारी हों। समस्त दिशाएँ हमारे लिए शत्रुओं के उपद्रवों से रहित हों। हे शत्रुओ ! हम तुम्हारे प्रति द्वेष नहीं रखते, अत: हमें निर्भय करो॥

[१५ - अभय सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा। देवता- १-४ इन्द्र, ५-६ मन्त्रोक्त। **छन्द-** १ पथ्याबृहती, २, ५ चतुष्पदा जगती, ३ विराट् पथ्यापंक्ति, ४, ६ त्रिष्टुप् ।]

४६५५. यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।

मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम भयभीत हैं, हमें भयरहित करें। हे धनवान् देव ! आप सर्वसामर्थ्यवान् हैं, अत: द्वेष वृत्तिवालों को जीतकर हमारा संरक्षण करें ॥१ ॥

४६५६. इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा।

मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥२ ॥

आराधना योग्य इन्द्रदेव को हम आवाहित करते हैं। हम द्विपाद मनुष्यों और चतुष्पाद (पशुओं) से भली प्रकार से समृद्ध हों। हे इन्द्रदेव ! अनुदार शत्रुसेना हमारे समीप न आ सके, विद्रोही शत्रुओं को सब प्रकार से विनष्ट करें ॥२ ॥

४६५७. इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः।

स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु ॥३ ॥

वृत्रासुर के नाशक इन्द्रदेव हमारे संरक्षक हों। वरण करने योग्य इन्द्रदेव शत्रुओं के प्रभाव से हमें बचाएँ। वे इन्द्रदेव अन्त, मध्य, आगे और पीछे सभी ओर से हमें पूर्ण संरक्षण प्रदान करने वाले हों ॥३ ॥

४६५८. उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्व१र्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।

उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ज्ञानवान् हैं, सर्वज्ञ हैं, अत: आप हमें इस बड़े क्षेत्र की बाधाओं से निकालकर सरलतापूर्वक लक्ष्य तक पहुँचाएँ और निर्भय करें। युद्ध में दृढ़ रहने वाली आपकी दोनों भुजाएँ बहुत उग्र हैं। हम आपके विशाल आश्रय (संरक्षण) में रहें ॥४ ॥

४६५९. अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।

अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥५ ॥

अन्तरिक्ष लोक, द्युलोक और पृथ्वी ये सभी हमें निर्भयता प्रदान करें। उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम ये चारों दिशाएँ भी हमारे लिए निर्भयतायुक्त हों ॥५ ॥

४६६०. अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।

अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥६ ॥

मित्रों, शत्रुओं तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनिष्टों से हमें किसी प्रकार का भय न हो। हमें दिन और रात्रि से निर्भयता की प्राप्ति हो। हम अभय के आकांक्षियों के लिए सभी दिशाएँ मित्रवत् कल्याणकारी हों ॥६ ॥

[१६ - अभय सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- अनुष्टुप्, २ त्र्यवसाना सप्तपदा बृहतीगर्भा अतिशक्वरी ।]

४६६१. असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम्।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥१ ॥

हमारे आगे (पूर्व दिशा में) शत्रु न रहें तथा पीछे (पश्चिम) से हम निर्भय रहें । दक्षिण की तरफ से सवितादेव और उत्तर की तरफ से इन्द्रदेव हमारा संरक्षण करें ॥१ ॥

४६६२.दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः । इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विना-
वभितः शर्म यच्छताम् । तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ।

आदित्यदेव द्युलोक से हमारा संरक्षण करें । अग्नियाँ पृथ्वीलोक के अनिष्टों का निवारण करें । इन्द्राग्नि पूर्व दिशा में हमारे संरक्षक हों । अश्विनीकुमार चारों ओर से हमें सुख प्रदान करें । सब भूतों (पदार्थों) के निर्माता जातवेदा अग्निदेव चारों ओर से हमारे निमित्त अभेद्य कवच रूप हों ॥२ ॥

[१७ - सुरक्षा सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- १ उपजगती, २-४ , ८ जगती, ६ भुरिक् जगती, ५,७,१० अतिजगती, ९ पञ्चपदा विराट् अतिशक्वरी ।]

४६६३. अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१ ॥

अग्निदेव वसुगण के साथ पूर्व दिशा से हमें संरक्षण प्रदान करें । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय ग्रहण करते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आप को समर्पित करते हैं ॥१ ॥

४६६४. वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥२ ॥

वायुदेव अन्तरिक्ष के साथ इस पूर्व दिशा में हमारा संरक्षण करें । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आप को समर्पित करते हैं ॥२ ॥

४६६५. सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥३ ॥

सोमदेव रुद्रगण के साथ दक्षिण दिशा में हमारा संरक्षण करें । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आप को समर्पित करते हैं ॥३ ॥

४६६६. वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥४ ॥

वरुणदेव आदित्यों के साथ दक्षिण दिशा में हमारे संरक्षणकर्त्ता हों । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आप को समर्पित करते हैं ॥४ ॥

४६६७. सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये
तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा । ॥५ ॥

सर्वप्रेरक सूर्यदेव द्यावा- पृथिवी सहित पश्चिम दिशा में हमारे संरक्षक हों । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आपको समर्पित करते हैं ॥५ ॥

४६६८. आपो मौषधीमतीरेतस्या दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि ।
ता मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥६ ॥

ओषधियुक्त जल इस दिशा से हमारा संरक्षण करे । हम उसका अनुगमन और आश्रय लेते हैं । हम उस नगर में प्रवेश करते हैं । वह हमारी रक्षा और पालन करे, उसके निमित्त हम अपने आपको समर्पित करते हैं ॥६ ॥

४६६९. विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं
प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥७ ॥

विश्व के स्रष्टा परमात्मा सप्तर्षियों के सहयोग से हमें उत्तर दिशा में संरक्षण प्रदान करें । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं, वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें । उनके निमित्त हम अपने आप को समर्पित करते हैं ॥७ ॥

४६७०. इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥८ ॥

इन्द्रदेव मरुद्‌गण के सहयोग से इस दिशा में हमारे संरक्षक हों । हम उनका अनुगमन करते हैं । हम उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आपको समर्पित करते हैं ॥८ ॥

४६७१. प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये
तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥९ ॥

सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति के कारणभूत, प्रजनन क्षमता से युक्त प्रजापतिदेव ध्रुव दिशा में हमारे संरक्षक हों । हम उनका अनुगमन करते हैं और उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आप को समर्पित करते हैं ॥९ ॥

४६७२. बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१० ॥

देवशक्तियों के हितैषी बृहस्पतिदेव सम्पूर्ण देवों सहित ऊर्ध्व दिशा में हमारे संरक्षक रूप हों । हम उनका अनुगमन करते हैं और उनका आश्रय लेते हैं । हम उस नगर (या घर) में प्रवेश करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें, उनके निमित्त हम अपने आपको समर्पित करते हैं ॥१० ॥

[१८ - सुरक्षा सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- १, ८ साम्नी त्रिष्टुप् , २-४, ६ आर्ची अनुष्टुप् , ५ सम्राट् (स्वराट्) आर्ची अनुष्टुप् , ७, ९, १० प्राजापत्या त्रिष्टुप् ।]

४६७३. अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्राच्या दिशो ऽभिदासात् ॥१ ॥

जो पापी पूर्व दिशा से हमें पराधीन बनाने के आकांक्षी हैं, वे शत्रु वसुओं के साथ अग्नि में भस्म हो जाएँ ॥१ ॥

४६७४. वायुं तेऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशो ऽभिदासात् ॥२ ॥

जो पापी शत्रु इस दिशा से हमें पराधीन बनाना चाहते हैं, वे अन्तरिक्षीय वायु को प्राप्त (नष्ट)हो जाएँ ॥२ ॥

४६७५. सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो दक्षिणाया दिशो ऽभिदासात् ॥३ ॥

जो दुष्ट लोग दक्षिण दिशा से हमें हिंसित करना चाहते हैं, वे रुद्रदेवों के साथ सोम को प्राप्त (विनष्ट) हों ॥३ ॥

४६७६. वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशो ऽभिदासात् ॥४ ॥

जो दुष्ट शत्रु हमें इस दिशा में मारने के इच्छुक हैं, वे अदितिपुत्रों के साथ वरुणदेव के पाश में पड़ें ॥४ ॥

४६७७.सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव प्रतीच्या दिशो ऽभिदासात् ॥५ ॥

जो पाप रूप शत्रु पश्चिम दिशा से आकर हमारा वध करना चाहते हैं, वे द्यावा - पृथिवी को अपने प्रकाश से विस्तृत करने वाले सूर्य को प्राप्त (विनष्ट) हों ॥५ ॥

४६७८. अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशो ऽभिदासात् ॥६ ॥

जो शत्रु इस दिशा से आकर हमारा संहार करना चाहते हैं, वे ओषधियुक्त जल के वश में (विनष्ट) हों ॥६ ॥

४६७९. विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव उदीच्या दिशो ऽभिदासात् ॥

जो शत्रु उत्तर दिशा से आकर हमारा वध करना चाहते हैं, वे सप्तर्षियों से युक्त विश्वकर्मा को प्राप्त हों ॥७ ॥

४६८०. इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशो ऽभिदासात् ॥८ ॥

जो शत्रु इस दिशा से आकर हमारे संहारेच्छुक हों, वे शत्रु मरुत्वान् इन्द्रदेव को प्राप्त (विनष्ट) हो जाएँ ॥८ ॥

४६८१. प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो ध्रुवाया दिशो ऽभिदासात् ॥९ ॥

जो पापी ध्रुव दिशा से हमारे वधाकांक्षी हैं, वे प्रजनन क्षमता से युक्त प्रजापति के वशीभूत (विनष्ट) हों ॥९ ॥

४६८२. बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु । ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशो ऽभिदासात् ॥१०

जो पापी ऊर्ध्व दिशा से आकर हमारे संहार के इच्छुक हैं, वे शत्रु समस्त देवताओं से युक्त बृहस्पतिदेव के वशीभूत (विनष्ट) हो जाएँ ॥१० ॥

[१९ - शर्म सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- चन्द्रमा , (मित्र) और मन्त्रोक्त । छन्द- अनुष्टुब्गर्भा पंक्ति, १, ३, ९ भुरिक् बृहती, १० स्वराट् पंक्ति ।]

इस सूक्त के मन्त्र क्र० १ से ११ तक केवल प्रथम चरणों में भिन्नता है । मन्त्रों के शेषांश का अर्थ एक जैसा है । अतः मन्त्र क्र० २ से ११ तक भावार्थ में केवल प्रथम चरण का अर्थ लिखकर शेष भाग के लिए यथावत् (..........) चिह्न लगाकर छोड़ दिया गया है-

४६८३. मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१ ॥

मित्र (अग्निदेव) पृथ्वी से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर (नगर) में हम आपको प्रविष्ट करते हैं। आप उसमें प्रवेश करें, उसमें वास करें। यह नगरी आपको सुख तथा कवच की तरह संरक्षण दे ॥१ ॥

४६८४. वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥२ ॥

वायुदेव अपने आश्रय स्थान अन्तरिक्ष से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में_संरक्षण दे।

४६८५. सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥३ ॥

सूर्यदेव द्युलोक से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में ......संरक्षण दे ॥३ ॥

४६८६. चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥४ ॥

चन्द्रदेव नक्षत्रों में से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में_____संरक्षण दे ॥४ ॥

४६८७. सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥५ ॥

सोम ओषधियों से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में.....संरक्षण दे ॥५ ॥

४६८८. यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥६ ॥

यज्ञदेव दक्षिणाओं से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में___संरक्षण दे ॥६ ॥

४६८९. समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥७ ॥

सागर नदियों से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में____संरक्षण दे ॥७ ॥

४६९०. ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥८ ॥

ब्रह्म (परमात्म ज्ञान) ब्रह्मचारियों से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में.___संरक्षण दे ॥८ ।

४६९१. इन्द्रो वीर्ये३णोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥९ ॥

इन्द्रदेव वीर्य (शौर्य) से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में___संरक्षण दे ॥९ ॥

४६९२. देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१० ॥

[१८ - सुरक्षा सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- १, ८ साम्नी त्रिष्टुप्, २-४, ६ आर्ची अनुष्टुप्, ५ सम्राट् (स्वराट्) आर्ची अनुष्टुप्, ७, ९, १० प्राजापत्या त्रिष्टुप् ।]

४६७३. अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभिदासात् ॥१ ॥

जो पापी पूर्व दिशा से हमें पराधीन बनाने के आकांक्षी हैं, वे शत्रु वसुओं के साथ अग्नि में भस्म हो जाएँ ॥१ ॥

४६७४. वायुं तेऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥२ ॥

जो पापी शत्रु इस दिशा से हमें पराधीन बनाना चाहते हैं, वे अन्तरिक्षीय वायु को प्राप्त (नष्ट) हो जाएँ ॥२ ॥

४६७५. सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥३ ॥

जो दुष्ट लोग दक्षिण दिशा से हमें हिंसित करना चाहते हैं, वे रुद्रदेवों के साथ सोम को प्राप्त (विनष्ट) हों ॥३ ॥

४६७६. वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥४ ॥

जो दुष्ट शत्रु हमें इस दिशा में मारने के इच्छुक हैं, वे अदितिपुत्रों के साथ वरुणदेव के पाश में पड़ें ॥४ ॥

४६७७. सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ॥५ ॥

जो पाप रूप शत्रु पश्चिम दिशा से आकर हमारा वध करना चाहते हैं, वे द्यावा - पृथिवी को अपने प्रकाश से विस्तृत करने वाले सूर्य को प्राप्त (विनष्ट) हों ॥५ ॥

४६७८. अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥६ ॥

जो शत्रु इस दिशा से आकर हमारा संहार करना चाहते हैं, वे ओषधियुक्त जल के वश में (विनष्ट) हों ॥६ ॥

४६७९. विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ॥

जो शत्रु उत्तर दिशा से आकर हमारा वध करना चाहते हैं, वे सप्तर्षियों से युक्त विश्वकर्मा को प्राप्त हों ॥७ ॥

४६८०. इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥८ ॥

जो शत्रु इस दिशा से आकर हमारे संहारेच्छुक हों, वे शत्रु मरुत्वान् इन्द्रदेव को प्राप्त (विनष्ट) हो जाएँ ॥८ ॥

४६८१. प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ॥९ ॥

जो पापी ध्रुव दिशा से हमारे वधाकांक्षी हैं, वे प्रजनन क्षमता से युक्त प्रजापति के वशीभूत (विनष्ट) हों ॥९ ॥

४६८२. बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु । ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥१०

जो पापी ऊर्ध्व दिशा से आकर हमारे संहार के इच्छुक हैं, वे शत्रु समस्त देवताओं से युक्त बृहस्पतिदेव के वशीभूत (विनष्ट) हो जाएँ ॥१० ॥

[१९ - शर्म सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- चन्द्रमा, (मित्र) और मन्त्रोक्त । छन्द- अनुष्टुब्गर्भा पंक्ति, १, ३, ९ भुरिक् बृहती, १० स्वराट् पंक्ति ।]

इस सूक्त के मन्त्र क्र० १ से ११ तक केवल प्रथम चरणों में भिन्नता है । मन्त्रों के शेषांश का अर्थ एक जैसा है । अतः मन्त्र क्र० २ से ११ तक भावार्थ में केवल प्रथम चरण का अर्थ लिखकर शेष भाग के लिए यथावत् (..........) चिह्न लगाकर छोड़ दिया गया है-

४६८३. मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१ ॥

मित्र (अग्निदेव) पृथ्वी से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर (नगर) में हम आपको प्रविष्ट करते हैं। आप उसमें प्रवेश करें, उसमें वास करें। यह नगरी आपको सुख तथा कवच की तरह संरक्षण दे ॥१ ॥

४६८४. वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥२ ॥

वायुदेव अपने आश्रय स्थान अन्तरिक्ष से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में_संरक्षण दे ।

४६८५. सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥३ ॥

सूर्यदेव द्युलोक से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में ____संरक्षण दे ॥३ ॥

४६८६. चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥४ ॥

चन्द्रदेव नक्षत्रों में से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में____संरक्षण दे ॥४ ॥

४६८७. सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥५ ॥

सोम ओषधियों से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में____संरक्षण दे ॥५ ॥

४६८८. यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥६ ॥

यज्ञदेव दक्षिणाओं से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में___संरक्षण दे ॥६ ॥

४६८९. समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥७ ॥

सागर नदियों से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में____संरक्षण दे ॥७ ॥

४६९०. ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥८ ॥

ब्रह्म (परमात्म ज्ञान) ब्रह्मचारियों से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में___संरक्षण दे ॥८ ।

४६९१. इन्द्रो वीर्येऽणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥९ ॥

इन्द्रदेव वीर्य (शौर्य) से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में____संरक्षण दे ॥९ ॥

४६९२. देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१० ॥

देवगण अमृत रस से (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया, उस पुर में___संरक्षण दे ॥१० ॥

४६९३. प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥११ ॥

प्रजापतिदेव ने प्रजाजनों के साथ (जिस स्थान के लिए) ऊर्ध्वगमन किया है, उस पुर में__संरक्षण दे ॥११ ॥

[२० - सुरक्षा सूक्त]

[**ऋषि-** अथर्वा । **देवता-** (धाता), मन्त्रोक्त । **छन्द-** त्रिष्टुप्, २ जगती, ३ पुरस्तात् बृहती, ४ अनुष्टुप् ।]

४६९४. अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः ।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः ॥१ ॥

शत्रुओं द्वारा गुप्तरीति से किये गये मारण प्रयोग से इन्द्र, अग्नि, धाता, सविता, बृहस्पति, सोम, वरुण दोनों अश्विनीकुमार , यम और पूषा आदि सभी देव शक्तियाँ हमारा संरक्षण करें ॥१ ॥

४६९५. यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः ।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥२ ॥

प्रजापति ने प्रजाओं के संरक्षण हेतु जिस कवच की रचना की है, मातरिश्वा-वायु प्रजापति, दिशाएँ एवं प्रदिशाएँ जिन कवचों को धारण करती हैं, वे सुरक्षा कवच हमारे लिए प्रचुर मात्रा में (उपलब्ध) हों ॥२ ॥

४६९६. यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः । इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः

देवशक्तियों ने जिस कवच को अपनी देह पर धारण किया था और इन्द्रदेव ने भी जिसे धारण किया, वह रक्षाकवच चारों ओर से हमारा संरक्षण करने वाला हो ॥३ ॥

४६९७. वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः । वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्रापत् प्रतीचिका

द्यावा- पृथिवी हमारे लिए हो । सूर्यदेव, विश्वेदेवा तथा दिन भी हमारे लिए कवच स्वरूप हों । विरोध करने वाले शत्रु हमें न मिलें ॥४ ॥

[२१ - छन्दांसि सूक्त]

[**ऋषि-** ब्रह्मा । **देवता-** छन्दांसि । **छन्द-** एकावसाना द्विपदा साम्नी बृहती ।]

४६९८. गायत्र्युश्ष्णिगनुष्टुब् बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यै ॥१ ॥

गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती इन सभी छन्दों के लिए यह आहुति अर्पित हो ॥

[२२- ब्रह्मा सूक्त]

[**ऋषि-** अङ्गिरा । **देवता-** मन्त्रोक्त । **छन्द-** दैवी पंक्ति, १ साम्नी एकावसाना उष्णिक्, ३, १९ प्राजापत्या गायत्री, ४, ७, ११, १७ दैवी जगती, ५, १२-१३ दैवी त्रिष्टुप्, ८-१० आसुरी जगती, १८ आसुरी अनुष्टुप् (एकावसाना), २१ चतुष्पदा त्रिष्टुप् ।]

४६९९. आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥१ ॥ ४७००. षष्ठाय स्वाहा ॥२ ॥

४७०१. सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥३ ॥ **४७०२. नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥४ ॥**

४७०३. हरितेभ्यः स्वाहा ॥५ ॥ **४७०४ क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥६ ॥**

४७०५. पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ॥७ ॥ ४७०६. प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥८ ॥

४७०७. द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥९ ॥ ४७०८. तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥१० ॥

४७०९. उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥११ ॥ ४७१०. उत्तमेभ्यः स्वाहा ॥१२ ॥

४७११. उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥१३ ॥ ४७१२. ऋषिभ्यः स्वाहा ॥१४ ॥

४७१३. शिखिभ्यः स्वाहा ॥१५ ॥ ४७१४. गणेभ्यः स्वाहा ॥१६ ॥

४७१५. महागणेभ्यः स्वाहा ॥१७ ॥ ४७१६.सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ।

४७१७. पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥१९ ॥ ४७१८. ब्रह्मणे स्वाहा ॥२० ॥

आंगिरसों के प्रारम्भिक पाँच अनुवाकों से यह आहुति समर्पित है । छठे के लिए यह आहुति समर्पित है । सातवें और आठवें के लिए आहुति समर्पित है । नीलनखों के लिए आहुति समर्पित है । हरितों के लिए यह आहुति समर्पित है । क्षुद्रों के लिए आहुति समर्पित है । पर्याय वालों के लिए आहुति समर्पित है । प्रथम शंखों के लिए आहुति समर्पित है । द्वितीय शंखों के लिए श्रेष्ठ आहुति समर्पित है । तृतीय शंखों के लिए आहुति समर्पित है । उपोत्तमों के लिए आहुति समर्पित है । उत्तमों के निमित्त आहुति समर्पित है । उत्तरों (उच्चतरों) के निमित्त यह आहुति है । मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के निमित्त आहुति समर्पित है । शिखियों (शिखा वालों) के निमित्त आहुति समर्पित है । गणों अर्थात् सोद्देश्य समूह के लिए आहुति समर्पित है । महागणों के निमित्त आहुति समर्पित है । गणों (समूह) के ज्ञाता सभी अंगिराओं के निमित्त आहुति समर्पित है । पृथक्-पृथक् सहस्रों के निमित्त आहुति समर्पित है । बीस काण्डों से युक्त वेदज्ञ ब्रह्मा नामक ऋषि के निमित्त आहुति समर्पित है ॥१-२० ॥

४७१९. ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥२१ ॥

इस वेद में ब्रह्मज्ञान तथा अन्य सामर्थ्यों का उल्लेख संगृहीत है । सृष्टि के आदिकाल में सर्वप्रथम ब्रह्म तत्त्व का प्रादुर्भाव हुआ । ब्रह्म ने द्युलोक को उत्पन्न किया । तत्पश्चात् ब्रह्मा (सृष्टि उत्पादनकर्त्ता) की उत्पत्ति हुई, जिन्होंने सृष्टि की रचना की । वे सर्वाधिक सामर्थ्यवान् थे, अतः उनसे स्पर्धा करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥२१ ॥

[२३ - अथर्वाण सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- मन्त्रोक्त अथवा चन्द्रमा । छन्द- दैवी त्रिष्टुप्, १ आसुरी बृहती, ८, १०-१२, १४-१६ प्राजापत्या गायत्री, १७, १९, २१, २४-२५, २९ दैवी पंक्ति, ९, १३, १८, २२, २६, २८ दैवी जगती (एकावसाना), ३० चतुष्पदा त्रिष्टुप् ।]

४७२०. आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥१ ॥ ४७२१. पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा ॥२ ॥

४७२२. षड्चेभ्यः स्वाहा ॥३ ॥ ४७२३. सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ॥४ ॥

४७२४. अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ॥५ ॥ ४७२५. नवर्चेभ्यः स्वाहा ॥६ ॥

४७२६. दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥७ ॥ ४७२७. एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥८ ॥

४७२८. द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥९ ॥ ४७२९. त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१० ॥

४७३०. चतुर्दशर्चेभ्य स्वाहा ॥११ ॥ ४७३१. पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१२ ॥

४७३२. षोडशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१३ ॥ ४७३३. सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१४ ॥

४७३४. अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१५ ॥ ४७३५. एकोनविंशतिः स्वाहा ॥१६ ॥

४७३६. विंशतिः स्वाहा ॥१७ ॥ ४७३७. महत्काण्डाय स्वाहा ॥१८ ॥

४७३८. तृचेभ्यः स्वाहा ॥१९ ॥ ४७३९. एकर्चेभ्यः स्वाहा ॥२० ॥

४७४०. क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥२१ ॥ ४७४१. एकानृचेभ्यः स्वाहा ॥२२ ॥

४७४२. रोहितेभ्यः स्वाहा ॥२३ ॥ ४७४३. सूर्याभ्यां स्वाहा ॥२४ ॥

४७४४. व्रात्याभ्यां स्वाहा ॥२५ ॥ ४७४५. प्राजापत्याभ्यां स्वाहा ॥२६ ॥

४७४६. विषासह्यै स्वाहा ॥२७ ॥ ४७४७. मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा ॥२८ ॥

४७४८. ब्रह्मणे स्वाहा ॥२९ ॥

आथर्वणों (अथर्ववेदीय ऋषियों) की चार ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है। पाँच ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है। षड्ऋचाओं के निमित्त आहुति समर्पित है। सप्त ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है। आठ ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है। नौ ऋचाओं के निमित्त आहुति समर्पित है। दस ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है। ग्यारह ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है। बारह ऋचाओं के निमित्त आहुति समर्पित है। तेरह ऋचाओं के निमित्त आहुति समर्पित है। चौदह ऋचाओं के निमित्त आहुति समर्पित है। पन्द्रह ऋचाओं के निमित्त आहुति समर्पित है। सोलह ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है। सत्रह ऋचाओं के निमित्त यह आहुति समर्पित है। अठारह ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है। उन्नीस ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है। बीस ऋचाओं के लिए आहुति समर्पित है। बड़े काण्ड के निमित्त आहुति निवेदित है। तृचों (तीन ऋचा वालों) के लिए आहुति समर्पित है। एकर्चों (एक ऋचा वालों) के लिए आहुति समर्पित है। क्षुद्रों के लिए आहुति समर्पित है। एकानृचों (एक चरण की ऋचा, जिसे पूर्ण ऋचा नहीं कहा जा सकता) के लिए आहुति समर्पित है। रोहितों (हरों) के निमित्त आहुति समर्पित है। दो सूर्यों के निमित्त आहुति समर्पित है। व्रात्यों के लिए आहुति समर्पित है। प्राजापत्यों के लिए आहुति समर्पित है। विषासही के निमित्त आहुति समर्पित है। मांगलिकों के निमित्त आहुति समर्पित है। ब्रह्मा के लिए आहुति समर्पित है ॥१-२९ ॥

४७४९. ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥३० ॥

इस वेद (अथर्व) में ब्रह्मज्ञान तथा अन्य अनेक सामर्थ्यों का उल्लेख संगृहीत है। सृष्टि के आदि में सर्वप्रथम ब्रह्मतत्त्व का प्रादुर्भाव हुआ, उन्होंने द्युलोक को प्रकट किया। तत्पश्चात् ब्रह्मा (रचयिता) की उत्पत्ति हुई, जिन्होंने सृष्टि की रचना की। वे सबसे अधिक सामर्थ्यवान् थे, अतः उनसे स्पर्धा करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥३० ॥

[२४ - राष्ट्रसूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- मन्त्रोक्त अथवा ब्रह्मणस्पति । छन्द- अनुष्टुप्, ४-६, ८ त्रिष्टुप्, ७ त्रिपदार्षी गायत्री]

४७५०. येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन्। तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥

हे ब्रह्मणस्पते ! देवों ने जिस प्रकार सवितादेव को चारों ओर से धारण किया, उसी विधि से इस महान् शान्ति के अनुष्ठाता यजमान को राष्ट्र की सुरक्षा के लिए सन्नद्ध (तत्पर) करें ॥१ ॥

४७५१. परीममिन्द्रमायुषे महे क्षत्राय धत्तन। यथैनं जरसे नयां ज्योक् क्षत्रेऽधि जागरत्।

इन्द्रदेव इस साधक को आयुष्य और क्षात्र तेज की प्राप्ति के निमित्त प्रतिष्ठित करें। यह साधक वृद्धावस्था तक पहुँचे तथा जागरूकता के साथ क्षात्र धर्म में तत्पर रहे ॥२ ॥

४७५२. परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन। यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत्।

सोमदेव इस साधक को दीर्घ आयु, महान् ज्ञान, तेजस्विता अथवा यशस्विता के लिए परिपुष्ट करें। यह साधक वृद्धावस्था तक श्रोत्रादि इन्द्रियों की शक्ति से सम्पन्न हो ॥३ ॥

४७५३. परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥४ ॥

देवगण इस (शिशु) को वह आवरण धारण कराएँ, हमारे इस बालक को तेजस्विता सम्पन्न कराएँ, इसके जीवन में वृद्धावस्था के बाद ही मृत्यु आए, इसी परिधान को बृहस्पतिदेव ने राजा सोम को भेंट किया था ॥४ ॥

४७५४. जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥५ ॥

हे साधक ! आप वृद्धावस्था तक सकुशल रहें। इस जीवनरूपी वस्त्र को धारण किये रहें और प्रजा को विनाश से बचाए रहें। सौ वर्ष तक जीवन जीते हुए धन-सम्पदा से युक्त होकर परिपुष्ट रहें ॥५ ॥

४७५५. परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ।
शतं च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ॥६ ॥

हे साधक ! आपने इस वस्त्र को कल्याणकारी भावना से धारण किया है, इससे आप गौओं को विनाश से बचाने वाले बन चुके हैं। सौ वर्ष की पूर्ण आयु का उपभोग करें, वस्त्र से युक्त रहते हुए श्रेष्ठ धन- सम्पदा को परिवारों, स्वजनों एवं मित्रों में बाँटते रहें ॥६ ॥

४७५६. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥७ ॥

हम सभी मित्र, प्रत्येक उद्योग और प्रत्येक संग्राम में एकत्र होकर, बलशाली इन्द्रदेव को अपने संरक्षण के लिए आवाहित करते हैं ॥७ ॥

४७५७. हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व।
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ॥८ ॥

हे साधक ! आप स्वर्णिम कान्ति से युक्त रहते हुए बुढ़ापे से रहित श्रेष्ठ सन्तति से सम्पन्न, जरावस्था के बाद मृत्यु को प्राप्त करने वाले, पुत्र भृत्यादि के साथ इस घर में विश्राम करें। अग्निदेव, सोमदेव, बृहस्पतिदेव, सविता और इन्द्रदेव भी इस तथ्य का अनुमोदन करते हैं ॥८ ॥

[२५- अश्व सूक्त]

[ऋषि- गोपथ। देवता- वाजी। छन्द- अनुष्टुप्।]

४७५८. अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च। उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात्।

(हे देही !) हम आपको थकावटरहित मन से संयुक्त करते हैं। जैसे नदी का जल दोनों तटों के ऊपर चढ़कर प्रवाहित होता है। आप वैसे ही वेगवान् बनें, उठें और लक्ष्य की ओर दौड़ पड़ें ॥१ ॥

[२६ - हिरण्यधारण सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- अग्नि, हिरण्य । छन्द- त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्, ४ पथ्यापंक्ति ।]

४७५९. अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।

य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥१ ॥

अग्नि से समुत्पन्न होने वाला जो हिरण्य (स्वर्ण या तेज) है, मनुष्यों में अमृत स्थापित करता है । इस तथ्य का ज्ञाता पुरुष निश्चित रूप से उसे धारण करने योग्य है । जो मनुष्य इस स्वर्ण को धारण करते हैं, वे वृद्धावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं अर्थात् उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती ॥१ ॥

४७६०. यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे ।

तत् त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥२ ॥

जिस श्रेष्ठ वर्णयुक्त स्वर्ण या तेजस् को प्रजावान् मनुष्यों ने सृष्टि के प्रारम्भ में सूर्य से ग्रहण किया था, वह हर्षप्रद स्वर्ण आपको तेजस्विता प्रदान करे ।ऐसे स्वर्ण को धारण करने वाला मनुष्य दीर्घायुष्य को प्राप्त करता है ।

४७६१. आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च ।

यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥३ ॥

हे हिरण्यधारी पुरुष ! यह आह्लादप्रद स्वर्ण आपको दीर्घजीवन, तेजस्विता, ओजस्विता तथा शारीरिक बल से युक्त करे । आप मनुष्य समाज में उसी प्रकार देदीप्यमान हों, जिस प्रकार सोना अपने तेज से दमकता है ॥३ ॥

४७६२. यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः ।

इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत् त आयुष्यं भुवत् तत् ते वर्चस्यं भुवत् ॥४ ॥

जिस स्वर्ण के ज्ञाता राजा वरुणदेव, बृहस्पतिदेव, वृत्रासुर के संहारक इन्द्रदेव हैं । हे स्वर्णधारी पुरुष ! वरुण आदि देवों से परिचित वह स्वर्ण आपके लिए आयुष्य और तेजस्विता की वृद्धि करने वाला हो ॥४ ॥

[२७ - सुरक्षा सूक्त]

[ऋषि- भृग्वङ्गिरा । देवता- त्रिवृत् अथवा चन्द्रमा । छन्द- अनुष्टुप्, ३, ९ त्रिष्टुप्, १० विराट्स्थाना त्रिष्टुप्, ११ एकावसाना आर्ची उष्णिक्, १२ एकावसाना आर्ची अनुष्टुप्, १३ एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप्, १५ त्र्यवसाना सप्तपदा बृहतीगर्भातिशक्वरी ।]

इस सूक्त के देवता त्रिवृत् हैं । इन मंत्रों के साथ त्रिवृत् (स्वर्ण, चाँदी और लोहे से युक्त) मणि को धारण करने की परम्परा पूर्वकाल में रही होगी । इसीलिए सायणाचार्य आदि ने सूक्त के मन्त्रों के अर्थ त्रिवृत् मणि धारणकर्ता पर आरोपित किये हैं । यों इस सूक्त में द्युलोक, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी सहित अनेक दिव्य प्रवाहों को तीन या त्रिवृत् (तीन आवृत्तियों वाला) कहा है । तीन गुणों या तीन आयामों से युक्त को त्रिवृत् कहा जाना युक्तिसंगत है । सृष्टि के सभी घटक त्रिवृत् हैं । उनके एकांगी उपयोग से पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं हो सकता । उन्हें समग्र (त्रिवृत्) रूप में ही प्रयुक्त किया जाना ऋषियों की दृष्टि में समीचीन हो -

४७६३. गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः ।

वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥१ ॥

हे पुरुष ! वृषभ अपने गौ समूह के साथ आपका संरक्षण करे । प्रजनन - क्षमता युक्त अश्व तीव्रगामी अश्वों के साथ आपका संरक्षण करे । अन्तरिक्षीय वायु ब्रह्मज्ञान से आपका संरक्षण करे । इन्द्रदेव इन्द्रिय शक्तियों के साथ आपको संरक्षण प्रदान करें ॥१ ॥

४७६४. सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः ।

माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥२ ॥

ओषधियों के अधिपति सोम, ओषधियों के साथ आपके संरक्षणकर्त्ता हों । सूर्यदेव नक्षत्र ग्रहों के साथ, अंधकार रूप असुर के हन्ता, चन्द्रदेव मासों के साथ तथा वायुदेव प्राणवायु के साथ आपके संरक्षणकर्त्ता हों ॥२ ॥

४७६५. तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् ।

त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥३ ॥

तीन द्युलोक, तीन भूलोक, तीन अन्तरिक्षलोक (पुण्यात्माओं के तीन प्रकार के गन्तव्य स्थल) , चार सागर, स्तोम और जल त्रिवृत् कहे गये हैं । ये सभी तीनों प्रकार (तीनों आयामों में) तीन गुणों (त्रिगुणों) से युक्त होकर आपकी रक्षा करें ॥३ ॥

४७६६. त्रीन्नाकांस्त्रीन् त्समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान् ।

त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ॥४ ॥

हम तीन प्रकार के स्वर्ग लोकों को, तीन सागरों को, तीन भुवनों को, तीन वायु-प्रवाहों को, रश्मियों और उनके अधिष्ठाता भेद से तीन सूर्यों को आपके संरक्षणकर्त्ता के रूप में नियुक्त करते हैं ॥४ ॥

४७६७. घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन् ।

अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! यज्ञ के साधनभूत घी के द्वारा प्रवृद्ध करते हुए हम आपको भली प्रकार सींचते हैं । हे पुरुष ! अग्निदेव, चन्द्रमा और सूर्यदेव के अनुग्रह से आपके जीवन को मायावी लोग विनष्ट न कर सकें ॥५ ॥

४७६८. मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन् ।

भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥६ ॥

हे पुरुष ! मायावी असुर आपके प्राण- अपान को विनष्ट न कर सकें । हे समस्त देवशक्तियो ! अपनी सर्वज्ञता से दमकते हुए अपनी दिव्य सामर्थ्यों के साथ आप भी इनके सहयोग - संरक्षण हेतु पधारें ॥६ ॥

४७६९. प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः ।

प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥७ ॥

समिंधनकर्त्ता पुरुष प्राणवायु से अग्नि को संयुक्त करते हैं । बाहरी वायु मुख में स्थित प्राण के साथ जुड़ा रहता है । देवताओं ने सभी ओर प्रकाशित होने वाले सर्वतोमुखी सूर्यदेव को प्राण से ही उत्पन्न किया है ॥७ ॥

४७७०. आयुषायुः कृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः ।

प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥८ ॥

आयु बढ़ाने वाले (पूर्वज ऋषियों) द्वारा प्रदत्त आयु से आप जीवित रहें । दीर्घ काल तक आप जीवित रहें । मृत्यु को प्राप्त न हों । प्राणवान् आत्मज्ञानी के सदृश आप जीवित रहें । मृत्यु के वश में न रहें ॥८ ॥

४७७१. देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः ।

आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥९ ॥

देवताओं के जिस गुप्त कोष को इन्द्रदेव ने देवयान मार्ग से ढूँढ़कर प्राप्त किया था, उस हिरण्य की त्रिवृत् जल ने सुरक्षा की थी। वे (हिरण्य) तीनों आयामों तथा तीनों गुणों से युक्त होकर आपको संरक्षण प्रदान करें ॥९॥

४७७२. त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्व१न्तः।
अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि ॥१०॥

तैंतीस प्रकार की देवशक्तियों ने तीन पराक्रमों से जिस प्रिय तेज को जल के अन्दर प्रतिष्ठित किया तथा आह्लादकारी चन्द्र में जो चमकने वाला तेजस् है, उसके प्रभाव से यह पुरुष वीरोचित कार्य सम्पन्न करे ॥१०॥

४७७३. ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥११॥

द्युलोक में जो ग्यारह दिव्य शक्तियाँ हैं, वे (दिव्यशक्तियाँ) इस हवि को ग्रहण करें ॥११॥

४७७४. ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१२॥

अन्तरिक्ष लोक में जो ग्यारह दिव्य शक्तियाँ हैं, वे (दिव्यशक्तियाँ) इस हवि को ग्रहण करें ॥१२॥

४७७५. ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१३॥

भूलोक में जो ग्यारह दिव्य शक्तियाँ हैं, वे (दिव्यशक्तियाँ) इस हवि को ग्रहण करें ॥१३॥

४७७६. असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम्। सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः।

हे सविता और शचीपति देवो! आप हमें सामने की (पूर्व) दिशा और पीछे की (पश्चिम) दिशा से, दक्षिण दिशा से और उत्तर दिशा से हमें शत्रुभय से मुक्त करें ॥१४॥

४७७७. दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम्।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥१५॥

आदित्यदेव द्युलोक से और अग्निदेव पृथ्वी से हमारी सुरक्षा करें। इन्द्र और अग्निदेव आगे से और दोनों अश्विनीकुमार सभी दिशाओं से हमारा संरक्षण करें। तिरछे (टेढ़े) स्थानों से जातवेदा अग्निदेव और पञ्चभूतों के अधिष्ठाता देव हमें चारों ओर से सुरक्षा कवच प्रदान करें ॥१५॥

[२८ - दर्भमणि सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा (सपत्नक्षयकाम)। देवता- दर्भमणि। छन्द- अनुष्टुप्।]

सूक्त क्र० २८, २९ एवं ३० में देवता 'दर्भमणि' है। पूर्व प्रसङ्गों में भी उल्लेख किया जा चुका है कि 'मणि' शब्द का प्रयोग ऋषियों ने 'गुण' या 'विशेषता' के सन्दर्भ में किया है। मन्त्र के व्यापक भावों का निर्वाह ऐसा ही मानने से होता है। दर्भ का सामान्य अर्थ 'कुश' नामक वनस्पति होता है; किन्तु कोश ग्रन्थों में दर्भ का अर्थ 'विदारक' होता है। कुश में भी विदारक पैनापन होता है, इसलिए उसे भी दर्भ विशेषण दिया गया है। दर्भ मणिरूप में दर्भ से तैयार कोई मणि भी प्रचलित रही होगी; किन्तु ऋषि द्वारा दर्भमणि कहने का भाव विदारक गुण या विदारक क्षमता-तेजस्वितापरक मानना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। सुरक्षा के लिए प्रतिबद्ध तेजस्वी व्यक्तियों में ऋषि दुष्ट विदारक क्षमता की स्थापना करना चाहते हैं, यह भाव मणि बाँधने की परम्परागत प्रक्रिया के प्रतिकूल भी नहीं है। विज्ञजन इस भाव को ध्यान में रखेंगे, तो मन्त्रार्थों की अधिक गहराई पा सकेंगे-

४७७८. इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे। दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥१॥

हे पुरुष! आपके दीर्घ जीवन और तेजस्विता के लिए हम इस दर्भमणि को तुम्हारे शरीर के साथ बाँधते हैं। यह दर्भमणि शत्रु संहारक और विद्वेषी शत्रुओं के हृदय को संतप्त करने वाली है ॥१॥

४७७९. द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः।
दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्म इवाभीन्त्संतापयन् ॥२ ॥

हे दर्भमणे (विदारक क्षमता) ! आप द्वेषी शत्रुओं के हृदय-क्षेत्र को तथा मन को संतप्त करें । उन शत्रुओं के (गृह, परिवार, पशु आदि) सभी को सूर्य के समान संतप्त करके विनष्ट करें ॥२ ॥

४७८०. घर्म इवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितपन् मणे।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजं बलम् ॥३ ॥

हे दर्भमणे ! आप द्वेषी शत्रुओं को ग्रीष्म के समान सन्तप्त करते हुए नष्ट कर डालें । आप पराक्रमी इन्द्रदेव के समान आन्तरिक और बाह्य सामर्थ्य से शत्रुओं के हृदय क्षेत्र को छिन्न- भिन्न कर डालें ॥३ ॥

४७८१. भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे।
उद्यन् त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥४ ॥

हे दर्भमणे ! आप द्वेषभाव रखने वाले वैरियों के हृदय का भेदन करें । उनके सिरों को आप उसी प्रकार काटकर गिरा दें, जिस प्रकार भूमि के त्वचारूपी ऊपरी भाग को मनुष्य गृह निर्माण हेतु काटकर फेंक देते हैं ॥४ ॥

४७८२. भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायतः।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥५ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे वैरियों को और सैन्य दल का गठन करने वाले शत्रुओं को भी नष्ट कर दें । सभी दुष्ट शत्रुओं को विनष्ट करें तथा सभी विद्रोही शत्रुओं को छिन्न-भिन्न कर डालें । ।५ ॥

४७८३. छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायतः।
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥६ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे वैरियों और हमारे लिए सैन्यदल का गठन करने वाले शत्रुओं का छेदन करें । आप हमारे सभी दुष्ट शत्रुओं को समाप्त करें तथा द्वेषभाव रखने वाले शत्रुओं को छिन्न- भिन्न कर डालें ॥६ ॥

४७८४. वृश्च दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः। वृश्च मे सर्वान् दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे।

हे दर्भमणे ! हमारे शत्रुओं का कर्त्तन करें, हमारे लिए सैन्यशक्ति का गठन करने वाले शत्रुओं को काट डालें । आप हमारे सभी दुष्ट वैरियों का कर्त्तन करें तथा वैर भाव रखने वाले शत्रुओं को भी काट डालें ॥७ ॥

४७८५. कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ॥८ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे वैरियों को तथा हमारे लिए सैन्यबल एकत्रित करने वाले शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करें । हमारे सभी दुष्ट वैरियों को काट डालें तथा द्वेष रखने वाले शत्रुओ को तोड़-फोड़ डालें ॥८ ॥

४७८६. पिंश दर्भ सपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥९ ॥

हे दर्भमणे ! हमारे वैरियों को तथा हमारे लिए सैन्यशक्ति को संगृहीत करने वाले शत्रुओं को पीस डालें । हमारे दुष्ट वैरियों को एवं द्वेष-दुर्भाव रखने वाले सभी वैरियों को भी पीस डालें ॥९ ॥

४७८७. विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥१० ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे शत्रुओं का वेधन करें (ताड़ना करें), हमारे निमित्त सैन्यशक्ति का गठन करने वाले शत्रुओं को ताड़ित करें । हमारे सभी दुष्ट शत्रुओं तथा हमसे द्वेष रखने वाले वैरियों को भी आप प्रताड़ित करें ॥

[२९ - दर्भमणि सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- दर्भमणि । छन्द- अनुष्टुप् ।]

४७८८. निक्ष दर्भ सपत्नान् मे निक्ष मे पृतनायतः ।
निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥१ ॥

हे दर्भमणे (विदारक शक्ति) ! आप हमारे शत्रुओं पर शस्त्र प्रहार करें । हमारे प्रति सैन्यबल गठित करने वाले विद्रोहियों को, दुष्टात्माओं को तथा हमसे द्वेष रखने वालों को भी आप शस्त्र प्रहार करके समाप्त करें ॥१ ॥

४७८९. तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥२ ॥

हे दर्भमणे ! आप वैरियों का उच्छेदन करें । सैन्यबल एकत्र करने वाले विद्रोहियों, दुष्टों और द्वेष करने वालों को उच्छेदन करके उन्हें समाप्त करें ॥२ ॥

४७९०. रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे रुन्द्धि मे पृतनायतः ।
रुन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥३ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे वैरियों तथा हमारे प्रति सैन्यदल का गठन करने वालों को रूँध (रौंद) दें । दुष्टों और हमसे द्वेष रखने वाले वैरियों को भी आप रौंद डालें ॥३ ॥

४७९१. मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण मे पृतनायतः । मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे

हे दर्भमणे ! आप हमारे विरोधियों तथा सैन्यदल तैयार करने वाले वैरियों का संहार करें । आप दुष्टों और द्वेषभाव रखने वाले हमारे शत्रुओं का भी संहार करें ॥४ ॥

४७९२. मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान् दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥५ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे विद्रोही शत्रुओं तथा सैन्यबल का गठन करने वाले शत्रुओं को भी मथ डालें । दुष्ट हृदयवालों और हमसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को भी मथ डालें ॥५ ॥

४७९३. पिपिड्ढ दर्भ सपत्नान् मे पिपिड्ढ मे पृतनायतः ।
पिपिड्ढ मे सर्वान् दुर्हार्दः पिपिड्ढ मे द्विषतो मणे ॥६ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे शत्रुओं के अहंकार को तथा सैन्य शक्ति का गठन करने वाले शत्रुओं को भी चूर्ण करें । आप दुष्ट स्वभाव वालों और हमसे वैरभाव रखने वाले शत्रुओं के अहं भाव को चूर्ण करें ॥६ ॥

४७९४. ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान् दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥७ ॥

हे दर्भमणे ! आप हमारे विद्रोहियों तथा सैन्यबल एकत्र करने वाले विद्रोहियों को भी भस्म करें । दुष्ट हृदय वालों और हमसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को भी आप भस्मासात् कर डालें ॥७ ॥

४७९५. दह दर्भ सपत्नान् मे दह मे पृतनायतः । दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥८ ।

हे दर्भमणे ! आप हमारे विरोधियों तथा सैन्य बल का गठन करने वाले शत्रुओं को दग्ध करें । संवेदना शून्य विरोधियों और द्वेष-दुर्भाव रखने वाले शत्रुओं को भी आप दग्ध करें ॥८ ॥

४७९६.जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः । जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे।

हे दर्भमणे ! आप हमारे विद्रोहियों तथा सैन्य बल का गठन करने वाले विद्रोहियों को भी मार गिराएँ । संवेदनारहित सभी दुष्टों और हमसे विद्वेष रखने वाले शत्रुओं का भी आप संहार करें ॥९ ॥

[३० - दर्भमणि सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- दर्भमणि । छन्द- अनुष्टुप् ।]

४७९७.यत् ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते । तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नाञ्जहि वीर्यैः।

हे दर्भमणे ! आप में वृद्धावस्था के उपरान्त ही मृत्यु होने की शक्तियाँ सन्निहित हैं । जीर्णता और मृत्यु को दूर रखने वाला आपका जो कवच है, उससे इसे सुरक्षा प्रदान करें । अपनी सामर्थ्य से शत्रुओं का संहार करें ॥१ ॥

४७९८.शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते । तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः।

हे दर्भमणे ! आपके सैकड़ों कवच और हजारों वीर्य (पराक्रम) हैं । समस्त देवों ने इस व्यक्ति की जरावस्था को दूर करने के निमित्त कवचरूप में और पोषण के लिए आपको ही नियुक्त किया है ॥२ ॥

४७९९. त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् । त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ।

हे दर्भमणे ! आपको देवों का कवच कहा जाता है । आपको ही ब्रह्मणस्पति के नाम से पुकारा जाता है तथा आपको ही देवराज इन्द्रदेव का कवच भी कहा गया है । आप राष्ट्रों की रक्षा करें ॥३ ॥

[विकारों की उच्छेदक सामर्थ्य को ब्रह्मणस्पति रूप कहा गया है । ब्रह्मज्ञान का निर्वाह करने में जो बाधाएँ सामने आती हैं, उनके उच्छेदन की सामर्थ्य के बिना कोई साधक ज्ञान का अनुगमन नहीं कर सकता ।]

४८००. सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः । मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥४॥

हे दर्भ ! हम आपको शत्रुओं (विकारों) का नाश करने में समर्थ तथा विद्वेषियों के हृदय को सन्तप्त करने वाला मानते हैं । क्षात्रबल को समृद्ध करते हुए शारीरिक संरक्षक के रूप में आपको नियुक्त करते हैं ॥४ ॥

४८०१. यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥५ ॥

जलवर्षक मेघ विद्युत् के साथ गर्जना करते हैं, उससे स्वर्णमय जल बिन्दु और उससे कुशा की उत्पत्ति हुई ॥

[३१ - औदुम्बरमणि सूक्त]

[ऋषि- सविता (पुष्टिकाम) । देवता- औदुम्बरमणि । छन्द- अनुष्टुप्, ५, १२ त्रिष्टुप्, ६ विराट् प्रस्तार पंक्ति, ११, १३ पञ्चपदा शक्वरी, १४ विराट् आस्तार पंक्ति ।]

४८०२. औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥१ ॥

ज्ञानी अथवा विधाता ने औदुम्बर मणि से सभी प्रकार की पुष्टि चाहने वालों के लिए एक प्रयोग किया था, जिससे सवितादेव हमारे गोष्ठ में सभी प्रकार के पशुओं को बढ़ाएँ ॥१ ॥

४८०३. यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत्।
औदुम्बरो वृषा मणिः सं मा सृजतु पुष्ट्या ॥२ ॥

जो गार्हपत्य अग्नि हमारे पशुओं के अधिपति हैं , वे इस शक्ति-सम्पन्न औदुम्बर मणि को हमारी पुष्टि के लिए सृजित करें ॥२ ॥

४८०४.करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥३ ॥

धातादेव औदुम्बर मणि की तेजस्विता से हमारे अन्दर परिपुष्टता को प्रतिष्ठित करें । गोबर की खाद से परिपूर्ण करने वाली गौ सन्तानों (बछड़ों) से युक्त होकर हमें अन्न और दुग्ध आदि पर्याप्त मात्रा में प्रदान करे ॥३ ॥

४८०५. यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृह्णेऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥४ ॥

औदुम्बर मणि को धारण करके हम द्विपाद मनुष्यों , चतुष्पाद पशुओं तथा अन्य अन्नों तथा विविध रसों को प्रचुर मात्रा में उपलब्ध करते हैं ॥४ ॥

४८०६. पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम्।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥५ ॥

हम मनुष्यों, गौ आदि पशुओं तथा धान्यादि के लिए पोषक तत्त्व प्राप्त करें । सवितादेव और बृहस्पतिदेव पशुओं के सारभूत दूध और ओषधियों के रस हमें प्रदान करें ॥५ ॥

४८०७. अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥६ ॥

हम पशुओं के अधिपति हों (स्वामी हों) । पुष्टि के अधिष्ठाता औदुम्बरमणि हमारे पशुओं की वृद्धि करे तथा हमें धन-सम्पदा प्रदान करे ॥६ ॥

४८०८.उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च । इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ।

औदुम्बर मणि प्रजा और वैभव के साथ हमें उपलब्ध हुई है । यह मणि इन्द्रदेव की प्रेरणा से तेजस्विता के साथ हमारे समीप आयी है ॥७ ॥

४८०९. देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये । पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ।

देवसंज्ञक यह औदुम्बरमणि शत्रुओं की संहारक तथा अभीष्ट धन-सम्पदा की प्रदात्री है । यह मणि अन्य पशुओं के साथ हमारे गोधन की वृद्धि करे ॥८ ॥

४८१०. यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे । एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥

हे वनस्पतियों की रक्षक, औदुम्बरमणे ! आप जिस प्रकार ओषधियों, वनस्पतियों के साथ उत्पन्न होकर पुष्टि और वृद्धि को प्राप्त हुई हैं, उसी प्रकार सरस्वती देवी हमारे निमित्त धन-वैभव की वृद्धि करें ॥९ ॥

४८११.आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् । सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः।

सरस्वती, सिनीवाली और औदुम्बरमणि, धन-धान्य और दुग्धादि वैभव को लेकर हमारे समीप पधारें ॥१०

४८१२. त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान । त्वयीमे वाजा

द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत् सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥११ ॥

आप सभी मणियों की अधिपति और बलवान् हैं । पुष्टिपति ब्रह्मा ने आप में सभी पोषक तत्त्वों को भर दिया है । विभिन्न प्रकार के अन्न और धन आपमें सन्निहित हैं, ऐसी हे औदुम्बरमणे ! आप कृपणता, दुर्बुद्धि और भूख को हमसे दूर हटाएँ ॥११ ॥

४८१३. ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥१२ ॥

हे औदुम्बरमणे ! आप ग्राम की नेता हैं ।आप समूह से उठकर अभिषिक्त हों और हमें भी अपने वर्चस् से अभिषिक्त करें । आप तेजरूपा हैं, हममें तेजस्विता स्थापित करें ।आप धनरूपा हैं, हमें भी धन-धान्य प्रदान करें ।

४८१४. पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु । औदुम्बरः स

त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ।

आप पुष्टिरूपा हैं, हमें भी पुष्ट बनाएँ । आप गृहमेधा हैं, हमें भी गृहपति की योग्यता प्रदान करें । ऐसी हे औदुम्बरमणे ! हममें ऐश्वर्य को प्रतिष्ठित करें, पुत्र-पौत्रादि प्रदान करें । हम आपको धन-सम्पदा की वृद्धि के लिए धारण करते हैं ॥१३ ॥

४८१५. अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।

स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥१४ ॥

यह औदुम्बर मणि स्वयं वीररूप है, इसीलिए वीरों को बाँधी जाती है । यह मणि हमें मधुर रसों के साथ धन-धान्यादि वैभव तथा वीर संतानें प्रदान करे ॥१४ ॥

[३२ - दर्भ सूक्त]

[ऋषि- भृगु (आयुष्काम) । देवता- दर्भ । छन्द- अनुष्टुप्, ८ पुरस्ताद् बृहती, ९ त्रिष्टुप्, १० जगती ।]

४८१६. शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः । दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे।

हे मनुष्य ! जो असंख्य (गाँठों) काण्डों से युक्त, कठिनाई से (नष्ट करने) हटाने योग्य, हजारों पत्तों से युक्त, सभी ओषधियों से श्रेष्ठ, प्रचण्ड शक्तिसम्पन्न 'दर्भरूप' ओषधि है, उसे हम आपके दीर्घायु के निमित्त बाँधते हैं ॥

४८१७. नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते ।

यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥२ ॥

(जिस पुरुष के निमित्त) अखण्डित पत्तों वाला दर्भ सुख पहुँचाता है, उसके केशों को यमराज नहीं उखाड़ते । उसके वक्षस्थल को पीटते हुए उसे मारते भी नहीं हैं ॥२ ॥

४८१८. दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः । त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे।

हे ओषधे ! आपका शिखा भाग आकाश में है और पृथ्वी पर आप स्थिर हैं । आपके असंख्य काण्डों द्वारा हम अपनी आयु को बढ़ाते हैं ॥३ ॥

४८१९. तिस्रो दिवो अत्यतृणत् तिस्र इमाः पृथिवीरुत ।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥४ ॥

(हे दर्भ !) आप त्रिवृत् द्युलोक और त्रिवृत् पृथ्वी को चीरकर उनमें संव्याप्त हो रहे हैं । आपके द्वारा हम संवेदना शून्य शत्रुओं की जिह्वा और कटुभाषी वाणियों को नष्ट कर डालते हैं ॥४ ॥

४८२०. त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् । उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान्त्सहिषीवहि ॥

आप जीतने में सक्षम हैं, हम भी संघर्ष की सामर्थ्य से युक्त हैं । हम दोनों परस्पर मिलकर, सामर्थ्य से युक्त होकर अपने शत्रुओं का दमन कर देंगे ॥५ ॥

४८२१. सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः । सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि

(हे दर्भ !) आप हमारे शत्रुओं को दबाएँ । सभी दुष्ट हृदय वाले शत्रुओं तथा सैन्यदल द्वारा आक्रमण करने वाले शत्रुओं को पराभूत करें तथा हमारे मित्रों की वृद्धि करें ॥६ ॥

४८२२. दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् । तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च

देवताओं के द्वारा उत्पन्न किये गये 'दर्भ' द्वारा और द्युलोक के स्तम्भरूप 'दर्भमणि' द्वारा हम दीर्घजीवी संतानों को प्राप्त करें ॥७ ॥

४८२३. प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥८ ॥

हे दर्भ ! ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों, क्षात्रतेज सम्पन्न क्षत्रियों, शूद्रों और आर्यश्रेष्ठों के लिए हम जिस प्रकार प्रियपात्र बन सकें, वैसा हमें बनाएँ । हम जिसके प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं, उनके लिए आप भी हमें प्रियपात्र बनाएँ ॥८ ॥

४८२४. यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥९ ॥

जिस 'दर्भ' ने उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण पृथ्वी को सुदृढ़ कर दिया, जिसने अन्तरिक्ष और द्युलोक को स्थिर किया । जिसके धारणकर्त्ता को पाप संव्याप्त नहीं करता है । वह वरुणदेव की भाँति हमें प्रकाशित करे ॥९ ॥

४८२५. सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥१० ॥

शत्रुसंहारक, शतकाण्डों से सम्पन्न, शक्तिमान् 'दर्भ' ओषधियों में प्रमुख बनकर प्रकट हुआ है । ऐसा 'दर्भ' चारों ओर से हमारी रक्षा करे । हम सैन्यशक्ति के अभिलाषी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥१० ॥

[३३ -दर्भ सूक्त]

[ऋषि- भृगु । देवता- मन्त्रोक्त । छन्द- जगती, २, ५ त्रिष्टुप् , ३ आर्षी पंक्ति, ४ आस्तार पंक्ति ।]

४८२६. सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥१ ॥

अतिमूल्यवान् , सैकड़ों काण्डों से युक्त, दुग्धयुक्त जल, अग्नि , ओषधि एवं राजसूय यज्ञ की शक्ति एवं प्रभाव से सम्पन्न यह 'दर्भमणि' हमें सभी प्रकार से सुरक्षा प्रदान करे तथा दीर्घ आयुष्य प्रदान करे ॥१ ॥

४८२७. घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः ।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥२ ॥

हे दर्भ ! आप घृत (तेज) से सिञ्चित, मधुमय दुग्ध से युक्त, अपनी जड़ों से पृथ्वी को सुदृढ़ करने वाले, क्षयरहित तथा शत्रुओं को च्युत करने वाले हैं । आप शत्रुओं को दूर हटाते हुए उन्हें पतित करें तथा इन्द्रियों की सामर्थ्य को बढ़ाएँ ॥२ ॥

४८२८. त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥३ ॥

(हे दर्भ !) आप अपनी शक्ति से भूमि को लाँघ जाते तथा यज्ञवेदी पर सुन्दरढंग से विराजमान होते हैं । ऋषियों ने स्वयं को पवित्र बनाने के लिए आपको धारण किया । आप पापों को दूर करके हमें भी पावन बनाएँ ॥३ ।

४८२९. तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥४ ॥

यह दर्भ तीक्ष्ण, राजा के तुल्य श्रेष्ठ, शत्रुओं को पराभूत करने वाला, असुर संहारक, सभी प्राणियों का द्रष्टा तथा इन्द्रादि देवों की ओजस्विता एवं उग्रबल का हेतु है । हम ऐसे दर्भ को वृद्धावस्था के कल्याण के लिए(आपके साथ) बाँधते हैं ॥४ ॥

४८३०. दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥५ ॥

हे वीर पुरुष ! आप 'दर्भ' की शक्ति से पराक्रमी कर्म करें । इसे धारण करके अपने मन में स्वयं दुखी न हों । अपनी सामर्थ्य से दूसरों को प्रभावित करते हुए सूर्य के समान ही चारों दिशाओं को प्रकाशित करें ॥५ ॥

[३४ - जङ्गिडमणि सूक्त]

[ऋषि- अङ्गिरा । देवता- मन्त्रोक्त अथवा वनस्पति । छन्द- अनुष्टुप् ।]

४८३१. जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः । द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ।

हे जङ्गिडमणे ! आप सभी भय से हमें संरक्षण प्रदान करने वाली हैं । हमारे द्विपाद (मनुष्य समुदाय) और चतुष्पाद (गौ आदि पशुओं) की यह जङ्गिड मणि सुरक्षा करे ॥१ ॥

[जङ्गिड मणि का प्रसंग पहले भी आ चुका है । यह वनस्पति से उत्पन्न मणि रोगों एवं कष्टों की निवारक मानी गयी है ।]

४८३२. या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसाञ्जङ्गिडस्करत् ॥२ ॥

जो हिंसक कृत्याएँ एक सौ पचास की संख्या में हैं और जो सौ हिंसक कर्म करने वाले हैं; उन सभी को यह जङ्गिड मणि अपनी तेजस्विता से सत्त्वरहित करके उन्हें हमसे दूर करें ॥२ ॥

४८३३. अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः । अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥

(अभिचार कृत्य से प्रकट हुई) बनावटी ध्वनि को यह जङ्गिडमणि सत्त्वहीन करे । हानिकारक सातों प्रवाह रसहीन हों । आप यहाँ से दुर्मति को उसी प्रकार दूर हटाएँ, जिस प्रकार बाण चलाने वाला शत्रुओं को दूर करता है ॥३ ॥

४८३४. कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।

अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥४ ॥

यह जङ्गिड़मणि हिंसक कृत्याओं को विनष्ट करने वाली है । यह शत्रुओं का विनाश करने वाली है । यह जङ्गिड़मणि सामर्थ्यशाली है । यह मणि हमारी आयु को बढ़ाए ॥४ ॥

४८३५. स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।

विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥५ ॥

जङ्गिड़मणि अपनी महत्ता द्वारा सभी दिशाओं से हमारी रक्षा करे । अपने ओज से वात-व्याधि को समूल नष्ट करे । संस्कन्ध रोग को हम इसी मणि की शक्ति से दूर करते हैं ॥५ ॥

४८३६.त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि । तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः

पृथ्वी पर स्थायित्व प्रदान करने वाली (जङ्गिड़) तुम्हें देवताओं ने तीन बार के प्रयास से उत्पन्न किया है । इसके विषय में पूर्वकालीन ब्राह्मण और अंगिरा ऋषि भली प्रकार जानते हैं ॥६ ॥

४८३७. न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।

विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥७ ॥

हे जङ्गिड़मणे ! पूर्व में पैदा हुई ओषधियाँ और जो नूतन ओषधियाँ हैं, वे भी सामर्थ्य में आपको नहीं लाँघ सकती हैं । आप रोगों के लिए विशेष रूप से अवरोध पैदा करने वाली, उग्ररूप तथा हमारे लिए श्रेष्ठ मंगलकारी संरक्षक के समान हैं ॥७ ॥

४८३८. अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य । पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥८ ॥

भगवान् की शक्ति के प्रतिनिधि हे जङ्गिड़मणे ! पराक्रमी शत्रु आपको अपना ग्रास बनाकर समाप्त न करें, इसलिए देवराज इन्द्र ने आपमें प्रचण्ड शक्ति की स्थापना की है ॥८ ॥

४८३९. उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ ।

अमीवाः सर्वाश्चातयञ्जहि रक्षांस्योषधे ॥९ ॥

हे जङ्गिड़मणे ! इन्द्रदेव ने आपमें शक्ति की स्थापना की है । हे ओषधे ! आप सभी रोगों को विनष्ट करते हुए भय के मूल कारण असुरों का विनाश करें ॥९ ॥

४८४०. आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।

तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥१० ॥

शरीर को हानि पहुँचाकर उसको नष्ट करने वाले रोगों, खाँसी, पृष्ठ भाग के रोगों तथा शरद् ऋतु में प्रभावित करने वाले ज्वर आदि विभिन्न रोगों को यह जङ्गिड़मणि निस्सार करके नष्ट कर देती है ॥१० ॥

[३५ - जङ्गिड़ सूक्त]

[ऋषि- अङ्गिरा । देवता- मन्त्रोक्त अथवा वनस्पति । छन्द- अनुष्टुप्, ३ पथ्यापंक्ति, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ।]

४८४१. इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः ।

देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥१ ॥

जिस (जङ्गिड) को देवताओं ने सर्वप्रथम तैयार किया था । ऋषियों ने इन्द्रदेव की साक्षी में उस जङ्गिडमणि को (रोगोपचार हेतु) प्रदान किया ॥१ ॥

४८४२. स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव । देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ।

जिस प्रकार कोषाध्यक्ष प्रयत्नपूर्वक धन की सुरक्षा करता है, उसी प्रकार यह जङ्गिडमणि हमें संरक्षण प्रदान करे, जिसे देवों और ब्रह्मनिष्ठों ने संरक्षक और शत्रुनाशक के रूप में बनाया है ॥२ ॥

४८४३. दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम् ।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥३ ॥

सहस्र नेत्रों से युक्त हे जङ्गिडमणे ! आप दुष्ट हृदय वाले शत्रु की क्रूर दृष्टि को, हिंसा आदि पापकर्म करने वाले को तथा विनाश की इच्छा से आये हुए व्यक्ति को अपनी सजगदृष्टि से विनष्ट करें; क्योंकि आप सबके संरक्षक रूप में विख्यात हैं ॥३ ॥

४८४४. परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः ।
परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥४ ॥

यह जङ्गिडमणि दिव्यलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वीलोक, ओषधियों, भूतकाल में हो चुकी और भविष्यत् में होने वाली घटनाओं से, दिशाओं और उपदिशाओं से होने वाले सभी प्रकार के अनिष्टों से हमें संरक्षण प्रदान करे ॥४ ॥

४८४५. य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः । सर्वांस्तान् विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥

जो देवों द्वारा विनिर्मित हिंसक-कर्म और मनुष्यों से प्रेरित हिंसककृत्य हैं, उन सभी को सर्व- चिकित्सक जङ्गिडमणि सारहीन करे ॥५ ॥

[३६ - शतवारमणि सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- शतवार । छन्द- अनुष्टुप् ।]

४८४६. शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा ।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥१ ॥

(सैकड़ों रोगों की निवारक) शतवार नामक ओषधि (मणि) अपने प्रभाव से रोगों को विनष्ट करे । शरीर से बाँधे जाने पर कुत्सित नाम वाले त्वचा रोगों की निवारक यह मणि अपनी तेजस्विता से शरीर के विकारों को भी भस्मसात् करे ॥१ ॥

४८४७. शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः । मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥२॥

यह शतवारमणि सींगों (अपने अग्रिम भागों) से आसुरीवृत्तियों को दूर करती है । मूलभाग से यातना देने वाले रोगों को दूर करती है तथा मध्य (काण्ड) भाग से समस्त रोगों का निवारण करती है । इसे कोई भी रोग (पाप) लाँघ (कर बढ़) नहीं सकता ॥२ ॥

४८४८. ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः ।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥३ ॥

जो अविकसित सूक्ष्म बीजरूप (यक्ष्मा आदि) रोग हैं, जो वृद्धि को प्राप्त हुए रोग हैं तथा जो शब्द करने वाले असाध्य रोग हैं, उन सबको यह दुष्ट नाम वाले रोगों की संहारक शतवार मणि समूल नष्ट करे ॥३ ॥

४८४९. शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत्। दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥

यह (मणि) सौ (सैकड़ों) वीरों (रोगनाशक शक्तियों) को जन्म देती है, सैकड़ों रोगों का निवारण करती है तथा सभी दुष्ट नाम वालों को नष्ट करके राक्षसों (रोगबीजों) या दुष्ट प्रवृत्तियों को कँपा देती है ॥४ ॥

४८५०.हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः। दुर्णाम्नः सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत्

स्वर्ण की तरह चमकते हुए सींग (अगले भाग) वाली, सभी ओषधियों में शक्तिशाली यह शतवार मणि कुत्सित नाम वाले सभी रोगों को विनष्ट करके रोगाणुओं को दूर कर देती है ॥५ ॥

४८५१. शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्। शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥

गन्धर्व और अप्सरस् नामक देवयोनि के सैकड़ों रोगों को तथा उपचार के बाद भी बार-बार पीड़ा पहुँचाने वाले सैकड़ों रोगों को मैं इस शतवार नामक ओषधि (मणि) के द्वारा दूर करता हूँ ॥६ ॥

[३७ - बलप्राप्ति सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप्, २ आस्तार पंक्ति, ३ त्रिपदा महाबृहती, ४ पुर उष्णिक् ।]

४८५२. इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम्।
त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥१ ॥

अग्निदेव हमें वर्चस्, तेजस्, यश, साहस, ओज, आयु (शारीरिक) बल प्रदान करते हैं। देवों के जो तैंतीस प्रकार के वीर्य (पराक्रम) हैं, अग्निदेव के अनुग्रह से हम उनके अधिकारी बनें। ।१ ॥

४८५३. वर्च आ धेहि मे तन्वां३ सह ओजो वयो बलम्।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥२ ॥

हे अग्ने ! आप हमारे शरीर में तेजस्विता, ओजस्विता, सत्साहस, सामर्थ्य और पराक्रम की स्थापना करें। हम इन्द्रियों की सुदृढ़ता, यज्ञादि कर्मों की सिद्धि और सौ वर्ष की आयु प्राप्ति के लिए आपको धारण करते हैं ॥२

४८५४. ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥३ ॥

हम अन्न, बल, ओजस्विता और साहसिकता की वृद्धि के लिए, शत्रुओं को परास्त करने, राष्ट्र की सेवा करने तथा सौ वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त करने के लिए हम आपको (अग्नि की प्रेरणाओं को) धारण करते हैं ॥३ ॥

४८५५. ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥४ ॥

ग्रीष्म आदि ऋतुओं, ऋतु-सम्बन्धी देवों, महीनों, संवत्सरों, धातादेव, विधातादेव, समृद्धि के देवता तथा समस्त प्राणियों के अधिपति की प्रसन्नता के लिए हम यजन (यज्ञादि सत्कर्म) करते हैं ॥४ ॥

[३८ - यक्ष्मनाशन सूक्त]

[ऋषि- अथर्वा । देवता- गुल्गुलु । छन्द- अनुष्टुप्, २ चतुष्पदा उष्णिक्, ३ एकावसाना प्राजापत्या अनुष्टुप् ।]

४८५६. न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥१ ॥

उस मनुष्य को कोई रोग पीड़ित नहीं करता, दूसरों के द्वारा दिये गये अभिशाप, उसे स्पर्श तक नहीं कर पाते हैं, जिसके पास ओषधिरूप गुग्गुल (गुल्गुलु) की श्रेष्ठ सुगन्धि संव्याप्त रहती है ॥१ ॥

४८५७. विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते ।

यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् ॥२ ॥

इस गुग्गुल की सुगन्धि से यक्ष्मा आदि रोग उसी प्रकार सभी दिशाओं को पलायन कर जाते हैं, जिस प्रकार शीघ्रगामी अश्व और मृग दौड़ जाते हैं । यह गुग्गुल (गुल्गुलु) नामक ओषधि नदी या समुद्र के तट पर उत्पन्न होती है ॥२ ॥

४८५८. उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥३ ॥

हम इस रोगी के कल्याण के निमित्त गुग्गुल के दोनों स्वरूपों का वर्णन करते हैं ॥३ ॥

[३९ - कुष्ठनाशन सूक्त]

[ऋषि- भृग्वङ्गिरा । देवता- कुष्ठ । छन्द- अनुष्टुप् , २-३ त्र्यवसाना पथ्यापंक्ति, ४ षट्पदा जगती, ५ चतुरवसाना सप्तपदा शक्वरी, ६-८ चतुरवसाना अष्टपदाष्टि ।]

४८५९. ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि । तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ।

कुष्ठ रोग को दूरकर संरक्षण प्रदान करने वाली दिव्य ओषधि हिमालय पर्वत से हमें प्राप्त हो । यह दिव्य ओषधि सभी प्रकार के विकारों का क्षय करते हुए पीड़ादायक रोगों को दूर करे ॥१ ॥

४८६०. त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः ।

नद्यायं पुरुषो रिषत् । यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥२ ॥

हे ओषधे ! आपके रहस्यमय तीन नाम हैं, जो क्रमशः नद्यमार, नद्यारिष और नद्य कहलाते हैं । जिस पुरुष को हम प्रातः - सायं और दिन में (ओषधि प्रयोग) बतलाएँ , वह (रोग को) मिटाने में समर्थ हो ॥२ ॥

४८६१. जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता ।

नद्यायं पुरुषो रिषत् । यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥३ ॥

हे ओषधे ! आपकी जन्मदात्री माता जीवला (प्राणयुक्त) और पिता जीवन्त (पोषण देने वाले) नाम से प्रख्यात हैं । जिस पुरुष को हम प्रातः- सायं और दिन में (ओषधि प्रयोग) बतलाएँ , वह (रोग को) मिटाने में समर्थ हो ॥

४८६२. उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।

नद्यायं पुरुषो रिषत् । यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥४ ॥

हे ओषधे !आप रोग निवारक ओषधियों में उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ हैं, जिस प्रकार (खुर वाले) पशुओं में भारवाहक बैल और (पंजे वाले पशुओं में) व्याघ्र सर्वश्रेष्ठ होता है । जिस पुरुष को हम प्रातः, सायं और दिन में (ओषधि प्रयोग) बतलाएँ , वह (रोग को) मिटाने में समर्थ हो ॥४ ॥

४८६३. त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि । त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः ।

स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।

तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥५ ॥

समस्त रोगों की निवारक जिस ओषधि को अंगिरावंशज शाम्बुओं, आदित्यदेवों तथा विश्वेदेवों द्वारा तीन प्रकार से प्रकट किया गया है । सोमरस के साथ विद्यमान रहने वाली वह कुष्ठ ओषधि सभी रोगों का निवारण करती है । हे कूट ओषधे ! आप सभी प्रकार के कष्टदायी रोगों और सभी यातना देने वालों को नष्ट करें ॥५ ॥

४८६४. अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं ततः
कुष्ठो अजायत । स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥६ ॥

तृतीय लोक 'दिव्यलोक' में देवशक्तियों का निवास है, वहाँ अग्निदेव अश्वरूप में विद्यमान रहते हैं तथा वहीं अमृत का स्रोत भी है । यह कुष्ठ ओषधि पहले सोम (अमृत) के साथ दिव्यलोक में ही वास करती थी । हे ओषधे ! आप कष्टप्रद रोगों और यातनादायी सभी रोगाणुओं को विनष्ट करें ॥६ ॥

४८६५. हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं ततः
कुष्ठो अजायत । स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥७ ॥

स्वर्णनिर्मित और स्वर्णिम खूँटे से बँधी हुई नाव दिव्यलोक में सदा घूमती रहती है । वहीं अमृत की ज्योति है, जहाँ से कुष्ठ की उत्पत्ति हुई है । वह कुष्ठ ओषधि समस्त रोगों को दूर करती है । यही कुष्ठ पूर्वकाल में अमृतरूप सोम के साथ वास करती थी । हे कुष्ठ (कूट) ओषधे ! आप कष्टप्रद रोगों और यातनादायी सभी रोगाणुओं को विनष्ट करें ॥७ ॥

४८६६. यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः । तत्रामृतस्य चक्षणं ततः
कुष्ठो अजायत । स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८

जिस (दिव्यलोक) से नीचे नहीं गिरना होता और जहाँ हिमयुक्त पर्वत का शिखर भाग है, जहाँ अमृत की ज्योति है, वहीं कूट ओषधि का प्राकट्य हुआ है । यही कूट सभी रोगों को दूर करती है । यह पहले दिव्यलोक में अमृतरूप सोम के साथ स्थित थी । हे ओषधे ! आप कष्टप्रद सभी रोगों तथा यातनादायी सभी रोगाणुओं को भी विनष्ट करें ॥८ ॥

४८६७. यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः ।
यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥९ ॥

हे कूट (कुष्ठ) ओषधे ! सभी रोगों का निवारण करने वाली अचूक ओषधिरूप में आपका परिचय सर्वप्रथम राजा इक्ष्वाकु तथा काम के पुत्र ने प्राप्त किया था । वसु ने भी इसी रूप में आपकी जानकारी प्राप्त की थी । इस प्रकार आप सभी रोगों की निवारक श्रेष्ठ ओषधि सिद्ध हों ॥९ ॥

४८६८. शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः । तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥

हे कूट (कुष्ठ) ! तृतीय द्युलोक आपका शीर्षभाग है । आप आधि- व्याधियों की निवारक हैं । विभिन्न सामर्थ्यों से सम्पन्न हे ओषधे ! आप कष्टप्रद रोगों को अधोगामी करके सर्वथा दूर करें ॥१० ॥

[४० - मेधा सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- बृहस्पति अथवा विश्वेदेवा । छन्द- परानुष्टुप् त्रिष्टुप्, २ पुरः ककुम्मती उपरिष्टाद् बृहती, ३ बृहतीगर्भा अनुष्टुप्, ४ त्रिपदार्षी गायत्री ।]

४८६९. यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।

विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥१ ॥

हमारे जो मानसिक छिद्र (दोष) हैं, जो वाणी के छिद्र (दोष) हैं तथा जो क्रोधजन्य दोष हैं, उन सब को समस्त देवशक्तियों के साथ मिलकर बृहस्पतिदेव दूर करें ॥१ ॥

४८७०. मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन ।

सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥२ ॥

हे जलदेव ! आप हमारी मेधा को कलुषित न होने दें । हमारे वेदाभ्यास को क्षीण न होने दें । आप सुखपूर्वक प्रवाहित होते रहें । आपके द्वारा अनुगृहीत होकर हम मेधासम्पन्न और ब्रह्मबल से युक्त हों ॥२ ॥

४८७१. मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ।

शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥३ ॥

(हे द्यावा-पृथिवी !) आप हमारी मेधा को विनष्ट न होने दें । हमारी दीक्षा को हानि न पहुँचने दें । हम जो तपः साधना कर रहे हैं, उसे भी विनष्ट न करें । (जल) हमारी आयु के लिए कल्याणकारी हो । मातृवत् प्रवाह हमारे लिए कल्याणप्रद हो ॥३ ॥

४८७२. या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासतामिषम् ॥४ ॥

हे अश्विनीदेवो ! ज्योतिर्मयी (मेधा, विद्या या रात्रि) हमें पूर्णता दे, अन्धकार से पार करे, हमें शक्ति प्रदान करे।

[४१ - राष्ट्रबल सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- तप । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४८७३. भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।

ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥१ ॥

सबके हितचिन्तक, आत्मज्ञानी ऋषि सृष्टि के प्रारम्भ में तप और दीक्षादि नियमों का पालन करने लगे । उसी से राष्ट्रीय भावना, बल और सामर्थ्य की उत्पत्ति हुई । अतएव ज्ञानी लोग उस (राष्ट्र) के समक्ष विनम्र हों (राष्ट्रसेवा करें) ॥१ ॥

[४२ - ब्रह्मयज्ञ सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- ब्रह्म । छन्द- अनुष्टुप्, २ त्र्यवसाना ककुम्मती पथ्यापंक्ति, ३ त्रिष्टुप्, ४ जगती ।]

४८७४. ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।

अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥१ ॥

ब्रह्म ही यज्ञ का होता है । यज्ञ भी ब्रह्मस्वरूप ही है । ब्रह्म से ही सात स्वरों के ज्ञाता (उद्गातृगण)हुए हैं । अध्वर्युगण भी ब्रह्मशक्ति से ही उत्पन्न हुए हैं । ब्रह्मतत्त्व में ही यज्ञीय हवि भी अन्तर्निहित है ॥१ ॥

४८७५. ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः। शमिताय स्वाहा ॥२॥

घी से भरे हुए स्रुकपात्र, यज्ञवेदी, यज्ञ- प्रक्रिया तथा आहुतियाँ प्रदान करने वाले ऋत्विग्गण- ये सभी ब्रह्म (परमात्मतत्त्व) के ही स्वरूप हैं, शान्तिदायक ब्रह्म के लिए ही यह आहुति समर्पित है ॥२॥

४८७६. अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः।
इममिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥३॥

पापों से मुक्त कराने वाले, श्रेष्ठ रक्षक (इन्द्र) के प्रति हम अपनी बुद्धि समर्पित करते हैं और स्तुतियों का गान करते हैं। हे इन्द्रदेव! यह हव्य स्वीकार करें, इस यजमान की कामनाएँ सत्य (पूर्ण) हों ॥३॥

४८७७. अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ॥४॥

पापों से मुक्ति दिलाने वाले, यज्ञीय वर्षा करने वाले, यज्ञों में सर्वोत्तम पद पर विराजमान, जल को न गिरने देने वाले (अग्निदेव) और अश्विनीकुमारों का हम आवाहन करते हैं। वे हमें इन्द्रियशक्ति और बल प्रदान करें ॥४॥

[४३ - ब्रह्म सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा। देवता- मन्त्रोक्त अथवा ब्रह्म। छन्द- त्र्यवसाना शङ्कुमती पथ्यापंक्ति।]

४८७८. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे। अग्नये स्वाहा ॥१॥

दीक्षा के अनुशासनों के पालनकर्ता और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, अग्निदेव हमें वहीं ले जाएँ। वे हमें मेधाशक्ति प्रदान करें। उन्हीं के निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥१॥

४८७९. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे। वायवे स्वाहा ॥२॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, वायुदेव हमें वहीं ले जाएँ। वे पंचप्राणों को हममें प्रतिष्ठित करें। उन्हीं के निमित्त यह आहुति समर्पित है

४८८०. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे। सूर्याय स्वाहा ॥३॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, सूर्यदेव हमें वहीं पहुँचाएँ। वे हममें दर्शनक्षमता स्थापित करें। यह श्रेष्ठ आहुति उन्हीं को समर्पित है ॥

४८८१. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे। चन्द्राय स्वाहा ॥४॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, चन्द्रदेव हमें वही स्थान प्रदान करें। वे हममें श्रेष्ठ मन की स्थापना करें, उनके लिए यह आहुति अर्पित है

४८८२. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।

सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे। सोमाय स्वाहा ॥५ ॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, सोमदेव हमें भी उसी स्थान की प्राप्ति कराएँ और पोषक रस प्रदान करें ।उन्हीं को यह आहुति अर्पित है।

४८८३. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।

इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे। इन्द्राय स्वाहा ॥६ ॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, इन्द्रदेव हमें वही स्थान उपलब्ध कराएँ ।वे हमें शारीरिक पुष्टि प्रदान करें ।उन्हींको यह आहुति अर्पित है।

४८८४. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।

आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोप तिष्ठतु। अद्भ्यः स्वाहा ॥७ ॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, आपो देव हमें वही स्थान प्राप्त कराएँ। वे हमें अमृतत्व भी प्रदान करें। उन्हीं के निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥७ ॥

४८८५. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।

ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे। ब्रह्मणे स्वाहा ॥८ ॥

दीक्षा के अनुशासनों का पालन करने वाले और तप- साधना करने वाले ब्रह्मवेत्ता जिस परमपद को प्राप्त करते हैं, ब्रह्मा हमें वही स्थान प्राप्त कराएँ ।वे हमें ब्रह्मविद्या की प्रेरणा प्रदान करें ।उन्हीं को यह आहुति अर्पित है।

[४४ - भैषज्य सूक्त]

[ऋषि- भृगु। देवता- अञ्जन, ८-९ वरुण। छन्द- अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा शङ्कुमती उष्णिक्, ५ त्रिपदा निचृत् विषमा गायत्री।]

४८८६. आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे।

तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् ॥१ ॥

हे आञ्जन ! आप मनुष्यों को सौ वर्ष की पूर्ण आयु प्रदान करने वाले हैं। चिकित्सकों के कथनानुसार आप विशेष स्फूर्तिवान् और कल्याणरूप हैं। आप हमें शान्ति और अभय प्रदान करें ॥१ ॥

४८८७. यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः।

सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥२ ॥

हे पुरुष ! आपके शरीर में जो पाण्डु (पीलिया) नामक रोग, स्त्री सम्पर्क द्वारा होने वाला रोग, वातादि द्वारा उत्पन्न अंगभेद रोग अथवा विसर्पक (एग्जीमा-व्रण) आदि जो भी कष्टकारी रोग हों, उन सभी को यह आञ्जन (मणि) आपके शरीर से पृथक् करे ॥२ ॥

४८८८. आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम्। कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम्।

पृथ्वी से उत्पन्न हुआ कल्याणप्रद और मनुष्यों को जीवनी शक्ति प्रदान करने वाला यह आञ्जन (मणि) हमें अमरत्व प्रदान करता है। यह हमें रथ के समान गतिशील और पापमुक्त बनाता है ॥३ ॥

४८८९. प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड। निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥४ ॥

हे (दिव्य) प्राण ! आप हमारे प्राण को संरक्षण प्रदान करें । हे दुःखरहित प्राण ! आप हमारे प्राण को सुख प्रदान करें । हे पापदेवते ! आप दुर्गति (दुःखदायिनी प्रकृति) के बन्धनों से हमें मुक्त कराएँ ॥४ ॥

४८९०. सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम्। वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥५ ॥

हे आञ्जन ! आप समुद्रीय जल के गर्भ तथा बिजलियों के पुष्प (वृष्टि जल के) रूप में जाने जाते हैं । वायु आपके प्राण, सूर्य नेत्र और दिव्यलोक की पोषक धाराएँ आपके लिए रसरूप हैं । ।५ ॥

४८९१. देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः ।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥६ ॥

हे दिव्य आञ्जन ! आप त्रैककुद(तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ) पर्वत पर उत्पन्न हुए हैं । आप हमारी चारों ओर से रक्षा करें । पर्वतों से भिन्न स्थानों पर उत्पन्न होने वाली ओषधियाँ आपकी अपेक्षा कम लाभप्रद होती हैं ॥६ ॥

४८९२. वीऽइदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः ।
अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ॥७ ॥

असुर संहारक और रोग विनाशक यह आञ्जन पर्वत शिखर से नीचे आकर प्रत्येक वस्तु में फैल जाता है । यह समस्त विकारों को विनष्ट कर देता है । यह आक्रामक रोगों का भी निवारण कर देता है ॥७ ॥

४८९३. बह्वीऽइदं राजन् वरुणानृतमाह पूरुषः । तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥८ ।

हे पापनिवारक राजा वरुण ! यह पुरुष प्रातःकाल से लेकर शयन तक अतिशय मिथ्याभाषण कर चुका है । इसे दोष मुक्त करें । हजारों बलों से सम्पन्न हे आञ्जन ओषधे ! आप मिथ्या- भाषण के पाप से हमें मुक्त करें ॥८ ॥

४८९४. यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम । तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥

जल के अधिष्ठाता न मारने योग्य हे वरुणदेव ! जो हम कहते हैं, उसे आप साक्षीरूप में जानें । हे असीम शक्तियुक्त आञ्जन ! सभी पापकर्मों के कुप्रभाव से आप हमें मुक्त रखें ॥९ ॥

४८९५. मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन । तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥१० ।

हे आञ्जन ! मित्र और वरुणदेव दिव्यलोक से भूमि पर पहुँचे, पुनः लौटकर आपके पीछे-पीछे गये । आप सुखोपभोग के लिए उनको यहाँ लेकर आएँ ॥१० ॥

[४५ - आञ्जन सूक्त]

[ऋषि- भृगु । देवता- १-५ अञ्जन, (९ भग) मन्त्रोक्त । छन्द- अनुष्टुप्, ३-५ त्रिष्टुप्, ६ एकावसाना विराट् महाबृहती, ७-१० एकावसाना निचृत् महाबृहती ।]

४८९६. ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम्।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥१ ॥

हे आञ्जन ! जैसे ऋण लेने वाला पुरुष ऋण का बोझ ऋणदाता को सौंप देता है, वैसे ही घातक प्रयोग हेतु भेजी गई कृत्या को, भेजने वाले पुरुष पर ही लौटाते हुए आप दुष्ट हृदय वाले शत्रु की पसलियों को तोड़ दें ॥१ ॥

४८९७. यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥२ ॥

हममें, हमारे पशुओं में तथा हमारे भवनों में जो भी दु:स्वप्न की भाँति भयंकर हो, वह सब दुष्ट हृदय वाले के समीप प्रिय वस्तु के समान पहुँचे ॥२ ॥

४८९८. अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदस: ।

चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिश: प्रदिश: करदिच्छिवास्ते ॥३ ॥

जल की ऊर्जा और सामर्थ्य से वृद्धि को प्राप्त करने वाला, जातवेदा अग्नि से उत्पन्न होने वाला, अपनी सामर्थ्य से चारों दिशाओं में व्याप्त तथा पर्वत पर उत्पन्न होने वाला आञ्जन हमारे निमित्त दिशाओं और उपदिशाओं को मंगलप्रद करे ॥३ ॥

४८९९. चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु ।

ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥४ ॥

हे श्रेष्ठ पुरुष ! चतुर्दिक् शक्ति का विस्तार करने वाली अञ्जनमणि को आपके शरीर पर बाँधते हैं । इसे धारण करने से आपको सभी दिशाओं से निर्भयता प्राप्त हो । आप सूर्य सदृश सभी को प्रकाशित करते हुए स्थिर रहें । सभी प्रजाजन श्रेष्ठ पदार्थों को उपहाररूप में आपके लिए समर्पित करते रहें ॥४ ॥

४९००. आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम् ।

चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्य: परि पात्वस्मान् ॥५ ॥

हे पुरुष ! आप आञ्जन की एक मात्रा को आँखों में लगाएँ, दूसरे को मणिरूप बनाएँ । उसकी एक मात्रा को स्नान हेतु प्रयुक्त करें, एक मात्रा का पान करें । यह चार वीरों की सामर्थ्ययुक्त आञ्जन चार प्रकार के राक्षसी बन्धनों तथा अपने चंगुल में जकड़ने वाले रोगों से हमें संरक्षण प्रदान करे ॥५ ॥

४९०१. अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस

ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥६ ॥

अग्रणी, गुणसम्पन्न अग्निदेव अपनी शत्रुसंतापक सामर्थ्य द्वारा हमारी रक्षा करें । प्राण, अपान, दीर्घजीवन, ब्रह्मवर्चस, सामर्थ्य, तेज, कल्याणकारी जीवन तथा श्रेष्ठ विभूतियों के लिए यह आहुति समर्पित करते हैं ॥६ ॥

४९०२. इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस

ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥७ ॥

देवराज इन्द्र अपने पराक्रम द्वारा हमारी रक्षा करें । प्राण, अपान, दीर्घजीवन , ब्रह्मवर्चस, सामर्थ्य, तेज , कल्याणकारी जीवन तथा श्रेष्ठ विभूतियों के निमित्त यह आहुति समर्पित करते हैं ॥७ ॥

४९०३. सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस

ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥८ ॥

सोमदेव अपनी सौम्य सामर्थ्य द्वारा हमारी रक्षा करें । प्राण, अपान, दीर्घजीवन, ब्रह्मवर्चस ,ओज, तेज, कल्याणकारी जीवन तथा श्रेष्ठ विभूतियों के निमित्त यह आहुति समर्पित करते हैं ॥८ ॥

४९०४. भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा।

भगदेव सौभाग्ययुक्त सामर्थ्य से हमारी रक्षा करें । प्राण, अपान, दीर्घजीवन, ब्रह्मवर्चस , ओज, तेज, मंगलकारी जीवन और उत्तम विभूतियों के निमित्त यह आहुति समर्पित करते हैं ॥९ ॥

४९०५. मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चस
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥१० ॥

मरुद्‌गण अपने गणों की शक्ति द्वारा हमारी रक्षा करें । प्राण, अपान, आयु, तेज, ओज, ब्रह्मवर्चस, सुखी कल्याणकारी जीवन और उत्तम ऐश्वर्य प्राप्ति के निमित्त यह आहुति समर्पित करते हैं ॥१० ॥

[४६ - अस्तृतमणि सूक्त]

[ऋषि- प्रजापति । देवता- अस्तृतमणि ।छन्द- पञ्चपदा मध्येज्योतिष्मती त्रिष्टुप् , २ षट्पदा भुरिक् शक्वरी, ३, ७ पञ्चपदा पथ्यापंक्ति, ४ चतुष्पदा त्रिष्टुप् , ५ पञ्चपदा अतिजगती, ६ पञ्चपदा उष्णिग्गर्भा विराट् जगती ।]

४९०६. प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥१ ॥

सर्वप्रथम प्रजापति ब्रह्मा ने शौर्य की आकांक्षा से अस्तृतमणि को धारण किया था ।हे मनुष्य !इस मणि को हम आयु , तेज, सामर्थ्य और बल की प्राप्ति हेतु (आपके शरीर में) बाँधते हैं ।यह आपको संरक्षण प्रदान करे ।

४९०७. ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः । इन्द्र इव
दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून् वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥२ ॥

हे मणे ! आप उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित तथा जागरूक रहते हुए इसकी सुरक्षा करें । यातना देने वाले असुर आपकी सामर्थ्य का नाश न कर सकें । जिस प्रकार इन्द्रदेव शत्रुओं को विनष्ट करते हैं, उसी प्रकार आप सैन्यशक्ति द्वारा आक्रमण करने वाले शत्रुओं का नाश करें । हे पुरुष ! अस्तृतमणि आपको संरक्षण प्रदान करे ॥२ ॥

४९०८. शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे ।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥३ ॥

घातक प्रहार और हिंसक आक्रमण किये जाते हुए भी इस मणि से पार नहीं पाया जा सकता । इन्द्रदेव ने शत्रुओं द्वारा अवध्य इस मणि के अन्दर दर्शन- शक्ति, प्राणशक्ति और सामर्थ्य को स्थापित किया है । यह मणि अपने धारण करने वाले पुरुष की सुरक्षा करे ॥३ ॥

४९०९. इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव ।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥४ ॥

हे अस्तृत मणे ! हम आपको इन्द्रदेव के कवच से आच्छादित करते हैं । सभी देव भी आपको प्रेरित करें । आप अपने धारककर्ता का संरक्षण करें ॥४ ॥

४९१०. अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते । व्याघ्रः
शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥५ ॥

इस अस्तृतमणि में एक सौ एक प्रकार की शक्तियाँ तथा असीम प्राणबल है । हे मणिधारक पुरुष ! आप शत्रुओं पर बाघ के समान प्रहार करें । जो आपके ऊपर सैन्यशक्ति द्वारा आक्रमण करने के इच्छुक हों, वे परास्त हों । यह अस्तृतमणि आपको पूर्ण संरक्षण प्रदान करे ॥५ ॥

४९११. घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः ।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥६ ॥

घी, दूध और मधु से परिपूर्ण, समस्त देवशक्तियों से अनुप्राणित होने से असीम सामर्थ्ययुक्त, इन्द्रदेव के कवच से युक्त, दीर्घजीवन एवं कल्याणकारी, शारीरिक सुखों की प्रदाता, शक्ति और दिव्य रसों से परिपूर्ण यह अस्तृतमणि धारण करने वाले को संरक्षण प्रदान करे ॥६ ॥

४९१२. यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा ।

सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥७ ॥

हे साधक मनुष्य ! जिस प्रकार से आप सबसे उत्कृष्ट, शत्रुरहित, सजातियों को अपने वशीभूत करने वाले बन सकें, सर्वप्रेरक सवितादेव आपको वैसा ही बनाएँ । यह अस्तृतमणि आपको संरक्षण प्रदान करे ॥७ ॥

[४७ - रात्रि सूक्त]

[ऋषि- गोपथ । देवता- रात्रि । छन्द- पथ्याबृहती, २ पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भा परातिजगती, ३-५, ८-९ अनुष्टुप्, ६ पुरस्ताद् बृहती, ७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।]

४९१३. आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः ।

दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥१ ॥

हे रात्रे ! आपका अन्धकार पृथ्वीलोक और पितृलोक (द्युलोक) सभी स्थानों में संव्याप्त हो गया है । यह अन्धकार तीनों लोकों में संव्याप्त होकर विद्यमान है । पृथ्वी पर मात्र अन्धकार ही व्याप्त है ॥१ ॥

४९१४. न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां नि विशते यदेजति ।

अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि ॥२ ॥

जिसका दूसरा छोर दिखाई नहीं देता, जिसमें सम्पूर्ण विश्व एक ही दिखाई देता है, प्रयत्नशील प्राणी भी इस रात्रि में सो जाते हैं । अन्धकारयुक्त हे रात्रे ! हम सभी विनाशरहित होकर आपसे पार हो जाएँ । हे कल्याणी ! आपके अन्धकार से हम मुक्ति पाएँ ॥२ ॥

४९१५. ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव । अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ।

हे रात्रे ! मनुष्यों के कर्माकर्म का निरीक्षण करने वाले आपके जो निन्यानवे, अट्ठासी और सतहत्तर गण (शक्ति धाराएँ) हैं, उन सबके द्वारा आप हमारा संरक्षण करें ॥३ ॥

४९१६. षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि ।

चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥४ ॥

धन एवं सुख प्रदान करने वाली हे रात्रे ! आप अपने छासठ, पचपन, चौवालिस तथा तैंतीस दिव्य शक्तिधाराओं द्वारा हमें सुरक्षा प्रदान करें ॥४ ॥

४९१७. द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः । तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ।

हे रात्रि ! आपके बाईस तथा कम से कम ग्यारह संरक्षक हैं । हे दिव्यलोक की कन्या रात्रे ! आप उन रक्षकों द्वारा इस समय हमें संरक्षण प्रदान करें ॥५ ॥

[मंत्र क्र. ३ से ५ तक रात्रि की शक्तिधाराओं की गणना में ११ का उल्टा पहाड़ा (९९ से ११ तक) आया है ।]

४९१८. रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।

मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥६ ॥

हे रात्रेदेवि ! आप हमारी रक्षा करें। पापी पुरुष या कुख्यात व्यक्ति हमारे ऊपर अधिकार न कर सकें। चोर हमारी गौओं पर अधिकार न कर सकें तथा भेड़िया हमारी भेड़ों को बलपूर्वक ले जाने में सफल न होने पाए ॥६ ॥

४९१९. माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः। परमेभिः पथिभि स्तेनो धावतु तस्करः। परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥७ ॥

हे रात्रे ! घोड़ों के तस्कर और मनुष्यों को कष्ट पहुँचाने वाले हमारे लिए कष्टदायक न हों। धन को चुराने वाले चोर, दूर के मार्गों से पलायन करें। हमारे प्रति हिंसक भाव से प्रेरित दुष्ट पुरुष भी दूर चले जाएँ ॥७ ॥

४९२०.अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु। हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥८ ॥

हे रात्रे ! जहरीले धुएँ (श्वास) से पीड़ा पहुँचाने वाले सर्प को आप मस्तक रहित कर दें। भेड़िये जैसे हिंसक व्यक्ति के जबड़ों को तोड़ डालें और धन के अपहर्ता को आप खूँटे से बाँधकर दण्डित करें ॥८ ॥

४९२१.त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि। गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः।

हे रात्रे ! हम आपके आश्रय में निवास करते हैं। जब हम शयन करें, उस समय आप सजग रहें। आप हमारी गौओं, अश्वादि पशुओं तथा प्रजाजनों के लिए भी सुखमय आश्रय प्रदान करें ॥९ ॥

[४८- रात्रि सूक्त]

[ऋषि- गोपथ। देवता- रात्रि। छन्द- १ त्रिपदार्षी गायत्री, २ त्रिपदा विराट् अनुष्टुप्, ३ बृहतीगर्भा अनुष्टुप्, ४,६ अनुष्टुप्, ५ पथ्यापंक्ति।]

४९२२. अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि। तानि ते परि दद्मसि ॥१ ॥

हे रात्रे ! जिन्हें हम जानते हैं, (ऐसी प्रकट वस्तुएँ) तथा जो बन्द मंजूषा में (अप्रकट या अज्ञात वस्तुएँ) हैं, उन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सभी साधनों को हम आपके लिए समर्पित करते हैं ॥१ ॥

[रात्रि में मनुष्य के लिए निश्चिन्तता की नींद आवश्यक है। नींद में कोई अपने आश्रित व्यक्तियों या साधनों की रक्षा नहीं कर सकता। उनके लिए समुचित व्यवस्था व्यावहारिक स्तर पर करने के साथ ही उनके प्रति निश्चिन्त होना आवश्यक है। रात्रि में जिसने विश्राम की व्यवस्था बनाई है, उसी दिव्य चेतना को अपने दायित्व सौंपकर सोने से क्रमशः योग युक्त निद्रा का अभ्यास होने लगता है। यहाँ ऋषि ने उसी के सूत्र संकेत दिये हैं।]

४९२३. रात्रि मातरुषसे नः परि देहि। उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥२ ॥

हे माता ! हे रात्रे ! आप अपने पश्चात् उषाकाल के आश्रय में हमें पहुँचा दें। उषा हमें दिन को समर्पित कर दे। दिन पुनः आपको ही सौंप दे ॥२ ॥

४९२४. यत् किं चेदं पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम्।
यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ॥३ ॥

हे रात्रे ! आकाश मार्ग में उड़ने वाले (बाज़ आदि पक्षी), भूमि पर रेंगकर चलने वाले (सर्पादि) तथा पर्वतीय जंगलों में घूमने वाले (बाघ आदि) हिंसक पशुओं से आप हमें संरक्षण प्रदान करें ॥३ ॥

४९२५. सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥४ ॥

हे रात्रे ! आप आगे, पीछे, ऊपर तथा नीचे (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) चारों दिशाओं से हमारी सुरक्षा करें। हे तेजस्विनी रात्रे ! आप हमारी सुरक्षा अवश्य करें; क्योंकि हम आपकी स्तुति करते हैं ॥४ ॥

४९२६. ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति ।
पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ॥५ ॥

जो साधक रात्रि में जप-अनुष्ठान आदि करते हुए जागते रहते हैं । जो गौ आदि पशुओं तथा प्राणियों की सुरक्षा के लिए रात्रि में जागरण करते हैं ।वे ही हमारे प्रजाजनों तथा पशुओं की सुरक्षा के प्रति भी जागरूक रहें ॥५॥

४९२७. वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥६ ॥

हे रात्रे ! हम आपके प्रभाव को भली- भाँति जानते हैं । दीप्तिमती (घृताची) के रूप में आपकी प्रसिद्धि है । भरद्वाज ऋषि आपको इसी नाम से जानते हैं । आप हमारे वैभव की रक्षा के प्रति जागरूक रहें ॥६ ॥

[४९ - रात्रि सूक्त]

[ऋषि- गोपथ, भरद्वाज । देवता- रात्रि । छन्द- त्रिष्टुप् , ६ आस्तार पंक्ति, ७ पथ्यापंक्ति, ९ अनुष्टुप् , १० त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।]

४९२८. इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।
अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥१ ॥

अभीष्ट, चिरयुवा नारी सदृश, अपने को नियन्त्रण में रखने वाली, भगदेव एवं सवितादेव की शक्ति शीघ्रता से प्रवृत्त होने वाली, नेत्रों की अवहेलना करने वाली, यह रात्रि अपनी महत्ता से द्यावापृथिवी को पूर्ण कर देती है ॥१॥

४९२९. अति विश्वान्यरुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः ।
उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः ॥२ ॥

गहन अन्धकार विश्व को आच्छादित करके विराजमान है । यह (रात्रि) विश्व समुदाय को हृदय से चाहती हुई आरोहित हुई है । जिस प्रकार मित्र (सूर्यदेव) विश्व में प्राण संचार करते हैं, उसी प्रकार यह कल्याणकारी रात्रि भी अपनी शक्तियों का संचार करती है ॥२ ॥

४९३०. वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥३ ॥

उत्तम, वरणीय, वन्दनीय, सौभाग्यवती हे रात्रे ! श्रेष्ठ गुणों के साथ आपका अवतरण हो रहा है । यहाँ श्रेष्ठ मनवाली होकर आप हमारा संरक्षण करें । मनुष्यों और गौ आदि पशुओं के कल्याण के निमित्त पैदा होने वाले पदार्थों की भी आप सुरक्षा करें ॥३ ॥

४९३१. सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥४ ॥

यह अभिलाषामयी रात्रि गजसमूह, सिंह, हरिन, गेंडा तथा बाघ आदि पशुओं की क्षमताओं को (तेजस्विता को) ग्रहण कर लेती है । अश्व की स्वाभाविक गति और मनुष्यों की वाक्शक्ति को भी अपने वश में करती है । इस प्रकार स्वयं विशेष रूप से चमकती हुई रात्रि विभिन्न स्वरूपों में दिखाई देती है ॥४ ॥

४९३२. शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥५ ॥

मंगलकारिणी रात्रि तथा उसके स्वामी सूर्यदेव की हम वन्दना करते हैं । हिम (सर्दी) को उत्पन्न करने वाली रात्रि हमारे लिए स्तुति करने योग्य है । हे सौभाग्यवती रात्रे ! आप हमारी उस प्रार्थना को समझें, जिससे हम सभी दिशाओं में संव्याप्त आपकी वन्दना करते हैं ॥५ ॥

४९३३. स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
आसाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥६ ॥

हे तेजस्विनी रात्रे ! राजा द्वारा स्तोताओं की प्रार्थना को स्नेहपूर्वक सुनने के समान ही आप हमारी प्रार्थना से प्रसन्न हों । आप नित्यप्रति प्रकट होने वाले उषाकाल में हम साधकों को सदा वीर सन्तानों और समस्त वैभव-सम्पदा से युक्त करें ॥६ ॥

४९३४. शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ॥७ ॥

हे रात्रे ! आप "शम्या" (विश्राम देने वाली) नाम से जानी जाती हैं । जो शत्रु हमारे धन- वैभव के अपहरणकर्त्ता हैं, उनके प्राणों को संतप्त करती हुई, आप आगमन करें । चोर- लुटेरे राष्ट्र में विद्यमान न रहें तथा उनकी पुन: उत्पन्न होने की सम्भावना भी न रहे ॥७ ॥

४९३५. भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरूपं युवतिर्बिभर्षि ।
चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः ॥८ ॥

हे रात्रे ! आप चमस पात्र के समान ही मंगलकारिणी हैं । अन्धकार के रूप में सर्वत्र व्याप्त हैं तथा गौ की भाँति पोषक रस प्रदान करती हैं । आप हमें परिपुष्ट करती हुई, नेत्र ज्योति प्रदान करें । नक्षत्रों से सुशोभित आकाश की भाँति आप पृथ्वी को भी सजाएँ ॥८ ॥

४९३६. यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥९ ॥

हे तेजस्विनी रात्रे ! चारों ओर हत्या की योजना से आ रहे दुष्टों को आप उल्टे पैर वापस भगा दें । आप उनकी गर्दन और सिर पर प्रहार करें ॥९ ॥

४९३७. प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् । यो मलिम्लुरुपायति स
संपिष्टो अपायति । अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥१० ॥

हे रात्रे ! आप शत्रु के दोनों पैरों, दोनों हाथों को तोड़ डालें, जिससे वह पुन: हत्या का कुत्सित कार्य न कर सके । हमारे समीप आने वाले चोर या हत्यारे को कुचलकर वापस करें, जिससे वह निर्जन वन के सूखे वृक्ष का ही आश्रय प्राप्त करे ॥१० ॥

[५०- रात्रि सूक्त]

[ऋषि- गोपथ । देवता- रात्रि । छन्द- अनुष्टुप् ।]

४९३८. अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि

हे रात्रे ! जहरीली श्वास छोड़ने वाले साँप को आप छिन्न- मस्तक (सिर रहित) करें । भेड़िये की दोनों आँखों को दृष्टि विहीन करके उसे वृक्ष के नीचे समाप्त करें ॥१ ॥

४९३९. ये ते रात्र्यनड्‌वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः । तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा

हे रात्रे ! तीव्रगामी, तीखे सींगों से युक्त भारवाहक आपके जो बैल हैं, उनसे हमें सभी संकटों से पार करें ॥२ ।

४९४०. रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् । गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ॥३ ॥

हे रात्रे !हम शरीरों से सुरक्षित प्रत्येक रात्रि से पार हों, शत्रु नौकारहित यात्रियों की तरह पार न हो सकें ॥३ ॥

४९४१. यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते ।
एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥४ ॥

श्यामाक (साँवा) नामक अन्न के एक बार (जमीन पर) गिरने के बाद पुनः उसको ढूँढ़कर एकत्र कर पाना सम्भव नहीं होता ।हे रात्रे ! जो हमारे पास पाप की दुर्भावना से आ रहा है, उसे आप साँवा की भाँति नष्ट कर दें ॥४

४९४२. अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् । अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥५॥

हे रात्रे ! आप उन सभी प्रकार के अपहर्ताओं को, जो वस्त्र, गौ, बकरी के साथ-साथ घोड़ों को रस्सी से बाँधकर ले जाते हैं, उन्हें आप दूर हटाएँ ॥५ ॥

४९४३. यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु । यदेतदस्मान् भोजय यथेदन्यानुपायसि ॥६॥

स्वर्ण आदि वैभव को बाँटने वाली हे सौभाग्यवती रात्रे ! आप अपना धन हमें प्रदान करें; हम उसका उपयोग कर सकें । वह धन हमारे शत्रुओं को न प्राप्त हो ॥६ ॥

४९४४. उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः । उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥

हे रात्रे ! हम निष्पाप स्तोताओं को आप उषा के नियन्त्रण में सौंप दें, उषा दिन को प्रदान कर दे, दिन हमें संरक्षण प्रदान करता हुआ पुनः आपको सौंप दे । हे तेजस्विनी रात्रे ! इस प्रकार आप हमारी सुरक्षा करें ॥७ ॥

[५१ - आत्मा सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- आत्मा, २ सविता । छन्द- एकावसाना एकपदा ब्राह्मी अनुष्टुप्, २ एकावसाना त्रिपदा यवमध्योष्णिक्]

४९४५. अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे
प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥१ ॥

हम पूर्णतायुक्त हैं, हमारी आत्मा पूर्ण है, हमारे शरीर, शारीरिक अंग, नेत्र, कान, नासिका, प्राण, अपान, व्यान भी परिपूर्ण हैं । हम सभी इन्द्रियों की शक्ति से परिपूर्ण हैं ॥१ ॥

४९४६. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥२ ॥

सर्वप्रेरक सवितादेवता की प्रेरणा से, अश्विनीकुमारों की भुजाओं से और पूषादेव के हाथों से प्रेरित हम (साधक) मनुष्य इस कार्य का शुभारम्भ करते हैं ॥२ ॥

[५२ - काम सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- काम । छन्द- त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पदा उष्णिक् ५ उपरिष्टात् बृहती ।]

४९४७. कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥१ ॥

सर्वप्रथम काम की उत्पत्ति हुई । काम ही मन का प्रथम बीज हुआ । विराट् काम सृष्टि- उत्पादन की ईश्वरीय कामना का सहोदर है । यह यजमान को धन और पुष्टि प्रदान करे ॥१ ॥

४९४८. त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥२ ॥

हे काम !आप सामर्थ्यवान् हैं ।आप सर्वव्यापक, तेजसम्पन्न और मित्रवत् व्यवहार करने वाले के साथ मित्र भाव रखते हैं । आप शत्रुओं को वश में करने वाले वीर हैं, आप यजमान को ओजस् और शक्तिसम्पन्न बनाएँ ॥२ ॥

४९४९.दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये । आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥३

सभी दिशाएँ दुर्लभ फल की कामना करने वाले याजक को अभिलषित फल प्रदान करने के लिए संकल्पित हैं । वे सभी प्रकार के सुख भी प्रदान करें ॥३ ॥

४९५०.कामेन मा काम आगन् हृदयाद् हृदयं परि । यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥४ ॥

हमारी ओर काम के द्वारा ही काम का आगमन हुआ है । हृदय द्वारा हृदय की ओर भी काम का आगमन हुआ है । उन श्रेष्ठ जनों का मन भी हमारे पास आए ॥४ ॥

४९५१. यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥५ ॥

हे काम ! जिस अभिलाषा की पूर्ति के लिए हम आपको हवि प्रदान करते हैं, हमारी वह इच्छा पूर्ण हो । यह हवि आपके लिए समर्पित है, आप इसे स्वीकार करें ॥५ ॥

[५३ - काल सूक्त]

[ऋषि- भृगु । देवता- काल । छन्द- त्रिष्टुप्, ५ निचृत् पुरस्ताद् बृहती, ६-१० अनुष्टुप् ।]

४९५२. कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥१ ॥

काल स्वरूप अश्व विश्वरूपी रथ का वाहक है । वह सात किरणों और सहस्र आँखों वाला है ।वह जरारहित और प्रचुर पराक्रम सम्पन्न है, समस्त लोक उसके चक्र हैं ।उस (अश्व या रथ) पर बुद्धिमान् ही आरोहण करते हैं ॥१

[गतिशीलता अश्व का पर्याय है । काल सबको अपने साथ घसीटता हुआ चलता है । बुद्धिमान् व्यक्ति ही काल-समय पर आरूढ़ होकर चलते हैं । जैसे अश्वारूढ़ व्यक्ति अश्व को नियन्त्रित कर लेता है, वैसे ही बुद्धिमान् लोग अपने समय को सुनियोजित करके उसे सत्प्रयोजनों में नियोजित कर लेते हैं । शेष लोग समय के साथ घिसटते हुए किसी प्रकार अपना समय बिताते हैं ।]

४९५३. सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥२ ॥

वह काल सात चक्रों का वाहक है । (उन चक्रों की) सात नाभियाँ हैं तथा वह अक्ष (धुरा) अमृत-अनश्वर है । वह प्रथम देव 'काल' सभी भुवनों को प्रकट करता हुआ सतत गतिशील है ॥२ ॥

[विश्व ब्रह्माण्ड की ७ परिधियाँ कही गयी हैं, काल उन सभी को संचालित किये हुये है । समय विभाजन में ७ दिन मुख्य आधार हैं, सात के बाद वही चक्र पुनः दोहराया जाता है । काल चक्र विभाग में सात ऋतुओं का भी उल्लेख मिलता है ।]

४९५४. पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥३ ॥

विश्व ब्रह्माण्डरूप भरा हुआ कुम्भ, काल के ऊपर स्थापित है । संत- ज्ञानीजन उस काल को (दिवस-रात्रि आदि) विभिन्न रूपों में देखते हैं । वह काल इन दृश्यमान प्राणियों के सामने प्रकट होकर उन्हें अपने में समाहित कर लेता है । मनीषीगण उस काल को विकारों से रहित आकाश के समान (निर्लेप) बताते हैं ॥३ ॥

४९५५. स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥४ ॥

यह काल समस्त भुवनों का पोषण करने वाला तथा सभी में श्रेष्ठ रीति से संव्याप्त है । वही भूतकाल में इन (प्राणियों) का पिता और अगले जन्म में इनका पुत्र हो जाता है । इस काल से उत्तम कोई भी तेज नहीं है ॥४ ॥

४९५६. कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥५ ॥

काल ने ही इस दिव्यलोक को उत्पन्न किया और इसी ने सभी प्राणियों की आश्रयभूता भूमि को उत्पन्न किया है । भूत, भविष्यत् और वर्तमान सभी इस अविनाशी काल के आश्रित रहते हैं ॥५ ॥

४९५७. कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः । काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ।

काल ने ही इस सृष्टि का सृजन किया है । काल की प्रेरणा से ही सूर्यदेव इस संसार को प्रकाशित करते हैं । इसी काल के आश्रित समस्त प्राणी हैं । नेत्र भी इसी काल के आश्रित होकर विविध पदार्थों को देखते हैं ॥६ ॥

४९५८काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः।

काल में ही मन, काल में ही प्राण तथा काल में ही सभी नाम समाहित हैं , जो समयानुसार प्रकट होते रहते हैं । काल की अनुकूलता से ही समस्त प्रजाजन आनन्दित होते हैं ॥७ ॥

४९५९. काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥८ ॥

तपःशक्ति, महानता (ज्येष्ठता) तथा ब्रह्मविद्या इसी काल में सन्निहित है । काल ही सभी (स्थावर- जङ्गम विश्व- ब्रह्माण्ड) का ईश्वर, समस्त प्रजा का पालक तथा सबका पिता है ॥८ ॥

४९६०.तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् । कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ।

यह संसार काल द्वारा प्रेरित, उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ तथा उसी के आश्रय में प्रतिष्ठित भी है । काल ही अपनी ब्राह्मी चेतना को विस्तृत करके , परमेष्ठी (प्रजापति) को धारण करता है ॥९ ॥

४९६१. कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयम्भूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥१० ॥

सृष्टि के प्रारम्भ में काल ने सर्वप्रथम प्रजापति का सृजन किया, तत्पश्चात् प्रजाजनों की रचना की । काल स्वयंभू (स्वयं उत्पन्न) है । सबके द्रष्टा कश्यप काल से प्रादुर्भूत हुए तथा काल से ही तपःशक्ति उत्पन्न हुई ॥१० ॥

[५४ - काल सूक्त]

[ऋषि- भृगु । देवता- काल । छन्द- अनुष्टुप् , २ त्रिपदार्षी गायत्री, ५ त्र्यवसाना षट्पदा विराडष्टि ।]

४९६२. कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः ।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥१ ॥

काल से आप:, ज्ञान तप:शक्ति तथा दिशाएँ उत्पन्न हुई हैं । काल की सामर्थ्य से सूर्य उदित होता है, पुन: उसी (काल) में प्रविष्ट भी हो जाता है ॥१ ॥

४९६३. कालेन वात: पवते कालेन पृथिवी मही । द्यौर्मही काल आहिता ॥२ ॥

काल की प्रेरणा से वायुदेव प्रवाहित होते हैं, काल से यह विशाल पृथ्वी गतिमान् हो रही है , विशाल दिव्यलोक भी काल के आश्रय में ही स्थित है ॥२ ॥

४९६४. कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा ।
कालादृच: समभवन् यजु: कालादजायत ॥३ ॥

काल के द्वारा पूर्व समय में भूत और भविष्य को उत्पन्न किया गया है । काल से ही ऋग्वेद की ऋचाएँ और यजुर्वेद के मन्त्र भी प्रकट हुए हैं ॥३ ॥

४९६५. कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम् ।
काले गन्धर्वाप्सरस: काले लोका: प्रतिष्ठिता: ॥४ ॥

काल ने ही क्षयरहित यज्ञ-भाग को देवत्व संवर्द्धक शक्तियों के निमित्त प्रेरित किया है । काल से ही गन्धर्व और अप्सराओं का प्रादुर्भाव हुआ । समस्त लोक काल में ही प्रतिष्ठित हैं ॥४ ॥

४९६६.कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठत: । इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्या: । सर्वाँल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा काल: स ईयते परमो नु देव:

अंगिरा और अथर्वा ऋषि अपने उत्पादनकर्त्ता इस काल में ही अधिष्ठित हैं । इहलोक, परलोक और पुण्यलोकों तथा पवित्र मर्यादाओं को जीतकर वह कालदेव ब्रह्म ज्ञान से युक्त होकर सर्वत्र व्याप्त हो जाता है ॥५ ॥

[५५ - रायस्पोष प्राप्ति सूक्त]

[ऋषि- भृगु । देवता- अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप् , २ आस्तार पंक्ति , ५ त्र्यवसाना पञ्चपदा पुरस्ताज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् , ६ निचृत् बृहती ।]

४९६७. रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥१ ॥

जैसे प्रत्येक रात्रि में गमन न करने वाले घोड़े को घास प्रदान करते हैं, वैसे हे अग्ने ! हम आपको हवि प्रदान करते हैं ।आप धन, पुष्टि तथा अन्न प्रदान करें, जिससे प्रसन्न होकर आपके समीप रहते हुए कष्ट से मुक्त रहें ॥१ ॥

४९६८. या ते वसोर्वात इषु: सा त एषा तया नो मृड ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप आश्रय प्रदाता हैं । आप अपने वायुरूप बाण से हमें सुखी करें । हे अग्निदेव ! आपके समीप वास करने वाले हम कष्टरहित स्थिति में धन, पुष्टि तथा अभीष्ट अन्नादि से सदैव आनन्दित रहें ॥२ ॥

४९६९. सायंसायं गृहपतिर्नो अग्नि: प्रात:प्रात: सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥३ ॥

गार्हपत्य अग्निदेव प्रत्येक प्रात:-सायं हम सभी को श्रेष्ठ मन वाला बनाते हैं । हे अग्ने ! आप श्रेष्ठ सम्पदाएँ प्रदान करके हमारी वृद्धि करें । आपको हविष्यान्न से प्रदीप्त करते हुए हम शारीरिक परिपुष्टता प्राप्त करें ॥३ ॥

४९७०. प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता।

वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥४ ॥

गार्हपत्य अग्निदेव हमें प्रत्येक प्रातः - सायं श्रेष्ठ मन प्रदान करने वाले हैं । हे अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ वैभव देते हुए हमारी वृद्धि करें । आपको हविष्यात्र से प्रदीप्त करते हुए हम सौ वर्ष का जीवन पूर्ण करें ॥४ ॥

४९७१. अपश्चादग्धान्नस्य भूयासम्। अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये।

सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥५ ॥

जले हुए अन्न भाग से हम मुक्त रहें ।अन्न के सेवनकर्त्ता अन्नपति रुद्ररूप अग्निदेव को नमस्कार है ।सभा में उपस्थित आप सभी इसकी सुरक्षा करें ।जो सभा में पधारने वाले सभासद् हैं, वे भी हमारी सभा का संरक्षण करें ।

४९७२. त्वमिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्य श्नवत्।

अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ॥६ ॥

बहुतों द्वारा आवाहित ऐश्वर्ययुक्त (हे इन्द्राग्ने !) आपके उपासक हम सब अन्न का उपभोग सम्पूर्ण आयु तक कर सकें । जो साधक घोड़े को घास देने के समान ही प्रतिदिन आपके निमित्त बलिवैश्व यज्ञ करते हैं, उन्हें आप जीवन पर्यन्त प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥६ ॥

[५६ - दुःस्वप्ननाशन सूक्त]

[ऋषि- यम । देवता- दुःस्वप्न । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

स्वप्न व्यापक संदर्भों में प्रयुक्त होने वाला शब्द है । कोशग्रंथों में सोते समय मानसिक रूप से दिखने वाले दृश्यों के अतिरिक्त मानसिक कल्पनाएँ, दर्शन आदि संदर्भ में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है । सत्पुरुष भविष्य के लिए जो श्रेष्ठ वैचारिक ताना-बाना बुनते हैं, उन्हें भी स्वप्न कहा जाता है । ऐसे स्वप्नों को साकार करना, गौरव और सौभाग्य का विषय माना जाता है । विधाता ने भी सृष्टि संरचना का स्वप्न सँजोया था, ऐसा इस सूक्त के ऋषि का मत है । स्वप्न में बड़ी शक्ति है; किन्तु बहुधा वे दुःस्वप्न के रूप में भी प्रकट हो जाते हैं । जिसका निवारण बहुत आवश्यक हो जाता है । उनका उद्भव चित्त की गहराइयों से होता है, अतः उनका निवारण भी गहरे मानसिक संकल्पों के द्वारा ही संभव होता है । इस सूक्त का उपयोग दुःस्वप्नों के निवारणार्थ किए जाने का उल्लेख सूत्रग्रंथों में है-

४९७३. यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः।

एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥१ ॥

(हे दुःस्वप्न !) तुम यमलोक से पृथ्वी पर आए हो, निःसंकोच- निर्भय होकर तुम स्त्रियों और मरणधर्मा मनुष्यों के समीप पहुँच जाते हो । तुम प्राणधारी आत्माओं के हृदयस्थल में दुःस्वप्न का निर्माण कर देते हो और उनके रथ (मनोरथ) पर साथ ही बैठकर जाते हो ॥१ ॥

[स्वप्न यम के लोक से आते हैं । यम अनुशासन के देवता हैं । उनके प्रतिनिधि चित्रगुप्त (विचित्र और गुप्त रूप से) अवचेतन मस्तिष्क-चित्त में स्थित रहते हैं । जब स्थूल मस्तिष्क विश्राम करने लगता है, तभी अवचेतन में समाहित भले-बुरे विचार अपना रूप प्रकट करने लगते हैं । अपने ही कुसंस्कार दुःस्वप्न बनकर मनुष्य के मनोरथों के साथ जुड़ जाते हैं ।]

४९७४. बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि।

ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥२ ॥

हे दुःस्वप्न ! सबके स्रष्टा (स्व-स्व कर्मानुसार) आबद्धकर्त्ता ने रात्रि के उद्भव से पूर्व एक दिन तुम्हें देखा था । उसी समय से तुम इस जगत् में संव्याप्त हो । वैद्यों से तुम अपने स्वरूप को छिपा लेते हो ॥२ ॥

[दुःस्वप्न कठिन रोग की तरह लोगों को दुखी करते हैं ; किन्तु काय चिकित्सक इस रोग का निदान नहीं कर पाते ।]

४९७५. बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन्।

तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्व रानशानाः ॥३ ॥

तीव्र रूप से गतिशील, महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर स्वप्न असुरों के समीप से देवताओं के निकट पहुँचा। उस स्वप्न को तैंतीस देवों ने सामर्थ्य प्रदान की ॥३ ॥

[दुःस्वप्न आसुरी प्रवृत्तियों में से प्रकट होते हैं तथा मन के साथ जुड़कर शरीरस्थ देवशक्तियों मन, बुद्धि आदि के संयोग से सशक्त होकर प्रभावी होते हैं ।]

४९७६. नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम्।

त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥४ ॥

इस स्वप्न में जिनका वार्तालाप चलता है, उन्हें न तो पितरगण जानते हैं और न देवगण । वरुणदेव द्वारा उपदिष्ट नेतृत्वकर्ता आदित्य इस स्वप्न के अप् तत्त्व (सृष्टि के मूल क्रियाशील तत्त्व) से उत्पन्न त्रित (त्रिगुणात्मक सृष्टि) में स्थापित करते हैं ॥४ ॥

[काया का वरण करने वाले जीवात्मा के अनुशासन में स्व प्रकाशित अन्तःकरण से उत्पन्न त्रित-मन, बुद्धि एवं चित्त में स्वप्न स्थापित होते हैं ।]

४९७७. यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः ।

स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥५ ॥

जिस स्वप्न के प्रभाव से दुष्ट- दुराचारी भयंकर फल प्राप्त करते हैं और पुण्यात्मा पुण्यकर्मों के प्रभाव से दीर्घायु को भोगते हैं, ऐसे हे स्वप्न ! तुम परम बन्धु (परमात्मा या जीवात्मा) के साथ रहते हुए स्वर्गीय सुखों का आनन्द पाते हो तथा तपाये गये मन से उत्पन्न होते हो ॥५ ॥

[मन में जो भाव पककर अवचेतन तक पहुँच जाते हैं; वे ही स्वप्नों में प्रकट होते हैं। मानसिक संकल्पों के तपने-परिपाक होने से ही स्वप्न उपजते हैं। वे दुष्ट स्वभाव वालों के लिए भयंकर तथा सद्भाव वालों के लिए आनन्दप्रद होते हैं ।]

४९७८. विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते ।

यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥६ ॥

हे स्वप्न ! तुम्हारे सभी साथी परिजनों को हम जानते हैं, तुम्हारे जो अधिपति हैं, उनसे भी हम परिचित हैं। हमारी यशस्विता (श्रेष्ठ कर्तृत्व) द्वारा दुःस्वप्नों से हमारी रक्षा करो और हमारे विद्वेषियों को हमसे दूर ले जाओ ॥६

[५७ - दुःस्वप्ननाशन सूक्त]

[ऋषि- यम । देवता- दुःस्वप्न । छन्द- अनुष्टुप् , २ त्रिपदा त्रिष्टुप्, ३ त्र्यवसाना चतुष्पदा त्रिष्टुप् , ४ षट्पदा उष्णिक् बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी, ५ त्र्यवसाना पञ्चपदा परशाक्वरातिजगती ।]

४९७९. यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति । एवा दुष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि ॥

'जिस प्रकार (चन्द्रमा की) कलाएँ (क्रमशः) बढ़ती-घटती हैं, जैसे (अश्व के) खुरों से (कदमों से क्रमशः) मार्ग तय किया जाता है तथा जिस प्रकार ऋण (क्रमशः) चुकाया जाता है; उसी प्रकार हम दुःस्वप्नजन्य सभी अनिष्टों को अप्रिय शत्रुओं पर फेंकते हैं ॥१ ॥

४९८०. सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगुः सं कला अगुः ।

समस्मासु यद् दुष्वप्न्यं निर्द्विषते दुष्वप्न्यं सुवाम ॥२ ॥

जिस प्रकार राजा (युद्ध के लिए) संघबद्ध होते हैं, जैसे ऋणभार (थोड़ा-थोड़ा जुड़ते हुए) इकट्ठा हो जाता है, जैसे कुष्ठ आदि रोग (थोड़ा-थोड़ा करके) बढ़ जाते हैं तथा कलाएँ संयुक्त होकर (पूर्ण चन्द्र का) आकार बनाती हैं, उसी प्रकार दु:स्वप्न बढ़ते हैं । हम दु:स्वप्नों को द्वेष करने वालों की ओर धकेलते हैं ॥२ ॥

४९८१. देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न । स मम यः पापस्तद्

द्विषते प्र हिण्मः । मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥३ ॥

हे देवपत्नियों के गर्भ (पुत्र) , यम के हाथ, स्वप्न !आप हमें अपना मंगलप्रद भाग प्रदान करें तथा आपके अनिष्ट भाग को हम शत्रुओं की ओर प्रेरित करते हैं ।हे स्वप्न: !आप काले पक्षी के मुख दर्शन के समान न हों ॥३

४९८२. तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नीनाहम् ।

अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ॥४ ॥

हे स्वप्न ! आपके सम्बन्ध में हम भली प्रकार जानते हैं । जिस प्रकार घोड़ा शरीर को झटककर धूलि को झाड़ देता है और काठी पर रखी वस्तु को गिरा देता है, उसी प्रकार गौओं तथा गृह से सम्बन्धित हमारे दु:स्वप्नों के प्रभाव को आप हमसे भिन्न देवत्व के विरोधी दुष्टों पर फेंक दें ॥४ ॥

४९८३. अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम् ।

नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि । दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥५ । ।

हे देव ! हमसे भिन्न जो देवों के निन्दक दुष्ट शत्रु हैं, वे दु:स्वप्न जन्य कुप्रभाव को आभूषण के समान धारण करें । दु:स्वप्न से उत्पन्न कुप्रभाव को आप हमसे नौ हाथ तक दूर हटाएँ । दु:स्वप्नजन्य दुष्प्रभाव को हम विद्वेषी शत्रुपक्ष की ओर प्रेरित करते हैं ॥५ ॥

[५८ - यज्ञ सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- यज्ञ अथवा मन्त्रोक्त । छन्द- त्रिष्टुप् , २ पुरोऽनुष्टुप् त्रिष्टुप् , ३ चतुष्पदा अतिशक्वरी, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् , ६ जगती ।]

४९८४. घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती ।

श्रोत्रं चक्षुः प्राणोच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥१ ॥

दैवी शक्तियों के साथ मन लगाकर अविच्छिन्न गति से प्रदान की गई घृत (तेज) की आहुति से संवत्सर की वृद्धि होती है । हमारे प्राण, कान, नाक, तेज और आयु अविच्छिन्न रहें ॥१ ॥

४९८५. उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे ।

वर्चो जग्राह पृथिव्य१न्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता ॥२ ॥

प्राण हमें चिरजीवी बनाएँ, हम प्राणों का आवाहन करते हैं । पृथ्वी, अन्तरिक्ष, सोम, बृहस्पति और विशिष्ट पुष्टिदाता सूर्यदेव ने हमारे लिए तेजस्विता को धारण किया है ॥२ ॥

४९८६. वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ।

यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ॥३ ॥

हे द्यावापृथिवी ! आप तेजस्विता संगृहीत करने वाली हैं ।उसे प्राप्त करके हम पृथ्वी पर संचरित करेंगे । यशस्विता के साथ हमें गौओं की प्राप्ति हो ।हम गौओं और कीर्ति को पाकर पृथ्वी पर विचरण योग्य बन सकें ॥

४९८७. व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥४ ॥

(हे मनुष्यो !) आप गोशाला का निर्माण करें, वह निश्चित रूप से आपका पोषण करने में सक्षम है । आप बड़े-बड़े कवचों को सिलकर तैयार करें । अपनी सुरक्षा हेतु लोहे की सुदृढ़ नगरियों को इस प्रकार बनाएँ, जिससे शत्रुपक्ष आक्रमण न कर सके । आपके अन्न, जल आदि रखने के पात्र भी चुएँ नहीं, उन्हें सुदृढ़ बनाएँ ॥४ ॥

४९८८. यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥५ ॥

यज्ञ के चक्षु और मुख (अग्नि) विशेष रूप से पोषण करने वाले हैं ।हम वाणी, श्रोत्र तथा मन को संयुक्त करके उन्हें आहुति अर्पित करते हैं । विश्वकर्मा द्वारा विस्तारित इस यज्ञ में श्रेष्ठ विचारों वाले सभी देव पधारें ॥५ ॥

४९८९. ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम्।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥६ ॥

जो देवों के ऋत्विज् एवं पूज्य हैं, जिनके निमित्त हविष्यान्न समर्पित करने का विधान है, ऐसे सभी देवगण अपनी शक्तियों के साथ इस यज्ञ में आकर हमारे द्वारा प्रदत्त हवि पाकर परितृप्त हों ॥६ ॥

[५९ - यज्ञ सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- अग्नि । छन्द- गायत्री, २ -३ त्रिष्टुप् ।]

४९९०. त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों के बीच व्रतों के संरक्षक हैं और यज्ञों में स्तुति योग्य हैं ॥१ ॥

४९९१. यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः।
अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥२ ॥

हे देवगण ! आपके व्रत- अनुशासन से अनभिज्ञ हम लोग जो भी त्रुटियाँ करें, उन्हें यज्ञीय व्रतों के ज्ञाता अग्निदेव अवश्य पूर्ण करें । सोमपूजक ब्रह्मनिष्ठों के समान ही अग्निदेव उस स्थान पर विराजमान हैं ॥२ ॥

४९९२. आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम्।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ॥३ ॥

हम देवत्व के मार्ग पर गतिमान् हों । हमारा वह कार्य अनुकूलतापूर्वक पूर्ण हो । वे ज्ञानी अग्निदेव निश्चित रूप से होता हैं । वे ऋतुओं और यज्ञों को समर्थ बनाएँ ॥३ ॥

[६० - अङ्ग सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- मन्त्रोक्त, वाक् । छन्द- पथ्यावृहती, २ ककुम्मती पुर उष्णिक्]

४९९३. वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥१ ॥

हमारे मुख में वाणी, नासिका में प्राण, नेत्रों में उत्तम दृष्टि, कानों में श्रवण शक्ति, श्वेत रंग से रहित केशों में सौन्दर्य रहे । हमारे दाँत अक्षुण्ण तथा भुजाएँ बलिष्ठ रहें ॥१ ॥

४९९४. ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः। प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥२ ॥

हमारे ऊरुओं (जंघाओं) में ओज, पिंडलियों में गतिशीलता और पैरों में स्थिर रहने की सामर्थ्य विद्यमान रहे । हमारे सभी शारीरिक अंग-अवयव नीरोग रहें तथा आत्मबल गिरे नहीं ॥२ ॥

[६१ - पूर्ण आयु सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- ब्रह्मणस्पति । छन्द- विराट् पथ्याबृहती ।]

४९९५.तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय । स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे।

हम शरीर के अंगों, दाँतों की स्वस्थता सहित पूर्ण आयुष्य प्राप्त करें । हे पवमान(अग्निदेव) ! आप सुखपूर्वक हमारे यहाँ प्रतिष्ठित रहें और स्वर्गलोग में हमें सुख से परिपूर्ण रखें ॥१ ॥

[६२ - सर्वप्रिय सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- ब्रह्मणस्पति । छन्द- अनुष्टुप्]

४९९६. प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु । प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ।

हे अग्निदेव ! आप हमें देवताओं एवं राजाओं का प्रिय बनाएँ । शूद्रों, आर्यों आदि सभी दर्शकों का भी प्रिय पात्र बनाएँ ॥१ ॥

[६३- आयुवर्धन सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- ब्रह्मणस्पति । छन्द- विराट् उपरिष्टाद् बृहती]

४९९७. उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।

आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥१ ॥

हे ज्ञान के स्वामी (ब्रह्मणस्पते) ! आप स्वयं उठकर देवशक्तियों को यज्ञीय प्रयोजनों के लिए प्रेरित करें । आप यजमान की आयुष्य, प्राण (जीवनीशक्ति), प्रजा, पशुधन तथा कीर्ति को भी बढ़ाएँ ॥१ ॥

[६४- दीर्घायु सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- अग्नि । छन्द- अनुष्टुप्]

४९९८.अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे । स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु।

जातवेदा अग्निदेव के लिए हम समिधा लेकर आये हैं । समिधाओं से प्रदीप्त हुए अग्निदेव हमें श्रद्धा और मेधा प्रदान करें ॥१ ॥

४९९९.इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि । तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च।

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! जिस प्रकार हम आपको समिधाओं से प्रवृद्ध करते हैं, उसी प्रकार आप हमें सन्तानरूप प्रजा और धन सम्पदाओं से बढ़ाएँ- सम्पन्न बनाएँ ॥२ ॥

५०००.यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि । सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ।

हे अग्निदेव ! आपके निमित्त हम जो भी काष्ठ लाकर रखते हैं, वे सभी हमारे निमित्त कल्याणकारी हों । हे तरुण अग्निदेव ! आप इन समिधाओं का सेवन करें ॥३ ॥

५००१. एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद् भव । आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ।

हे अग्निदेव ! आपके निमित्त ये समिधाएँ लाई गई हैं, इनसे आप प्रज्वलित हों । आप हम समिधाधानकर्ताओं को दीर्घ आयुष्य प्रदान करें । आप हमारे आचार्य को भी अमरता प्रदान करें ॥४ ॥

[६५- सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- जातवेदा, सूर्य । छन्द- जगती ।]

५००२. हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽ बिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥१ ॥

हरि (दुःखहर्ता) सुपर्ण (सूर्यदेव) अपनी तेजस्विता से आकाश पर आरूढ़ होते हैं । हे जातवेदा सूर्यदेव ! आकाश में आरूढ़ होते समय जो अवरोधक आपको हानि पहुँचाते हैं , उन्हें आप अपने संहारक तेज से विनष्ट करें । निर्भय होकर आप अपने प्रचण्ड पराक्रम से द्युलोक पर आरोहण करें ॥१ ॥

[६६ - असुरक्षयणम् सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- जातवेदा , सूर्य, वज्र । छन्द- अतिजगती ।]

५००३. अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति ।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः ॥ १ ॥

हे जातवेदा ! जो मायावी राक्षस लौहपाश और लौहजाल हाथ में लेकर विचरण करते हैं, उन सभी को हम आपके तेज से नष्ट करते हैं ।आप हजारों नोकों (रश्मियों) वाले वज्र से शत्रुओं का संहार करके हमारी रक्षा करें ॥

[६७ - दीर्घायु सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- सूर्य । छन्द- प्राजापत्या गायत्री ।]

५००४. पश्येम शरदः शतम् ॥१ ॥
५००५. जीवेम शरदः शतम् ॥२ ॥
५००६. बुध्येम शरदः शतम् ॥३ ॥
५००७. रोहेम शरदः शतम् ॥४ ॥
५००८. पूषेम शरदः शतम् ॥५ ॥
५००९ भवेम शरदः शतम् ॥६ ॥
५०१०. भूयेम शरदः शतम् ॥७ ॥
५०११. भूयसीः शरदः शतात् ॥८ ॥

(हे सूर्यदेव !) हम सौ वर्षों तक देखें । हम सौ वर्ष तक जीवित रहें । हम सौ वर्ष तक ज्ञान- सम्पन्न रहें । हम सौ वर्ष तक निरंतर वृद्धि करते रहें । हम सौ वर्ष तक परिपुष्ट रहें । हम सौ वर्ष तक सन्तान आदि के प्रभाव से भली प्रकार सम्पन्न रहें । सौ वर्ष से भी अधिक समय तक हम जीवित रहें ॥१-८ ॥

[६८ - वेदोक्तकर्म सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- कर्म । छन्द- अनुष्टुप् ।]

५०१२. अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥१ ॥

हम व्यापक और अव्यापक (प्राण तत्त्व) के बिल (मर्म या गुह्य आश्रय स्थल) में कुशलतापूर्वक प्रवेश करते हैं । उनके ज्ञान के उद्धरण द्वारा हम कर्मानुष्ठान करते हैं ॥१ ॥

[जो प्राण हमारे शरीरों में संव्याप्त है तथा जो व्याप्त नहीं है, उनका मर्म समझकर उनके सदुपयोग के ज्ञान के आधार पर कर्म का ताना-बाना बुनना अभीष्ट है ।]

[६९- आपः सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- आपः देव । छन्द- आसुरी अनुष्टुप्, २ साम्नी एकावसाना अनुष्टुप्, ३ आसुरी गायत्री, ४ साम्नी उष्णिक् ।]

५०१३. जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१ ॥

(हे देवगण !) आप आयु सम्पन्न हैं । हम भी आयुष्मान् हों, हम पूर्ण आयु (१०० वर्ष) तक जीवित रहें ॥१ ॥

५०१४. उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥२ ॥

आप दीर्घ आयु से युक्त हैं, हम भी दीर्घायु सम्पन्न हों, हम सम्पूर्ण आयु पर्यन्त जीवन धारण किये रहें ॥२ ॥

५०१५. संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥३ ॥

आप श्रेष्ठ जीवनयापन करने वाले हैं, हम भी श्रेष्ठ जीवनयापन करें और सम्पूर्ण आयु तक जियें ॥३ ॥

५०१६. जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥४ ॥

हे देवगण ! आप जीवन युक्त हैं, हम भी जीवन सम्पन्न रहें, पूर्ण आयु तक जीवन धारण किये रहें ॥४ ॥

[७० - पूर्णायु सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- इन्द्र, सूर्य । छन्द- त्रिपदा गायत्री ।]

५०१७. इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् । सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जीवनयुक्त रहें । हे सूर्यदेव ! आप जीवन सम्पन्न रहें । हे देवशक्तियो ! आप भी जीवन्त रहें । हम भी चिरकाल तक जीवन धारण किये रहें ॥१ ॥

[७१-वेदमाता सूक्त]

[ऋषि- ब्रह्मा । देवता- गायत्री । छन्द- त्र्यवसाना पञ्चपदा अतिजगती ।]

५०१८. स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥१ ॥

हम साधकों द्वारा स्तुत (पूजित) हुई, अभीष्ट फल प्रदान करने वाली वेदमाता (गायत्री) द्विजों को पवित्रता और प्रेरणा प्रदान करने वाली हैं । आप हमें दीर्घ जीवन प्राणशक्ति, सुसन्तति, श्रेष्ठ पशु (धन), कीर्ति, धन- वैभव और ब्रह्मतेज प्रदान करके ब्रह्मलोक के लिए प्रस्थान करें ॥१ ॥

[७२ - परमात्मा सूक्त]

[ऋषि- भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा । देवता- परमात्मा, समस्त देवगण । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

**५०१९. यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥१ ॥**

जिस कोश से हमने वेद को निकाला है, उसी स्थान में उसे (वेद को) पुनः प्रतिष्ठित करते हैं । ज्ञान की शक्ति (वीर्य) से जो अभीष्ट कर्म किया गया है, देव शक्तियाँ उस तप के द्वारा हमारा संरक्षण करें ॥१ ॥

॥ इत्येकोनविंशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ अथ विंशं काण्डम् ॥

[सूक्त-१]

[ऋषि- १-३ क्रमशः विश्वामित्र, गौतम, विरूप । देवता- १-३ क्रमशः इन्द्र, मरुद्गण, अग्नि । छन्द- गायत्री ।]

५०२०. इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१ ॥

हे परम बलशाली इन्द्रदेव ! अभिषुत सोम का पान करने के निमित्त हम आपका आवाहन करते हैं । आप मधुर सोम का पान करें ॥१ ॥

५०२१. मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥२ ॥

दिव्यलोक के वासी, तेजस्विता- सम्पन्न हे मरुद्गण ! आप जिन यजमानों के यज्ञस्थल (घर) पर सोमपान करते हैं, वे निश्चित ही चिरकाल तक आपके द्वारा संरक्षित रहते हैं ॥२ ॥

५०२२. उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥३ ॥

बैलों द्वारा (कृषिकार्य से) उत्पन्न अन्न, गौओं द्वारा उत्पन्न दुग्ध, घृतादि रस तथा सोमरस को हवि के रूप में ग्रहण करने वाले अग्निदेव का महान् स्तोत्रों के द्वारा हम पूजन करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-२]

[ऋषि- गृत्समद या मेधातिथि । देवता- मरुद्गण, २ अग्नि, ३ इन्द्र, ४ द्रविणोदा । छन्द- एकावसाना विराट् गायत्री, ३ एकावसाना आर्ची उष्णिक् , ४ एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप् ।]

५०२३. मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥१ ॥

सोमरस को पवित्र करने वाले ऋत्विक् (पोता) द्वारा ऋतु के अनुरूप श्रेष्ठ स्तुतियों के साथ समर्पित सोमरस का वीर मरुद्गण पान करें ॥१ ॥

५०२४. अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥२ ॥

यज्ञाग्नि को प्रज्वलित रखने वाले ऋत्विक् (आग्नीध्र) द्वारा ऋतु के अनुरूप श्रेष्ठ स्तुतियों के साथ समर्पित सोमरस का अग्निदेव पान करें ॥२ ॥

५०२५. इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥३ ॥

यज्ञ का संचालन करने वाले ऋत्विक् (ब्राह्मणाच्छंसी) द्वारा ऋतु के अनुरूप श्रेष्ठ स्तुतियों के साथ समर्पित सोमरस का यज्ञ के ब्रह्मा (संगठक) इन्द्रदेव पान करें ॥३ ॥

५०२६. देवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥४ ॥

सोमरस को पवित्र करने वाले ऋत्विक् (पोता) द्वारा पान ऋतु के अनुरूप श्रेष्ठ स्तुतियों के साथ समर्पित सोमरस का धनप्रदाता द्रविणोदा देवता करें ॥४ ॥

[सूक्त-३]

[ऋषि- इरिम्बिठि । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५०२७. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में पधारें । यह सोमरस आपको समर्पित है, इसका पान करके इस श्रेष्ठ आसन पर विराजमान हों ॥१ ॥

५०२८. आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! मन्त्र सुनते ही (संकेत मात्र से) रथ में जुड़ जाने वाले श्रेष्ठ अश्वों के माध्यम से, आप निकट आकर हमारी प्रार्थनाओं पर ध्यान दें ॥२ ॥

५०२९. ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम ब्रह्मनिष्ठ सोम- यज्ञकर्त्ता साधक, सोमपान के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-४]

[ऋषि- इरिम्बिठि । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५०३०. आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥१ ॥

श्रेष्ठ मुकुट धारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! सोमयज्ञ करने वाले हम याजकगण, अपनी श्रेष्ठ प्रार्थनाओं के द्वारा आपको अपने निकट बुलाते हैं । अतः आप यहाँ आकर सोमरस का पान करें । ।१ ॥

५०३१. आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु । गृभाय जिह्वया मधु ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके उदर को सोमरस से पूर्ण करते हैं । वह रस आपके सम्पूर्ण शरीर में संचरित हो और आप इस मधुर सोमरस का जिह्वा द्वारा स्वादपूर्वक सेवन करें ॥२ ॥

५०३२. स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे३ तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! मधुयुक्त सोम आपको सुस्वादिष्ट लगे । आपके शरीर, हृदय के लिए यह आनन्द उत्पन्न करे ॥३॥

[सूक्त- ५]

[ऋषि- इरिम्बिठि । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५०३३. अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥१ ॥

हे दूरदर्शी इन्द्रदेव ! जिस प्रकार श्वेत वस्त्र धारण करने वाली स्त्री सात्त्विकता की अभिव्यक्ति करती है, उसी प्रकार गोदुग्ध में मिला हुआ सोमरस तेजोयुक्त होकर आपको प्राप्त हो ॥१ ॥

५०३४. तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२ ॥

सुन्दर ग्रीवा वाले, विशाल उदर वाले तथा सुदृढ़ भुजाओं वाले इन्द्रदेव, सोम रसपान से प्राप्त उत्साह द्वारा शत्रुओं का वध करते हैं ॥२ ॥

५०३५. इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥३ ॥

हे जगत् पर शासन करने वाले ओजस्वी इन्द्रदेव ! आप अग्रणी होकर गमन करें । हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं का संहार करने वाले हैं ॥३ ॥

५०३६. दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि। यजमानाय सुन्वते ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आप जिसके द्वारा सोमयाग करने वाले याजकों को ऐश्वर्य अथवा आवास प्रदान करते हैं, आपका वह अंकुश (आयुध) अत्यधिक विशाल है ॥४॥

[अंकुश या आयुध के द्वारा धन या आवास प्रदान करना आलंकारिक उक्ति है। अंकुश, संयम- अनुशासन का प्रतीक है। बिना अंकुश के वृत्तियाँ असंयत होकर अपना वैभव खो देती हैं। इन्द्र दैवी सम्पदा देते हैं, जो बिना संयम के धारण नहीं की जा सकती।]

५०३७. अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि। एहीमस्य द्रवा पिब ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! वेदिका पर सुशोभित, आसन पर स्थापित, शोधित सोमरस आपके लिए प्रस्तुत है। आप शीघ्र आकर इसका पान करें ॥५॥

५०३८. शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः। आखण्डल प्र हूयसे ॥६॥

शक्तियुक्त गो (किरणों) वाले शत्रुनाशक, सामर्थ्यवान्, तेजस्वी हे पूज्य इन्द्रदेव ! आपके आनन्दवर्द्धन हेतु सोमरस तैयार किया गया है, (उसके पान हेतु) हम आपका आवाहन करते हैं। ॥६॥

५०३९. यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः। न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आपका जो न गिरने वाला, न गिरने देने वाला शृंग के समान बल है, उसके लिए हम कुण्डपायी यज्ञ में अपना मन स्थिर करते हैं ॥७॥

[कुण्डपायी एक सोमयज्ञ था, जिसमें कुण्ड या बड़े पात्र से सोमपान करने का विधान था अथवा कुण्ड में ही सोमरस की आहुति प्रदान करने से यह कुण्डपायी यज्ञ कहा जाता था।]

[सूक्त- ६]

[ऋषि- विश्वामित्र। देवता- इन्द्र। छन्द- गायत्री।]

५०४०. इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! अभिषुत सोम का पान करने के निमित्त हम आपका आवाहन करते हैं। आप मधुर सोम का पान करें ॥१॥

५०४१. इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत। पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥२॥

हे बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्रदेव ! आप कर्म (या यज्ञ) के ज्ञाता हैं। इस अभिषुत सोम की कामना करें, इसका पान करें और बलवान् बनें ॥२॥

५०४२. इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः। तिर स्तवान विश्पते ॥३॥

हे स्तुत्य और प्रजापालक इन्द्रदेव ! आप समस्त पूजनीय देवों के साथ हमारे इस हव्यादि द्रव्यों से पूर्ण यज्ञ को संवर्द्धित करें ॥३॥

५०४३. इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते। क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥४॥

हे सत्यव्रतियों के अधिपति इन्द्रदेव ! यह दीप्तियुक्त, आह्लादक और अभिषुत सोम आपके लिए प्रेषित है।

५०४४. दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम्। तव द्युक्षास इन्दवः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! यह अभिषुत सोम आपके द्वारा वरण करने योग्य है; क्योंकि यह दीप्तिमान् और आपके पास स्वर्ग में रहने योग्य है। आप इसे अपने उदर में धारण करें ॥५॥

५०४५. गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥६ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा शोधित सोमरस का आप पान करें; क्योंकि इस आनन्ददायी सोमरस की धाराओं से आप सिंचित होते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा से ही हमें यश मिलता है ॥६ ॥

५०४६. अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७ ॥

देवपूजक यजमान के द्वारा समर्पित दीप्तिमान् और अक्षय सोमादियुक्त हवियाँ इन्द्रदेव की ओर जाती हैं । इस सोम को पीकर इन्द्रदेव उत्फुल्ल होते हैं ॥७ ॥

५०४७. अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८ ॥

हे वृत्रहन्ता ! आप समीपस्थ स्थान से हमारे पास आएँ । दूरस्थ स्थान से भी हमारे पास आएँ । हमारे द्वारा समर्पित इन स्तुतियों को ग्रहण करें ॥८ ॥

४०४८. यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप दूरस्थ देश से, समीपस्थ देश से तथा मध्य के प्रदेशों से बुलाये जाते हैं, उन स्थानों से आप हमारे यज्ञ में आएँ ॥९ ॥

[सूक्त- ७]

[ऋषि- सुकक्ष, ४ विश्वामित्र । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५०४९. उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥१ ॥

जगद् विख्यात, ऐश्वर्य-सम्पन्न, शक्तिशाली, मानव मात्र के हितैषी और (दुष्टों पर) अस्त्रों से प्रहार करने वाले (इन्द्रदेव ही सूर्य रूप में) उदित होते हैं ॥१ ॥

५०५०. नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥२ ॥

अपने बाहुबल से शत्रु के निन्यानबे निवास केन्द्रों को विध्वंस करने वाले और वृत्रनामक दुष्ट का नाश करने वाले (इन्द्रदेव ने) अहि का भी वध किया ॥२ ॥

५०५१. स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥३ ॥

हमारे लिए कल्याणकारी, मित्ररूप इन्द्र, गौओं की असंख्य दुग्ध-धाराओं के समान हमें प्रचुर धन प्रदान करें ।

५०५२. इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥४ ॥

हे बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्रदेव ! आप कर्म (या यज्ञ) के ज्ञाता हैं । इस अभिषुत सोम की कामना करें, इसका पान करें और बलवान् बनें ॥४ ॥

[सूक्त- ८]

[ऋषि- १-३ क्रमशः भरद्वाज, कुत्स, विश्वामित्र । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५०५३. एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तुति सुनकर हमारी वृद्धि करें । आपने जैसे पहले सोमपान किया था, वैसे ही सोमरस का पान करें । यह रस आपको पुष्ट करे । आप सूर्यदेव को प्रकट करके हमें अन्न प्रदान करें । पणियों द्वारा चुरायी गयी गौओं (किरणों) को बाहर निकालें एवं शत्रुओं का विनाश करें ॥१ ॥

५०५४. अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय।

उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥२॥

हे सोमाभिलाषी इन्द्रदेव ! आप हमारे सम्मुख पधारें । यह अभिषुत सोम आपके निमित्त है । इसे अपने उदर में स्थापित करें तथा आवाहन किये जाने पर हमारी प्रार्थनाओं को पिता के समान ही सुनने की कृपा करें ॥२॥

५०५५. आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै।

समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥३॥

यह सोमरस से परिपूर्ण कलश इन्द्रदेव के पीने के लिए है । जैसे सिंचनकर्त्ता क्षेत्र को सिंचित करते हैं, वैसे ही हम इन्द्रदेव को सोमरस से सींचते हैं । प्रिय सोम इन्द्रदेव के मन को प्रमुदित करने के लिए प्रदक्षिणा गति करता हुआ उनके समीप पहुँचे ॥३॥

[सूक्त- ९]

[ऋषि- नोधा, ३-४ मेध्यातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् , ३-४ प्रगाथ (बृहती + सतोबृहती) ।]

५०५६. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥१॥

हे ऋत्विजो ! शत्रुओं से रक्षा करने वाले, तेजस्वी सोमरस से तृप्त होने वाले इन्द्रदेव की हम उसी प्रकार स्तुति करते हैं, जैसे गोशाला में अपने बछड़ों के पास जाने के लिए गौएँ उल्लसित होकर रँभाती हैं ॥१॥

५०५७. द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।

क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥२॥

देवलोकवासी, उत्तम दानदाता, सामर्थ्यवान् , बहुत प्रकार के पोषण देने वाले पर्वत के समान अन्न और गौओं से सम्पन्न इन्द्रदेव से हम सैकड़ों-सहस्रों (सम्पत्तियाँ) माँगते हैं ॥२॥

५०५८. तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जिस शक्ति से यतियों तथा भृगु ऋषि को धन प्रदान किया था तथा जिस ज्ञान से ज्ञानियों (प्रस्कण्व) की रक्षा की थी, उस ज्ञान तथा बल की प्राप्ति के लिए सबसे पहले हम आपसे प्रार्थना करते हैं ॥३॥

५०५९. येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।

सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! जिस शक्ति से आपने समुद्र तथा विशाल नदियों का निर्माण किया है; वह शक्ति हमारे अभीष्ट को पूर्ण करने वाली है । आपकी जिस महिमा का अनुगमन द्यावा - पृथिवी करते हैं, उसका कोई पारावार नहीं ॥४॥

[सूक्त-१०]

[ऋषि- मेध्यातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ (बृहती + सतोबृहती) ।]

५०६०. उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते।

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१॥

(जीवन-संग्राम में) वास्तविक विजय दिलाने वाले, ऐश्वर्य प्राप्ति के माध्यम, सतत रक्षा करने वाले मधुर स्तोत्र, युद्ध के उपकरण रथ के समान महत्त्वपूर्ण कहे जाते हैं ॥१ ॥

५०६१. कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद् धीतमानशुः ।

इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥२ ॥

कण्व गोत्रोत्पन्न ऋषियों की भाँति स्तुति करते हुए भृगुगोत्रोत्पन्न ऋषियों ने इन्द्रदेव को चारों ओर से उसी प्रकार घेर लिया, जिस प्रकार सूर्य - रश्मियाँ इस संसार में चारों ओर फैल जाती हैं । प्रियमेध ने ऐसे महान् इन्द्रदेव की स्तुति करते हुए उनका पूजन किया ॥२ ॥

[सूक्त-११]

[ऋषि- विश्वामित्र । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५०६२. इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।

ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे ॥१ ॥

शत्रुओं के गढ़ को ध्वस्त करने वाले महिमावान्, धनवान् इन्द्रदेव ने शत्रुओं को मारते हुए अपनी तेजस्विता से उन्हें भस्म कर दिया । स्तुतियों से प्रेरित और शरीर से वर्द्धित होते हुए विविध अस्त्रधारक इन्द्रदेव ने द्यावा-पृथिवी दोनों को पूर्ण किया ॥१ ॥

५०६३. मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।

इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पूजनीय और बलशाली हैं । आपको विभूषित करते हुए हम अमरत्व प्राप्ति के लिए प्रेरक स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । आप हम मनुष्यों और देवों के अग्रगामी हों ॥२ ॥

५०६४. इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः ।

अहन् व्यंसमुशधग् वनेष्वाविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम् ॥३ ॥

प्रसिद्ध नीतिज्ञ इन्द्रदेव ने वृत्रासुर को रोका, शत्रुवध की इच्छा करके मायावी असुरों को मारा तथा वन में छिपे स्कन्धविहीन असुर को नष्ट करके अन्धकार में छिपायी गयी गौओं (किरणों) को प्रकट किया ॥३ ॥

५०६५. इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।

प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥४ ॥

स्वर्ग-सुख-प्रेरक इन्द्रदेव ने दिवस को प्रकट करके युद्धाभिलाषी मरुतों के साथ शत्रु सेना का पराभव कर उन्हें जीता । तदनंतर मनुष्यों के लिए दिन के प्रज्ञापक (बोधक) सूर्यदेव को प्रकाशित किया तथा महान् युद्धों में विजय प्राप्ति के निमित्त दिव्य ज्योति (तेजस्विता) को प्राप्त किया ॥ ४ ॥

५०६६. इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ।

अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५ ॥

विपुल सामर्थ्यशाली इन्द्रदेव ने नेतृत्वकर्त्ता की भाँति अवरोधक शत्रु- सेना में प्रविष्ट होकर उसे छिन्न -भिन्न किया, स्तुतिकर्त्ताओं के लिए उषा को चैतन्य किया और उनके शुभ्रवर्ण को और भी दीप्तिमान् किया ॥५ ॥

५०६७. महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।

वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥६ ॥

स्तोतागण महान् पराक्रमी इन्द्रदेव के श्रेष्ठ कर्मों का गुणगान करते हैं । वे इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्यों से शत्रुओं के पराभवकर्त्ता हैं । उन्होंने अपनी माया द्वारा बलवान् दस्युओं को पूरी तरह से नष्ट किया ॥६ ॥

५०६८. युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।

विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७ ॥

सज्जनों के अधिपति और उनके मनोरथों की पूर्ति करने वाले इन्द्रदेव हैं, अपनी महत्ता से युद्धों में देवों की श्रेष्ठता प्रमाणित की । बुद्धिमान् स्तोतागण यजमान के घर में इन्द्रदेव के उन श्रेष्ठ कर्मों की प्रशंसा करते हैं ॥७ ॥

५०६९. सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।

ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८ ॥

स्तोतागण शत्रु-विजेता, वरणीय, बलप्रदाता, स्वर्ग-सुख और दीप्तिमान् जल के अधिपति इन्द्रदेव की उत्तम स्तुतियों से वन्दना करते हैं, उन्होंने इस द्युलोक और पृथ्वी लोक को अपने ऐश्वर्यों के बल पर धारण किया ॥८ ॥

५०७०. ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।

हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥९ ॥

इन्द्रदेव ने अत्यों (लाँघ जाने वाले अश्वों या शक्ति प्रवाहों) का , सूर्य एवं पर्याप्त भोजन प्रदान करने वाली गौओं का, स्वर्णिम अलंकारों एवं भोग्य पदार्थों का दान किया तथा दस्युओं को मारकर आर्यों की रक्षा की ।

५०७१. इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम् ।

बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् ॥१० ॥

इन्द्र ने प्राणियों के कल्याण के लिए ओषधियाँ , दिन (प्रकाश) का अनुदान तथा वनस्पति और अन्तरिक्ष प्रदान किया ।वलासुर का मर्दन किया, प्रतिवादियों को दूर किया और युद्धाभिमुख हुए शत्रुओं का दमन किया है ।

५०७२. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११ ॥

हम अपने जीवन-संग्राम में संरक्षण प्राप्ति के लिए इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । वे इन्द्रदेव पवित्रकर्त्ता, मनुष्यों के नियन्ता, स्तुतियों के श्रवणकर्त्ता , उग्र, युद्धों में शत्रु- विनाशकर्त्ता, धन-विजेता और ऐश्वर्यवान् हैं ॥११ ॥

[सूक्त- १२]

[ऋषि- वसिष्ठ, ७ अत्रि । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५०७३. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।

आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥१ ॥

हे वसिष्ठ ! (साधना के बल पर विशिष्ट पद प्राप्त ऋषि) अन्न (पोषक आहार) प्राप्ति की कामना से किये जाने वाले यज्ञ में अपनी शक्ति से सम्पूर्ण भुवनों को विस्तृत करने वाले यश के संवर्द्धक, उपासकों की प्रार्थना सुनने वाले इन्द्रदेव की महिमा का वर्णन करें । उनके लिए उत्तम स्तोत्रों का पाठ करें ॥१ ॥

५०७४. अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥२ ॥

उस समय शोक को रोकने वाली (ओषधियाँ या शक्तियाँ) बढ़ती हैं, जिस समय देवों की स्तुति की जाती है । हे इन्द्र ! मनुष्यों में अपनी आयु को जानने वाला कोई नहीं है । आप हमें सारे पापों से पार ले जाएँ ॥२ ॥

५०७५. युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥३ ॥

गौ (किरणों अथवा इन्द्रियों) के आविष्कर्त्ता इन्द्रदेव के रथ में हरितवर्ण के दोनों अश्वों को स्तोत्रों द्वारा हम (वसिष्ठ) नियोजित करते हैं । स्तोत्र उन इन्द्रदेव की सेवा करते हैं, जो हमारे उपास्य हैं । ये इन्द्रदेव अपनी महिमा से द्यावा-पृथिवी को व्याप्त किए हुए हैं । इन्द्रदेव ने अनुपम ढंग से वृत्र का वध किया ॥३ ॥

५०७६. आपश्चित् पिप्यु स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा से अप्रसूता (बन्ध्या) गौ की पुष्टि की तरह जल प्रवाह बढ़ते जाएँ । आपके स्तोतागण यज्ञ करते रहें । अश्व वायु के समान हमारे पास (आपको लेकर) आएँ । आप स्तोतागणों को बुद्धिबल और अन्न प्रदान करते हैं ॥४ ॥

५०७७. ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! देवों में एकमात्र आप ही हम मानवों पर बड़ी दया करते हैं । आप इस यज्ञ में सोमरस पीकर आनन्दित हों । शूरवीर हे देव ! प्रचुर सम्पदा देने वाले आपको साधकों की स्तुतियाँ आनन्दित करें ॥५ ॥

५०७८. एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स न स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ॥

वसिष्ठ गोत्रीय बलवान्, वज्रधारी इन्द्रदेव की स्तोत्रों द्वारा पूजा करते हैं । वे स्तुति द्वारा प्रसन्न होकर स्तोताओं को वीरों और गौओं सहित धन प्रदान करते हैं । वे कल्याणकारी साधनों से हमारी रक्षा करें ॥६ ॥

५०७९. ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥७ ॥

इन्द्रदेव सोम-धारणकर्त्ता, वज्रधारी, अभीष्टवर्षक, शत्रु-संहारक, बलवान्, शासक , वृत्रहन्ता और सोमपान-कर्त्ता हैं ।वे अपने अश्वों को रथ से युक्त करके हमारे समीप आएँ और माध्यन्दिन सवन में सोमपान कर हर्षित हों।

[सूक्त- १३]

[ऋषि- १-४ क्रमशः वामदेव, गोतम, कुत्स, विश्वामित्र । देवता- १ इन्द्राबृहस्पती, २ मरुद्गण, ३-४ अग्नि । छन्द- जगती, ४ त्रिष्टुप् ।]

५०८०. इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१ ॥

हे बृहस्पतिदेव !आप तथा इन्द्रदेव इस यज्ञ में सोमपान से हर्षित होकर, याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करें। सर्वत्र विद्यमान रहने वाला सोम आप दोनों के अन्दर प्रवेश करे ।आप हमें पराक्रमी सन्तान एवं ऐश्वर्य प्रदान करें।

५०८१. आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।

सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥२ ॥

हे मरुद्गणो ! वेगवान् अश्व आपको इस यज्ञ स्थल पर ले आएँ। आप शीघ्रतापूर्वक दोनों हाथों में धन को धारण कर इधर आएँ । आपके निमित्त यहाँ बड़ा स्थान विनिर्मित किया गया है । यहाँ कुश के आसनों पर अधिष्ठित होकर, मधुर हविरूप अन्न का सेवन कर हर्षित हों ॥२ ॥

५०८२. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।

भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३ ॥

पूजनीय जातवेदा (अग्नि) को यज्ञ में प्रकट करने के लिए, स्तुतियों को विचारपूर्वक रथ की तरह प्रयुक्त करते हैं। इस यज्ञाग्नि के सान्निध्य से हमारी बुद्धि कल्याणकारी बनती है । हे अग्निदेव ! हम आपकी मित्रता से सन्तापरहित रहें ॥३ ॥

[एक जैसी आकृति के मनुष्यों के संस्कार भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। इसी प्रकार अग्नि की ज्वालाएँ एक सी दिखने पर भी उनके ताप और संस्कारों में भिन्नता पाई जाती है। यज्ञीय संस्कार वाली अग्नि को प्रकट करने में श्रेष्ठ मनोभावों - युक्त आवाहन की आवश्यकता होती है। उस मनोयोगयुक्त आवाहन को ही मंत्र कहा जाता है। इसीलिए मन्त्रों को यज्ञाग्नि का रथ कहा गया है। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि हे मनुष्यो ! तुम यज्ञ को बढ़ाना, यज्ञ तुम्हें बढ़ायेंगे। भावयुक्त विचार प्रवाह संस्कारित यज्ञाग्नि को प्रकट करते हैं और यज्ञाग्नि बुद्धि को संस्कारित करती है। इस प्रकार संस्कारयुक्त प्रक्रिया का अविरल चक्र चल पड़ता है।]

५०८३. ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।

पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥४ ॥

हे अग्ने ! आप उन सभी देवों के साथ एक ही रथ पर या विविध रथों से हमारे पास आएँ। आपके अश्व वहन करने में समर्थ हैं, तैंतीस देवों को उनकी पत्नियों सहित सोमपान के लिए लाएँ और इससे उन्हें प्रमुदित करें।

[सूक्त- १४]

[ऋषि- सौभरि । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ (विषमा ककुप् + समासतोबृहती) ।]

५०८४. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥१ ॥

हे अद्वितीय इन्द्रदेव ! जिस प्रकार सांसारिक गुण-सम्पन्न, शक्तिशाली मनुष्यों को लोग बुलाते हैं, उसी प्रकार अपनी रक्षा की कामना से विशिष्ट सोमरस द्वारा तृप्त करते हुए, हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१ ॥

५०८५. उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।

त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२ ॥

हे शत्रुसंहारक देवेन्द्र ! कर्मशील रहते हुए हम अपनी सहायता के लिए तरुण और शूरवीर रूप में विद्यमान आपका ही आश्रय लेते हैं। मित्रवत् सहायता के लिए हम आपका स्मरण करते हैं ॥२ ॥

५०८६. यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥३ ॥

हे मित्रो ! पूर्वकाल से ही जो, धन - वैभव प्रदान करने वाले हैं, उन इन्द्रदेव की हम आपके कल्याण के लिए स्तुति करते हैं ॥३ ॥

५०८७. हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।

आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥४ ॥

जो साधक, हरिसंज्ञक अश्वों वाले, भद्रजनों का पालन करने वाले तथा रिपुओं को परास्त करने वाले इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं ; उन्हें इन्द्रदेव सैकड़ों गौओं तथा अश्वों से भरपूर ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४ ॥

[सूक्त- १५]

[ऋषि- गोतम । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५०८८. प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।

अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥१ ॥

उदार दानी, महान् ऐश्वर्यशाली, सत्यस्वरूप, पराक्रमी इन्द्रदेव की हम बुद्धिपूर्वक स्तुति करते हैं । नीचे की ओर बहने वाले दुर्धर्ष जल-प्रवाहों के समान, विश्व के प्राणियों के लिए प्रवाहित, इनके शक्ति अनुदान प्रसिद्ध हैं ॥१ ॥

५०८९. अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।

यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपका स्वर्ण सदृश दीप्तिमान् मारक वज्र मेघों को विदीर्ण करने में तत्पर हुआ, तब हे इन्द्रदेव ! सारा जगत् आपके लिए यज्ञ-कर्मों में संलग्न हुआ । जल के नीचे की ओर प्रवाहित होने के समान याजकों के द्वारा समर्पित सोम आपकी ओर प्रवाहित हुआ ॥२ ॥

५०९०. अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥३ ॥

हे दीप्तिमती उषा देवि ! शत्रुओं के प्रति विकराल और प्रशंसनीय उन इन्द्रदेव के लिए नमस्कार के साथ यज्ञ सम्पादन करें, जिनका धाम (स्थान) अन्नादि दान के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है; जिनकी सामर्थ्य और कीर्ति , अश्व के सदृश सर्वत्र संचरित होती है ॥३ ॥

५०९१. इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।

नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः ॥४ ॥

हे सम्पत्तिवान् एवं बहु प्रशंसित इन्द्रदेव ! आपके संरक्षण में कार्य करते हुए , निष्ठापूर्वक रहते हुए , हम आपकी स्तुति करते हैं । सभी पदार्थों को स्वीकार करने वाली पृथ्वी के समान आप भी हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करें । आपके अतिरिक्त कोई अन्य इस योग्य नहीं है ॥४ ॥

५०९२. भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।

अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥५ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! स्तुति करने वाले इन साधकों की कामनाएँ पूर्ण करें । आपका पराक्रम महान् है । यह महान् द्युलोक भी आपके बल पर ही स्थित है और यह पृथ्वी भी आपके बल के आगे झुकती है ॥५ ॥

५०९३. त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।

अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥६ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने महान् बलशाली मेघों को अपने वज्र से खण्ड-खण्ड किया और रुके जल-प्रवाहों को बहने के लिए मुक्त किया । केवल आप ही सब संघर्षक शक्तियों को धारण करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त- १६]

[ऋषि- अयास्य । देवता- बृहस्पति । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त में बृहस्पतिदेव द्वारा किये गये इन्द्र के समतुल्य पराक्रम का वर्णन है । सूक्त के द्रष्टा ऋषि 'अयास्य' हैं, जिसका अर्थ होता है 'मुख से प्रकट प्राण-प्रवाह' अर्थात् ज्ञानयुक्त वाणी को प्रकट करने वाली वाक् । देवता 'बृहस्पति' हैं, जिसका भाव होता है 'बृहद् ज्ञान या वाक् के पालक या रक्षक' । इन्द्र जिस प्रकार शक्ति - कणों के संगठक कहे गये हैं, वैसे ही बृहस्पति 'ज्ञान-विचार कणों ' के संगठक- परिपाक करने वाले माने गये हैं । 'इन्द्र' पदार्थ से उत्पन्न किरणों (गौओं) को स्थूल अवरोधों (पर्वतों) को तोड़कर मुक्त करते हैं । बृहस्पति चेतना से उत्पन्न ज्ञान की किरणों (गौओं) को ज्ञान के अवरोधक अज्ञान रूप पर्वतों को तोड़कर बाहर निकालते हैं । इन्द्र का वज्र - प्रहार वृत्र (अवरोधक-आवरण) को तोड़ता है, तो बृहस्पति का प्रहार अवरोधक वृत्ति रूपी वृत्र को नष्ट करता है । जड़ता का जो बल पदार्थ कणों को संयुक्त होने से रोकता है, उस बल (असुर) को इन्द्र नष्ट करते हैं तथा वैचारिक जड़ता का जो बल ज्ञान को प्रकट होने से रोकता है, उसे बृहस्पति नष्ट करते हैं । इस प्रकार इन्द्र और बृहस्पति के पराक्रम समान स्तर के दिखाई देते हैं, उन्हीं का इस सूक्त में आलंकारिक वर्णन है-

५०९४. उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।

गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्य१र्का अनावन् ॥१ ॥

पानी के समीप पक्षी (जल क्रीड़ा के समय) तथा रक्षक समुदाय जिस प्रकार निरन्तर शब्द करते हैं । जैसे मेघों का गर्जन बार- बार होता है, जैसे पर्वतों से गिरने वाले झरने तथा मेघों से गिरने वाली जल - धाराएँ शब्द करती हैं, उसी प्रकार ऋत्विग्गण बृहस्पतिदेव की निरन्तर स्तुति करते हैं ॥१ ॥

५०९५. सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।

जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥२ ॥

अंगिरस् (बृहस्पति) ने गुप्त स्थान में रहने वाली गौओं (वाणियों या किरणों) को प्रकाशित किया । वे देव भग (ऐश्वर्य) की तरह अर्यमा (आदित्य या सुजेता) को लाकर प्रजाजनों में मित्र की तरह रहने वाले दम्पती (नर-मादा) को सुसज्जित करते हैं । हे बृहस्पते ! आप हमें युद्ध के अश्वों की तरह शक्तिसम्पन्न बनाएँ ॥२ ॥

५०९६. साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।

बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥३ ॥

कल्याणकारी दूध देने वाली, निरन्तर गतिशील, काम्य स्पृहायुक्त, श्रेष्ठ वर्णयुक्त, निन्दारहित, रूपवती गौओं को बृहस्पतिदेव उसी प्रकार पर्वतों (गुप्त स्थानों) से शीघ्रतापूर्वक बाहर निकालें, जिस प्रकार कृषक संगृहीत धान्य से जौ को बाहर निकाल कर बोते हैं ॥३ ॥

[जौ आदि धान्य गुप्त स्थानों में संगृहीत-सुरक्षित रहता है, बोने के लिए उसे निकाला जाता है, उसी प्रकार गुप्त सूक्ष्म प्रवाहों को सृष्टि के पोषण के लिए, बढ़ाने तथा प्रयुक्त करने के लिए प्रकट किया जाता है । जो लोग उन्हें सृजन प्रयोगों के लिए नहीं, सिद्धि - चमत्कार जैसे कौतुकों के लिए प्रयुक्त करना चाहते हैं , उनके लिए वे प्रवाह प्रकट या फलित नहीं होते ।]

५०९७. आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।

बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥४ ॥

जैसे आकाश में उल्काएँ प्रकट होती हैं, उसी प्रकार पूज्य बृहस्पतिदेव ऋत (सत्य या यज्ञ) के योनि (उद्‌भव स्थल) में मधुर रसों को गिराते हैं । उन्होंने मेघों से गौओं (किरणों) को मुक्त किया तथा पृथ्वी की त्वचा को इस प्रकार भेदा, जैसे वर्षा की बूँदें भेदती हैं ॥४ ॥

[वर्षा की बूँदें पृथ्वी को भेदती हैं; किन्तु इससे भूमि की शक्ति बढ़ती है । इसी प्रकार बृहस्पतिदेव दिव्य - प्रवाहों को पृथ्वी तल में या मनोभूमियों में समाहित करते हैं ।]

५०९८. अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥५ ॥

जैसे वायु प्रवाह जल की पीठ पर स्थित शैवाल (काई) को दूर हटाते हैं, मेघों को दूर हटाते हैं, वैसे बृहस्पतिदेव ने विचारपूर्वक वलासुर (अज्ञान) के आवरण को हटाकर गौओं (ज्ञानयुक्त वाणियों) को बाहर निकाला ॥५ ॥

५०९९. यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्त्रियाणाम् ॥६ ॥

बृहस्पतिदेव के अग्नितुल्य, प्रतप्त और उज्ज्वल आयुधों ने, जिस समय 'वल' के अस्त्रों को छिन्न-भिन्न किया, उसी प्रकार उन्होंने उन गौओं (दिव्य वाणियों) को अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया । जैसे दाँतों द्वारा चबाये गये अन्न को जीभ प्राप्त करती है, वैसे ही पणियों का वध करके बृहस्पतिदेव ने गौओंको प्राप्त किया ॥६ ॥

५१००. बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्त्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७ ॥

गुफा में छिपाकर रखी गई गौओं के रँभाने की आवाज को सुनकर बृहस्पतिदेव को गौओं की उपस्थिति का आभास हुआ । जिस प्रकार अण्डों को फोड़कर पक्षियों के बच्चे बाहर आते हैं, वैसे ही बृहस्पतिदेव पर्वत (मेघों-अवरोधों) को तोड़कर गौओं (किरणों) को बाहर निकाल लाए ॥७ ॥

[माँ के हृदय की गर्मी से जब अण्डों के अन्दर बच्चे अपना ठोस आकार प्राप्त कर लेते हैं, तब वे संकीर्ण घेरे को तोड़कर बाहर निकल आते हैं । इसी प्रकार देवगुरु बृहस्पति के अनुशासन में जब देवत्व परिपक्व हो जाता है, तो वह संकीर्ण स्वार्थपरता का घेरा तोड़कर प्रकट हो जाता है ।]

५१०१. अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥८ ॥

बृहस्पतिदेव ने पर्वतीय गुफा में बँधी हुई सुन्दर गौओं को उसी दयनीय अवस्था में देखा, जिस प्रकार जल की अल्प मात्रा में मछलियाँ व्यथित होती हैं , जैसे वृक्ष से सोमपात्र के निर्माण हेतु काष्ठ निकाला जाता है ; वैसे ही बृहस्पतिदेव ने विभिन्न प्रकार के बन्धनों को तोड़कर गौओं को मुक्त किया ॥८ ॥

[मनुष्य में दिव्य ज्ञान के बीज स्वभावतः होते हैं । वे जब जीवन्त होने लगते हैं, तो संकीर्णता की मनोभूमि में अल्पजल में मीन की तरह कष्ट अनुभव करते हैं । गुरु रूप में बृहस्पतिदेव मनुष्य की देव प्रवृत्तियों - गौओं को बन्धन मुक्त करते हैं ।]

५१०२. सोषामविन्दत् स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥९ ॥

बृहस्पतिदेव ने गौओं की मुक्ति के लिए उषा को प्राप्त किया । उन्होंने सूर्य और अग्नि के माध्यम से अन्धकार को विनष्ट किया । जैसे अस्थि को भेदकर मज्जा प्राप्त की जाती है, वैसे ही वल (असुर) को भेदकर (बृहस्पतिदेव ने) गौओं (किरणों) को बाहर निकाला ॥९ ॥

५१०३. हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गाः ।

अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥१० ॥

जिस प्रकार हिमपात पद्मपत्रों का हरण (नाश) करता है, उसी प्रकार गौओं का वलासुर द्वारा अपहरण किया गया । बृहस्पतिदेव के द्वारा वलासुर से उनको मुक्त कराया गया । ऐसा कार्य किसी दूसरे द्वारा किया जाना सम्भव नहीं । सूर्य और चन्द्र दोनों ही इसका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं ॥१० ॥

५१०४. अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।

रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः ॥११ ॥

जिस प्रकार कृष्णवर्ण घोड़े को स्वर्ण के आभूषणों से सुशोभित किया जाता है, वैसे ही देवताओं ने द्युलोक को नक्षत्रों से विभूषित किया है । उन्होंने रात्रिकाल में अन्धकार तथा दिवस में प्रकाश को स्थापित किया । उसी समय बृहस्पतिदेव ने पर्वत (मेघ) को तोड़कर गौओं (किरणों) को प्राप्त किया ॥११ ॥

५१०५. इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।

बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥१२ ॥

आकाश में उत्पन्न हुए बृहस्पतिदेव के निमित्त ये स्तुतिगान किये गये हैं । हम उन्हें सादर प्रणाम करते हैं । जिनके लिए नानाविध चिरपुरातन ऋचाओं को बार-बार उच्चारित किया गया है, वे बृहस्पतिदेव हमें गौएँ , घोड़े, वीर सन्तानें तथा सेवकों सहित अन्नादि प्रदान करें ॥१२ ॥

[सूक्त- १७]

[ऋषि- कृष्ण । देवता- इन्द्र । छन्द- जगती, ११-१२ त्रिष्टुप् ।]

५१०६. अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।

परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥१ ॥

पवित्र, आत्मशक्ति की वृद्धि करने वाली, एक साथ रहने वाली तथा उन्नति की कामना करने वाली हमारी स्तुतियाँ इन्द्रदेव को वैसे ही आवृत करती हैं, जैसे स्त्रियाँ आश्रय पाने के लिए अपने पति का आलिंगन करती हैं ।

५१०७. न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय ।

राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥२ ॥

हे असंख्यों द्वारा स्तुतियोग्य इन्द्रदेव ! आपको त्यागकर हमारा मन दूसरी ओर नहीं जाता । आप में ही हम अपनी आकांक्षाओं को केन्द्रित करते हैं । जैसे राजा राजसिंहासन पर विराजमान होते हैं, वैसे ही आप कुशा के आसन पर प्रतिष्ठित हों । इस श्रेष्ठ सोमरस से आपके, पान करने की इच्छा की पूर्ति हो ॥२ ॥

५१०८. विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।

तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥३ ॥

हमें दुर्दशायुक्त कुमति तथा अन्नाभाव से संरक्षण प्रदान करने के लिए इन्द्रदेव हमारे चारों ओर विराजमान रहें । ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ही सभी सम्पदाओं और धनों के अधिपति हैं । अभीष्टवर्षक और तेजस्वी इन्द्रदेव के निर्देशन में ही सप्त सरिताएँ (स्थूल नदियाँ एवं सूक्ष्म धाराएँ) प्रवाहित होकर उस बलवान् उत्साही योद्धा (इन्द्र) की शक्ति को बढ़ाती हैं ॥३ ॥

५१०९. वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥४ ॥

जिस प्रकार पक्षी सुन्दर पत्तेदार वृक्ष का अवलम्बन लेते हैं, उसी प्रकार पात्रों में विद्यमान हर्षदायक सोमरस इन्द्रदेव का आश्रय लेते हैं । सोमरस के प्रभाव एवं तेज से उनका मुख तेजोमय हो जाता है । वे अपनी सर्वोत्तम तेजस्विता मनुष्यों को प्रदान करें ॥४ ॥

५११०. कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ॥५ ॥

जैसे जुआरी जुए के अड्डे पर विजेता को खोजकर पराजित करता है, वैसे ही वैभवशाली इन्द्रदेव ने सूर्य को जीता (प्रेरित किया) । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! कोई भी पुरातन या नवीन मनुष्य आपके पराक्रम की बराबरी करने में सक्षम नहीं है ॥५ ॥

५१११. विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६ ॥

अभीष्टदाता इन्द्रदेव सभी मनुष्यों तक सहज पहुँच जाते हैं । वे स्तोताओं की स्तुतियों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं । इन्द्रदेव जिस यजमान के सोमयाग में हर्षित होते हैं, वे यजमान तीक्ष्ण सोमरस द्वारा युद्धाभिलाषी रिपुओं को पराभूत करने में सक्षम होते हैं ॥६ ॥

५११२. आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७ ॥

जिस प्रकार नदियाँ सागर की ओर स्वाभाविक रूप में प्रवाहित होती हैं तथा छोटे-छोटे नाले सरोवर की ओर बहते हैं, वैसे ही सोमरस भी सहज क्रम से इन्द्रदेव को ही प्राप्त होता है । जैसे दिव्य वृष्टि करने वाले पर्जन्य जौ की कृषि को संवर्द्धित करते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव की महिमा को यज्ञस्थल में ज्ञानी लोग बढ़ाते हैं ॥७ ॥

५११३. वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजः स्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८ ॥

जिस प्रकार क्रोधित बैल दूसरे बैल की ओर दौड़ता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव क्रोधित होकर मेघ की ओर दौड़ते हैं । उसे तोड़कर जल को हमारे लिए विमुक्त करते हैं । वे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव सोम-अभिषवणकर्त्ता, दानी और हविष्यान्न समर्पित करने वाले यजमानों को तेजस्विता प्रदान करते हैं ॥८ ॥

५११४. उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्व१र्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९ ॥

इन्द्रदेव का वज्रास्त्र तेजस्विता के साथ प्रकट हो, पुरातनकाल के समान ही यज्ञ में स्तोत्रों का प्रादुर्भाव हो । स्वयं देदीप्यमान इन्द्रदेव तेजस्विता से शोभायुक्त और पवित्र हों । सज्जनों के पालक वे सूर्य के समान ही शुभ्रज्योति से प्रकाशमान हों ॥९ ॥

५११५. गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१० ॥

हे अनेकों द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव ! आपकी कृपा दृष्टि से हम गोधन द्वारा दुःख-दारिद्र्यों से निवृत्त हों । जौ आदि अन्नों से हम क्षुधा की आपूर्ति करें । शासनाध्यक्षों के अनुशासन में अपनी सामर्थ्य से विपुल सम्पदाओं को हम जीत सकें ॥१० ॥

५११६. बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११ ॥

दुष्कर्मी पापियों से बृहस्पतिदेव हमें पश्चिम से, उत्तर से तथा दक्षिण से संरक्षित करें । इन्द्रदेव पूर्व दिशा और मध्य भाग से आने वाले शत्रुओं से हमें बचाएँ । वे इन्द्रदेव सबके सखा हैं । हम भी उनके प्रति मित्रभावना को सुदृढ़ करें । वे इन्द्रदेव हमारे अभीष्टों को पूर्ण करें ॥११ ॥

५११७. बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१२ ॥

हे बृहस्पति और इन्द्रदेव ! आप दोनों पृथ्वी और द्युलोक के ऐश्वर्य के स्वामी हैं, इसलिए स्तोताओं को ऐश्वर्य प्रदान करें तथा कल्याणकारी साधनों से हमारी सुरक्षा करें ॥१२ ॥

[सूक्त- १८]

[ऋषि- मेधातिथि, प्रियमेध, ४-६ वसिष्ठ । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५११८. वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपसे मित्रता करने के इच्छुक हम याजकगण (आपके स्तोता) तथा सभी कण्ववंशीय साधक स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ॥१ ॥

५११९. न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥२ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! यज्ञ कर्म में आपकी स्तुति करने के अतिरिक्त हम अन्य दूसरे की स्तुति नहीं करेंगे । हम स्तोत्रों द्वारा आपकी ही स्तुति करना जानते हैं ॥२ ॥

५१२०. इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥३ ॥

यज्ञ के निमित्त सदैव सोमरस तैयार करने वाले साधकों से देवगण प्रसन्न रहते हैं, उन्हीं की कामना करते हैं । आलस्यरहित देवगण आनन्द प्रदान करने वाले सोमरस का सदा पान करते हैं ॥३ ॥

५१२१. वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्वस्य नो वसो ॥४ ॥

हे श्रेष्ठ वीर इन्द्रदेव ! हम आपकी कामना करते हुए बारम्बार नमन करते हैं । सबको आश्रय देने वाले आप हमारी प्रार्थनाएँ सुनें और उन पर ध्यान देने की कृपा करें ॥४ ॥

५१२२. मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे स्वामी हैं । आपसे हम लोग प्रार्थना करते हैं कि हमें कटुभाषी, निंदक और कंजूस के वश में न रहना पड़े ॥५ ॥

५१२३. त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं के सम्मुख पहुँचकर उनका नाश करने के लिए आप विश्व-विख्यात हैं । आप कवच के समान रक्षा करने वाले हैं । आपकी सहायता पाकर हम शत्रुओं का वध करने में समर्थ होते हैं ॥६ ॥

[सूक्त- १९]

[ऋषि- विश्वामित्र। देवता- इन्द्र। छन्द- गायत्री।]

५१२४. वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च। इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! वृत्र नामक असुर का हनन करने के लिए तथा शत्रु सेना को पराजित करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए हम आपका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं ॥१॥

५१२५. अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो। इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२॥

सैकड़ों कर्म या यज्ञ सम्पन्न करने वाले हे इन्द्रदेव ! स्तोतागण स्तुति करते हुए आपकी प्रसन्नता, अनुग्रह और कृपा- दृष्टि को हमारी ओर प्रेरित करें ॥२॥

५१२६. नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे। इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥३॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए हम आपके यश एवं वैभव का बखान करते हैं ॥३॥

५१२७. पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि। इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥४॥

बहुतों द्वारा स्तुत्य, महान् तेजस्वी, मनुष्यों को धारण करने वाले इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥४॥

५१२८. इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे। भरेषु वाजसातये ॥५॥

बहुतों द्वारा आवाहनीय, वृत्र-हन्ता इन्द्रदेव को हम भरण-पोषण के लिए बुलाते हैं ॥५॥

५१२९. वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो। इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥६॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! आप युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं। वृत्र का हनन करने के लिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं ॥६॥

५१३०. द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च। इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! धन प्राप्ति के समय, युद्ध में और शत्रु पराभव के समय, यश प्राप्ति तथा अवरोधों का सामना करते समय आप हमारे साथ रहें ॥७॥

[सूक्त- २०]

[ऋषि- विश्वामित्र, ५-७ गृत्समद। देवता- इन्द्र। छन्द- गायत्री, ४ अनुष्टुप्।]

५१३१. शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥१॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! हम याजकों को संरक्षण प्रदान करने के लिए आप अत्यन्त बल-प्रदायक , दीप्तिमान् चेतनता लाने वाले सोमरस का पान करें ॥१॥

५१३२. इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इन्द्र तानि त आ वृणे ॥२॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! पाँच जनों (समाज के पाँचों वर्गों) में जो इन्द्रियाँ (विशेष सामर्थ्य) हैं, उन्हें आपकी शक्तियों के रूप में हम वरण करते हैं ॥२॥

५१३३. अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! यह महान् हविष्यान्न आपके पास जाए। आप शत्रुओं के लिए दुर्लभ, तेजस्वी सोमरस ग्रहण करें। हम आपके बल को प्रवृद्ध करते हैं ॥३॥

५१३४. अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः । उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि।

हे वज्रधारक इन्द्रदेव ! आप समीपस्थ प्रदेश से हमारे पास आएँ । दूरस्थ देश से भी आएँ । आपका जो उत्कृष्ट लोक है, वहाँ से भी आप यहाँ पधारें ॥४ ॥

५१३५. इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥५ ॥

युद्ध मे स्थिर रहने वाले विश्वद्रष्टा इन्द्रदेव महान् पराभवकारी तथा भय को शीघ्र ही दूर करते हैं ॥५ ॥

५१३६. इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ॥६ ॥

यदि इन्द्रदेव हमें सुख प्रदान करें, तो पाप हमें नष्ट नहीं कर सकते, वे हर प्रकार से हमारा कल्याण ही करेंगे ॥६ ॥

५१३७. इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥७ ॥

शत्रु विजेता, प्रज्ञावान् इन्द्रदेव सभी दिशाओं से हमें निर्भय बनाएँ ॥७ ॥

[सूक्त- २१]

[ऋषि- सव्य । देवता- इन्द्र । छन्द- जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।]

५१३८. न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१ ॥

हम विवस्वान् के यज्ञ में महान् इन्द्रदेव की उत्तम वचनों से स्तुति करते हैं । जिस प्रकार सोने वालों का धन चोर सहजता से ले जाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रदेव ने (असुरों के) रत्नों को प्राप्त किया । धन दान करने वालों की निन्दा करना उचित नहीं है ॥१ ॥

५१३९. दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अश्वों, गौओं तथा धन-धान्य के देने वाले हैं । आप सबका पालन-पोषण करते हुए उन्हें उत्तम कर्म की प्रेरणा प्रदान करने वाले तेजस्वी वीर हैं । आप संकल्पों को नष्ट न करने वाले तथा मित्रों के भी मित्र हैं । इस प्रकार हम आपकी स्तुति करते हैं ॥२ ॥

५१४०. शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥३ ॥

शक्तिशाली, बहु-कर्मा, दीप्तिमान् हे इन्द्रदेव ! सम्पूर्ण धन आपका ही है- यह सर्वज्ञात है । हे विजेता ! उस धन को एकत्रित करके (उपयुक्त स्थानों पर) पहुँचा दें । आप अपने प्रशंसकों की कामना पूरी करने में कृपणता न करें ॥३ ॥

५१४१. एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥४ ॥

तेजस्वी हवियों और तेजस्वी सोमरस द्वारा तृप्त होकर हे इन्द्रदेव ! हमें गौओं और घोड़ों (पोषण और प्रगति) से युक्त धन को देकर हमारी दरिद्रता का निवारण करें । सोमरस से तृप्त होने वाले, उत्तम मन वाले इन्द्रदेव के द्वारा हम शत्रुओं को नष्ट करते हुए द्वेषरहित होकर अन्न से सम्यक् रूप से हर्षित हों ॥४ ॥

५१४२. समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।

सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम धन-धान्य से सम्पन्न हों, बहुतों को हर्ष प्रदान करने वाली सम्पूर्ण तेजस्विता तथा बल से सम्पन्न हों । हम वीर पुत्रों, श्रेष्ठ गौओं एवं अश्वों को प्राप्त करने की उत्तम बुद्धि से युक्त हों ॥५ ॥

५१४३. ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।

यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥६ ॥

हे सज्जनों के पालक इन्द्रदेव ! वृत्र को मारने वाले संग्राम में आपने बलवर्द्धक सोमरस का पान करके आनन्द एवं उत्साह को प्राप्त किया और तब आपने याजकों के निमित्त दस हजार असुरों का संहार किया ॥६ ॥

५१४४. युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।

नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥७ ॥

हे संघर्षशील शक्ति-सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप शत्रु योद्धाओं से युद्ध करते रहे हैं । उनके अनेक नगरों को आपने अपने बल से ध्वस्त किया है । उन नमनशील, योग्य मित्र, मरुतों के सहयोग से आपने प्रपंची असुर 'नमुचि' (मुक्त न करने वाले) को मार दिया है ॥७ ॥

५१४५. त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।

त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने 'अतिथिग्व' को प्रताड़ित करने वाले 'करंज' (कुत्सित स्वभावयुक्त) और 'पर्णय' (गतिशील) नामक असुरों का तेजस्वी अस्त्रों से वध किया । सहायकों के बिना ही 'वंगृद' (मर्यादा तोड़ने वाले) के सैकड़ों नगरों को गिराकर घिरे हुए 'ऋजिश्वा (ऋजु-सरल मार्ग का अनुसरण करने वालों) को मुक्त किया ॥८ ॥

५१४६. त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।

षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९ ॥

हे प्रसिद्ध इन्द्रदेव ! आपने बन्धुरहित 'सुश्रवस' (श्रेष्ठ कीर्ति वाले) राजा के सम्मुख लड़ने के लिए खड़े हुए बीस राजाओं को तथा उनके साठ हजार निन्यानबे सैनिकों को अपने दुष्प्राप्य चक्रव्यूह (अथवा गतिशील प्रक्रिया) द्वारा नष्ट कर दिया ॥९ ॥

५१४७. त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।

त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अपने रक्षण-साधनों से 'सुश्रवस' की और पोषण साधनों से 'तूर्वयाण' की र[illegible] । आपने इस महान् तरुण राजा के लिए 'कुत्स', 'अतिथिग्व' और 'आयु' नामक राजाओं को वश में किया ॥१० ॥

५१४८. य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।

त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११ ॥

यज्ञ में स्तुत्य हे इन्द्रदेव ! देवों द्वारा रक्षित, हम आपके मित्र हैं । हम सर्वदा सुखी रहें । आपकी कृपा से हम उत्तम बल से युक्त, दीर्घायु को भली प्रकार धारण करते हैं तथा आपकी स्तुति करते हैं ॥११ ॥

[सूक्त- २२]

[ऋषि- त्रिशोक, ४-६ प्रियमेध । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५१४९. अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्य श्नुही मदम् ॥१ ॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! इस यज्ञ में आपके लिए सोमरस समर्पित है ।आप इस तृप्तिकारक रस का पान करें ॥

५१५०. मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपसे रक्षण की कामना करने वाले मूर्खों तथा उपहास करने वाले धूर्तों का आप पर कोई प्रभाव न पड़े । ज्ञान-द्वेषियों की आप कोई भी सहायता न करें ॥२ ॥

५१५१. इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! गौ-दुग्ध मिश्रित सोमरस की हवि देकर होता ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए आपकी प्रार्थना करते हैं । तालाब में जल पीने वाले मृग की भाँति आप सोमरस का पान करें ॥३ ॥

५१५२. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४ ॥

हे याजको ! गोपालक, सत्यनिष्ठ, सज्जनों के संरक्षक इन्द्रदेव की मन्त्रोच्चारण सहित प्रार्थना करें, जिससे उनकी शक्तियों का आभास हो सके ॥४ ॥

५१५३. आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥५ ॥

जिन इन्द्रदेव की हम अपने यज्ञ मण्डप में प्रार्थना करते हैं, उत्तम अश्व उनको यज्ञशाला में ले आएँ ॥५ ॥

५१५४. इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥६ ॥

जब यज्ञस्थल के पास इन्द्रदेव मधुर रस का पान करते हैं, तब गौएँ उन्हें मधुर दुग्ध प्रदान करती हैं ॥६ ॥

[सूक्त- २३]

[ऋषि- विश्वामित्र । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५१५५. आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमपान के लिए हम आपका आवाहन करते हैं, आप हरि संज्ञक अश्वों के साथ आएँ ॥१ ॥

५१५६. सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥२ ॥

हमारे यज्ञ में ऋतु के अनुसार यज्ञकर्ता होता बैठे हैं । उन्होंने कुश के आसन बिछाएँ हैं और सोम-अभिषव के लिए पाषाण खण्ड को संयुक्त (तैयार) किया है । हे इन्द्रदेव ! आप सोमपान के निमित्त आएँ ॥२ ॥

५१५७. इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ॥३ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! स्तोतागण इन स्तुतियों को सम्पादित करते हैं । अतएव आप इस आसन पर बैठें और पुरोडाश का सेवन करें ॥३ ॥

५१५८. रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४ ॥

हे स्तुति-योग्य, वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप यज्ञ में तीनों सवनों में किये गये स्तोत्रों और मन्त्रो मे रमण करें ॥४ ॥

५१५९. मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५ ॥

हमारी ये स्तुतियाँ महान् सोमपायी और बलों के अधिपति इन्द्रदेव को उसी प्रकार प्राप्त होती हैं, जिस प्रकार गौएँ अपने बछड़ों को प्राप्त होती हैं ॥५ ॥

५१६०. स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! विपुल धनराशि दान देने के लिए आप सोमयुक्त हविष्यान्न से अपने शरीर को प्रसन्न करें । हम स्तोताओं को निन्दित न होने दें ॥६ ॥

५१६१. वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥७ ॥

हे सबके आश्रय प्रदाता इन्द्रदेव ! आपकी अभिलाषा करते हुए हम हवियों से युक्त होकर आपकी स्तुति करते हैं । आप हमारी रक्षा करें ॥७ ॥

५१६२. मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥८ ॥

हे हरि संज्ञक अश्वों के प्रिय स्वामी इन्द्रदेव ! आप अपने घोड़ों को हमसे दूर जाकर न खोलें । हमारे पास आएँ । इस यज्ञ में आकर हर्षित हों ॥८ ॥

५१६३. अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! दीप्तिमान् (स्निग्ध) केशवाले अश्व आपको सुखकर रथ द्वारा हमारे निकट ले आएँ । आप यहाँ यज्ञस्थल पर कुश के पवित्र आसन पर सुशोभित हों ॥९ ॥

[सूक्त-२४]

[ऋषि- विश्वामित्र । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५१६४. उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! याजकों की अभिलाषा करते हुए आप अश्वों से योजित अपने रथ द्वारा हमारे पास आएँ । हमारे द्वारा अभिषुत गोदुग्धादि मिश्रित सोम का पान करें ॥१ ॥

५१६५. तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्व स्य तृप्णवः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पाषाणों से निष्पन्न कुश के आसन पर सुसज्जित तथा हर्षप्रदायक सोम के निकट आएँ । प्रचुर मात्रा में इसका पान करके तृप्त हों ॥२ ॥

५१६६. इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥३ ॥

इन्द्रदेव के आवाहन के लिए की गई स्तुतियाँ, उनको सोमपान के लिए इस यज्ञस्थल पर भली-भाँति लाएँ ॥३ ॥

५१६७. इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४ ॥

हम इन्द्रदेव को सोमपान करने के लिए यहाँ - इस यज्ञ में स्तुति गान करते हुए बुलाते हैं । स्तोत्रों द्वारा वे अनेक बार विभिन्न यज्ञों में आ चुके हैं ॥४ ॥

५१६८. इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥५ ॥

हे अन्न-धन के अधीश्वर, शतकर्मा इन्द्रदेव ! आपके लिए अभिषुत सोम प्रस्तुत है, इसे उदरस्थ करें ॥५ ॥

५१६९. विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥६ ॥

हे क्रान्तदर्शी इन्द्रदेव ! हम आपको शत्रुओं के पराभवकर्ता और धनों के विजेता के रूप में जानते हैं; अतएव हम आपसे धन की याचना करते हैं ॥६ ॥

५१७०. इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब। आगत्या वृषभिः सुतम् ॥७ ॥

हे इन्द्र !आप अपने बलवान् अश्वों द्वारा आकर हमारे अभिषुत, गो-दुग्ध तथा जौ मिश्रित सोम का पान करें।

५१७१. तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये। एष रारन्तु ते हृदि ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम यज्ञस्थल पर आपके निमित्त सोमरस प्रस्तुत करते हैं। यह सोम आपके हृदय में रमण करे ॥

५१७२. त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे। कुशिकासो अवस्यवः ॥९ ॥

हे पुरातन इन्द्रदेव ! हम कुशिक वंशज आपकी संरक्षणकारी सामर्थ्यों की अभिलाषा करते हैं। सोमपान के लिए यज्ञस्थल पर हम आपका आवाहन करते हैं ॥९ ॥

[सूक्त- २५]

[ऋषि- गोतम, ७ अष्टक। देवता- इन्द्र । छन्द- जगती, ७ त्रिष्टुप् ।]

५१७३. अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः।
तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी सामर्थ्य से रक्षित हुआ आपका उपासक अश्वों और गौओं से युक्त धन को पाकर अग्रणी होता है। जैसे जल सब ओर से समुद्र को प्राप्त होता है, वैसे ही आपके सम्पूर्ण धन उस उपासक को पूर्ण करके उसे भली प्रकार सन्तुष्ट करते हैं ॥१ ॥

५१७४. आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥२ ॥

होता (चमस पात्र) को जिस प्रकार जल धाराएँ प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार देवगण अन्तरिक्ष से यज्ञ को देखकर अपने प्रिय स्तोताओं के निकट पहुँचकर उनकी मंत्रयुक्त प्रिय स्तुतियों को ग्रहण करते हैं। वे उन स्तोताओं को पूर्व की ओर श्रेष्ठ मार्गों से ले जाते हैं ॥२ ॥

५१७५. अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! परस्पर संयुक्त दो अन्न पात्र आपके निमित्त समर्पित हैं। आपने उन पात्रों को स्तुति वचनों के साथ स्वीकार किया है। जो स्तोता आपके नियमों के अनुसार रहता है, उसकी आप रक्षा करते हैं और पुष्टि प्रदान करते हैं। सोमयाग करने वाले यजमान को आप कल्याणकारी शक्ति देते हैं ॥३ ॥

५१७६. आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! अंगिराओं ने अपने उत्तम कर्मों से अग्नि को प्रज्वलित करके सर्वप्रथम हविष्यान्न प्रदान किया है। अनन्तर उन श्रेष्ठ पुरुषों ने सभी अश्वों, गौओं से युक्त पशुरूप धन और भोज्य पदार्थों को प्राप्त किया ॥४ ॥

५१७७. यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५ ॥

सर्वप्रथम 'अथर्वा' ने 'यज्ञ' के सम्पूर्ण मार्गों को विस्तृत किया। तदनन्तर व्रतपालक सूर्यदेव का प्राकट्य हुआ। पुनः 'उशना' (तेजस्वी) ने समस्त गौओं (किरणों या वाणियों) को बाहर निकाला। हम सब इस जगत् के नियामक अविनाशी इन्द्रदेव की पूजा करते हैं ॥५ ॥

५१७८. बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥६ ॥

जिसके घर में उत्तम यज्ञादि कर्मों के निमित्त कुश काटे जाते हैं। सूर्योदय के पश्चात् आकाश में जहाँ स्तोत्रपाठ गुंजरित होते हैं। जहाँ उक्थ (स्तोत्र) वचनों सहित सोम कूटने के पाषाणों का शब्द गूँजता है; इन्द्रदेव उनके यहाँ ही हविद्रव (सोमरस) का पान करके आनन्द पाते हैं ॥६ ॥

५१७९. प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम्।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥७ ॥

हरितवर्ण के अश्वाधिपति हे इन्द्रदेव ! आपके लिए सोम अभिषुत किया गया है। सुख- ऐश्वर्यों के वर्षक आप यज्ञ की ओर सुनिश्चित रूप से आयेंगे, ऐसा जानते हुए आपके पानार्थ सोम प्रस्तुत करते हैं। हे देव ! आप स्तोत्रों को सुन करके आनन्दित हों। आप सत्कर्म सम्पादित करें तथा नानाविध स्तोत्रों से परितृप्त हों ॥७ ॥

[सूक्त- २६]

[ऋषि- शुनः शेप , ४-६ मधुच्छन्दा। देवता- इन्द्र। छन्द- गायत्री।]

५१८०. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥१ ॥

सत्कर्मों के शुभारम्भ में एवं हर प्रकार के संग्राम मे बलशाली इन्द्रदेव का हम अपने संरक्षण के लिए मित्रवत् आवाहन करते हैं ॥१ ॥

५१८१. आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः। वाजेभिरुप नो हवम् ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव प्रार्थना से प्रसन्न होकर निश्चित ही सहस्रों रक्षा-साधनों तथा अन्न, ऐश्वर्य सहित हमारे पास आयेंगे ॥

५१८२. अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्। यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥३ ॥

हम अपनी सहायता के लिए स्वर्गधाम के वासी, बहुतों के पास पहुँचकर, उन्हें नेतृत्व प्रदान करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। हमारे पिता ने भी ऐसा ही किया था ॥३ ॥

५१८३. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥४ ॥

वे (इन्द्रदेव) द्युलोक में आदित्य रूप में, भूमि पर अहिंसक अग्नि के रूप में, अन्तरिक्ष में सर्वत्र प्रसरणशील वायु के रूप में उपस्थित हैं। उन्हें उक्त तीनों लोकों के प्राणी अपने कार्यों मे देवत्वरूप से सम्बद्ध मानते हैं। द्युलोक में प्रकाशित होने वाले नक्षत्र-ग्रह आदि उन्हीं (इन्द्रदेव) के ही स्वरूपांश हैं (अर्थात् तीनों लोकों की प्रकाशमयी, प्राणमयी शक्तियों के वे ही एक मात्र संगठक हैं) ॥४ ॥

५१८४. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥५ ॥

इन्द्रदेव के रथ में दोनों ओर रक्तवर्ण, संघर्षशील, मनुष्यों को गति देने वाले दो घोड़े नियोजित रहते हैं ॥५ ॥

५१८५. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥६ ॥

हे मनुष्यो ! तुम रात्रि में निद्राभिभूत होकर, संज्ञा शून्य निश्चेष्ट होकर, प्रातः पुनः सचेत एवं सचेष्ट होकर मानो प्रतिदिन नवजीवन प्राप्त करते हो (प्रति- दिन जन्म लेते हो) ॥६ ॥

[सूक्त- २७]

[ऋषि- गोषूक्ति और अश्वसूक्ति । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५१८६. यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार आप समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हैं, वैसा ही यदि मैं बन जाऊँ , तो मेरे स्तोता भी गौओं के साथी (वाणी का धनी अथवा इन्द्रियों का मित्र) हो जाएँ ॥१ ॥

[अनियन्त्रित इन्द्रियाँ या वाणी शत्रु का कार्य करती हैं । वही नियन्त्रित होने पर मित्र बन जाती हैं । इन्द्र जैसी नियंत्रण क्षमता प्राप्त करके साधक भी यह लाभ पा सकते हैं ।]

५१८७. शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! यदि मैं गौओं (वाणी या इन्द्रियों) का स्वामी बन जाऊँ, तो मनीषियों को दान देने वाला एवं उन्हें शिक्षा, सहायता देने वाला बनूँ ॥२ ॥

५१८८. धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमयाजी (सोम यज्ञकर्त्ता) के लिए आपकी सत्यनिष्ठ धेनु (वाणी) पुष्टि प्रदायिनी है । वह गौ (पोषक प्रवाहों) तथा अश्वों (शक्ति प्रवाहों) का दोहन करती है ॥३ ॥

५१८९. न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः । यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आप स्तुत्य होकर याजक को धन प्रदान करना चाहते हैं, तब आपको धन देने से देवता या मानव कोई रोक नहीं सकता ॥४ ॥

५१९०. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥५ ॥

जब यज्ञ ने इन्द्र (की शक्ति) को बढ़ाया, (तो) इन्द्रदेव ने द्युलोक में आवास बनाकर भूमि का विस्तार किया ।

[यज्ञ से प्रकृति की देव शक्तियों के संयोजक इन्द्र की शक्ति बढ़ती है, तो द्युलोक में से दिव्य प्रवाह उमड़कर भूमि को समृद्ध बनाता है ।]

५१९१. वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके उस दिव्य संरक्षण को प्राप्त करना चाहते हैं , जिससे हम समृद्ध हों तथा शत्रुओं के समस्त ऐश्वर्यों को जीत सकें ॥६ ॥

[सूक्त- २८]

[ऋषि- गोषूक्ति और अश्वसूक्ति । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५१९[illegible]. व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥१ ॥

[illegible] पान से उत्पन्न उमंग में जब इन्द्रदेव ने बलवान् मेघों को विदीर्ण किया, तो (प्रकारान्तर से) उन्होंने प्रकाश[illegible] आकाश का भी विस्तार किया ॥१ ॥

५१९[illegible] उद्‌गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥२ ॥

[illegible]रूप हे इन्द्रदेव ! आपने गुफा में स्थित (अप्रकट) किरणों (गौओं) को प्रकटकर, उन्हें देहधारियों (अंगि[illegible]ों) तक पहुँचाया । उन्हें रोके रखने वाला असुर (बल) नीचा मुँह करके पलायन कर गया ॥२ ॥

५१९४. इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ॥३ ॥

अन्तरिक्ष में स्थित सभी प्रकाशवान् नक्षत्रों को इन्द्रदेव ने सुदृढ़ तथा समृद्ध किया । उन नक्षत्रों को कोई भी उनके स्थान से च्युत नहीं कर सकता ॥३ ॥

५१९५. अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार समुद्र की लहरें उछलती चलती हैं, उसी प्रकार आपके लिए की गई प्रार्थनाएँ शीघ्रता से पहुँचकर, आपके उत्साह को बढ़ाती हैं ॥४ ॥

[सूक्त- २९]

[ऋषि- गोषूक्ति और अश्वसूक्ति । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५१९६. त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तोत्रों तथा स्तुतियों से सन्तुष्ट, समृद्ध होते हैं । आप स्तुतिकर्ताओं के लिए हितकारी हैं

५१९७. इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् ॥२ ॥

बालों से युक्त दोनों अश्व, श्रेष्ठ ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव को सोम पीने के लिए यज्ञ मण्डप के समीप ले जाते हैं

५१९८. अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥३ ॥

इन्द्रदेव ने नमुचि (मुक्त न करने वाले असुर या आसुरी प्रवृत्ति) के सिर को अप् (जल या प्राण प्रवाह) के फेन (उफान-शक्ति) से नष्ट कर दिया ॥३ ॥

५१९९. मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपनी माया के द्वारा सर्वत्र विद्यमान हैं । आपने द्युलोक में बढ़ने वाले दस्युओं (वृत्र, अहि आदि) को नीचे धकेल दिया ॥४ ॥

५२००. असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्य नाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोमपान करने वाले तथा महान् हैं । सोमयज्ञ न करने वाले (स्वार्थी) मनुष्यों के संगठन को आपस में लड़ाकर, आपने विनष्ट कर दिया ॥५ ॥

[सूक्त- ३०]

[ऋषि- वरु अथवा सर्वहरि । देवता- हरि (इन्द्र) । छन्द- जगती ।]

५२०१. प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके दोनों घोड़ों की, इस महायज्ञ में हम अर्चना करते हैं । आपके सेवनीय, प्रशंसा- योग्य उत्साह की हम कामना करते हैं । जो हरि (हरणशील सूर्यादि) के माध्यम से घृत (तेज अथवा जल) सिंचित करते हैं, ऐसे मनोहारी इन्द्रदेव के समीप हमारे स्तोत्र पहुँचें ॥१ ॥

५२०२. हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥२ ॥

हे ऋत्विग्गण ! जो अश्व द्रुतगति से इन्द्रदेव को दिव्य धामों में पहुँचाते हैं । इन्द्रदेव के उन दोनों अश्वों की स्तुति करें । अश्वों सहित इन्द्रदेव की कल्याणप्रद सामर्थ्य की स्तुति करें । जैसे गौएँ दूध देती हैं, उसी प्रकार आप भी हरिताभ सोम एवं स्तुतियों से इन्द्रदेव को तृप्त करें ॥२ ॥

५२०३. सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३ ॥

इन्द्रदेव का जो वज्र हरित (हरणशील) और लौह धातु का है, उस शत्रुनाशक वज्र को दोनों हाथों से धारण किया जाता है । इन्द्रदेव वैभवशाली, सुन्दर हनुयुक्त हैं और क्रोधित होकर दुष्टजनों को बाणों द्वारा विनष्ट करने वाले हैं । हरिताभ सोम द्वारा इन्द्रदेव को अभिषिंचित किया जा रहा है ॥३ ॥

५२०४. दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥४ ॥

अन्तरिक्ष में सूर्य के सदृश कान्तिमान् वज्र, प्रशंसनीय होकर सबको संव्याप्त करता है, मानो उसने अपनी गति से रथ के वहनकर्ता अश्वों के सदृश ही सम्पूर्ण दिशाओं को संव्याप्त किया है । सुन्दर हनु से युक्त और सोमरस पानकर्ता इन्द्रदेव, लोहे से विनिर्मित वज्रास्त्र के द्वारा वृत्रासुर के हननकाल में असाधारण आभायुक्त हुए ॥४

५२०५. त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य१मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५ ॥

हे हरिकेश इन्द्रदेव ! पुरातन कालीन ऋषियों द्वारा आपकी ही यज्ञ में प्रार्थना की जाती थी तथा आप यज्ञ में उपस्थित होते थे । आप सबके लिए प्रशंसा योग्य हैं । हे इन्द्रदेव ! आपके सभी प्रकार के अन्न प्रशंसनीय हैं, आप कान्तिमान् और असाधारण विशेषताओं से सम्पन्न हैं ॥५ ॥

[सूक्त- ३१]

[ऋषि- वरु अथवा सर्वहरि । देवता- हरि (इन्द्र) । छन्द- जगती ।]

५२०६. ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥१ ॥

स्तुतियोग्य और वज्रधारी इन्द्रदेव जब सोमरस के पान हेतु हर्षित होकर सन्नद्ध होते हैं, तो उस समय दो सुन्दर हरितवर्ण घोड़े उनके रथ में जोते जाकर उनको वहन करते हैं । यहाँ (हमारे यज्ञस्थल में) सोम की कामना करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त अनेक बार सोमरस का अभिषवण किया जाता है । ।१ ॥

५२०७. अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥२ ॥

इन्द्रदेव के निमित्त यथोचित मात्रा में सोमरस रखा गया है, उसी सोमरस द्वारा इन्द्रदेव के अविचल घोड़ों को यज्ञ की ओर वेगशील किया जाता है । गतिशील घोड़े जिस रथ को युद्ध- भूमि की ओर वहन करते हैं, वही रथ इन्द्रदेव को कमनीय और सोमरस- सम्पन्न यज्ञ में प्रतिष्ठित करता है ॥२ ॥

५२०८. हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥३ ॥

हरि (किरणों) को श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछ) एवं केशों के समान धारणकर्त्ता, लोहे के समान सुदृढ़ शरीरधारी इन्द्रदेव, तीव्रता से हर्षित करने वाले सोमरस का पान करके उत्साहित होते हैं । वे गतिशील अश्वों से यज्ञों तक पहुँचते हैं । दोनों अश्वों को जोतकर वे हमारे सभी प्रकार के विघ्नों का निवारण करें ॥३ ॥

५२०९. स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।

प्र यत् कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥४ ॥

बलशाली इन्द्रदेव के दो हरितवर्ण अथवा दीप्तिमान् नेत्र यज्ञवेदी में दो स्रुवों के समान ही विशिष्ट ढंग से सोमरस पर केन्द्रित रहते हैं । उनके हरणशील दोनों जबड़े सोमपान हेतु कम्पायमान होते हैं । शोधित चमस-पात्र में जो अति सुखप्रद, उज्ज्वल सोमरस था, उसे पीकर वे अपने दोनों अश्वों के शरीरों को परिमार्जित करते हैं ॥४ ॥

५२१०. उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योऽरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।

मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद् वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥५ ॥

कान्तिमान् इन्द्रदेव का आवास द्यावा-पृथिवी पर ही है । वे रथारूढ़ होकर घोड़े के समान ही अतिवेग से समरक्षेत्र में गमन करते हैं । हे इन्द्रदेव ! उत्कृष्ट स्तोत्र आपको प्रशंसित करते हैं । आप अपनी सामर्थ्यानुसार विपुल अन्न को धारण करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त- ३२]

[ऋषि- वरु अथवा सर्वहरि । देवता- हरि (इन्द्र) । छन्द- जगती, २-३ त्रिष्टुप् ।]

५२११. आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।

प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपनी महत्ता से द्यावा-पृथिवी को संव्याप्त करते हैं और नवीन प्रिय स्तोत्रों की कामना करते हैं । हे बल- सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप गो (पृथ्वी) को हर्षित करने के लिए प्रेरक सूर्यदेव के लिए घर की तरह आकाश को प्रकट करते हैं ॥१ ॥

५२१२. आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।

पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥२ ॥

हे सुन्दर हनुयुक्त इन्द्रदेव ! आपके अश्व, रथ में जोते जाकर मनुष्यों द्वारा सम्पादित यज्ञ में आपको पहुँचाएँ । आपके निमित्त प्रेमपूर्वक तैयार किया गया मधुर सोमरस प्रस्तुत है, उसे आप पिएँ । दस अँगुलियों से अभिषवित सोमरस, जो यज्ञ का साधनरूप है, आप युद्ध में विजय हेतु उसे पीने की कामना करें ॥२ ॥

५२१३. अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।

ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥३ ॥

हे अश्वयुक्त इन्द्रदेव ! पहले प्रातः सवन में सोमरस दिया गया है, उसको आपने ग्रहण किया । इस समय (माध्यन्दिन सवन में) जो सोम प्रस्तुत है, वह मात्र आपके निमित्त ही है । आप इस मीठे सोमरस से आनन्द प्राप्त करें । हे विपुल वृष्टिकर्त्ता इन्द्रदेव ! आप अपने उदर को सोमरस से परिपूर्ण करें ॥३ ॥

[सूक्त- ३३]

[ऋषि- अष्टक । देवता- हरि । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५२१४. अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥१ ॥

अश्वों के अधिपति हे इन्द्रदेव ! जल में शोधित, इस यज्ञ में लाये गये सोमरस का पान करें । इससे अपनी उदरपूर्ति करें । हे प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! पाषाणों द्वारा जिसका अभिषवण किया गया है, आप उसे पीकर उत्साहित होकर हमारी स्तुतियों को ग्रहण करें ॥१ ॥

५२१५. प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥२ ॥

हरिताश्वपति हे इन्द्र ! आपके लिए सोम अभिषवित किया गया है । सुख-ऐश्वर्यों के वर्षक आप यज्ञ की ओर सुनिश्चित रूप से आयेंगे, ऐसा जानते हुए आपके पानार्थ सोम प्रस्तुत करते हैं । हे देव ! आप स्तोत्रों को ग्रहण करके आनन्दित हों । आप समस्त बुद्धियों और शक्तियों के सहित स्तुत्य हैं ॥२ ॥

५२१६. ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! उशिज् वंशज यज्ञ कर्म के विशेषज्ञ हैं । वे आपके आश्रित होकर आपके प्रभाव से अन्न और सन्तान प्राप्त करके यजमान के यज्ञगृह में रहने लगे । वे सभी आनन्द विभोर होकर आपकी प्रार्थना करने लगे ॥३ ॥

[सूक्त- ३४]

[ऋषि- गृत्समद । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५२१७. यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! अपने पराक्रम के प्रभाव से ख्याति प्राप्त उन मनस्वी इन्द्रदेव ने उत्पन्न होते ही अपने श्रेष्ठ कर्मों से देवताओं को अलंकृत कर दिया था, जिनकी शक्ति से आकाश और पृथिवी दोनों लोक भयभीत हो गये ॥१ ॥

५२१८. यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥२ ॥

हे मनुष्यो ! उन इन्द्रदेव ने विशाल आकाश को मापा, द्युलोक को धारण किया तथा काँपती हुई पृथिवी को मजबूत आधार प्रदान करके क्रुद्ध पर्वतों को स्थिर किया ॥२ ॥

५२१९. यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३ ॥

हे मनुष्यो ! जिन्होंने वृत्र राक्षस को मारकर (जल वृष्टि द्वारा) सात नदियों को प्रवाहित किया, जिन्होंने बल (राक्षस) द्वारा अपहृत की गयी गौओं को मुक्त कराया, जिन्होंने पाषाणों के बीच अग्निदेव को उत्पन्न किया, जिन्होंने शत्रुओं का संहार किया, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥३ ॥

५२२०. येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।

श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४ ॥

हे मनुष्यो ! जिन्होंने समस्त गतिशील लोकों का निर्माण किया, जिन्होंने दास वर्ण (अमानवीय आचरण करने वालों) को निम्न स्थान प्रदान किया; जिन्होंने अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया और व्याध द्वारा पशुओं के समान शत्रुओं की समृद्धि को अपने अधिकार में ले लिया, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥४ ॥

५२२१. यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।

सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५ ॥

जिन इन्द्रदेव के बारे में लोग पूछा करते हैं कि वे कहाँ हैं ? कुछ लोग कहते हैं कि वे हैं ही नहीं । इन्द्रदेव (उन न मानने वाले) शत्रुओं की पोषणकारी सम्पत्ति को वीरता के साथ नष्ट कर देते हैं । हे मनुष्यो ! इन इन्द्रदेव के प्रति श्रद्धा व्यक्त करो, ये सबसे महान् देव इन्द्र ही हैं ॥५ ॥

५२२२. यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।

युक्तग्राव्णो यो ऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६ ॥

हे मनुष्यो ! जो दरिद्रों, ज्ञानियों तथा स्तुति करने वालों को धन प्रदान करते हैं । सोमरस निकालने के लिए पत्थर रखकर (कूटने के लिए) जो यजमान तैयार हैं, उस यजमान की जो रक्षा करते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥६ ॥

५२२३. यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।

यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७ ॥

हे मनुष्यो ! जिनके अधीन समस्त ग्राम, घोड़े तथा रथ हैं, जिनने सूर्य तथा उषा को उत्पन्न किया, जो समस्त प्रकृति के संचालक हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥७ ॥

५२२४. यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।

समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८ ॥

हे मनुष्यो ! परस्पर साथ चलने वाले द्युलोक तथा पृथिवी लोक जिन्हें सहायता के लिए बुलाते हैं, महान् तथा निम्न स्तरीय शत्रु भी जिन्हें युद्ध मे मदद के लिए बुलाते हैं, एकरथ पर आरूढ़ दो वीर साथ- साथ जिन्हें मदद के लिए बुलाते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥८ ॥

५२२५. यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव या अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥९ ॥

हे मनुष्यो ! जिनकी सहायता के बिना शूरवीर युद्ध में विजयी नहीं होते, युद्धरत वीर पुरुष अपने संरक्षण के लिए जिन्हें पुकारते हैं, जो समस्त संसार को यथाविधि जानते हुए अपरिमित शक्तिवाले शत्रुओं का संहार कर देते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥९ ॥

५२२६. यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।

यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१० ॥

हे मनुष्यो ! जिनने अपने वज्र से महान् पापी शत्रुओं का हनन किया, जो अहंकारी मनुष्यों का गर्व नष्ट कर देते हैं, जो दूसरे के पदार्थों का हरण करने वाले दुष्टों के नाशक हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१० ॥

५२२७. यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥

हे मनुष्यो ! जिनने चालीसवें वर्ष पर्वत में छिपे हुए शंबर राक्षस को ढूँढ़ निकाला, जिनने जल को रोककर रखने वाले सोये हुए असुर वृत्र को मारा, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥११॥

५२२८. यः शम्बरं पर्यतरत् कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य।
अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्छत् स जनास इन्द्रः ॥१२॥

हे मनुष्यो ! जिन्होंने अपने वज्र से मेघों को विदीर्ण किया, जो सुरुचिपूर्वक सोमरस का पान करते हैं, जो यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करने वालों को पर्वत शिखर की भाँति ऊँचा उठा देते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१२॥

५२२९. यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१३॥

हे मनुष्यो ! जो सात किरणों वाले बलशाली और ओजस्वी देव सात नदियों (धाराओं) को प्रवाहित करते हैं। जिनने द्युलोक की ओर चढ़ती रोहिणी को अपने हाथ के वज्र से रोक लिया, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१३॥

५२३०. द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१४॥

हे मनुष्यो ! जिनके प्रति द्युलोक तथा पृथिवी लोक नमनशील हैं, जिनके बल से पर्वत भयभीत रहते हैं, जो सोमपान करने वाले, वज्र के समान भुजाओं वाले तथा शरीर से महान् बलशाली हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१४॥

५२३१. यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१५॥

हे मनुष्यो !जो सोम शोधित करने वालों तथा स्तुतियाँ करने वालों की रक्षा करते हैं। सोम जिनके बल को, ज्ञान जिनके यश को तथा आहुतियाँ जिनकी सामर्थ्य को बढ़ाती हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१५॥

५२३२. जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनास इन्द्रः ॥१६॥

हे मनुष्यो ! जो उत्पन्न होते ही द्युलोक की गोद में प्रकाशित हुए। जो मातृरूपा पृथ्वी तथा पितृरूप द्युलोक को भी नहीं जानते और जो हमारे द्वारा स्तुति किये जाने पर दिव्य व्रतों को पूर्ण करते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१६॥

५२३३. यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥१७॥

हे मनुष्यो ! सोमरस की कामना करते हुए जो हरि नामक घोड़ों को अच्छी प्रकार चलाते हैं। जिनके द्वारा शम्बर और शुष्ण असुरों का संहार किया गया है। जो पराक्रमी कार्यों में असाधारण शौर्य दिखाते हैं, जिनसे सभी प्राणी भयभीत रहते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१७॥

५२३४. यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१८॥

जो सोमयज्ञ करने वाले तथा सोमरस को शोधित करने वाले याजकों को धन प्रदान करते हैं, वे निश्चित रूप से सत्यरूप इन्द्रदेव हैं । हे इन्द्रदेव ! हम सन्ततियुक्त प्रियजनों के साथ सदैव आपका यशोगान करें ॥१८ ॥

[सूक्त- ३५]

[ऋषि- नोधा । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५२३५. अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥१ ॥

शीघ्र कार्य करने वाले मंत्रों द्वारा वर्णनीय महान् कीर्ति वाले, अबाध गति वाले इन्द्रदेव के लिए हम प्रशंसात्मक मंत्रों का गान करते हुए हविष्यान्न अर्पित करते हैं ॥१ ॥

५२३६. अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥२ ॥

हम उन इन्द्रदेव के निमित्त हविष्य के समान स्तोत्र अर्पित करते हैं ; उन शत्रुनाशक, इन्द्रदेव के लिए उत्तम स्तुति-गान करते हैं ।ऋषिगण उन पुरातन इन्द्रदेव के लिए हृदय, मन और बुद्धि के द्वारा पवित्र स्तुतियाँ करते हैं ॥

५२३७. अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥३ ॥

हम महान् विद्वान् इन्द्रदेव को आकृष्ट करने वाली उनकी महिमा के अनुरूप उत्तम स्तुतियों को निर्मल बुद्धि से नादपूर्वक उच्चारित करते हैं ॥३ ॥

५२३८. अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥४ ॥

जैसे त्वष्टादेव रथ का निर्माण करके इन्द्रदेव को प्रदान करते हैं, वैसे ही हम समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाले, स्तुत्य, मेधावी इन्द्रदेव के लिए अपनी वाणियों से सर्वप्रसिद्ध श्रेष्ठ स्तोत्रों का गान करते हैं ॥४ ॥

५२३९. अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥५ ॥

अश्व को रथ से नियोजित करने के समान हम धन की कामना से इन्द्रदेव के निमित्त स्तोत्रों को वाणी से युक्त करते हैं । ये स्तोत्र हम उन वीर, दानशील, विपुल यशस्वी, शत्रु के नगरों को ध्वस्त करने वाले इन्द्रदेव की वन्दना के रूप में उच्चारित कर रहे हैं ॥५ ॥

५२४०. अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६ ॥

लक्ष्य को भली प्रकार बेधने वाले शक्तिशाली वज्र को त्वष्टादेव ने युद्ध के निमित्त इन्द्रदेव के लिए तैयार किया । उसी वज्र से शत्रुनाशक, अति बलवान् इन्द्रदेव ने वृत्र के मर्म स्थान पर प्रहार करके उसे मारा ॥६ ॥

५२४१. अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥७ ॥

वृष्टि के द्वारा माता की भाँति जगत् का श्रेष्ठ निर्माण करने वाले महान् इन्द्रदेव ने यज्ञों में हवि का सेवन किया और सोम का शीघ्र पान किया। उन सर्वव्यापक इन्द्रदेव ने शत्रुओं के धन को जीता और वज्र का प्रहार करके मेघों का भेदन किया ॥७॥

५२४२. अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥८॥

'अहि'(गतिहीनों) का हनन करने पर देव-पत्नियों ने इन्द्रदेव की स्तुतियाँ कीं। इन्द्रदेव ने फिर पृथ्वी लोक और द्युलोक को वश में किया। दोनों लोकों में उनकी सामर्थ्य के सामने कोई ठहर नहीं सकता ॥८॥

५२४३. अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्।
स्वरालिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥९॥

इन्द्रदेव की महत्ता आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष से भी विस्तृत है। स्वयं प्रकाशित, सर्वप्रिय, उत्तम योद्धा, असीमित बल वाले इन्द्रदेव युद्ध के लिए अपने वीरों को प्रेरित करते हैं ॥९॥

५२४४. अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥१०॥

इन्द्रदेव ने अपने बल से शोषक वृत्र को वज्र से काट दिया और अपहृत गौओं के समान रोके हुए जल को मुक्त किया। हविदाताओं को अन्न से पूर्ण किया ॥१०॥

५२४५. अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत्।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥११॥

इन्द्रदेव के बल से ही नदियाँ प्रवाहित हुईं; क्योंकि इन्होंने ही वज्र से इन्हें नियन्त्रित कर दिया है। शत्रुओं को मारकर सभी पर शासन करने वाले इन्द्रदेव हविदाता को धन देते हुए 'तुर्वणि' (शत्रुओं) से मोर्चा लेने वाले की सहायता करते हैं ॥११॥

५२४६. अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥१२॥

अति वेगवान्, सबके स्वामी महाबली हे इन्द्रदेव !आप इस वृत्र पर वज्र का प्रहार करें और इसके जोड़ों को (वज्र के) तिरछे प्रहार से भूमि के समान (समतल) काट दें। इस प्रकार जल को मुक्त करके प्रवाहित करें ॥१२॥

५२४७. अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥१३॥

हे मनुष्य ! इन स्फूर्तिवान् इन्द्रदेव के पुरातन कर्मों की प्रशंसा करें। वे स्तुति योग्य हैं। युद्ध में वे शीघ्रता से शस्त्रों का प्रहार करके समाज को हानि पहुँचाने वाले शत्रुओं को विनष्ट करते हैं ॥१३॥

५२४८. अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥१४॥

इन इन्द्रदेव के भय से दृढ़ पर्वत, आकाश, पृथ्वी और सभी प्राणी भी काँपते हैं। नोधा ऋषि इन्द्रदेव के श्रेष्ठ रक्षण सामर्थ्यों का वर्णन करते हुए उनके अनुग्रह से बलशाली हुए थे ॥१४॥

५२४९. अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥१५॥

अपार धन के एक मात्र स्वामी इन्द्रदेव जो इच्छा करते हैं, वही स्तोताओं के द्वारा अर्पित किया जाता है। इन्द्रदेव ने स्वश्व के पुत्र 'सूर्य' के साथ स्पर्धा करने वाले, सोमयाग करने वाले, 'एतश' ऋषि को सुरक्षा प्रदान की ॥१५॥

५२५०. एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१६॥

हरे रंग के अश्वों से योजित रथ वाले हे इन्द्रदेव ! गोतम वंशजों ने आपके निमित्त आकर्षक मन्त्रयुक्त स्तोत्रों का गान किया है। इन स्तोत्रों का आप ध्यानपूर्वक श्रवण करें। विचारपूर्वक अपार धन-वैभव प्रदान करने वाले इन्द्रदेव हमें प्रातः (यज्ञ में) शीघ्र प्राप्त हों ॥१६॥

[सूक्त- ३६]

[ऋषि- भरद्वाज। देवता- इन्द्र। छन्द- त्रिष्टुप्।]

५२५१. य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥१॥

एक इन्द्रदेव संकट काल में मनुष्यों द्वारा आवाहन करने योग्य हैं। वे स्तुतियाँ करने पर आते हैं। इच्छापूर्ति करने वाले पराक्रमी, ज्ञानी, सत्यवादी एवं शत्रुओं को पीड़ा देने वाले इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१॥

५२५२. तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥२॥

अङ्गिरा आदि प्राचीन ऋषियों ने इन्द्रदेव को पराक्रमी और प्रवर्द्धमान बनाने के लिए नौ मासिक यज्ञानुष्ठान सम्पन्न किये तथा उनकी स्तुति की। वे इन्द्रदेव सभी के शासक, तीव्रगामी एवं शत्रुओं के संहारक हैं ॥२॥

५२५३. तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥३॥

हे अश्वपति इन्द्रदेव ! हम पुत्र-पौत्रादि स्वजनों, सेवकों, पशुओं से युक्त प्रसन्नतादायक धन की आप से याचना करते हैं। आप क्षीण न होने वाला, स्थायी, सुखदायक धन प्रचुर मात्रा में हमें उल्लसित करने के लिए प्रदान करें ॥

५२५४. तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४॥

हे शत्रुजयी, पराक्रमी, अनेकों द्वारा आहूत ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप दुष्ट असुरों का नाश करने की सामर्थ्य वाले हैं। आपको यज्ञ में कौन सा भाग मिला है ? हे इन्द्रदेव ! आप हमें वही सुख प्रदान करें, जो आपने पहले भी स्तोताओं को दिया है ॥४॥

५२५५. तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५॥

वज्रधारी, रथारूढ़, बहुकर्मा, अनेक शत्रुओं को एक साथ पकड़ने वाले इन्द्रदेव की गुण-गाथा का गान करते हुए, जो यजमान यज्ञकर्म और स्तुति करता है, वह शत्रुओं को हराने वाला एवं सुख प्राप्त करने वाला होता है ॥५ ॥

५२५६. अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीलिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्वयं के बल से युक्त हैं । आपने अपने मनोवेगी वज्र से उस बढ़ते हुए मायावी वृत्रासुर का संहार किया है । हे तेजस्वी इन्द्रदेव ! आपने अचल, सुदृढ़ एवं शक्तिशाली पुरियों को नष्ट किया है ॥६ ॥

५२५७. तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥७ ॥

प्राचीन ऋषियों की तरह हम भी पुरातन पराक्रमी इन्द्रदेव को नवीन स्तोत्रों से प्रवर्धमान करते हैं । वे अनन्त महिमावान्, सुन्दर वाहन वाले इन्द्रदेव हमें विश्व के सभी संकटों से पार लगाएँ ॥७ ॥

५२५८. आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अभीष्ट की वर्षा करने वाले हैं । द्युलोक, पृथ्वी एवं अन्तरिक्ष में सर्वत्र व्याप्त होकर अपने तीव्र तेज से तप्त करके ब्रह्म विद्वेषियों (दुष्टों) को भस्म करें ॥८ ॥

५२५९. भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९ ॥

हे तेजस्वी, अजर इन्द्रदेव ! आप देवलोकवासी एवं पृथ्वीवासी सभी लोगों के राजा हैं । आप दाहिने हाथ में वज्र को धारण करके विश्व के मायावियों का नाश करें ॥९ ॥

५२६०. आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥१० ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं का संहार करने के लिए अक्षुण्ण, संयमित एवं कल्याणकारी धन प्रचुर मात्रा में हमें प्रदान करें । जिससे दासों (इन्द्रियों के दास, कुमार्गगामियों) को आर्य (श्रेष्ठ मार्गगामी) बनाया जा सके और मनुष्य के शत्रुओं का नाश हो सके ॥१० ॥

५२६१. स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥११ ॥

हे इन्द्र ! आप पूज्य एवं अनेकों द्वारा आहूत हैं । आप सभी लोगों द्वारा प्रशंसित घोड़ों से हमारे पास आएँ ।जिन अश्वों की गति को देवता एवं असुर भी नहीं रोक सकते हैं, उन अश्वों के साथ आप हमारे पास आएँ ॥११॥

[सूक्त -३७]

[ऋषि- वसिष्ठ । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५२६२. यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१ ॥

जो इन्द्रदेव तीक्ष्ण सींग वाले वृषभ के समान भयंकर हैं, वे अकेले ही शत्रुओं को अपने स्थान से पदच्युत कर देते हैं। यजन न करने वालों के निवास छीन लेने वाले हे इन्द्रदेव ! आप हम याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१ ॥

५२६३. त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्य स्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब संग्राम काल में आपने 'कुत्स' की सुरक्षा, स्वयं शुश्रूषा करके की थी, तब अर्जुनी के पुत्र कुत्स को धन दिया था एवं दास 'शुष्ण' और 'कुयव' का संहार किया था ॥२ ॥

५२६४. त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम्।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥३ ॥

हे अदम्य इन्द्रदेव ! आप हवि पदार्थ अर्पित करने वाले राजा सुदास की सुरक्षा, अपनी रक्षण शक्ति सहित वज्र द्वारा करते हैं। आपने शत्रु का संहार करने के समय एवं भूमि के बँटवारे के समय, पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु एवं पूरु का संरक्षण किया था ॥३ ॥

५२६५. त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥४ ॥

मनुष्यों के हितैषी हे इन्द्र ! आपने युद्ध भूमि में मरुद्‌गणों की सहायता से उनके शत्रुओं का विनाश किया था। हे हरित वर्ण के अश्व वाले इन्द्रदेव ! आपने ही दभीति की सुरक्षा के लिए दस्यु चुमुरि एवं धुनि को मारा ॥४ ॥

५२६६. तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः।
निवेशने शततमाविवेषीरहं च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥५ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने अपने प्रसिद्ध बल के द्वारा शत्रुओं के निन्यानबे नगरों को बहुत कम समय में ही ध्वस्त कर दिया। अपने निवास के लिए सौवें नगर में प्रवेश कर आपने वृत्रासुर एवं नमुचि को मारा ॥५ ॥

५२६७. सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने हविदाता राजा सुदास के लिए सदा रहने वाली धन-सम्पदा प्रदान की। हे बहुकर्मा इन्द्रदेव ! आप कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं। हम आपके लिए दो बलशाली अश्वों को रथ में नियोजित करते हैं। आप बलवान् (इन्द्र) के पास हमारे स्तोत्र पहुँचें ॥६ ॥

५२६८. मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बलवान् हैं और अश्वों के स्वामी हैं। आपके इस यज्ञ में हम दूसरों से सहायता प्राप्त करने का पाप न करें। आप अपने रक्षण साधनों से हमारी रक्षा करें। हम आपकी स्तुति करने वाले आपके विशेष प्रिय पात्र बनें ॥७ ॥

५२६९. प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥८ ॥

हे धनपति इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति करने वाले हम परस्पर प्रेमपूर्वक मित्रभाव से घर में प्रसन्न होकर रहें । आप अतिथि-सत्कार में निपुण सुदास को सुख प्रदान करते हुए, तुर्वश एवं यदुवंशी को परास्त करें ॥८ ॥

५२७०. सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥९ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! आपके यज्ञ में हम स्तोता ही उक्थ (स्तोत्रों) का उच्चारण करते हैं । आपको हवि अर्पित करके, उक्थों के उच्चारण द्वारा पणियों (लोभियों) को भी धन दान करने की प्रेरणा दी । हम सबको आप मित्रवत् स्वीकार करें ॥९ ॥

५२७१. एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥१० ॥

हे नेतृत्व करने वालों में श्रेष्ठ इन्द्रदेव ! स्तोत्रों और हवि द्वारा आपका यजन करने वालों ने आपको हम सबका हितैषी बना दिया है । आप युद्ध के समय इन्हीं स्तोताओं की रक्षा करें ॥१० ॥

५२७२. नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! स्तुत्य होकर और ज्ञान से प्रेरित होकर आपके शरीर और रक्षण शक्तियों में वृद्धि हो । हम सबको आप अपनी कल्याणकारी शक्तियों द्वारा सुरक्षित कर, अन्न एवं आवास (घर) प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त-३८]

[ऋषि- इरिम्बिठि, ४-६ मधुच्छन्दा । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५२७३. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में पधारें । तैयार किया गया सोमरस आपके लिए समर्पित है, उसका पान करके आप श्रेष्ठ आसन पर विराजमान हों ॥१ ॥

५२७४. आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! मंत्र सुनते ही (संकेत मात्र से) रथ में जुड़ जाने वाले श्रेष्ठ अश्वों के माध्यम से, आप निकट आकर हमारी प्रार्थनाओं को सुनें ॥१ ॥

५२७५. ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥३ ॥

हे सोमपायी इन्द्रदेव ! हम ब्रह्मनिष्ठ सोमयज्ञकर्त्ता साधक, सोमपान के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥३ ॥

५२७६. इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥४ ॥

सामगान के साधक गाये जाने योग्य बृहत् साम की स्तुतियों से देवराज इन्द्र को प्रसन्न करते हैं । इसी तरह याज्ञिक भी मन्त्रोच्चारण के द्वारा इन्द्र की ही स्तुति करते हैं ॥४ ॥

५२७७. इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥५ ॥

वज्रधारी, स्वर्ण से आभूषित इन्द्रदेव, वचन के संकेत मात्र से जुड़ जाने वाले अश्वों के साथी हैं ॥५ ॥

['वीर्यं वा अश्वः !' के अनुसार पराक्रम ही अश्व है । जो पराक्रमी समय पर संकेत मात्र से संगठित हो जाएँ, इन्द्र देवता उनके साथी हैं, जो अहंकारवश बिखरे रहते हैं, वे इन्द्रदेव के प्रिय नहीं हैं ।]

५२७८. इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥६ ॥

(देवशक्तियों के संगठक) इन्द्रदेव ने विश्व को प्रकाशित करने के महान् उद्देश्य से सूर्यदेव को उच्चाकाश में स्थापित किया और सूर्यात्मक इन्द्र ने ही अपनी किरणों से मेघ-पर्वत आदि को दूर हटाया ॥६ ॥

[सूक्त-३९]

[ऋषि-मधुच्छन्दा,२-५ गोषूक्ति अश्वसूक्ति। देवता- इन्द्र। छन्द- गायत्री।]

५२७९. इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! सभी लोगों में उत्तम इन्द्र को, आप सब के कल्याण के लिए हम आमन्त्रित करते हैं, वे हमारे ऊपर विशेष कृपा करें ॥१ ॥

५२८०. व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥२ ॥

सोमपान से उत्पन्न उमंग में जब इन्द्रदेव ने बलवान् मेघों को विदीर्ण किया, तो (प्रकारान्तर से) उन्होंने प्रकाशवान् आकाश का भी विस्तार किया ॥२ ॥

५२८१.उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥३ ॥

सूर्यरूप हे इन्द्रदेव ! आपने गुफा में स्थित (अप्रकट) किरणों (गौओं) को प्रकट कर उन्हें देहधारियों (अङ्गिराओं) तक पहुँचाया। उन्हें रोके रखने वाला असुर (वल) नीचा मुँह करके पलायन कर गया ॥३ ॥

५२८२. इन्द्रेण रोचना दिवो दृळहानि दृंहितानि च। स्थिराणि न पराणुदे ॥४ ॥

अन्तरिक्ष में स्थित सभी प्रकाशवान् नक्षत्रों को इन्द्रदेव ने सुदृढ़ तथा समृद्ध किया। उन नक्षत्रों को कोई भी उनके स्थान से च्युत नहीं कर सकता ॥४ ॥

५२८३. अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते। वि ते मदा अराजिषुः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार समुद्र की लहरें उछलती चलती हैं, उसी प्रकार आपके लिए की गयी प्रार्थनाएँ शीघ्रता से पहुँचकर आपके उत्साह को बढ़ाती हैं ॥५ ॥

[सूक्त-४०]

[ऋषि- मधुच्छन्दा। देवता- १-२ इन्द्र, ३ मरुद्गण । छन्द- गायत्री।]

५२८४. इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा ॥१ ॥

सदा प्रसन्न रहने वाले, समान तेजवाले मरुद्गण, निर्भय रहने वाले इन्द्र के साथ (संगठित हुए) सुशोभित हैं।
[विभिन्न वर्गों के समान प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति परस्पर सहयोग करें, तो समाज सुखी होता है।]

५२८५. अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति। गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥२ ॥

अत्यन्त तेजस्वी और पापरहित इन्द्र की कामना करने वालों (मरुद्गणों) से यह यज्ञ सुशोभित होता है ॥

५२८६. आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम् ॥३ ॥

यज्ञीय नामवाले, धारण करने में समर्थ मरुत् वास्तव में अन्न की (वृद्धि की) कामना से बार-बार (मेघ आदि) गर्भ को प्राप्त होते हैं ॥३ ॥

[वायु के विभिन्न घटक (नाइट्रोजन, हाइड्रोजन आदि) उर्वर यौगिकों के रूप में बार-बार मेघों तथा वनस्पतियों के गर्भ में जाते हैं, इसी प्रक्रिया के आधार पर अन्नादि आहारों का उत्पादन बढ़ता है।]

[सूक्त-४१]

[ऋषि- गोतम । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५२८७. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥१ ॥

अपराजित इन्द्रदेव ने दधीचि की हड्डियों से (बने हुए वज्र से) निन्यानवे वृत्रों (राक्षसों) का संहार किया ॥१ ॥

५२८८. इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ॥२ ॥

जब इन्द्रदेव ने इच्छा मात्र से यह जान लिया कि (उस) अश्व का सिर पर्वतों के पीछे शर्यणावत् सरोवर में है, तब (पूर्व मंत्रानुसार) उसका वज्र बनाकर असुरों का वध कर दिया ॥२ ॥

[आचार्य सायण के मतानुसार शाट्यायन लिखित (वेद) इतिहास में यह कथा है । दधीचि के प्रभाव से असुर पराभूत रहते थे । दधीचि के स्वर्ग गमन के पश्चात् वे उद्दण्ड हो उठे । इन्द्र उन्हें जीतने में असमर्थ रहे, तब उन्होंने दधीचि के किसी अवशेष की कामना की, बतलाया कि जिस अश्वमुख से दधीचि ने अश्विनीकुमारों को विद्या दी थी, वह शर्यणावत् सरोवर में है । इन्द्र ने उसे प्राप्त कर वज्र बनाकर असुरों पर विजय प्राप्त की ।]

५२८९. अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३ ॥

इस प्रकार मनीषियों ने त्वष्टा (संसार को तुष्ट करने वाले सूर्यदेव) का दिव्यतेज, गतिमान् चन्द्रमण्डल में विद्यमान अनुभव किया ॥३ ॥

[सूक्त-४२]

[ऋषि- कुरुस्तुति । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५२९०. वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी सत्य को बढ़ाने वाली, नवीन कल्पनाओं वाली तथा आठ पदों वाली वाणी को हमने धारण किया है ॥१ ॥

५२९१. अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद् दस्युहाभवः ॥२ ॥

शत्रुओं से प्रतिस्पर्धा का भाव रखने वाले हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा शत्रुओं का नाश किये जाने पर द्युलोक एवं पृथ्वीलोक दोनों ही कम्पायमानकिया ॥२ ॥

५२९२. उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! पात्र में रखे हुए सोमरस को ग्रहण करके सामर्थ्यशाली होकर आप उठें और अपनी दोनों हनुओं को कम्पायमान किया ॥३ ॥

[सूक्त- ४३]

[ऋषि- त्रिशोक । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५२९३. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥१ ॥

हे इन्द्र ! आप हमारे शत्रुओं का विनाश करके, उन्हें हमसे दूर हटाएँ तथा उनका ऐश्वर्य हमारे पास पहुँचाएँ ॥१ ॥

५२९४. यद् वीलाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें ऐसी सम्पत्ति प्रदान करें, जो पुष्ट और स्थिर भूमि में विद्यमान हो तथा जिसे किसी ने स्पर्श न किया हो ॥२ ॥

५२९५. यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति। वसु स्पार्हं तदा भर ॥३ ॥

हे इन्द्र !आपके द्वारा प्रदत्त जिस वैभव को सभी उचित ढंग से जानते हैं, वह हमें पर्याप्त मात्रा में प्रदान करें ॥

[सूक्त- ४४]

[ऋषि- इरिम्बिठि । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५२९६. प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः। नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! आप , मनुष्यों में भली प्रकार प्रतिष्ठा प्राप्त, स्तुति किये जाने योग्य, शत्रुजयी नेतृत्व क्षमता सम्पन्न, महान् इन्द्रदेव की स्तुति करें ॥१ ॥

५२९७. यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या। अपामवो न समुद्रे ॥२ ॥

जिस प्रकार समस्त जल-प्रवाह समुद्र में मिलकर उसकी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार समस्त स्तुतियों तथा कीर्तियों से इन्द्रदेव सुशोभित होते हैं ॥२ ॥

५२९८. तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्। महो वाजिनं सनिभ्यः ॥३ ॥

हम महान् धन की प्राप्ति के लिए रणक्षेत्र में प्रबल पुरुषार्थ करने वाले, शक्तिशाली, महान् राजा इन्द्रदेव की श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा अभ्यर्थना करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-४५]

[ऋषि- शुनः शेप (देवरातापरनामा) । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५२९९. अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्। वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस स्नेह से कपोत गर्भ धारण की इच्छावाली कपोती के पास गमन करता है, उसी प्रकार स्नेहपूर्वक यह सोमरस आपके लिए प्रस्तुत है । आप इसे स्वीकार करें ॥१ ॥

५३००. स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृता ॥२ ॥

हे धनाधिपति, स्तुत्य और वीर इन्द्रदेव ! वैभव सम्पन्न आपके विषय में ये स्तोत्र सत्यसिद्ध हों ॥२ ॥

५३०१. ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो। समन्येषु ब्रवावहै ॥३ ॥

हे सैकड़ों (यज्ञादि) श्रेष्ठ कार्यों को सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव ! युद्ध (जीवन संग्राम) में हमारे संरक्षण के लिए आप सन्नद्ध रहें । अन्य देवों के उपस्थित रहने पर भी हम आपकी ही स्तुति करेंगे ॥३ ॥

[सूक्त- ४६]

[ऋषि- इरिम्बिठि । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५३०२. प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु। सासह्वांसं युधामित्रान् ॥१ ॥

वे इन्द्रदेव धनवानों से ऐश्वर्य का दान कराने वाले, संग्राम में शौर्य दिखाने वाले तथा अपने अस्त्र-शस्त्रों द्वारा रिपुओं को परास्त करने वाले हैं ॥१ ॥

५३०३. स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः। इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥२ ॥

प्रतिपालक इन्द्रदेव अनेकों द्वारा आवाहित किये जाते हैं । वे रक्षण-साधनों रूपी अपनी नाव के द्वारा समस्त रिपुओं से हमें पार लगा दें (हमारी रक्षा करें) ॥२ ॥

५३०४. स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च। अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥३॥

हे इन्द्र !आप हमें शक्ति और धन-धान्य पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करें ।श्रेष्ठ मार्ग प्रदर्शित करते हुए हमें सुखी बनाएँ।

[सूक्त- ४७]

[ऋषि- सुकक्ष, ४-६, १०-१२ मधुच्छन्दा, ७-९ इरिम्बिठि, १३-२१ प्रस्कण्व । देवता-१-१२इन्द्र, १३-२१ सूर्य । छन्द- गायत्री ।]

५३०५. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे। स वृषा वृषभो भुवत् ॥१॥

वृत्र के संहार के लिए हम इन्द्रदेव को स्तुतियों द्वारा प्रवृद्ध करते हैं । वे अभीष्टवर्षक इन्द्रदेव शक्ति-सम्पन्न एवं पराक्रमी वीर हों ॥१॥

५३०६. इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः। द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥२॥

वे इन्द्रदेव दान देने के लिए प्रख्यात हैं । वे बलवान् बनने के लिए सोमपान करते हैं । प्रशंसनीय कार्य करने वाले वे देव सोम पिलाये जाने योग्य हैं ॥२॥

५३०७. गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः। ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥३॥

वज्रपाणि, स्तुतियों से प्रशंसित, तेजस्वी, वीर और अपराजेय इन्द्रदेव साधकों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३॥

५३०८. इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत ॥४॥

सामगान के साधक गाये जाने योग्य बृहत् साम की स्तुतियों (गाथा) से देवराज इन्द्र को प्रसन्न करते हैं । इसी तरह याज्ञिक भी मंत्रोच्चारण के द्वारा इन्द्रदेव की ही स्तुति करते हैं ॥४॥

[गाथा शब्द गान या पद्य के अर्थ में आया है, इसे मंत्र या ऋक् के स्तर का नहीं माना जा सकता ।]

५३०९. इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा। इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥५॥

वज्रधारी, स्वर्ण वस्त्र मण्डित इन्द्रदेव, वचन के संकेत मात्र से जुड़ जाने वाले अश्वों के साथी हैं ॥५॥

['वीर्यं वा अश्वः' के अनुसार पराक्रम ही अश्व है । जो पराक्रमी समय पर संकेत मात्र से संगठित हो जाएँ, इन्द्रदेव उनके साथी हैं, जो अहंकारवश बिखरे रहते हैं, वे इन्द्रदेव के प्रिय नहीं हैं ।]

५३१०. इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥६॥

(देव शक्तियों के संगठक) इन्द्रदेव ने विश्व को प्रकाशित करने के महान् उद्देश्य से सूर्यदेव के उच्चाकाश में स्थापित किया और सूर्यात्मक इन्द्र ने ही अपनी किरणों से मेघ, पर्वत आदि को दूर हटाया ॥६॥

५३११. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में पधारें । तैयार किया गया सोमरस आपके लिए समर्पित है, उसका पान करके आप श्रेष्ठ आसन पर विराजमान हों ॥७॥

५३१२. आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना। उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! मन्त्र सुनते ही (संकेत मात्र से) रथ में जुड़ जाने वाले श्रेष्ठ अश्वों के माध्यम से, आप निकट आकर हमारी प्रार्थनाओं को सुनें ॥८॥

५३१३. ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः। सुतावन्तो हवामहे ॥९॥

हे सोमपायी इन्द्रदेव ! हम ब्रह्मनिष्ठ सोम यज्ञकर्ता साधक, सोमपान के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥९॥

५३१४. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥१० ॥

ब्रध्न (बाँधकर रखने वाले) तेजस्वी (इन्द्र) स्थित रहते हुए भी चारों ओर घूमने वालों को जोड़कर रखते हैं। वे (इसी प्रकार) प्रकाशमान द्युलोक को प्रकाशित करते हैं ॥१० ॥

५३१५. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥११ ॥

इन (इन्द्र) के रथ के दोनों पक्षों में कामना योग्य नेता (इन्द्र) का वहन करने वाले विचार एवं संघर्ष क्षमता युक्त दो हरि (गतिशील अश्व) जुड़े रहते हैं ॥११ ॥

[इन्द्र को ब्रध्न-बाँधकर रखने वाली संगठक सत्ता के रूप में वर्णित किया गया है। वे स्थिर रहकर चारों ओर घूमने वालों को जोड़े रखते हैं। यह प्रक्रिया परमाणुओं से लेकर सौर मण्डल तक सिद्ध होती है। वे न्यूक्लियस के चारों ओर घूमते हुए, केन्द्र से जुड़े रहते हैं, इसी प्रकार चलने वाले ग्रह-उपग्रह अपने केन्द्र से जुड़े रहते हैं। इन्द्र के रथ (इस प्रक्रिया) में दो घोड़े जुड़े हैं। एक शक्ति घूमने वालों को अपनी ओर खींचे रहती है तथा दूसरी उनके बीच की उचित दूरी विचारपूर्वक बनाए रखती है।]

५३१६. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥१२ ॥

हे मनुष्यो ! तुम रात्रि में निद्राभिभूत होकर, संज्ञा शून्य निश्चेष्ट होकर, प्रातः पुनः सचेत एवं सचेष्ट होकर मानो प्रतिदिन नवजीवन प्राप्त करते हो (प्रतिदिन जन्म लेते हो) ॥१२ ॥

५३१७. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१३ ॥

ये ज्योतिर्मयी रश्मियाँ सम्पूर्ण प्राणियों के ज्ञाता सूर्यदेव को एवं समस्त विश्व को दृष्टि प्रदान करने के लिए विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं ॥१३ ॥

५३१८. अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षसे ॥१४ ॥

सबको प्रकाश देने वाले सूर्यदेव के उदित होते ही रात्रि के तारा मण्डल वैसे ही छिप जाते हैं, जैसे (दिन होने पर) चोर छिप जाते हैं ॥१४ ॥

५३१९. अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥१५ ॥

प्रज्वलित हुई अग्नि की किरणों के समान सूर्यदेव की रश्मियाँ सम्पूर्ण जीव-जगत् को प्रकाशित करती हैं।

५३२०. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचन ॥१६ ॥

हे सूर्यदेव ! आप साधकों का उद्धार करने वाले हैं, समस्त संसार में एकमात्र दर्शनीय प्रकाशक हैं तथा आप ही विस्तृत अन्तरिक्ष को सभी ओर से प्रकाशित करते हैं ॥१६ ॥

५३२१. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः। प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥१७ ॥

हे सूर्यदेव ! देवों और मनुष्यों के निमित्त आप नियमित रूप से उदित होते हैं। आप सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हैं ॥१७ ॥

५३२२. येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु। त्वं वरुण पश्यसि ॥१८ ॥

हे पवित्रकारक देव ! जिस दृष्टि अर्थात् प्रकाश से आप प्राणियों के भरण- पोषण करने वाले मनुष्यों को देखते हैं (प्रकाशित करते हैं), उसी से हमें भी देखें अर्थात् हमें भी प्रकाशित करें ॥१८ ॥

५३२३. वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः। पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥१९ ॥

हे सूर्यदेव ! आप दिन एवं रात में समय को विभाजित करते हुए अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में भ्रमण करते हैं और सभी प्राणियों को देखते हैं ॥१९ ॥

५३२४. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥२० ॥

हे सर्वद्रष्टा सूर्यदेव ! आप तेजस्वी ज्वालाओं से युक्त सप्तवर्णी किरणरूपी अश्वों के रथ में दिव्यतापूर्वक सुशोभित होते हैं ॥२० ॥

५३२५. अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥२१ ॥

पवित्रता प्रदान करने वाले ज्ञान-सम्पन्न ऊर्ध्वगामी सूर्यदेव अपने सप्तवर्णी अश्वों से (किरणों से) सुशोभित रथ में अपनी युक्तियों से गमन करते हैं ॥२१ ॥

[यहाँ सप्तवर्णी का तात्पर्य सात रंगों से है, जिसे विज्ञान ने बाद में 'बैनी आहपीनाला' के क्रम से दर्शाया ।].

[सूक्त- ४८]

[ऋषि- खिल, ४-६ सार्पराज्ञी । देवता-गौ, सूर्य । छन्द- गायत्री ।]

५३२६. अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः । अभि वत्सं न धेनवः ॥१ ॥

जिस प्रकार विचरणशील गौएँ अपने बछड़े के समीप बार-बार जाती हैं, उसी प्रकार स्तुतिरूप वाणियाँ तेज द्वारा आपका सिञ्चन करती हुई आपके सामने प्रस्तुत होती हैं ॥१ ॥

५३२७. ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः । जातं जात्रीर्यथा हृदा ॥२ ॥

जिस नवजात शिशु को माताएँ (संरक्षणभाव से) हृदय से लगाती हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ भावना से युक्त स्तुतियाँ तेज से संयुक्त होती हुई इन्द्रदेव को सुशोभित करती हैं ॥२ ॥

५३२८. वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं पयः ॥३ ॥

वज्र, असाध्य रोग या दुर्गुण आदि मरने वालों की ओर ले जाएँ , हमें आयुष्य, घृत (तेज) तथा पय (दुग्धादि पोषक रस) प्राप्त हों ॥३ ॥

५३२९. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥४ ॥

गतिमान् तेजस्वी सूर्यदेव प्रकट हो गये हैं । सबसे पहले वे माता पृथ्वी को और फिर पिता स्वर्ग और अन्तरिक्ष को प्राप्त होते हैं ॥४ ॥

५३३०. अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ॥५ ॥

इन (सूर्यदेव) का प्रकाश आकाश में संचरित होता है । ये (सूर्य रश्मियाँ) प्राण से अपान तक की प्रक्रिया सम्पन्न करती हैं । ये महान् सूर्यदेव द्युलोक को विशेष रूप से प्रकाशित करते हैं ॥५ ॥

५३३१. त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥६ ॥

सर्वप्रेरक सूर्यदेव दिन की तीस घटियों तक अपनी रश्मियों से प्रकाशित होते हैं । उनकी स्तुति के लिए हम वाणी का आश्रय ग्रहण करते (उनकी स्तुतियाँ करते) हैं ॥६ ॥

[सूक्त- ४९]

[ऋषि- खिल, ४-५ नोधा, ६-७ मेध्यातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री, ४-७ प्रगाथ ।]

५३३२. यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः । सं देवा अमदन् वृषा ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब अन्तरिक्ष के ऊपर विजय की अभिलाषा से स्तोतागण वाणी का प्रयोग करते हैं, तो देवशक्तियाँ हर्षित होती हैं ॥१ ॥

५३३३. शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि । मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥२ ॥

हे शक्तिमान् इन्द्र ! आप शिष्ट मनुष्य पर कठोर वाणी का प्रयोग न करें । आप महिमामय दिव्यलोक में आनन्दमग्न हों ॥२ ॥

५३३४. शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् वि राजति । विमदन् बर्हिरासरन् ॥३ ॥

हे शक्र ! आप कठोरतापूर्वक वाणी का उच्चारण न करें । आप विशिष्ट आनन्द मग्न होकर कुशाओं पर आकर विराजमान होते हैं ॥३ ॥

५३३५. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४ ॥

हे ऋत्विजो ! शत्रुओं से रक्षा करने वाले, तेजस्वी सोमरस से तृप्त होने वाले इन्द्रदेव की हम उसी प्रकार स्तुति करते हैं, जैसे गोशाला में अपने बछड़ों के पास जाने के लिए गौएँ उल्लसित रहती हैं ॥४ ॥

५३३६. द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥५ ॥

देव लोकवासी, उत्तम दानदाता, सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव से हम सब प्रकार के ऐश्वर्य, सैकड़ों गौएँ तथा पोषक अन्न की कामना करते हैं ॥५ ॥

५.३३७. तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जिस शक्ति से यतियों तथा भृगु ऋषि को धन प्रदान किया था तथा जिस ज्ञान से ज्ञानियों (प्रस्कण्व) की रक्षा की थी, उस ज्ञान तथा बल की प्राप्ति के लिए सबसे पहले हम आपसे प्रार्थना करते हैं ॥६ ॥

५३३८. येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस शक्ति से आपने समुद्र तथा विशाल नदियों का निर्माण किया है; वह शक्ति हमारे अभीष्ट को पूर्ण करने वाली है ।आपकी जिस महिमा का अनुगमन द्यु तथा पृथ्वीलोक करते हैं, उसका कोई पारावार नहीं ।

[सूक्त- ५०]

[ऋषि- मेध्यातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५३३९. कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! चिर नवीन कोई भी आकार ग्रहण करने वाले बलवान् (इन्द्रदेव) की स्तुति करो । उनकी महिमा को पूरी तरह न गा सकने वाले स्तोता क्या स्वर्ग प्राप्त नहीं करते ?

५३४०. कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऐसे कौन से देव हैं, जो आपके निमित्त यज्ञ करते हैं तथा कौन से ऋषि ज्ञानी हैं, जो आपकी स्तुति करके कृपा प्राप्त करते हैं ? हे धनवान् इन्द्रदेव ! आप सोमरस अभिषुत करने वालों की स्तुति सुनकर उनके पास कब जाते हैं ? ॥२ ॥

[सूक्त- ५१]

[ऋषि- प्रस्कण्व, ३-४ पुष्टिगु । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५३४१. अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव स्तुति करने वालों को अनेक प्रकार के श्रेष्ठ धन से सम्पन्न बनाते हैं । अतः उत्तम धन की प्राप्ति के लिए जैसे भी संभव हो, उनकी (इन्द्रदेव की) अर्चना करो ॥१ ॥

५३४२. शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥२ ॥

जिस प्रकार सेनापति, शत्रु पर चढ़ाई करते समय अपनी सेना का संरक्षण करता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ कार्यों में अपने साधन लगाने वालों का इन्द्रदेव संरक्षण करते हैं । ऐसे साधन, लोगों को तृप्तिदायक पर्वत के जल (झरने) के समान लाभदायक होते हैं ॥२ ॥

५३४३. प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।

यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥३ ॥

हे स्तोताओ ! जो इन्द्रदेव सोम यज्ञ करने वालों तथा स्तोताओं को सहस्रों प्रकार के इच्छित ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, उन बलशाली तथा ऐश्वर्यशाली, यशस्वी इन्द्रदेव की; वाञ्छित सम्पत्ति प्राप्ति के निमित्त प्रार्थना करें ॥३ ॥

५३४४. शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।

गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥४ ॥

जब सुसंस्कृत सोमरस उन इन्द्रदेव को आनन्दित करता है, तब वे सम्पत्तिवानों को पर्वत के सदृश विशाल पदार्थों का भण्डार प्रदान करके, उन्हें तुष्ट करते हैं । उनके पास अडिग रहने वाले तथा भली प्रकार फेंके जाने वाले सैकड़ों अस्त्र-शस्त्र हैं ॥४ ॥

[सूक्त- ५२]

[ऋषि- मेध्यातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- बृहती ।]

५३४५. वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव !जैसे जल नीचे की ओर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार शोधित सोमरस सहित हम आपको झुककर नमन करते हैं । पवित्र यज्ञ में कुश के आसन पर एक साथ बैठकर याजकगण आपकी उपासना करते हैं ॥१ ॥

५३४६. स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।

कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥२ ॥

सभी को निवास देने वाले हे इन्द्रदेव ! सोमरस निकालकर याजकगण आपकी स्तुति करते हैं । सोमपान की इच्छा वाले आप, वृषभ जैसा नाद करते हुए कब हमारे यहाँ पधारेंगे ? ॥२ ॥

५३४७. कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।

पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥३ ॥

धनवान् , ज्ञानी हे इन्द्रदेव ! हम आपसे शत्रुनाशक, सुवर्ण कान्तियुक्त, गौ के समान पवित्र धन पाने के इच्छुक हैं । हे शूरवीर इन्द्रदेव ! कण्ववंशियों (मेधावी पुरुषों) द्वारा स्तुति किये जाने के बाद आप उन्हें हजारों प्रकार के बल तथा ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त- ५३]

[ऋषि- मेध्यातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- बृहती ।]

५३४८. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।

अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥१ ॥

सोमयज्ञ में एक ही स्थान पर विद्यमान होकर सोमपान करने वाले अत्यधिक वैभव सम्पन्न इन्द्रदेव को कौन नहीं जानता ? सोमपान से प्रमुदित, शिरस्त्राण धारण किये हुए इन्द्रदेव अपनी शक्ति से विरोधियों के नगरों को विनष्ट कर देते हैं ॥१ ॥

५३४९. दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।

नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥२ ॥

अपने ओज से विचरण करने वाले हमारे लिए सम्माननीय हे इन्द्रदेव ! आप इस सोमयज्ञ में पधारें । शत्रु की खोज में घूमने वाले, मतवाले हाथी के समान रथ द्वारा यज्ञ में जाने से आपको कोई रोक नहीं सकता ॥२ ॥

५३५०. य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।

यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥३ ॥

जो शस्त्रों से सुसज्जित युद्धभूमि में स्थिर रहने वाले हैं, ऐसे अपराजेय, पराक्रमी, वैभवशाली इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को सुनकर दूसरे स्थान पर न जाकर इस यज्ञ में ही पधारें ॥३ ॥

[सूक्त- ५४]

[ऋषि- रेभ । देवता- इन्द्र । छन्द- अतिजगती, २-३ उपरिष्टाद् बृहती ।]

५३५१. विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।

क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥१ ॥

(ऋषियों या देवों ने) सेनानायक, पराक्रमी, संगठित सेना से युक्त, शस्त्रास्त्र धारण करने वाले इन्द्रदेव को प्रकट किया । वे शत्रुहन्ता, उग्र, तीव्र गति से कार्य करने वाले इन्द्रदेव महिमामय हैं ॥१ ॥

५३५२. समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।

स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥२ ॥

रेभादि ऋषियों (याजकों) ने सोमपान के लिए इन्द्रदेव की स्तुति की। जब (स्तोतागण), देवलोक के स्वामी, बल एवं वैभव सम्पन्न इन्द्रदेव की वन्दना करते हैं, तो वे व्रतधारी ओज एवं संरक्षण - साधनों से युक्त हो जाते हैं ॥२ ॥

५३५३. नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥३ ॥

नम्र स्वभाव वाले विद्वान् (रेभ आदि) नेत्रों एवं वाणी से इन्द्रदेव को नमस्कार करते हैं। किसी से द्रोह न करने वाले हे श्रेष्ठ, तेजस्वी स्तोताओ ! आप भी इन्द्रदेव के कानों को प्रिय लगने वाली ऋचाओं से उनकी स्तुति करें ॥३ ॥

[सूक्त- ५५]

[ऋषि- रेभ। देवता- इन्द्र। छन्द-१ अतिजगती, २-३ बृहती।]

५३५४. तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥१ ॥

धनवान्, वीर, महाबलशाली, अपराजेय इन्द्रदेव को हम सहायतार्थ बुलाते हैं। सबसे महान्, यज्ञों में पूज्य इन्द्रदेव की स्तोत्रों द्वारा प्रार्थना करते हैं। वे वज्रधारी ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए हमारे सभी मार्ग सुगम बनाएँ ॥१ ॥

५३५५. या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥२ ॥

आत्मशक्ति सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! आप राक्षसों से जीतकर लाये गये धन से स्तोताओं का संरक्षण करें और जो आपका आवाहन करते हैं, उनकी वृद्धि करें ॥२ ॥

५३५६. यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम्।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके पास जो गौएँ, अश्व तथा अविनाशी ऐश्वर्य विद्यमान है, उसे आप सोमयागी तथा दक्षिणा प्रदान करने वाले याजकों को प्रदान करें। आप उसे सम्पत्ति अर्जित करने वाले कृपण जमाखोरों को न दें ॥३ ॥

[सूक्त- ५६]

[ऋषि- गोतम। देवता- इन्द्र। छन्द- पंक्ति।]

५३५७. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१ ॥

हर्ष और उत्साहवर्धन की कामना से स्तोताओं द्वारा इन्द्रदेव के यश का विस्तार किया जाता है, अतः छोटे और बड़े सभी युद्धों में, हम रक्षक इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। वे इन्द्रदेव युद्धों में हमारी रक्षा करें ॥१ ॥

५३५८. असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादादिः।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! आप सैन्यबलों से युक्त हैं। आप अनुचरों की वृद्धि करने वाले और उन्हें विपुल धन देने वाले हैं। आप सोमयाग करने वाले यजमान के लिए विपुल धन- प्राप्ति की प्रेरणा देने वाले हैं ॥२ ॥

५३५९. यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना।

युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३ ॥

युद्ध प्रारम्भ होने पर शत्रुजयी ही धन प्राप्त करते हैं । हे इन्द्रदेव ! युद्धारम्भ होने पर मद टपकाने वाले अश्वों को आप अपने रथ में जोड़ें । आप किसका वध करें, किसे धन दें ? यह आपके ऊपर निर्भर है । अतः हे इन्द्रदेव ! हमें ऐश्वर्यों से युक्त करें ॥३ ॥

५३६०. मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः।

सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ कार्यों में सोमरस से प्रफुल्लित होकर आप हमें गौएँ आदि विपुल धन देने वाले हैं । आप हमें दोनों हाथों से सैकड़ों प्रकार का वैभव प्रदान करें । हम वीरतापूर्वक यश के भागीदार बनें ॥४ ॥

५३६१. मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे।

विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बल वृद्धि के लिए, हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए और अभिषुत सोम का पान करने के लिए हमारे यज्ञस्थल में पधारें तथा सोमपान करके हर्षित हों । आप विपुल सम्पदाओं के स्वामी माने गये हैं । आप कामनाओं को पूरा करके हमारी रक्षा करने वाले हैं ॥५ ॥

५३६२. एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्।

अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! ये सभी प्राणी आपके वरण करने योग्य पदार्थों की वृद्धि करने वाले हैं । हे स्वामी इन्द्रदेव ! आप कृपणों के गुप्त धन को जानते हैं, उस धन को प्राप्त कर हमें प्रदान करें ॥६ ॥

[लोभियों के द्वारा संचित धन अनुपयोगी स्थिति में पड़ा रहता है । वर्तमान अर्थशास्त्री भी इसे समाज के लिए हानिप्रद मानते हैं । ऋषि ऐसे रुके हुए अनुपयोगी धन को प्रवाह में लाने की प्रार्थना इन्द्रदेव से करते हैं ।]

[सूक्त- ५७]

[ऋषि- मधुच्छन्दा, ४-७ विश्वामित्र, ८-१० गृत्समद, ११-१६ मेध्यातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री, ७ अनुष्टुप्, ११-१६ बृहती ।]

५३६३. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥१ ॥

(गो-दोहन करने वाले के द्वारा) जिस प्रकार प्रतिदिन मधुर दूध प्रदान करने वाली गाय को बुलाया जाता है, उसी प्रकार हम अपने संरक्षण के लिए सौन्दर्यपूर्ण यज्ञकर्म सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

५३६४. उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद् रेवतो मदः ॥२ ॥

सोमरस का पान करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप सोम ग्रहण करने हेतु हमारे सवन- यज्ञों में पधार कर, सोमरस पीने के बाद प्रसन्न होकर याजकों को यश, वैभव और गौएँ प्रदान करें ॥२ ॥

५३६५. अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमपान कर लेने के अनन्तर आपके समीपवर्ती श्रेष्ठ प्रज्ञावान् पुरुषों की उपस्थिति में रहकर हम आपके विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त करें । आप भी हमारे अतिरिक्त अन्य किसी के समक्ष अपना स्वरूप प्रकट न करें ॥३ ॥

५३६६. शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥४ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! हम याजकों को संरक्षण प्रदान करने के लिए आप अत्यन्त बल-प्रदायक दीप्तिमान्, चैतन्यता लाने वाले सोमरस का पान करें ॥४ ॥

५३६७. इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इन्द्र तानि त आ वृणे ॥५ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! पाँच जनों (समाज के पाँचों वर्गों) में जो इन्द्रियाँ (विशेष सामर्थ्य) हैं, उन्हें आपकी शक्तियों के रूप में हम वरण करते हैं ॥५ ॥

५३६८. अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह महान् हविष्यान्न आपके पास जाए। आप शत्रुओं के लिए दुर्लभ तेजस्वी सोमरस ग्रहण करें। हम आपके बल को प्रवृद्ध करते हैं ॥६ ॥

५३६९.अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः। उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि।

हे वज्रधारक इन्द्रदेव ! आप समीपस्थ प्रदेश से हमारे पास आएँ। दूरस्थ देश से भी आएँ। आपका जो उत्कृष्ट लोक है, उस लोक से भी आप यहाँ आएँ ॥७ ॥

५३७०. इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥८ ॥

युद्ध में स्थिर रहने वाले विश्वद्रष्टा इन्द्रदेव महान् पराभवकारी भय को शीघ्र ही दूर करते हैं ॥८ ॥

५३७१. इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः ॥९ ॥

यदि बलशाली इन्द्रदेव हमारा संरक्षण करेंगे, तो हमें पाप नष्ट नहीं कर सकता। वे हर प्रकार से हमारा कल्याण ही करेंगे ॥९ ॥

५३७२. इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥१० ॥

शत्रुविजेता, प्रज्ञावान् इन्द्रदेव सभी दिशाओं से हमें निर्भय बनाएँ ॥१० ॥

५३७३. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे।

अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥११ ॥

सोमयज्ञ में एक ही स्थान पर विद्यमान होकर सोमपान करने वाले, अत्यधिक वैभव सम्पन्न इन्द्रदेव को कौन नहीं जानता ? सोमपान से प्रमुदित, शिरस्त्राण धारण किये हुए इन्द्रदेव अपनी शक्ति से विरोधियों के नगरों को विनष्ट कर देते हैं ॥११ ॥

५३७४. दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।

नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥१२ ॥

अपने ओज से विचरण करने वाले हमारे लिए सम्माननीय हे इन्द्रदेव ! आप इस सोमयज्ञ में पधारें। शत्रु की खोज में घूमने वाले मतवाले हाथी के समान, रथ द्वारा यज्ञ में जाने से आपको कोई रोक नहीं सकता ॥१२ ॥

५३७५. य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः।

यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥१३ ॥

जो शस्त्रों से सुसज्जित युद्धभूमि में स्थिर रहने वाले हैं, ऐसे अपराजेय, पराक्रमी वैभवशाली इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को सुनकर, दूसरे स्थान पर न जाकर इस यज्ञ में पधारें ॥१३ ॥

५३७६. वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः।

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥१४ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! जैसे जल नीचे की ओर प्रवाहित होता है, वैसे ही शोधित सोम सहित हम आपको झुककर नमन करते हैं। पवित्र यज्ञ में कुश के आसन पर एक साथ बैठकर याजकगण आपकी उपासना करते हैं।

५३७७. स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः।

कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥१५ ॥

सभी को निवास देने वाले हे इन्द्रदेव ! सोमरस निकालकर याजकगण आपकी स्तुति करते हैं। सोमपान की इच्छा वाले आप, वृषभ जैसा नाद करते हुए कब हमारे यहाँ पधारेंगे ? ॥१५ ॥

५३७८. कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम्।

पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥१६ ॥

धनवान् , ज्ञानी हे इन्द्रदेव ! हम आप से शत्रुनाशक, सुवर्ण कान्तियुक्त, गौ के समान पवित्र धन पाने के इच्छुक हैं। हे शूरवीर इन्द्रदेव ! कण्ववंशियों (मेधावी पुरुषों) द्वारा स्तुति किये जाने के बाद आप उन्हें हजारों प्रकार के बल तथा ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥१६ ॥

[सूक्त- ५८]

[ऋषि- नृमेध, ३-४ भरद्वाज। देवता- १-२ इन्द्र, ३-४ सूर्य। छन्द- प्रगाथ।]

५३७९. श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।

वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥१ ॥

जैसे किरणें सूर्य के आश्रय में रहती हैं, वैसे ही इन्द्रदेव सम्पूर्ण जगत् के आश्रयदाता हैं। इन्द्रदेव से हम अपने भाग की कामना करते हैं; क्योंकि वे ही जन्म लिये हुए तथा जन्म लेने वालों को अपना-अपना भाग प्रदान करते हैं ॥१ ॥

५३८०. अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः।

सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥२ ॥

हे स्तोताओ ! आप सत्पुरुषों को धनादि दान करने वाले इन्द्रदेव की स्तुति करें; क्योंकि इनके दान कल्याणकारी प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं। जब इन्द्रदेव अपने मन के अनुरूप फल देने की प्रेरणा देते हैं, तो उपासक की कामना को नष्ट नहीं करते ॥२ ॥

५३८१. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि।

महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥३ ॥

प्रेरक, अदितिपुत्र हे इन्द्रदेव ! यह सुनिश्चित सत्य है कि आप महान् तेजस्वी हैं। हे देव ! आप महान् शक्तिशाली भी हैं, आपकी महानता का हम गुणगान करते हैं ॥३ ॥

५३८२. बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि।

मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥४ ॥

हे सूर्यदेव ! आप अपने यश के कारण महान् हैं । देवों के बीच विशेष महत्त्व के कारण आप महान् हैं । आप तमिस्रा (अन्धकार) रूपी असुरों का नाश करने वाले हैं । पुरोहित के समान देवों का नेतृत्व करने वाले हैं । आपका तेज अदम्य, सर्वव्यापी और अविनाशी है ॥४ ॥

[सूक्त- ५९]

[ऋषि- मेध्यातिथि, ३-४ वसिष्ठ । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५३८३. उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१ ॥

मधुरतायुक्त श्रेष्ठ वाणियाँ (स्तुतियाँ) प्रकट हो रही हैं । विजय दिलाने वाले, ऐश्वर्य प्राप्ति के माध्यम, सतत रक्षा करने वाले मधुर स्तोत्र रथ के समान (देवों तक इच्छित भावों या हव्यों को) पहुँचाते हैं ॥१ ॥

५३८४. कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।

इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥२ ॥

कण्व गोत्रोत्पन्न ऋषियों की भाँति स्तुति करते हुए भृगु गोत्रोत्पन्न ऋषियों ने इन्द्रदेव को चारों ओर से उसी प्रकार घेर लिया, जिस प्रकार सूर्य रश्मियाँ इस संसार में चारों ओर फैल जाती हैं । प्रियमेध ने स्तुति करते हुए महान् इन्द्रदेव का पूजन किया ॥२ ॥

५३८५. उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः ।

य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥३ ॥

जो यजमान हरि (अश्व) युक्त इन्द्रदेव के लिए सोमरस तैयार कर अर्पित करते हैं, वे इन्द्रदेव की कृपा से प्राप्त बल द्वारा शत्रु को जीतते हैं ॥३ ॥

५३८६. मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।

पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥४ ॥

(हे स्तोतागण !) यजनीय देवताओं के बीच इन्द्रदेव के लिए बड़े- सुगढ़ एवं सुन्दर- शोभनीय स्तोत्र अर्पित करो । जिसके स्तोत्रों को इन्द्रदेव मन से स्वीकार कर लेते हैं, उसे किसी प्रकार का बन्धन, कष्ट नहीं दे सकता ॥४ ॥

[सूक्त- ६०]

[ऋषि- सुतकक्ष अथवा सुकक्ष, ४-६ मधुच्छन्दा । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५३८७. एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥१ ॥

हे बलवान् इन्द्रदेव ! रणक्षेत्र में शत्रुओं को पराजित करने वाले, युद्ध में अडिग रहने वाले आप शूरवीर हैं । आपका मन (संकल्पशील) प्रशंसा के योग्य है ॥१ ॥

५३८८. एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥२ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त साधन सभी याजक प्राप्त करते हैं । आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२ ॥

५३८९. मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३ ॥

अन्नाधिपति, बलवान् हे इन्द्रदेव ! आप गोदुग्ध में मिलाये गये मधुर सोमरस का पान कर आनन्दित हों । आलसी ब्राह्मण की भाँति निष्क्रिय न रहें ॥३ ॥

५३९०. एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥४ ॥

इन्द्रदेव की अति मधुर और सत्यवाणी उसी प्रकार सुख देती है, जिस प्रकार गोधन के दाता और पके फल वाली शाखाओं से युक्त वृक्ष यजमानों (हविदाताओं) को सुख देते हैं ॥४ ॥

५३९१. एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी इष्टदात्री और संरक्षण प्रदान करने वाली जो विभूतियाँ हैं; वे हमारे जैसे सभी दानदाताओं (अपने साधन श्रेष्ठ कार्य में नियोजन करने वालों) को तत्काल प्राप्त होती हैं ॥५ ॥

५३९२. एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥६ ॥

दाता की स्तुतियाँ अति मनोरम एवं प्रशंसनीय हैं । ये सब सोमपान करने वाले इन्द्रदेव के लिए हैं ॥६ ॥

[सूक्त- ६१]

[ऋषि- गोषूक्तिअश्वसूक्ति । देवता- इन्द्र । छन्द- उष्णिक् ।]

५३९३. तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥

हे वज्रपाणि इन्द्रदेव ! शक्तिशाली, संग्राम में शत्रु को पराजित करने वाले, कल्याणकारक तथा अश्वों के लिए सेवनीय आपके उत्साह की हम प्रशंसा करते हैं ॥१ ॥

५३९४. येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने दीर्घजीवी मनुष्य के हित के लिए ज्योतिष्मान् (सूर्यादि नक्षत्र) प्रकाशित किये हैं । आप इस बर्हि (यज्ञ वेदिका) पर विराजमान होते हैं ॥२ ॥

५३९५. तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा । वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! सनातन स्तुतिकर्त्ता आज भी आपके बल की स्तुति करते हैं । पर्जन्य की वर्षा करने वाले जल को आप प्रतिदिन मुक्त करें अर्थात् समयानुसार वर्षा करते रहें ॥३ ॥

५३९६. तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥४ ॥

हे स्तोताओ ! अनेक यजमानों द्वारा स्तुतिपूर्वक आवाहन किये जाने वाले, प्रशंसा के योग्य उन महान् इन्द्रदेव की विभिन्न स्तोत्रों से स्तुति करो ॥४ ॥

५३९७. यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी । गिरींरज्राँ अपः स्व र्वृषत्वना ॥५ ॥

वे इन्द्रदेव अपनी शक्ति से शीघ्रगामी बादलों तथा गतिमान् जल को धारण करते हैं । उनके महान् बल को द्युलोक और पृथ्वीलोक ग्रहण करते हैं ॥५ ॥

५३९८. स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥६ ॥

बहुप्रशंसित हे इन्द्रदेव ! आप अपनी दिव्य कान्ति से आलोकित होते हैं । ऐश्वर्य तथा कीर्ति को प्राप्त करने के निमित्त आप अकेले ही वृत्रासुर का वध करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त-६२]

[ऋषि- सौभरि, ५-७ नृमेध, ८-१० गोषूक्तिअश्वसूक्ति । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ, ५-१० उष्णिक् ।]

५३९९. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥१ ॥

वज्रधारी, अनुपम हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार सांसारिक गुण-सम्पन्न, शक्तिशाली मनुष्यों को लोग बुलाते हैं; उसी प्रकार अपनी रक्षा की कामना से विशिष्ट सोमरस द्वारा तृप्त करते हुए, हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१ ॥

५४००. उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२ ॥

हे शत्रु-संहारक देवेन्द्र ! कर्मशील रहते हुए हम अपनी सहायता के लिए तरुण और शूरवीर रूप में विद्यमान आपका ही आश्रय लेते हैं। मित्रवत् सहायता के लिए हम आपका स्मरण करते हैं ॥२ ॥

५४०१. यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥३ ॥

हे मित्रो ! पूर्वकाल से ही जो, धन- वैभव प्रदान करने वाले हैं, उन इन्द्रदेव की हम आपके कल्याण के लिए स्तुति करते हैं ॥३ ॥

५४०२. हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥४ ॥

हरित अश्वों वाले, भद्रजनों का पालन करने वाले, रिपुओं को परास्त करने वाले तथा स्तुतियों से प्रसन्न रहने वाले इन्द्रदेव की हम प्रार्थना करते हैं, वे हम स्तुतिकर्त्ताओं को सैकड़ों गौओं तथा अश्वों से भरपूर ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४ ॥

५४०३. इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्। धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥५ ॥

हे उद्गाताओ ! विवेक-सम्पन्न, महान् , स्तुत्य, ज्ञानवान् इन्द्रदेव के निमित्त आप लोग बृहत्साम (नामक स्तोत्रों) का गायन करें ॥५ ॥

५४०४. त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥६ ॥

सूर्य को प्रकाशित करने वाले, दुष्ट - दुराचारियों को पराजित करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप विश्वकर्मा हैं, विश्व के प्रकाश हैं, महान् हैं ॥६ ॥

५४०५. विभ्राजं ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः । देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥७ ॥

अपने तेज का विस्तार करते हुए सूर्य को प्रकाशित करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप पधारें। समस्त देवतागण आपसे मित्रतापूर्वक सम्पर्क स्थापित करना चाहते हैं ॥७ ॥

५४०६. तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्। इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥८ ॥

हे स्तोताओ ! अनेक यजमानों द्वारा स्तुतिपूर्वक आवाहन किये जाने वाले, प्रशंसा के योग्य उन महान् इन्द्रदेव को विभिन्न स्तोत्रों से स्तुति करो ॥८ ॥

५४०७. यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥९ ॥

वे इन्द्रदेव अपनी शक्ति से शीघ्रगामी बादलों तथा गतिमान् जल को धारण करते हैं। उनके महान् बल को द्युलोक और पृथ्वीलोक ग्रहण करते हैं ॥९ ॥

५४०८. स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥१० ॥

बहुप्रशंसित हे इन्द्रदेव ! आप अपनी दिव्य कान्ति से आलोकित होते हैं। ऐश्वर्य तथा कीर्ति को प्राप्त करने के निमित्त आप अकेले ही वृत्रासुर का वध करते हैं ॥१० ॥

[सूक्त- ६३]

[ऋषि- १,२,३ (पूर्वार्द्ध) भुवन अथवा साधन, ३ (उत्तरार्द्ध) भरद्वाज, ४-६ गोतम , ७-९ पर्वत । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप्, ४-९ उष्णिक् ।]

५४०९. इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥१ ॥

इन समस्त लोकों को हम शीघ्र ही प्राप्त करें । इन्द्रदेव और सभी देवगण हमारे लिए सुख- शान्ति की प्राप्ति में सहायक हों । इन्द्रदेव और आदित्यगण हमारे यज्ञ को सफल बनाएँ , शरीर को निरोग बनाएँ और हमारी संतानों को सद्व्यवहार के लिए प्रेरित करें ॥१ ॥

५४१०. आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥२ ॥

इन्द्रदेव, आदित्यों और मरुद्गणों के साथ पधार कर हमारे शरीरों को सुरक्षा प्रदान करें । जिस समय देवगण वृत्रादि असुरों का संहार करके अपने स्थान की ओर लौटे , उस समय अमर देवत्व की सुरक्षा हो सकी ॥२ ॥

५४११. प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥३ ॥

स्तोताओं ने इन्द्रादि देवों के निमित्त श्रेष्ठ यज्ञादि कर्मों से युक्त स्तुतियाँ प्रस्तुत की । उसके पश्चात् सभी ने अन्तरिक्ष में बरसते हुए जल को देखा । हे इन्द्रदेव ! आप हम स्तोताओं को अन्नादि से युक्त करें । हम वीर पुत्र- पौत्रादि से युक्त होकर शतायु हों तथा सुखमय जीवनयापन करें ॥३ ॥

५४१२. य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥४ ॥

हे प्रिय याजको ! दानशील होने के कारण मनुष्यों को धन देने वाले, प्रतिकार न किये जाने वाले, वे अकेले इन्द्रदेव ही सभी (प्राणियों) के अधिपति हैं ॥४ ॥

५४१३. कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥

वे इन्द्र हमारी स्तुतियाँ कब सुनेंगे ? और आराधना न करने वालों को क्षुद्र पौधे की भाँति कब नष्ट करेंगे ? ॥

[श्रेष्ठ किसान- माली, निराई करके उन पौधों को उखाड़ देते हैं ; जो फसल के स्तर के अनुरूप नहीं है । हीन मानस वाले व्यक्ति मनुष्यता को कलंकित न करें, इस हेतु इन्द्रदेव से क्षुद्रता के उन्मूलन की प्रार्थना की गई है ।]

५४१४. यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति । उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥

असंख्यों में से जो यजमान सोमयज्ञ करके आपकी आराधना करता है, उसे हे इन्द्रदेव ! आप शीघ्र बल सम्पन्न बना देते हैं ॥६ ॥

[सोम पोषक तत्त्व है । उसे यज्ञीय भाव से सभी तक पहुँचाना सोमयज्ञ कहा जाता है । इस प्रकार के यज्ञीय कार्यों में अपनी क्षमता का नियोजन करने वालों को ही शक्ति अनुदान दिये जाते हैं ।]

५४१५. य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति । येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ॥७ ॥

सोमपान करने वालों में श्रेष्ठ हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप उल्लसित होकर कार्यों के प्रति जागरूक होते हैं । जिस बल से आप घातक असुरों (आसुरी वृत्तियों) को नष्ट करते हैं, हम आपसे वही सामर्थ्य माँगते हैं ॥७ ॥

५४१६. येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् । येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस शक्ति से आपने 'अंगिरा वंशीय अध्रिगु' की, अंधेरे को नष्ट करने वाले सूर्य की तथा समुद्र या अन्तरिक्ष की रक्षा की थी, उसी शक्ति की हम आपसे याचना करते हैं ॥८ ॥

५४१७. येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः । पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जिस बल से विशाल जल राशियों को रथ की भाँति समुद्र की ओर प्रेरित (गतिशील) किया, उसी बल को हम यज्ञीय पथ पर गमन करने के लिए आपसे माँगते हैं ॥९ ॥

[सूक्त- ६४]

[ऋषि- नृमेध, ४-६ विश्वमना । देवता- इन्द्र । छन्द- उष्णिक् ।]

५४१८. एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः । गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥१ ॥

सर्वप्रिय, सभी शत्रुओं को जीतने वाले, अपराजेय हे इन्द्रदेव ! पर्वत के सदृश सुविशाल, द्युलोक के अधिपति आप (अनुदान देने हेतु) हमारे पास पधारें ॥१ ॥

५४१९. अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी । इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥

सत्यपालक, सोमपायी हे इन्द्रदेव ! आप आकाश और पृथ्वी दोनों लोकों को अपने प्रभाव में लेने में समर्थ हैं । हे द्युलोक के स्वामी ! आप सोमयाग - कर्त्ताओं को उन्नति प्रदान करने वाले हैं ॥२ ॥

५४२०. त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि । हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप दुष्टों के अविनाशी पुरों का नाश करने वाले, अज्ञान मिटाने वाले, यज्ञकर्त्ता, मनुष्यों के मनोबल को बढ़ाने वाले तथा प्रकाशलोक के स्वामी है ॥३ ॥

५४२१. एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥

हे ऋत्विग्गण ! मधुर सोमपान से आनन्दित होने वाले इन्द्रदेव को यह रस समर्पित करो । पराक्रमी और निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाले इन्द्रदेव ही स्तोताओं द्वारा सर्वदा प्रशंसित होते हैं ॥४ ॥

५४२२. इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश शवसा न भन्दना ॥५ ॥

हे अश्वपति इन्द्रदेव ! ऋषि प्रणीत आपकी स्तुतियों को अपनी सामर्थ्य एवं तेजस्विता से अन्य कोई भी प्राप्त नहीं कर सकते ॥५ ॥

५४२३. तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥६ ॥

ऐश्वर्य की कामना से हम उन वैभवशाली इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं, जो प्रमादरहित होकर याजकों के यज्ञों (सत्कर्मों) से वृद्धि को (पोषण को) प्राप्त करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ६५]

[ऋषि- विश्वमना । देवता- इन्द्र । छन्द- उष्णिक् ।]

५४२४. एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम् । कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥१ ।

हे मित्रो ! शीघ्र आओ ; हम उन स्तुत्य, वीर इन्द्रदेव की प्रार्थना करें, जो अकेले ही सभी शत्रुओं को परास्त करने में सक्षम हैं ॥१ ॥

५४२५. अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः । घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥२ ॥

हे याजको ! गौ (गाय, वाणी अथवा इन्द्रियों) का वध न करके उसको संरक्षित करने वाले तेजस्- सम्पन्न इन्द्रदेव के निमित्त घृत एवं शहद से भी अधिक सुस्वादयुक्त स्तुति वचनों का पाठ करें ॥२ ॥

५४२६. यस्यामितानि वीर्या३ न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥३ ॥

वे इन्द्रदेव असीम शौर्य से सम्पन्न हैं । उनकी सम्पत्ति को कोई प्राप्त नहीं कर सकता । उनका दान , प्रकाश के समान सबके लिए उपलब्ध है ॥३ ॥

[सूक्त-६६]

[ऋषि- विश्वमना । देवता- इन्द्र । छन्द- उष्णिक् ।]

५४२७. स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् । अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! वे इन्द्रदेव अहिंसित शक्ति- सम्पन्न तथा समस्त जगत् को नियमित करने वाले हैं । आप व्यश्व ऋषि के सदृश उनकी प्रार्थना करें । वे दानियों को सराहनीय ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥१ ॥

५४२८. एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् । सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥२ ॥

हे विश्वमना वैयश्व ऋषे ! वे विद्वान् इन्द्रदेव मनुष्यों के अन्दर नौ प्राणों के अतिरिक्त दसवें प्राण (मुख्य प्राण) की तरह विद्यमान रहते हैं- ऐसे पूजनीय इन्द्रदेव की आप स्तुति करें ॥२ ॥

५४२९. वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥३ ॥

जिस प्रकार शोधनकर्ता (सूर्य, अग्नि आदि) सब ओर गतिशील (प्राणियों- पक्षियों) को जानते (उन्हें शुद्ध बनाते) हैं, उसी प्रकार हे वज्रपाणे ! आप निर्ऋतियों (राक्षसों- सभी लोकों) को नियंत्रित करना जानते हैं ॥३ ॥

[सूक्त - ६७]

[ऋषि- परुच्छेप, ४-७ गृत्समद । देवता- इन्द्र, २ , ४ मरुद्गण, ३, ५ अग्नि, ७ द्रविणोदा । छन्द- अत्यष्टि, ४-७ जगती ।]

५४३०. वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो
देवानामव द्विषःसुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥१ ॥

सोमयाग करने वाले यजमान धनयुक्त आवास प्राप्त करते हैं । वे ही दुष्टों और देव- विरोधियों को दूर करते हैं । जो याजक अवरोधों से घेरे न जाकर सहस्रों प्रकार के दिव्य धन को जीतना चाहते हैं ; इन्द्रदेव उन्हें पर्याप्त धन देते हैं, पर्याप्त (दिव्य- सम्पदा) देते हैं ॥१ ॥

५४३१. मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्
पुरोत जारिषुः । यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥२ ॥

हे मरुद्गणो ! पुरातनकाल की आपकी पराक्रमी सामर्थ्यों को हम कभी विस्मृत न करें, उसी प्रकार हमारी कीर्ति सदैव अक्षुण्ण रहे तथा हमारे नगरों का विध्वंस न हो । आश्चर्यप्रद, स्तुतियोग्य और अमृतरूपी रस प्रदान

करने वाली गौओं से सम्बन्धित तथा मनुष्य मात्र के लिए जो धन सम्पदाएँ हैं, वे सभी युगों- युगों तक हमारे पास विद्यमान रहें । आप हमें कठिनाई से प्राप्त होने योग्य सम्पदाएँ भी प्रदान करें ॥२ ॥

५४३२. अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥३ ॥

दैवी गुणों से सम्पन्न, श्रेष्ठ कर्म के सम्पादक, जो अग्निदेव देवताओं के समीप जाने वाली ऊर्ध्वगामी ज्वालाओं से प्रदीप्त और विस्तारयुक्त होकर, अनवरत घृतपान की अभिलाषा करते हैं; उन देव - आवाहनकर्त्ता, दानकर्ता, सबके आश्रयभूत, अरणिमन्थन से उत्पन्न, शक्ति के पुत्र, सर्वज्ञान- सम्पन्न, शास्त्रज्ञाता और ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी के सदृश; अग्निदेव को हम स्वीकार करते हैं ॥३ ॥

५४३३. यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत । आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥४ ॥

यज्ञीय कार्य में सहायक, भूमि को सिञ्चित करने वाले, शस्त्रों से सुशोभित, आभूषण प्रेमी, भरण-पोषण में समर्थ, देवपुत्र तथा नेतृत्व प्रदान करने वाले हे मरुद्गणो !आप यज्ञ में विराजमान होकर पवित्र सोम का पान करें।

५४३४. आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु । प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृप्णुहि ॥५ ॥

हे मेधावी अग्निदेव ! हमारे इस यज्ञ में देवगणों को सत्कारपूर्वक बुलाएँ । हे होता अग्निदेव ! हमारे यज्ञ की कामना से आप तीनों लोकों में प्रतिष्ठित हों । शोधित सोमरस को स्वीकार करके इस यज्ञ में सोमपान करें, समर्पित किये गये भाग से आप तृप्त हों ॥५ ॥

५४३५. एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः । तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे यज्ञ में आएँ । होतागण उत्तम स्तोत्रों से स्तुति करते हैं, अतः हमारे आवाहन को सुनकर यज्ञ में बैठकर सुशोभित हों । हे देवो ! याजकों द्वारा शोधित यह सोमरस दुग्ध मिश्रित है , जो शरीर के बल की वृद्धि करने वाला है ; अतः आप हमारे इस यज्ञ में आकर इस सोमरस का पान करें ॥६ ॥

५४३६. यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते । अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥७ ॥

जिन अग्निदेव को हमने पहले भी बुलाया था, उन्हें अब भी आवाहित करते हैं । ये अग्निदेव निश्चित ही याजकों को धन प्रदान करने वाले तथा सभी के स्वामी हैं, आवाहन के योग्य हैं । इन देव के लिए याजकों द्वारा सोमरस शोधित किया गया है । हे अग्निदेव ! इस पवित्र यज्ञ में ऋतु के अनुरूप सोमरस का पान करें ॥७ ॥

[सूक्त - ६८]

[ऋषि- मधुच्छन्दा । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५४३७. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥१ ॥

गोदोहन करने वाले के द्वारा जिस प्रकार प्रतिदिन मधुर दूध प्रदान करने वाली गाय को बुलाया जाता है, उसी प्रकार हम अपने संरक्षण के लिये सौन्दर्य पूर्ण यज्ञकर्म सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

५४३८. उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः ॥२ ॥

सोमरस का पान करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप सोम ग्रहण करने हेतु हमारे सवन- यज्ञों में पधार कर, सोमरस पीने के बाद प्रसन्न होकर याजकों को यश, वैभव और गौएँ प्रदान करें ॥२ ॥

५४३९. अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥३ ॥

सोमपान कर लेने के अनन्तर हे इन्द्रदेव ! हम आपके अत्यन्त समीपवर्ती श्रेष्ठ प्रज्ञावान् पुरुषों की उपस्थिति में रहकर आपके विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त करें । आप भी हमारे अतिरिक्त अन्य किसी के समक्ष अपना स्वरूप प्रकट न करें ॥३ ॥

५४४०.परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥४ ॥

हे ज्ञानवानो ! आप उन विशिष्ट बुद्धि वाले, अपराजेय इन्द्रदेव के पास जाकर मित्रों- बन्धुओं के लिए धन- ऐश्वर्य के निमित्त प्रार्थना करें ॥४ ॥

५४४१. उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥५ ॥

इन्द्रदेव की उपासना करने वाले उपासक उन (इन्द्रदेव) के निन्दकों को यहाँ से अन्यत्र निकल जाने को कहें; ताकि वे यहाँ से दूर हो जाएँ ॥५ ॥

५४४२. उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके अनुग्रह से समस्त वैभव प्राप्त करें, जिससे देखने वाले सभी शत्रु और मित्र हमें सौभाग्यशाली समझें ॥६ ॥

५४४३. एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत् सखम् ॥७ ॥

(हे याजको !) यज्ञ को श्री - सम्पन्न बनाने वाले, प्रसन्नता प्रदान करने वाले, मित्रों को आनन्द देने वाले इस सोमरस को शीघ्रगामी इन्द्रदेव के लिए भरें (अर्पित करें) ॥७ ॥

५४४४. अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥८ ॥

हे सैकड़ों यज्ञ सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव ! इस सोमरस को पीकर आप वृत्र आदि प्रमुख शत्रुओं के संहारक सिद्ध हुए हैं । आप समर भूमि में वीर योद्धाओं की रक्षा करें ॥८ ॥

५४४५. तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥९ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! युद्धों में बल प्रदान करने वाले आपको हम धनप्राप्ति के लिए हवि अर्पित करते हैं ॥९ ।

५४४६. यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत ॥१० ॥

हे याजको ! जो धनों के महान् रक्षक, दुःखों को दूर करने वाले और सोमयाग करने वाले याज्ञिकों से मित्रवत् भाव रखते हैं , उन इन्द्रदेव के लिए आप स्तोत्रों का गान करें ॥१० ॥

५४४७. आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय स्तोमवाहसः ॥११ ॥

हे स्तोत्रगायक मित्रो ! इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए स्तुति हेतु शीघ्र आकर बैठो और हर प्रकार से उनका गुणगान करो ॥११ ॥

५४४८. पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥१२ ॥

हे याजक मित्रो ! सोम के अभिषुत होने पर शत्रुओं को पराजित करने वाले और ऐश्वर्य के स्वामी इन्द्रदेव की संयुक्त रूप से स्तुति करें ॥१२ ॥

[सूक्त - ६९]

[ऋषि- मधुच्छन्दा। देवता- इन्द्र, १२ मरुद्गण। छन्द- गायत्री।]

५४४९. स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम्। गमद् वाजेभिरा स नः ॥१ ॥

वे इन्द्रदेव हमारे पुरुषार्थ को प्रखर बनाने में सहायक, धन - धान्य से हमें परिपूर्ण करें तथा ज्ञान प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए पोषक अन्न सहित हमारे निकट आएँ ॥१ ॥

५४५०. यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः। तस्मा इन्द्राय गायत ॥२ ॥

(हे स्तोताओ !) संग्राम में जिनके अश्वों से युक्त रथों के सम्मुख शत्रु टिक नहीं सकते, उन इन्द्रदेव के गुणों का आप गान करें ॥२ ॥

५४५१. सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये। सोमासो दध्याशिरः ॥३ ॥

यह निचोड़ा और शुद्ध किया हुआ दही मिश्रित सोमरस, सोमपान की इच्छा करने वाले इन्द्रदेव के भोग हेतु जाता है ॥३ ॥

५४५२. त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः। इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥४ ॥

हे उत्तम कर्मवाले इन्द्रदेव ! आप सोमरस पीने के लिए और देवताओं में सर्वश्रेष्ठ होने के लिए वृद्ध (बड़े) हो जाते हैं ॥४ ॥

५४५३. आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः। शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! ये तीखे (तिक्त स्वाद वाले) सोम, आपके अन्दर प्रवेश करें और आप ज्ञानसम्पन्न देव के लिए कल्याण कारक हों ॥५ ॥

५४५४. त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो। त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥६ ॥

हे सैकड़ों यज्ञ करने वाले इन्द्रदेव ! स्तोत्र आपकी वृद्धि करें। यह उक्थ (स्तोत्र) वचन और हमारी वाणी आपकी महत्ता बढ़ाए ॥६ ॥

५४५५. अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्। यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥७ ॥

रक्षणीय की सर्वथा रक्षा करने वाले इन्द्रदेव बल- पराक्रम प्रदान करने वाले विविध रूपों में विद्यमान सोमरूप अन्न का सेवन करें ॥७ ॥

५४५६. मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः। ईशानो यवया वधम् ॥८ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! हमारे शरीर को कोई भी शत्रु क्षति न पहुँचाए। हमें कोई भी हिंसित न करे, आप हमारे संरक्षक रहें ॥८ ॥

५४५७. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥९ ॥

ब्रध्न (बाँधकर रखने वाले) तेजस्वी (इन्द्र) स्थित रहते हुए भी चारों ओर घूमने वालों को जोड़कर रखते हैं। वे (इसी प्रकार) प्रकाशमान द्युलोक को प्रकाशित किए रहते हैं ॥९ ॥

५४५८. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥१० ॥

इन (इन्द्र) के रथ के दोनों पक्षों में कामनायोग्य नेता (इन्द्र) का वहन करने वाले विचार एवं संघर्ष क्षमतायुक्त दो हरी (गतिशील-अश्व) जुड़े रहते हैं ॥१० ॥

[इन्द्र को बाँधकर रखने वाली-संगठक सत्ता के रूप में वर्णित किया गया है। वे स्थिर रहकर चारों ओर घूमने वालों जोड़े रखते हैं। यह प्रक्रिया परमाणुओं से लेकर न्यूक्लियस के चारों ओर घूमते हुए केन्द्र से जुड़े रहते हैं। इसी प्रकार चलने वाले ग्रह - उपग्रह अपने केन्द्र से जुड़े रहते हैं। इन्द्र के रथ (इस प्रक्रिया) में दो घोड़े जुड़े हैं। एक शक्ति घूमने वालों को अपनी ओर खींचे रहती है तथा दूसरी शक्ति उनके बीच की उचित दूरी विचारपूर्वक बनाए रखती है।]

५४५९. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥११ ॥

हे मनुष्यो ! तुम रात्रि में निद्राभिभूत होकर, संज्ञा शून्य निश्चेष्ट होकर, प्रातः पुनः सचेत एवं सचेष्ट होकर मानो प्रतिदिन नवजीवन प्राप्त करते हो (प्रतिदिन जन्म लेते हो)।

५४६०. आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम् ॥१२ ॥

यज्ञीय नाम वाले, धारण करने में समर्थ मरुत् वास्तव में अन्न की (वृद्धि की) कामना से बार-बार (मेघ आदि) गर्भ को प्राप्त होते हैं।

[यज्ञ में वायुभूत पदार्थ मेघ आदि के गर्भ में स्थापित होकर उर्वरता को बढ़ाते हैं।]

[सूक्त-७०]

[ऋषि- मधुच्छन्दा। देवता- इन्द्र , मरुद्गण, ३-५ मरुद्गण। छन्द- गायत्री।]

५४६१. वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सुदृढ़ किलेबन्दी को ध्वस्त करने में समर्थ, तेजस्वी मरुद्गणों के सहयोग से आपने गुफा में अवरुद्ध गौओं (किरणों) को खोजकर प्राप्त किया ॥१ ॥

५४६२. देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद् वसुं गिरः। महामनूषत श्रुतम् ॥२ ॥

देवत्व प्राप्ति की कामना वाले ज्ञानी ऋत्विज, यशस्वी, ऐश्वर्यवान् वीर इन्द्र की बुद्धिपूर्वक स्तुति करते हैं ॥२ ॥

५४६३. इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा ॥३ ॥

सदा प्रसन्न रहने वाले, समान तेज वाले मरुद्गण निर्भय रहने वाले इन्द्रदेव के साथ (संगठित हुए) सुशोभित होते हैं ॥३ ॥

[विभिन्न वर्गों के समान प्रतिभा- सम्पन्न व्यक्ति परस्पर सहयोग करें, तो समाज सुखी होता है।]

५४६४. अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति। गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥४ ॥

अत्यन्त तेजस्वी और पापरहित इन्द्रदेव की कामना करने वालों (मरुतों) से यह यज्ञ सुशोभित होता है ॥४॥

५४६५. अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि। समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥५ ॥

हे सर्वत्र गमनशील मरुद्गणो ! आप अन्तरिक्ष से, आकाश से अथवा प्रकाशमान द्युलोक से यहाँ पर आएँ; क्योंकि इस यज्ञ में हमारी वाणियाँ आपकी स्तुति कर रही हैं ॥५ ॥

५४६६. इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि। इन्द्रं महो वा रजसः ॥६ ॥

इस पृथ्वी, अंतरिक्ष अथवा द्युलोक से- कहीं से भी प्रभूत धन प्राप्त करने के लिए, हम इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं ॥६ ॥

५४६७. इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥७ ॥

सामगान के साधक नये गाये जाने योग्य बृहत्साम की स्तुतियों (गाथा) से देवराज इन्द्र को प्रसन्न करते हैं । इसी तरह याज्ञिक भी मन्त्रोच्चारण के द्वारा इन्द्रदेव की ही स्तुति करते हैं ॥७ ॥

५४६८. इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥८ ॥

वज्रधारी, स्वर्ण वस्त्र मण्डित इन्द्रदेव, वचन के संकेत मात्र से जुड़ जाने वाले अश्वों के साथी हैं ॥८ ॥

५४६९. इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥९ ॥

(देवशक्तियों के संगठक) इन्द्रदेव ने विश्व को प्रकाशित करने के महान् उद्देश्य से सूर्यदेव को उच्चाकाश में स्थापित किया और सूर्यात्मक इन्द्र ने ही अपनी किरणों से मेघ-पर्वत आदि को दूर हटाया ॥९ ॥

५४७०. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥१० ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! आप सहस्रों प्रकार के लाभ वाले छोटे- बड़े संग्रामों में वीरतापूर्वक हमारी रक्षा करें ॥१० ॥

५४७१. इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥११ ॥

हम छोटे-बड़े सभी (जीवन) संग्रामों में वृत्रासुर के संहारक, वज्रपाणि इन्द्रदेव को सहायतार्थ बुलाते हैं ॥११ ।

५४७२. स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥१२ ॥

सतत दानशील, सदैव अपराजित हे इन्द्रदेव ! आप हमारे लिए मेघ से जल की वृष्टि करें ॥१२ ॥

५४७३. तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥१३ ॥

प्रत्येक दान के समय, वज्रधारी इन्द्रदेव के सदृश दानी की उपमा कहीं अन्यत्र नहीं मिलती । इन्द्रदेव की इससे अधिक उत्तम स्तुति करने में हम समर्थ नहीं हैं ॥१३ ॥

५४७४. वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥१४ ॥

सबके स्वामी, हमारे विरुद्ध कार्य न करने वाले, शक्तिमान् इन्द्रदेव अपनी सामर्थ्य के अनुसार अनुदान बाँटने के लिए मनुष्यों के पास उसी प्रकार जाते हैं, जिस प्रकार वृषभ गौओं के समूह में जाता है ॥१४ ॥

५४७५. य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥१५ ॥

इन्द्रदेव, पाँचों श्रेणियों के मनुष्यों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) और सब ऐश्वर्यों- सम्पदाओं के अद्वितीय स्वामी हैं ॥१५ ॥

५४७६. इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥१६ ॥

हे ऋत्विजो ! हे यजमानो ! सभी लोगों में उत्तम, इन्द्रदेव को, आप सबके कल्याण के लिए हम आमंत्रित करते हैं, वे हमारे ऊपर विशेष कृपा करें ॥१६ ॥

५४७७. एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥१७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारी जीवन रक्षा तथा शत्रुओं को पराभूत करने के निमित्त हमें ऐश्वर्य से पूर्ण करें ॥१७ ॥

५४७८. नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥१८ ॥

उस ऐश्वर्य के प्रभाव और आपके द्वारा रक्षित अश्वों के सहयोग से हम मुक्के का प्रहार करके (शक्ति प्रयोग द्वारा) शत्रुओं को भगा दें ॥१८ ॥

५४७९. इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि। जयेम सं युधि स्पृधः ॥१९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा संरक्षित होकर तीक्ष्ण वज्रों को धारण कर हम युद्ध में स्पर्धा करने वाले शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥१९ ॥

५४८०. वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्। सासह्याम पृतन्यतः ॥२० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा संरक्षित कुशल शस्त्र चालक वीरों के साथ, हम अपने शत्रुओं को पराजित करें ॥२०॥

[सूक्त-७१]

[ऋषि- मधुच्छन्दा। देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५४८१. महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे। द्यौर्न प्रथिना शवः ॥१ ॥

इन्द्रदेव श्रेष्ठ और महान् हैं। वज्रधारी इन्द्रदेव का यश द्युलोक के समान व्यापक होकर फैले तथा इनके बल की प्रशंसा चतुर्दिक् हो ॥१ ॥

५४८२. समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ। विप्रासो वा धियायवः ॥२ ॥

जो संग्राम में जुटते हैं, जो पुत्र की विजय हेतु संलग्न होते हैं और बुद्धिपूर्वक ज्ञान-प्राप्ति के लिए यत्न करते हैं, वे सब इन्द्रदेव की स्तुति से इष्टफल पाते हैं ॥२ ॥

५४८३. यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते। उर्वीरापो न काकुदः ॥३ ॥

अत्यधिक सोमपान करने वाले इन्द्रदेव का उदर समुद्र की तरह विशाल हो जाता है। वह (सोमरस) जीभ से प्रवाहित होने वाले रसों की तरह सतत द्रवित होता रहता है ॥३ ॥

५४८४. एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही। पक्वा शाखा न दाशुषे ॥४ ॥

इन्द्रदेव की मधुर और सत्यवाणी उसी प्रकार सुख देती है, जिस प्रकार गोधन के दाता और पके फल वाली शाखाओं से युक्त वृक्ष आदि (हविदाताओं) को सुख देते हैं ॥४ ॥

५४८५. एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते। सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी इष्टदात्री और संरक्षण प्रदान करने वाली विभूतियाँ हमारे जैसे सभी दानदाताओं (अपनी विभूतियाँ श्रेष्ठ कार्य में नियोजन करने वालों) को तत्काल प्राप्त होती हैं ॥५ ॥

५४८६. एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये ॥६ ॥

दाता की स्तुतियाँ और उक्थ वचन अति मनोरम एवं प्रशंसनीय हैं। ये सब सोमपान करने वाले इन्द्रदेव के लिये हैं ॥६ ॥

५४८७. इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः। महाँ अभिष्टिरोजसा ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमरूपी अन्नों से आप प्रफुल्लित होते हैं। अपनी शक्ति से दुर्दान्त शत्रुओं पर विजय श्री वरण करने की क्षमता प्राप्त करने हेतु आप (यज्ञशाला में) पधारें ॥७ ॥

५४८८. एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने। चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥८ ॥

(हे याजको !) प्रसन्नता देने वाले सोमरस को (निचोड़कर) तैयार करें तथा सम्पूर्ण कार्यों के सम्पादक इन्द्रदेव सामर्थ्य बढ़ाने वाले इस सोम को अर्पित करें ॥८ ॥

५४८९. मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभि स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे। सचैषु सवनेष्वा ॥९ ॥

हे उत्तम शस्त्रों से सुसज्जित (अथवा शोभन नासिका वाले), सर्वद्रष्टा इन्द्रदेव ! हमारे इन यज्ञों में आकर प्रफुल्लता प्रदान करने वाले स्तोत्रों से आप आनन्दित हों ॥९ ॥

५४९०. असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रतित्वामुदहासत। अजोषा वृषभं पतिम् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति के लिए हमने स्तोत्रों की रचना की है। जैसे कामनायुक्त स्त्रियाँ समर्थ पति के पास पहुँचती है, वैसे ही हमारी स्तुतियाँ आपके पास पहुँचें ॥१० ॥

५४९१. सं चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम्। असदित् ते विभु प्रभु ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ही विपुल ऐश्वर्यों के अधिपति हैं, अतः विविध प्रकार के ऐश्वर्यों को हमारे पास प्रेरित करें।

५४९२. अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः। तुविद्युम्न यशस्वतः ॥१२ ॥

हे प्रभूत ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप वैभव की प्राप्ति के लिए हमें श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित करें, जिससे हम परिश्रमी और यशस्वी हो सकें ॥१२ ॥

५४९३. सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्। विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें गौओं, धन-धान्यों से युक्त अपार वैभव एवं अक्षय पूर्णायु प्रदान करें ॥१३ ॥

५४९४. अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम्। इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें प्रभूत यश एवं विपुल ऐश्वर्य तथा बहुत से रथों में भरकर अन्नादि प्रदान करें ॥१४ ॥

५४९५. वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्। होम गन्तारमूतये ॥१५ ॥

धनों के अधिपति, ऐश्वर्यों के स्वामी, ऋचाओं से स्तुत्य इन्द्रदेव का हम स्तुतिपूर्वक आवाहन करते हैं। वे हमारे यज्ञ में पधार कर हमारे ऐश्वर्य की रक्षा करें ॥१५ ॥

५४९६. सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः। इन्द्राय शूषमर्चति ॥१६ ॥

प्रत्येक सोमयज्ञ में सोम निचोड़ने के अवसर पर याजकगण इन्द्रदेव के पराक्रम की प्रशंसा करते हैं ॥१६ ॥

[सूक्त-७२]

[ऋषि- परुच्छेप। देवता- इन्द्र। छन्द- अत्यष्टि।]

५४९७. विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः
सनिष्यवः पृथक्। तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सभी सोमयज्ञों में विभिन्न उद्देश्यों वाले याजक आपको हविष्यान्न प्रदान करते हैं। स्वर्ग की प्राप्ति के इच्छुक भी पृथक् रूप से आहुतियाँ देते हैं। मनुष्यों को सागर से पार ले जाने वाली नाव के समान ही इन्द्रदेव को जागरूक करके सेना के अग्रिम भाग में प्रतिष्ठित करते हैं। हम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ॥१॥

५४९८. वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः
सक्षन्त इन्द्र निःसृजः। यद् गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! संरक्षण के इच्छुक गृहस्थजन सपत्नीक स्वर्ग प्राप्ति एवं गौओं की प्राप्ति के लिए आपके सम्मुख प्रस्तुत होते हैं । ऐसे में हे इन्द्रदेव ! गौ समूह की प्राप्ति के लिए होने वाले संग्राम में आपको स्वयं ले जाकर प्रेरित करने वाले यजमान आपके लिए यज्ञ कर्म सम्पादित करते हैं । आपने ही अपने साथ रहने वाले वज्र को प्रकट (प्रयुक्त) किया है ॥२ ॥

५४९९. उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः
स्वर्षाता हवीमभिः । यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे प्रभातकालीन यज्ञादिकर्मों के समय उच्चारित स्तुतियों पर ध्यान दें और आहुतियों को ग्रहण करें । सुखों की प्राप्ति हेतु स्तुतियों के अभिप्राय को जानें । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! जिस प्रकार आप शत्रुनाशक कार्यों में सजग रहते हैं, उसी गम्भीरता से आप नवीन रचित स्तोत्रों और नये ज्ञानी स्तोताओं की प्रार्थनाओं पर ध्यान दें ॥३ ॥

[सूक्त-७३]

[ऋषि- वसिष्ठ, ४-६ वसुक्र । देवता- इन्द्र । छन्द- १ त्रिपदा विराट् अनुष्टुप्, ४-५ जगती, ६ अभिसारिणी त्रिष्टुप् ।]

५५००. तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके लिए ये अनेक सवन हैं । ये स्तोत्र भी आपका यश बढ़ाने के लिए हैं । आप ही मनुष्यों के द्वारा हवि प्रदान करने योग हैं ॥१ ॥

५५०१. नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र । न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥२ ॥

हे दर्शनीय इन्द्रदेव ! आपकी ऐसी सम्माननीय महिमा का कोई पार नहीं पा सकता है । हे शूरवीर ! आपके पराक्रम एवं धन का पार भी कोई नहीं पा सकता है ॥२ ॥

५५०२. प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥३ ॥

हे मनुष्यो ! महान् कार्य सम्पन्न करने वाले, प्रख्यात इन्द्रदेव के लिए सोम प्रदान करते हुए श्रेष्ठ स्तोत्रों से उनकी स्तुति करो । हे इन्द्रदेव ! आप भी हविदाता प्रजाओं की कामना पूर्ण करते हुए उनका कल्याण करें ॥३ ॥

५५०३. यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥४ ॥

इन्द्रदेव जब अपने तेजस्वी स्वर्णिम वज्र को धारण कर अपने दो अश्वों से जोते गये रथ पर आरूढ़ होते हैं, तब वे विशेष रूप से सुशोभित होते हैं । इन्द्रदेव सभी के द्वारा जाने गये उत्तम अन्नों और ऐश्वर्य- सम्पदा के अधीश्वर हैं ॥४ ॥

५५०४. सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥५ ॥

जिस प्रकार वर्षा के जल से पशु समूह भीगता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव हरितवर्ण सोमरस से अपनी दाढ़ी-मूँछ को भिगोते हैं । तत्पश्चात् वे उत्तम यज्ञस्थल में जाकर प्रस्तुत मधुर सोमरस का पान करते हैं, तब जैसे वायु वन- वृक्षों को कम्पायमान करती है, वैसे ही वे रिपुओं को संत्रस्त करते हैं ॥५ ॥

५५०५. यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥६ ॥

अनेक प्रकार की उत्तेजक वाणी का प्रयोग करने वाले शत्रुओं को सामर्थ्यशाली इन्द्रदेव ने अपनी ललकार से शान्त किया और क्रोध से हजारों शत्रुओं का समूल नाश किया । पिता जिस प्रकार अन्नादि से पुत्रों का पोषण करता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव मनुष्यों का पोषण करते हैं । हम उन बलवान् इन्द्रदेव की महिमा का गुणगान करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त-७४]

[ऋषि- शुनः शेप । देवता- इन्द्र । छन्द- पंक्ति]

५५०६. यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥१ ॥

हे सत्यस्वरूप सोमपायी इन्द्रदेव ! यद्यपि हम प्रशंसा पाने के पात्र तो नहीं हैं, तथापि आप हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और घोड़े प्रदान करके सम्पन्न बनाएँ ॥१ ॥

५५०७. शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शक्तिशाली, शिरस्त्राण धारण करने वाले, बलों के अधीश्वर और ऐश्वर्यशाली हैं । आपका सदैव हम पर अनुग्रह बना रहे । हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और घोड़े प्रदान करके सम्पन्न बनाएँ ॥२ ॥

५५०८. नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! दोनों दुर्गतियाँ (विपत्ति और दरिद्रता) परस्पर एक दूसरे को देखती हुई सो जाएँ । वे कभी न जागें, वे अचेत पड़ी रहें । आप हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और अश्व प्रदान करके सम्पन्न बनाएँ ॥३ ॥

५५०९. ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे शत्रु सोते रहें और हमारे वीर दानी मित्र जागते रहें । आप हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और अश्व प्रदान करके सम्पन्न बनाएँ ॥४ ॥

५५१०. समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! कपटपूर्ण वाणी बोलने वाले शत्रुरूप गधे को मार डालें । आप हमें सहस्रों पुष्ट गौएं और अश्व देकर सम्पन्न बनाएँ ॥५ ॥

५५११. पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! दुष्ट शत्रु विध्वंसकारी बवण्डर की भाँति वनों से दूर जाकर गिरें । आप हमें सहस्रों पुष्ट गौएँ और अश्व देकर सम्पन्न बनाएँ ॥६ ॥

५५१२. सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम पर आक्रोश करने वाले सब शत्रुओं को विनष्ट करें, हिंसकों का नाश करें । आप हमें सहस्रों पुष्ट गौएँ और अश्व देकर सम्पन्न बनाएँ ॥७ ॥

[सूक्त-७५]

[ऋषि- परुच्छेप । देवता- इन्द्र । छन्द- अत्यष्टि ।]

५५१३. वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः
सक्षन्त इन्द्र निःसृजः । यद् गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! संरक्षण के इच्छुक गृहस्थजन सपत्नीक स्वर्ग प्राप्ति एवं गौओं की प्राप्ति के लिए आपके सम्मुख प्रस्तुत होते हैं । ऐसे में हे इन्द्रदेव ! गौ समूह की प्राप्ति के लिए होने वाले संग्राम में आपको स्वयं ले जाकर प्रेरित करने वाले यजमान आपके लिए यज्ञ कर्म सम्पादित करते हैं । आपने ही अपने साथ रहने वाले वज्र को प्रकट (प्रयुक्त) किया है ॥१ ॥

५५१४. विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः
सासहानो अवातिरः । शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपके द्वारा शत्रुओं की सामर्थ्य को पददलित तथा उनकी शरत्कालीन आवासीय नगरियों को विध्वंस किया गया, तब प्रजाजनों में आपकी शक्ति विख्यात हुई । हे शक्ति के प्रतिनिधि इन्द्रदेव ! आपने मनुष्यों के कल्याण के लिए यज्ञ विध्वंसक राक्षसों को दण्डित करके पृथ्वी एवं जल पर उनके प्रभुत्व को समाप्त किया ॥२ ॥

५५१५. आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ
सखीयतो यदाविथ । चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥३ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आनन्दित होते हुए आपने यजमानों तथा मित्र भाव रखने वालों का संरक्षण किया । उनके द्वारा आपकी शक्ति को चारों ओर विस्तारित किया गया । आपने ही धनादि वितरण से संग्रामों में वीरों को प्रोत्साहित किया । आपने एक-दूसरे के सहयोग से धन लाभ देते हुए अन्नादि के इच्छुकों को अन्न उपलब्ध कराया ॥३ ॥

[सूक्त-७६]

[ऋषि- वसुक्र । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५५१६. वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥१ ॥

जिस प्रकार पक्षी फलाहार की इच्छा से अपने शिशु को वृक्ष के नीड़ में सावधानीपूर्वक रखते हैं, उसी प्रकार ये अति पवित्र स्तोत्र आपके निमित्त समर्पित हैं ।बहुत दिनों तक हम इन्हीं स्तोत्रों से इन्द्रदेव का आवाहन करते रहे, वे इन्द्रदेव नेतृत्व प्रदान करने वालों में सर्वश्रेष्ठ, पराक्रमशाली, नायक तथा रात्रिकाल में भी सोमपान करने वाले हैं ॥१ ॥

५५१७. प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥२ ॥

हे मनुष्यों को नेतृत्व प्रदान करने वाले ! इन उषाओं और अन्य उषाकालों में आपकी अर्चना से हमारी भी श्रेष्ठता जाग्रत् हो । हे इन्द्रदेव ! त्रिशोक नामक ऋषि ने आपकी स्तुति- प्रार्थना द्वारा आपसे सौ मनुष्यों का सहयोग प्राप्त किया तथा कुत्स ऋषि जिस रथ पर आरूढ़ होते हैं, वह भी आपकी सहायता का परिणाम है ॥२ ॥

५५१७. कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्यु१ग्रो वि धाव ।
कद् वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारी स्तोत्र वाणियों को सुनकर यज्ञस्थल के द्वार की ओर आप शीघ्रता से आएँ । किस प्रकार का हर्षदायक सोम आपको अति प्रसन्नताप्रद तथा रुचिकर है ? हमें कब श्रेष्ठ वाहन मिलेंगे ? हमारे मनोरथ कब पूर्ण होंगे ? हम (आपके स्तोता) अन्न-धन की प्राप्ति के लिए कौन सी साधना से आपको प्रसन्न कर सकेंगे ? ॥३ ॥

५५१९. कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप किस समय हमारे ध्यान में प्रकट होंगे और किस समय हमें साधना की सिद्धि मिलेगी ? किस प्रकार के स्तोत्रों और सत्कर्मों से आप हम मनुष्यों को अपने समान ही सामर्थ्यवान् बनायेंगे ? हे यशस्वी इन्द्रदेव ! आप तो सभी के सच्चे सखारूप हितैषी हैं, यह बात इससे सिद्ध होती है कि सभी साधकों का अन्न से पालन-पोषण करने की आपकी अभिलाषा रहती है ॥॥

५५२०. प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५ ॥

तेजस्वी आप: देवताओं के लिए भली प्रकार प्रवाहित हो । हे ऋत्विजो ! मित्र और वरुणदेव के लिए श्रेष्ठ अन्नरूप सोम संस्कारित करो तथा महावेगशाली इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ रीति से स्तुतियों का उच्चारण करो ॥५ ॥

५५२१. मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी विशेष कृपा से प्राचीन समय में विनिर्मित ये जो द्युलोक और पृथ्वी लोक हैं, वही विविध लोकों के निर्माता हैं ।आपके लिए घृतयुक्त सोम प्रस्तुत किया जा रहा है, उस मधुर रस पीकर आप हर्षित हो ॥६ ॥

५५२२. आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।

स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥७ ॥

वे इन्द्रदेव निश्चित ही ऐश्वर्यदाता हैं, अतएव ऐसे देव के निमित्त मधुपर्क से परिपूर्ण सोम- पात्र को सादर समर्पित करें । वे मनुष्यों के हितकारी हैं तथा पृथ्वी के व्यापक क्षेत्र में अपने पराक्रम से, सभी प्रकार से उन्नतशील हैं ॥७ ॥

५५२३. व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।

आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥८ ॥

अतिशक्तिशाली इन्द्रदेव ने शत्रुसेना को घेर लिया, श्रेष्ठ शत्रु- सेनाएँ भी इन्द्रदेव से मैत्रीरूप सन्धि करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहती हैं । हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार संसार के हित के लिए सत्प्रेरणा से आप समर- क्षेत्र में रथारूढ़ होकर जाते हैं, उसी प्रकार इस समय भी रथ पर आरूढ़ होकर प्रस्थान करें ॥८ ॥

[सूक्त-७७]

[**ऋषि**- वामदेव । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

५५२४. आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।

तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥१ ॥

व्यवहार कुशल, सत्यनिष्ठ तथा धनवान् इन्द्रदेव हमारे समीप पधारें । दौड़ते हुए उनके अश्व (उन्हें साथ लेकर) हमारे समीप शीघ्र ही पहुँचे । उन इन्द्रदेव के निमित हम याजक अन्नरूप सोमरस अभिषुत करते हैं । तृप्त होकर वे हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥१ ॥

५५२५. अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै ।

शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥२ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! जिस प्रकार लक्ष्य पर पहुँचे हुए अश्वों को मुक्त करते हैं, उसी प्रकार आप हमें मुक्त करें; ताकि हम इस यज्ञ में आपको हर्षित करने के लिए भली-भाँति परिचर्या कर सकें । हे इन्द्रदेव ! आप सर्वज्ञाता तथा असुरों का संहार करने वाले हैं । याजकगण 'उशना' ऋषि के सदृश उत्तम स्तोत्रों को उच्चारित करते हैं ॥२ ॥

[इन्द्रदेव लक्ष्य पर पहुँचकर अपने अश्वों को मुक्त कर देते हैं, यह कथन एक सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रक्रिया को स्पष्ट करता है । इन्द्रदेव संगठन (संयुक्त रखने) की सामर्थ्य के रूप में मान्य हैं । किसी भी ऊर्जा स्रोत से उभरने वाले ऊर्जा प्रवाह (अश्व) इन्द्रशक्ति के कारण अपने स्रोत से जुड़े रहते हैं । ये ऊर्जा प्रवाह जब किसी पदार्थ या प्राणी तक पहुँच जाते हैं, तो वे उन (पदार्थों- प्राणियों) के द्वारा धारण किये जाते हैं और उन्हीं के अंगों के तन्त्र बनने के लिए ऊर्जा स्रोत के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं । जैसे सूर्य की हर किरण सूर्य से जुड़ी है, जब वह किसी वृक्ष की पत्ती पर पड़ जाती है, तो वह वृक्ष के (रस पकाने जैसे) प्राण चक्र का अङ्ग बन जाती है । सूर्य उसे मुक्त कर देता है ।]

५५२६ कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।

दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥३ ॥

जब यज्ञों को सम्पादित करते हुए तथा सोमपान ग्रहण करते हुए वे इन्द्रदेव पूजे जाते हैं, तब वे द्युलोक से सप्त रश्मियों को उत्पन्न करते हैं । जैसे विद्वान् गूढ़ अर्थों को जानते हैं, उसी प्रकार कामना की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव समस्त कार्यों को जानते हैं । उनकी रश्मियों की सहायता से याजकगण अपने कर्म सम्पन्न करते हैं ॥३ ॥

५५२७. स्व१र्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४ ॥

जब विस्तृत तथा तेजोयुक्त द्युलोक प्रकाशित होकर दर्शनीय बनता है, तब सभी के आवास भी आलोकित होते हैं । जगत् नायक सूर्यदेव ने उदित होकर मनुष्यों के देखने के लिए सघन तमिस्रा को विनष्ट कर दिया है ॥४॥

५५२८. ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥५ ॥

अपरिमित महिमा को धारण करने वाले इन्द्रदेव ने समस्त भुवनों पर अपना अधिकार कर लिया है । सोमरस पान करने वाले वे इन्द्रदेव अपनी महिमा के द्वारा द्यावा- पृथिवी दोनों को पूर्ण करते हैं । इसीलिए इनकी महानता की कोई तुलना नहीं की जा सकती ॥५ ॥

५५२९. विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥६ ॥

वे इन्द्रदेव मनुष्यों के समस्त कल्याणकारी कार्यों के ज्ञाता हैं । कामना करने वाले सखाभाव युक्त मरुतों के निमित्त उन्होंने जल वृष्टि की । जिन मरुतों ने अपनी ध्वनि के द्वारा मेघों को भी विदीर्ण कर दिया, उन आकांक्षा करने वाले मरुतों ने गौओं (किरणों) के भण्डार खोल दिये ॥६ ॥

५५३०. अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्राणांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! सुरक्षा करने वाले आपके वज्र ने जब पानी को अवरुद्ध करने वाले मेघ को विनष्ट किया, तब पानी बरसने से धरती चैतन्य हुई । हे रिपुओं के संहारक, पराक्रमी इन्द्रदेव ! आपने अपनी शक्ति से लोकपति होकर आकाश में स्थित जल को प्रेरित किया ॥७ ॥

५५३१. अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८ ॥

बहुतों के द्वारा आहूत किये जाने वाले हे इन्द्रदेव ! जब 'सरमा' ने आपके निमित्त गौओं (प्रकाश किरणों) को प्रकट किया, तब आपने जल से परिपूर्ण मेघों को विदीर्ण किया । अंगिरा-वंशियों से स्तुत्य होकर आप हमें प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥८ ॥

[सूक्त-७८]

[ऋषि- शंयु । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५५३२. तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद् गवे न शाकिने ॥१ ॥

हे स्तुतिरत स्तोताओ ! आप शत्रुओं को जीतने वाले इन्द्रदेव का यशोगान करें । जैसे गाय उत्तम घास से प्रसन्न होती है, वैसे ही तैयार सोम सहित स्तुति से इन्द्रदेव सुख पाते हैं ॥१ ॥

५५३३. न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥२ ॥

सभी के आश्रयदाता वे इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को सुनने के बाद हमें धन-धान्य के रूप में अपार वैभव देने से नहीं रुकते हैं ॥२ ॥

५५३४. कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्। शचीभिरप नो वरत् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हिंसा करने वालों, गौशाला से गौएँ चुराने और उन्हें छिपा देने वालों को आप शीघ्रता से ढूँढ़कर दण्डित करें और गौओं को मुक्त कराएँ ॥३ ॥

[सूक्त-७९]

[ऋषि- शक्ति अथवा वसिष्ठ । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५५३५. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमें उत्तम कर्मों (यज्ञों) का फल प्राप्त हो । जैसे पिता पुत्रों को धन आदि प्रदान करके उनका पोषण करता है, वैसे ही आप हमें पोषित करें । बहुतों द्वारा सहायता के लिए पुकारे गये हे इन्द्रदेव ! यज्ञ में आप हमे दिव्य तेज प्रदान करें ॥१ ॥

५५३६. मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! अज्ञात, पापी, दुष्ट, कुटिल, अमंगलकारी लोग हम पर आक्रमण न करें । हे श्रेष्ठ वीर आपके संरक्षण में हम विघ्नों- अवरोधों के प्रवाहों से पार हों ॥२ ॥

[सूक्त-८०]

[ऋषि- शंयु । देवता- इन्द्र । छन्द-प्रगाथ ।]

५५३७. इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥१ ॥

हे वज्रपाणि देवेन्द्र ! हमें ओज एवं बल प्रदान करने वाले अन्न (पोषक तत्त्व) प्रदान करें । जो पोषक अन्न द्युलोक एवं पृथ्वी दोनों को पोषण देते हैं, उन्हें हम अपने पास रखने की कामना करते हैं ॥१ ॥

५५३८. त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान् सुषहान् कृधि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम अपनी रक्षा के लिए आपका आवाहन करते हैं । आप महाबलशाली और शत्रुओं के विजेता हैं । आप सभी असुरों से हमारी रक्षा करें । संग्राम में हम विजयी हो सकें, आप ऐसी कृपा करें ॥२ ॥

[सूक्त-८१]

[ऋषि- पुरुहन्मा । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५५३९. यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सैकड़ों देवलोक, सैकड़ों भूमियाँ तथा हजारों सूर्य भी यदि उत्पन्न हो जाएँ , तो भी आपकी समानता नहीं कर सकते । द्यावा- पृथिवी में (कोई भी) आपकी बराबरी करने वाला नहीं है ॥१ ॥

[यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है । इन्द्र संगठक सत्ता के रूप में सक्रिय हैं । उस इन्द्रशक्ति के कारण ही नीहारिकाओं में पदार्थ घनीभूत होकर तारों, ग्रहों एवं उपग्रहों के रूप में स्थापित हैं । सिर्फ अपनी आकाश गंगा में अरबों सूर्य जैसे ज्योतिष्मान्

पिण्ड- तारे हैं। उनके ग्रहों-उपग्रहों की संख्या तो उनसे भी अनेक गुनी है, वे सब संगठक- इन्द्रशक्ति के प्रभाव से ही अपना रूप धारण किये हैं। ऋषि अपनी दिव्य दृष्टि से यह तथ्य देखते हैं इसलिए इन्द्र को अतुलनीय कहते हैं।]

५५४०. आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥२॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप अपनी सामर्थ्य से सभी की इच्छा पूरी करते हैं। हे बलवान्, धनवान् वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप हमें गौयुक्त (पोषण साधनों सहित) संरक्षण प्रदान करें ॥२॥

[सूक्त-८२]

[ऋषि- वशिष्ठ । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५५४१ यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥१॥

हे सम्पत्तिशाली इन्द्रदेव ! हम आपके समान सम्पदाओं के अधिपति होने की कामना करते हैं। स्तोताओं को धन प्रदान करने की हमारी अभिलाषा है; परन्तु पापियों को नहीं ॥१॥

५५४२. शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥२॥

कहीं भी रहकर हम आपके यजन के लिए धन निकालते हैं। हे इन्द्रदेव ! मेरा तो आपके सिवाय और कोई भाई नहीं, कोई पिता तुल्य रक्षक भी नहीं है ॥२॥

[सूक्त-८३]

[ऋषि- शयु । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५५४३. इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! ऐश्वर्य-सम्पन्नों जैसा त्रिधातुयुक्त तीनों ऋतुओं में हितकारी आश्रय (घर या शरीर) हमें भी प्रदान करें। इससे चमक (भ्रामक चकाचौंध) दूर करें ॥१॥

५५४४. ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! जो शत्रु गौओं को छीनने के लिए आते हैं, उन पर आप घर्षण शक्ति से प्रहार करते हैं। हे धनवान् प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! आप समीपवर्ती शत्रुओं से हमारी रक्षा करें। हमारे शरीर की रक्षा करें ॥२॥

[सूक्त-८४]

[ऋषि- मधुच्छन्दा । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५५४५. इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१॥

हे अद्भुत दीप्तिमान् इन्द्रदेव ! अँगुलियों द्वारा स्रावित, श्रेष्ठ पवित्रतायुक्त यह सोमरस आपके निमित्त है। आप आएँ और सोम रस का पान करें ॥१॥

५५४६. इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा जानने योग्य आप, सोमरस प्रस्तुत करते हुए ऋत्विजों के द्वारा बुलाए गए हैं । उनकी स्तुति के आधार पर आप यज्ञशाला में पधारें ॥२ ॥

५५४७. इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥३ ॥

हे अश्वयुक्त इन्द्रदेव ! आप स्तवनों के श्रवणार्थ तथा इस यज्ञ में हमारे द्वारा प्रदत्त हवियों का सेवन करने के लिए यज्ञशाला में शीघ्र ही पधारें ॥३ ॥

[सूक्त-८५]

[ऋषि- प्रगाथ, ३-४मेध्यातिथि । देवता-इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५५४८. मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१ ॥

हे मित्रो ! इन्द्रदेव को छोड़कर अन्य किसी देव की स्तुति उपादेय नहीं हैं । उसमें शक्ति नष्ट न करें । सोम शोधित करके, एकत्र होकर, संयुक्त रूप से बलशाली इन्द्रदेव की ही बार-बार प्रार्थना करें ॥१ ॥

५५४९. अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२ ॥

(हे स्तोतागण ! आप) सशक्त वृषभ (साँड़) के सदृश संघर्षशील जरारहित, शत्रुओं का विरोध और उनका संहार करने वाले, महान् दैविक और भौतिक ऐश्वर्यों के दाता इन्द्रदेव का ही स्तवन करें ॥२ ॥

५५५०. यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेहा विश्वा च वर्धनम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! अपनी रक्षा के निमित्त यद्यपि सभी मनुष्य आपका आवाहन करते हैं, फिर भी हमारी स्तुतियाँ आपके गौरव को सतत बढ़ाती रहें ॥३ ॥

५५५१. वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥४ ॥

ऐश्वर्यवान्, ज्ञानी, श्रेष्ठ तथा मनुष्यों के पालक हे इन्द्रदेव ! आपकी अनुकम्पा से स्तोतागण समस्त विपत्तियों से बचे रहते हैं । आप हमारे निकट पधारें और पोषण के निमित्त विविध प्रकार के बल प्रदान करें ॥४ ॥

[सूक्त-८६]

[ऋषि- विश्वामित्र । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५५५२. ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! मंत्रों से नियोजित होने वाले, युद्धों में कीर्ति सम्पन्न, मित्र- भाव सम्पन्न हरि नामक दोनों अश्वों को हम मन्त्रों के लिए योजित करते हैं । हे इन्द्रदेव ! सुदृढ़ और सुखकारी रथ में अधिष्ठित होकर आप सोमयाग के समीप आएँ । आप सब यज्ञों को जानने वाले विद्वान् हैं ॥१ ॥

[सूक्त-८७]

[ऋषि- वसिष्ठ । देवता- इन्द्र , ७ इन्द्र, बृहस्पति । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५५५३. अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम्।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१ ॥

हे अध्वर्युगण ! मानवों में श्रेष्ठ इन्द्रदेव के लिए निचोड़े हुए रक्ताभ सोमरस का हवन करें । पीने योग्य सोम को दूर से जानकर वे गौर मृग सदृश तीव्रगति से सोमयाग करने वाले यजमान के पास शीघ्र जाते हैं ॥१ ॥

५५५४ . यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! प्राचीनकाल में आप जिस सुन्दर अन्न (सोम) को उदर में धारण करते थे, वही सोम आप प्रतिदिन पीने की इच्छा करें । हृदय और मन से हमारे कल्याण की इच्छा करते हुए सोमरसों का पान करें ॥२ ॥

५५५५. जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच।
एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! जन्म के समय से ही आपने शक्ति प्राप्ति के लिए सोमपान किया था । आपकी महिमा का वर्णन आपकी माता अदिति ने किया । आपने अपने वर्चस् से विस्तृत अंतरिक्ष को पूर्ण किया और युद्ध के माध्यम से देवों या स्तोताओं के लिए धन एकत्र किया ॥३ ॥

५५५६. यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान्।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! अहंकार पूर्ण, अपने को बड़ा मानने वाले शत्रुओं से जब हमारा युद्ध हो, तब हम अपनी बाहुओं से ही हिंसक शत्रुओं का दमन कर सकें । आप यदि स्वयं अन्न अथवा यश के लिए युद्ध करें, तब हम आपके साथ रहकर उस युद्ध को जीतें ॥४ ॥

५५५७. प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ॥५ ॥

प्राचीन और अर्वाचीन काल में इन्द्रदेव द्वारा किये हुए पराक्रमों का हम वर्णन करते हैं । इन्द्रदेव ने जब से कुटिल- कपटी असुरों को परास्त किया, तब से सोम केवल इन्द्रदेव के लिए ही (सुरक्षित) है ॥५ ॥

[सोम - पोषक प्रवाह विधाता ने श्रेष्ठ उद्देश्यों के लिए उत्पन्न किये हैं । आसुरी तत्त्व उसका दुरुपयोग करते हैं । बाह्य जगत् में दुष्ट प्रवाहों तथा अन्तः दुष्प्रकृति को जब इन्द्र सत्ता परास्त कर देती है, तब पोषक सोम प्रवाह श्रेष्ठ उद्देश्यों के लिए सुरक्षित हो जाते हैं ।]

५५५८. तवेदं विश्वमभितः पशव्यं१ यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सूर्य के तेज (प्रकाश) से जिसे देखते हैं, वह पशुओं (प्राणियों) से युक्त विश्व आपका ही है । सभी गौओं (किरणों इन्द्रियों) के स्वामी आप ही हैं । आपके द्वारा दिये धन का हम भोग करते हैं ॥६ ॥

५५५९. बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

हे इन्द्र और बृहस्पतिदेव ! आप दोनों द्युलोक और पृथ्वी पर उत्पन्न धन के स्वामी हैं। आप दोनों स्तुति करने वाले स्तोता को धन प्रदान करें तथा कल्याणकारी साधनों से सदैव हमारी रक्षा करें ॥७॥

[इन्द्र स्थूल पदार्थकणों- शक्तिकणों के संगठक हैं तथा बृहस्पतिदेव विचारकणों (जिनके बारे में वर्तमान विज्ञान के 'माइण्ड्रॉन्स' की अवधारणा बनायी है) के संगठक हैं। इन्हीं के प्रभाव से पदार्थशक्ति तथा मेधाशक्ति रूप सम्पत्तियाँ अस्तित्व में आती हैं।]

[सूक्त-८८]

[ऋषि- वामदेव। देवता- बृहस्पति । छन्द- त्रिष्टुप्।]

५५६०. यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥१॥

तीनों लोकों में निवास करने वाले जिन बृहस्पतिदेव ने धरती की दशों दिशाओं को स्तम्भित किया, मीठी बोली बोलने वाले उन देव को पुरातन ऋषियों तथा तेजस्वी विद्वानों ने पुरोभाग में स्थापित किया ॥१॥

५५६१. धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्त्रे।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥२॥

हे बृहस्पतिदेव ! जिनकी गति रिपुओं को प्रकम्पित करने वाली है, जो आपको आनन्दित करते हैं तथा आपकी प्रार्थना करते हैं; उनके लिए आप फल प्रदान करने वाले, वृद्धि करने वाले तथा हिंसा न करने वाले होते हैं। आप उनके विस्तृत यज्ञ को सुरक्षा प्रदान करें ॥२॥

५५६२. बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्व श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३॥

हे बृहस्पतिदेव ! दूरवर्ती प्रदेश में जो अत्यधिक श्रेष्ठ स्थान है, वहाँ से आपके अश्व यज्ञ में पधारते हैं। जिस प्रकार गहरे जलकुण्ड से जल स्रवित होता है, उसी प्रकार आपके चारों ओर प्रार्थनाओं के साथ पत्थरों द्वारा निचोड़ा गया मधुर सोम रस प्रवाहित होता है ॥३॥

५५६३. बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥४॥

सप्त छन्दोमय मुख वाले, बहुत प्रकार से पैदा होने वाले तथा सप्त रश्मियों वाले बृहस्पतिदेव, महान् सूर्यदेव के समान परम आकाश में सर्वप्रथम उत्पन्न होते हैं। वे अपनी ज्योति के द्वारा तमिस्रा को नष्ट करते हैं ॥४॥

५५६४. स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥५॥

बृहस्पतिदेव ने अपनी तेजस्विता तथा प्रार्थना करने वाले ऋचा समूहों के साथ ध्वनि करते हुए (मेघ) वल नामक राक्षस का वध किया। उन्होंने हवि प्रेरित करने वाली तथा रँभाने वाली गौओं (वाणियों) को ध्वनि करते हुए बाहर निकाला ॥५॥

५५६५. एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६ ॥

इस प्रकार सबके पालनकर्त्ता समस्त देवों के स्वामी तथा बलशाली बृहस्पतिदेव की हम लोग यज्ञों, आहुतियों तथा प्रार्थनाओं के द्वारा सेवा करते हैं । हे बृहस्पतिदेव ! उनके प्रभाव से हम लोग श्रेष्ठ सन्तानों तथा पराक्रम से सम्पन्न ऐश्वर्य के स्वामी हों ॥६ ॥

[सूक्त-८९]

[ऋषि- कृष्ण । देवता- इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

५५६६. अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥१ ॥

जिस प्रकार धनुर्धारी उत्तम रीति से लक्ष्यवेधी बाणों का प्रहार करते हैं तथा पुरुष आभूषणों से सुसज्जित होते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ स्तुतियों का प्रयोग करें, जिससे प्रतिस्पर्धा करने वाले पराजित हो जाएँ । हे स्तोताओ ! पराक्रमी इन्द्रदेव को सोमपान की ओर आकर्षित करें ॥१ ॥

५५६७. दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥२ ॥

हे स्तुतिकर्त्ताओ ! गौओं का दोहन करके अपना प्रयोजन पूर्ण करने के समान इन्द्रदेव से अपने अभीष्ट फल को प्राप्त करें तथा प्रशंसा योग्य इन्द्रदेव को जाग्रत् करें । जैसे अन्न से भरे हुए पात्र के मुख को नीचे की ओर करके उसके अन्न को निकालते हैं, वैसे ही शूर इन्द्रदेव को अभीष्ट सिद्धि के लिए अनुकूल बनाएँ ॥२ ॥

५५६८. किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥३ ॥

हे वैभवशाली इन्द्रदेव ! आपको ज्ञानी लोग कामना पूरक क्यों कहते हैं ? आप हमें धन से सम्पन्न बनाएँ । हे इन्द्रदेव ! हमारी विवेक- बुद्धि जाग्रत् करें , कार्य कुशलता प्रदान करें तथा श्रेष्ठ ऐश्वर्य- सम्पदा से सौभाग्ययुक्त करें ॥३ ॥

५५६९. त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! योद्धा लोग समर भूमि में जाते हुए सहयोगार्थ आपका स्मरण करते हैं ।जो हवि (सोम) समर्पित करता है, वीर इन्द्रदेव उसकी सहायता करते हैं । जो हवि (सोम) प्रस्तुत नहीं करते, वे उनकी मैत्री भावना से वञ्चित रहते हैं ॥४ ॥

५५७०. धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ॥५ ॥

जो प्रयत्नशील साधक सरस सम्पदा के समान तीव्र सोमरस इन्द्रदेव को समर्पित करते हैं, इन्द्रदेव उनके लिए सामर्थ्यवान् एवं अनेक आयुधों से युक्त शत्रुओं को परास्त कर देते हैं तथा वृत्र (घेरने वाले) असुर का भी संहार करते हैं ॥५ ॥

५५७१. यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६ ॥

जिन ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव की हम स्तोत्रों से प्रार्थना करते हैं तथा जो हमें अभीष्ट वैभव प्रदान करते हैं, उनके सामने से शत्रु भयभीत होकर पलायन करें तथा शत्रु पक्ष की सम्पदा उन्हें प्राप्त हो ॥६ ॥

५५७२. आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥७ ॥

प्रथम आवाहित हे इन्द्रदेव ! अपने तीक्ष्ण वज्र से आप हमारे समीपस्थ शत्रुओं को खदेड़कर दूर करें तथा हमें अन्न- जौ एवं गवादि से युक्त सम्पदा प्रदान करें । अपने स्तुतिकर्त्ता की प्रार्थना को अन्न- रत्नप्रसविनी बनाएँ ॥७॥

५५७३. प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन् नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥८ ॥

तीक्ष्ण सोमरस, मधुरस के रूप में विभिन्न धाराओं से गिरता हुआ, जिस समय इन्द्रदेव की देह में प्रविष्ट होता है, उस समय वैभव- सम्पन्न इन्द्रदेव सोमरस प्रदाता यजमान का विरोध नहीं करते, अपितु (सोमरस के प्रस्तुतकर्त्ता को) प्रचुर मात्रा में (इच्छित) सम्पत्ति प्रदान करते हैं ॥८ ॥

५५७४. उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥९ ॥

जैसे पराजित जुआरी विजयी जुआरी को खोजकर अपनी पिछली पराजय का बदला, उसे पराजित करके लेता है, वैसे ही इन्द्रदेव भी अनिष्टकारी शत्रुओं के ऊपर पराक्रमी हमला करके उन्हें पराजित करते हैं । जो साधक देवपूजन (यज्ञादि) में कंजूसी नहीं दिखाते, ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव उन साधकों को धन- सम्पदा से सम्पन्न बनाते हैं ॥९ ॥

५५७५. गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥१० ॥

बहुसंख्यकों द्वारा आवाहनीय हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा दृष्टि से हम गोधन द्वारा दुःख-दारिद्रयों से निवृत्त हों; जौ आदि अन्नों से क्षुधा को शान्त करें । हम शासनाध्यक्षों के साथ अग्रसर होते हुए अपनी सामर्थ्य (क्षमता) से शत्रुओं की विपुल सम्पदाओं को अपने (आधिपत्य) में ले सकें ॥१० ॥

५५७६. बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥११ ॥

दुष्ट- पापी शत्रुओं से बृहस्पतिदेव हमें पश्चिम , उत्तर तथा दक्षिण से संरक्षित करें । इन्द्रदेव पूर्व दिशा और मध्यभाग से आने वाले शत्रुओं से हमें संरक्षित करें । वे इन्द्रदेव सबके मित्र तथा हम भी उनके प्रिय सखा हैं, वे हमारे अभीष्टों को सिद्ध करें ॥११ ॥

[सूक्त-९०]

[ऋषि- भरद्वाज । देवता- बृहस्पति । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५५७७. यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥१ ॥

बृहस्पतिदेव सबसे प्रथम उत्पन्न हुए, उन्होंने पर्वतों को ध्वस्त किया । जो अङ्गिरसों के हविष्यान्न से युक्त हैं, जो स्वयं के तेज से तेजस्वी हैं, वे उत्तम गुणों से भूमि की सुरक्षा करने वाले, बलवान्, हमारे पालक बृहस्पतिदेव, द्युलोक और भूलोक में गर्जना करें ॥१ ॥

५५७८. जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।

घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥२ ॥

जो बृहस्पतिदेव स्तोताओं को स्थान देते हैं, जो शत्रुओं को मारने वाले और शत्रुजयी हैं । वे शत्रुओं को परास्त करके उनके नगरों को ध्वस्त करें ॥२ ॥

५५७९. बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।

अपः सिषासन्त्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३ ॥

बृहस्पतिदेव ने असुरों को परास्त करके गोधन जीता है । दिव्य प्रकाश एवं रसों को धारण करने वाले बृहस्पतिदेव स्वर्ग के शत्रुओं का मन्त्र द्वारा विनाश करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-९१]

[ऋषि- अयास्य । देवता- बृहस्पति । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५५८०. इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।

तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥१ ॥

हमारे पिता (सृजेता) ने ऋत से उत्पन्न सात शीर्ष वाली इस विशाल बुद्धि को प्राप्त किया । विश्वजन्य अयास्य ने इन्द्रदेव के लिए स्तोत्र बोलते हुए तुरीय (ईश्वर सान्निध्य) अवस्था का सृजन किया ॥१ ॥

५५८१. ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।

विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥२ ॥

अंगिरा ऋषियों ने यज्ञ के श्रेष्ठ स्थल में जाने का निश्चय किया । वे सत्यव्रती, मनोभावों से सरल, दिव्य पुत्र, महाबलवान् तथा ज्ञानियों के समान आचरण निष्ठ हैं ॥२ ॥

५५८२. हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।

बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥३ ॥

बृहस्पतिदेव के मित्रों (मरुतों) ने हंसों के समान स्वर निकाले । उनके सहयोग से बृहस्पतिदेव ने पत्थरों के बने द्वारों को खोल दिया । अन्दर अवरुद्ध गौएँ आवाज करने लगीं । वे ज्ञानी, देवजनों के प्रति श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्च स्वर से गान करने लगे ॥३ ॥

[' मरुतों ने स्वर निकाले' यह कथन विज्ञान सम्मत है । कण्ठ में वायु के संघात से ही स्वरों की उत्पत्ति होती है । बृहस्पतिदेव- बुद्धि के अधिष्ठाता की प्रेरणा से वायु प्रवाह उनके मित्रों की तरह यह कार्य करते हैं । बृहस्पतिदेव जब जड़तारूप पत्थरों को हटाते हैं, तो अन्दर स्थित भाव वाणी के साथ व्यक्त होने लगते हैं ।]

५५८३. अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।

बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥४ ॥

असत् (अव्यक्त) गुह्यक्षेत्र में गौएँ (प्रकाश किरणें दिव्य वाणियाँ) छिपी हुई थीं । बृहस्पति (ज्ञान या वाणी

के अधिपति) देव ने अन्धकार से प्रकाश (अज्ञान से ज्ञान) की कामना करते हुए नीचे के दो (अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी) तथा ऊपर का एक (द्युलोक), इस प्रकार तीनों द्वारों को खोलकर गौओं (किरणों या वाणियों) को प्रकट किया ॥४ ॥

५५८४. विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥५ ॥

गौओं के लिए अवरोधक बल के अधोमुख पुरों (संस्थानों) को भेदन करके बृहस्पतिदेव ने एक साथ तीनों बन्धन काट दिये । उन्होंने जलाशय (मेघों या अप् प्रवाहों) से उषा, सूर्य एवं गौओं (किरणों) को एक साथ प्रकट किया । वे (बृहस्पतिदेव) विद्युत् की तरह गर्जना करने वाले अर्क (प्राण के स्रोत) को जानते हैं ॥५ ॥

५५८५. इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ॥६ ॥

जिस वल (राक्षस) ने गौओं को छिपाया था, उसे इन्द्रदेव ने हिंसक हथियार के समान अपनी तीव्र हुंकार से छिन्न-भिन्न कर दिया । मरुद्गणों की सहायता के इच्छुक उन्होंने पणि (वल के अनुचर) को नष्ट किया और उस असुर द्वारा चुराई गई गौओं को मुक्त किया ॥६ ॥

५५८६. स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥७ ॥

बृहस्पतिदेव ने सत्यस्वरूप, मित्ररूप, तेजस्वी और ऐश्वर्ययुक्त मरुद्गणों के सहयोग से गौओं के अवरोधक इस वल (राक्षस) को विनष्ट किया । उन्होंने वर्षणशील मेघों द्वारा प्रज्वलित एवं गतिशील मरुद्गणों के सहयोग से धन-धान्य को प्राप्त किया ॥७ ॥

५५८७. ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥८ ॥

गौओं (किरणों) से प्रीति रखने वाले मरुद्गण सत्यनिष्ठ मन एवं अपने श्रेष्ठ कर्मों से बृहस्पतिदेव को गौओं के अधिपति बनाने के लिए प्रेरित किया ।उन्होंने दुष्ट राक्षसों से गौओं के संरक्षणार्थ एकत्रित हुए मरुद्गणों के सहयोग से गौओं को विमुक्त किया ॥८ ॥

५५८८.तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥९ ॥

अन्तरिक्ष में सिंह के समान बार-बार गर्जना करने वाले, कामनाओं के वर्षक और विजयशील उन बृहस्पतिदेव को प्रोत्साहित करने वाले हम, मरुत् वीरों के युद्ध में कल्याणकारी स्तुतियों से उनकी प्रार्थना करते हैं ॥९ ॥

५५८९. यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥१० ॥

जिस समय बृहस्पतिदेव सभी सांसारिक अन्नों का सेवन करते हैं तथा आकाश में ऊपर जाकर उत्तम लोकों में प्रतिष्ठित होते हैं, तब बलशाली बृहस्पतिदेव को देवगण मुख (वाणी) से प्रोत्साहित करते हैं, वे विभिन्न दिशाओं में रहते हुए उन्हें उन्नतिशील बनाते हैं ॥१० ॥

५५९०. सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥११ ॥

हे देवगण ! अन्न प्राप्ति के निमित्त की गई हमारी प्रार्थनाओं को आप सफलता प्रदान करें । आप अपने आश्रय से हम साधकों का संरक्षण करें और हमारी सभी प्रकार की विपदाओं का निवारण करें । सम्पूर्ण विश्व को हर्षित करने वाली हे द्यावा- पृथिवी ! आप दोनों हमारे निवेदन के अभिप्राय को समझें ॥११ ॥

५५९१. इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून् देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१२ ॥

सर्वप्रथम बृहस्पतिदेव ने विशाल जल भण्डार रूप मेघों के सिर को छिन्न- भिन्न किया । जल के अवरोधक शत्रुओं को विनष्ट किया ।सप्तधाराओं को प्रवाहित एवं संयुक्त किया । हे द्यावा- पृथिवी ! आप देवताओं के साथ आगमन करके हमारा संरक्षण करें ॥१२ ॥

[इस सूक्त में बृहस्पतिदेव द्वारा अवरोधों- असुरों का उच्छेदन करके गौओं को प्राप्त करने का वर्णन है । बृहस्पतिदेव प्रज्ञा, ज्ञान, वाणी के अधिपति हैं । मेधा प्रयोग से पदार्थों में छिपी प्रकाश किरणों अथवा प्रकृति में छिपे ज्ञान सूत्रों को प्रकट करने का आलंकारिक वर्णन इस सूक्त में है । बृहस्पतिदेव उच्चाकाश में, भूमण्डल में तथा मानवीय काया में सभी जगह प्रकारान्तर से क्रियाशील रहते हैं । वैदिक मन्त्र विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त होते हैं ।]

[सूक्त-९२]

[**ऋषि-** प्रियमेध, १-३ अयास्य, १६-२१ पुरुहन्मा । **देवता-** इन्द्र , ८ विश्वेदेवा, वरुण । **छन्द-** गायत्री, ४-७, ९-१२ अनुष्टुप्, ८, १३ पंक्ति, १४-१५ पथ्याबृहती, १६-२१ प्रगाथ ।]

५५९२. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥१ ॥

हे याजको ! गोपालक, सत्यनिष्ठ, सज्जनों के संरक्षक इन्द्रदेव की मन्त्रोच्चारण सहित प्रार्थना करें, जिससे उनकी शक्तियों का आभास हो सके ॥१ ॥

५५९३.आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥

जिन इन्द्रदेव की हम अपने यज्ञ मण्डप में प्रार्थना करते हैं, उनको उत्तम अश्व, यज्ञशाला की ओर ले आएँ ॥२ ॥

५५९४.इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत् सीमुपह्वरे विदत्

जब यज्ञस्थल के समीप ही इन्द्रदेव मधुर रस का पान करते हैं, तब गौएँ वज्रहस्त इन्द्रदेव के (पान करने के) लिए मधुर दुग्ध प्रदान करती हैं ॥३ ॥

५५९५. उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥४ ॥

जब हमने इन्द्रदेव के साथ सूर्यलोक में गमन किया, तब अपने सखा उन इन्द्रदेव के साथ मधुर सोमपान करके हम त्रिसप्त स्थानों पर उनसे संयुक्त हुए ।

[इस सूक्त के ऋषि प्रियमेध (इन्द्र को प्रिय मेधा या प्रिययज्ञ) हैं । इन्द्र पदार्थ कणों को तीनों आयामों या लोकों के सातों प्रवाहों में संगठित करते हैं । उन सभी के साथ मेधा या यज्ञीय भाव का संयोग होने से सृष्टिचक्र सुचारु रूप से चलता है ।]

५५९६.अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥५ ॥

हे प्रियमेध के वंशज मनुष्यो ! यज्ञ-प्रिय, सन्तान एवं साधकों की कामना को पूर्ण करने वाले तथा शत्रुओं को

पराजित करने वाले इन्द्रदेव का आप सभी (श्रद्धापूरित होकर) सम्मान करें ॥५ ॥

इस (अगली) ऋचा को अधिकांश टीकाकारों ने युद्ध पर घटित किया है; किन्तु इसका अर्थ प्रकृति पर भी बहुत सहज ही घटित होता है। यहाँ शब्दार्थ इस ढंग से करने का प्रयास किया गया है कि दोनों ही अर्थ सहज ही सिद्ध हो सकें-

५५९७.अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्। पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम्।

गर्गर स्वर (रणवाद्यों अथवा मेघों से) उभर रहे हैं। गोधा (हस्तरक्षक आवरण अथवा किरणों के धारणकर्ता-अवरोधक) सब ओर शब्द कर रहे हैं। पिंगा (धनुष की प्रत्यंचा अथवा विद्युत्) की ध्वनि (टंकार अथवा कड़क) सब ओर सुनाई देती है। ऐसे में इन्द्रदेव (पराक्रमी संरक्षक अथवा वर्षा के देवता) के लिए स्तोत्र बोलें ॥६ ॥

५५९८.आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः। अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥७ ।

जब उज्ज्वल जल से समृद्ध नदियाँ प्रवाहित होती हैं। उस समय इन्द्रदेव के पीने के लिए श्रेष्ठ गुणों से युक्त मधुर सोमरस लेकर उपस्थित हों ॥७ ॥

५५९९. अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥८ ॥

अग्नि, इन्द्र तथा विश्वेदेवा सोमपान करके हर्षित हुए। वरुणदेव भी यहाँ उपस्थित रहें। जिस प्रकार गौएँ अपने बच्चे को प्राप्त करने के लिए शब्द करती हैं, उसी प्रकार हमारे स्तोत्र उन वरुणदेव की प्रार्थना करते हैं ॥८ ॥

५६००.सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः। अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥

हे वरुणदेव ! जिस प्रकार किरणें सूर्य की ओर गमन करती हैं, उसी प्रकार आपके ओज से सातों सरिताएँ समुद्र की ओर प्रवाहित होती हैं ॥९ ॥

५६०१. यो व्यतीँरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे। तक्वो नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥

जो इन्द्रदेव द्रुतगामी अश्वों को रथ में नियोजित करके हविप्रदाता यजमान के पास जाते हैं, वे विशाल शरीर वाले नायक इन्द्रदेव यज्ञशाला में प्रमुख स्थान प्राप्त करते हैं ॥१० ॥

५६०२. अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः।
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥११ ॥

समर्थ इन्द्रदेव सभी विद्वेषियों को दूर हटाते हैं। उन्होंने अपनी छोटी सी आवाज से बादलों को नष्ट कर दिया ॥११ ॥

५६०३. अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम्।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥१२ ॥

ये इन्द्रदेव अपने विशाल शरीर से नूतन रथ पर सुशोभित होते हैं। वे विविध श्रेष्ठ कर्मों को सम्पन्न करते हुए बादलों को जल बरसाने के लिए प्रेरित करते हैं ॥१२ ॥

५६०४. आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम्।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥१३ ॥

हे सुन्दर आकृति वाले दम्पते (इन्द्रदेव) ! सहस्रों रश्मियों से आलोकित, द्रुतगामी स्वर्णिम रथ पर आप भली प्रकार आरूढ़ हों (यहाँ आएँ); तब हम दोनों एक साथ मिलेंगे ॥१३ ॥

५६०५. तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।

अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥१४ ॥

उन स्वप्रकाशित इन्द्रदेव की वन्दना करने वाले याजक साधना करते हैं । उसके बाद वे श्रेष्ठ सम्पत्ति तथा सद्बुद्धि ग्रहण करते हैं ॥१४ ॥

५६०६. अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।

पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥१५ ॥

कुश- आसन फैलाने वाले तथा यज्ञों में हविष्यान्न प्रदान करने वाले 'प्रियमेध' ऋषि अथवा श्रेष्ठ बुद्धि या यज्ञ युक्त साधकों) ने पूर्वकाल के अनुरूप शाश्वत निवास स्थल (स्वर्ग) को प्राप्त किया ॥१५ ॥

५६०७. यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो वो वृत्रहा गृणे ॥१६ ॥

मानवों के अधिपति, वेगवान्, शत्रुसेना के संहारक, वृत्रहन्ता, श्रेष्ठ इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१६ ॥

५६०८. इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥१७ ॥

हे साधक ! अपनी रक्षा के लिए देवराज इन्द्र की उपासना करो । जिनके संरक्षण में (देवत्व की) रक्षा एवं (असुरता के) विनाश की दोहरी शक्ति है । वे इन्द्रदेव, सूर्य के समान तेजस्वी वज्र को हाथ में धारण करते हैं ॥१७ ॥

५६०९. नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वो जसम् ॥१८ ॥

स्तुत्य, महाबलशाली, समृद्ध, अपराजित, शत्रुओं का दमन करने वाले इन्द्रदेव को जो साधक यज्ञादि कर्मों द्वारा अपना सहचर (अनुकूल) बना लेता है, उसके कर्मों को कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥१८ ॥

५६१०. अषाळहमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः ।

सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥१९ ॥

जिन इन्द्रदेव के प्राकट्य पर महान् वेगवाली गौएँ (किरणें) और पृथ्वी तथा आकाश भी उनके समक्ष झुककर अभिवादन करते हैं, उन उग्र, शत्रु विजेता और पराक्रमी इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१९ ॥

५६११. यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥२० ॥

हे इन्द्रदेव ! पृथ्वी एवं द्युलोक सैकड़ों गुना विस्तार कर लें, सूर्य हजारों गुना विस्तार कर ले, तो भी आपकी समानता नहीं कर सकते । द्यावा- पृथिवी में (कोई भी) आपकी बराबरी करने वाला नहीं है ॥२० ॥

५६१२. आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।

अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥२१ ॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप अपनी सामर्थ्य से सभी की इच्छा पूरी करते हैं । हे बलवान्, धनवान्, वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप गौयुक्त (पोषण साधनों सहित) हमें संरक्षण प्रदान करें ॥२१ ॥

[सूक्त-९३]

[ऋषि-प्रगाथ, ४-८ देवजामि इन्द्रमाता । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५६१३. उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपको ये स्तोत्र आनन्द प्रदान करने वाले हों । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें तथा ज्ञान के साथ द्वेष रखने वालों का संहार करें ॥१ ॥

५६१४. पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् हैं । आपके समान सामर्थ्य किसी में नहीं है । आप यज्ञादि कर्म न करने वाले कृपणों को पीड़ित करें ॥२ ॥

५६१५. त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सिद्ध रसयुक्त (सोमरस) पदार्थों एवं निषिद्ध पदार्थों के स्वामी हैं । आप समस्त प्राणियों के शासक हैं ॥३ ॥

५६१६. ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् ॥४ ॥

इन्द्रदेव के समीप जाकर उनकी सेवा करने वाली, यज्ञादि सत्कर्म करने में संलग्न माताएँ उनकी ही उपासना-अर्चना करती हैं । उनसे सुखकारी श्रेष्ठ धन प्राप्त करती हैं ॥४ ॥

५६१७. त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन् वृषेदसि ॥५ ॥

हे बलवर्द्धक इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं को पराजित करने वाली सामर्थ्य और धैर्य से प्रख्यात हुए हैं । आप सर्वाधिक सामर्थ्यशाली और साधकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ॥५ ।

५६१८. त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्य१न्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वृत्रहन्ता और अन्तरिक्ष का विस्तार करने वाले हैं । आपने अपनी सामर्थ्य से द्युलोक (स्वर्गलोक) को स्थायित्व प्रदान किया है ॥६ ॥

५६१९. त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसा ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! अपने कार्यों में सहयोगी (सखा) सूर्य को आपने दोनों हाथों से अन्तरिक्ष में स्थापित किया है । आप अपनी सामर्थ्य से वज्र को तीक्ष्णता प्रदान करते हैं ॥७ ॥

५६२०. त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा । स विश्वा भुव आभवः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव !आप अपनी शक्ति से सभी प्राणियों को वशीभूत करते हैं ।समस्त स्थानों पर आपका प्रभुत्व है ।

[सूक्त-९४]

[ऋषि- कृष्ण । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप्, ४-९ जगती ।]

५६२१. आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥१ ॥

जो शारीरिक दृष्टि से स्थूल हैं और जो अपनी विशाल तथा पराक्रमी सामर्थ्य से सम्पूर्ण शक्तिशाली पदार्थों को शक्तिहीन कर देते हैं, वे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्रदेव रथारूढ़ होकर, यहाँ आकर हर्ष को प्राप्त करें ॥१ ॥

५६२२. सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥२ ॥

हे मनुष्यों के पालक इन्द्रदेव ! आपका रथ उत्तम रीति से विनिर्मित है, आपके रथ के दोनों अश्व भली प्रकार से नियंत्रित हैं और आप हाथ में वज्र को धारण किये हुए हैं । हे अधिपति इन्द्रदेव ! ऐसे सुशोभित आप श्रेष्ठ मार्ग से शीघ्रतापूर्वक हमारे समीप आएँ । सोमरस पीने की इच्छा वाले आपकी वीरता का हम संवर्द्धन करेंगे ॥२ ॥

५६२३. एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥३ ॥

मनुष्यों के पालक, हाथ में वज्रधारणकर्त्ता, शत्रु सैन्यबल को क्षीण करने वाले, अभीष्टवर्षक तथा सत्यनिष्ठ वीर इन्द्रदेव के रथवाहक, उग्र, बलिष्ठ तथा अति उत्साहित अश्व उन्हें हमारे समीप लेकर आएँ ॥३ ॥

५६२४. एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस सोमरस द्वारा शरीर परिपुष्ट होता है, जो कलश में मिश्रित होकर बल को संचारित करने वाला है, उसे आप अपने अन्दर समाहित करें तथा हमारी सामर्थ्य- शक्ति में वृद्धि करें । आप हमें अपना आत्मीय जन बना लें; क्योंकि आप ज्ञानशीलों की धन- सम्पदा को समृद्ध करने वाले हैं ॥४ ॥

५६२५. गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम स्तोताओं को आप विपुल सम्पदा प्रदान करें, सोम से युक्त हमारे यज्ञ में शुभाशीर्वाद देते हुए आएँ, क्योंकि आप ही सबके स्वामी हैं । आप हमारे यज्ञ में कुशा के आसन पर विराजमान हों । आपके सेवनार्थ सज्जित सोमपात्र को बलपूर्वक छीनने की सामर्थ्य किसी में नहीं है ॥५ ॥

५६२६. पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो श्रेष्ठ लोग पुरातनकाल से ही देवताओं को आमन्त्रित करते रहे हैं, उन्होंने यशस्वी तथा दुष्कर कार्यों को सम्पन्न करते हुए भिन्न-भिन्न देव लोकों को प्राप्त किया; परन्तु जो यज्ञ- उपासना रूपी नौका पर आरूढ़ न हो पाए, वे दुष्कृत्य रूपी पापों में फँसकर, ऋण-बोझ से दबकर दुर्गतिग्रस्त होकर पड़े रहते हैं ॥६ ॥

५६२७. एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽ श्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७ ॥

इस समय जो भी दुर्बुद्धिग्रस्त, यज्ञ विरोधी लोग हैं, जिनके (जीवन रूपी) रथ में पतन मार्ग में घसीटने वाले अश्व जोते गये हैं, वे अधोगामी होते हैं- नरकगामी होते हैं । जो मनुष्य पहले से ही देवताओं के निमित्त हविष्यान्न समर्पित करने में संलग्न हैं, वे वास्तव में स्वर्गधाम को प्राप्त करते हैं, जहाँ पर प्रचुर मात्रा में आश्चर्यप्रद उपभोग्य सामग्रियाँ उपलब्ध हैं ॥७ ॥

५६२८. गिरीँरज्रान् रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥८ ॥

जिस समय इन्द्रदेव सोमपान करके आनन्दित होते हैं, उस समय वे सब जगह घूमने वाले और काँपते हुए बादलों को सुस्थिर करते हैं। वे आकाश को विचलित कर देते हैं, जिससे वह गर्जना करने लगता है। जो द्युलोक और पृथ्वी आपस में सम्बद्ध हैं, उन्हें उसी स्थिति में धारण करते हुए वे उत्तम वचन उच्चारित करते हैं ॥८ ॥

५६२९. इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ॥९ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके इस श्रेष्ठ ढंग से बनाये गये अंकुश को हम धारण करते हैं, जिससे आप दुष्टजनों को दण्डित करते हैं। आप हमारे इस सोमयाग में पधार कर अपने स्थान पर प्रतिष्ठित हों। हे इन्द्रदेव ! आप श्रेष्ठ रीति से सम्पन्न किये गये सोमयज्ञ में हमारी प्रार्थनाओं पर ध्यान दें ॥९ ॥

५६३०. गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१० ॥

हे बहुतों द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव ! आपकी कृपा दृष्टि से हम गोधन के द्वारा दुःख-दारिद्र्यों से निवृत्त हों तथा जौ आदि अन्नों से क्षुधा की पूर्ति करें। प्रशासकों के स्नेह पात्र बनकर अपनी क्षमता से विपुल सम्पदाओं को हम अपने अधिपत्य में ले सकें ॥१० ॥

५६३१. बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११ ॥

दुष्कर्मी पापियों से बृहस्पतिदेव हमें पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण से संरक्षित करें। इन्द्रदेव पूर्व दिशा और मध्य भाग के प्रहारक शत्रुओं से हमें बचाएँ। इन्द्रदेव हमारे सखा हैं। हम भी उनके मित्र हैं। वे हमारे अभीष्ट की पूर्ति में सहायक हों ॥११ ॥

[सूक्त-९५]

[**ऋषि-** गृत्समद, २-४ सुदा पैजवन। **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** अष्टि, २-४ शक्वरी।]

५६३२. त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिबद्
विष्णुना सुतं यथावशत्। स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं
सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१ ॥

अत्यन्त बली, पूजनीय इन्द्रदेव ने तीनों लोकों में व्याप्त, तृप्तिदायक दिव्यसोम को जौ के सार भाग के साथ मिलाकर विष्णुदेव के साथ इच्छानुसार पान किया। उस (सोम) ने महान् इन्द्रदेव को श्रेष्ठ कार्य करने के लिए प्रेरित किया। उत्तम दिव्य गुणों से युक्त उस दिव्य सोमरस ने इन्द्रदेव को प्रसन्न किया ॥१ ॥

५६३३. प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत। अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु
वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२ ॥

हे स्तोताओ ! इन इन्द्रदेव के रथ के सम्मुख रहने वाले बल की उपासना करो। शत्रुसेना के आक्रमण के अवसर पर ये लोकपाल और शत्रुनाशक इन्द्रदेव ही प्रेरणा के आधार हैं, यह निश्चित जानें। शत्रुओं के धनुष की प्रत्यञ्चा टूट जाए, यही कामना करते हैं ॥२ ॥

५६३४. त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्। अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप नदियों के प्रवाहों में आये अवरोधों को तोड़ते हैं एवं मेघों को फोड़ते हैं। शत्रु विहीन हुए आप सभी वरणीय पदार्थों के पोषक हैं। हम आपको हविष्यान्न देकर हर्षित करते हैं। शत्रुओं के धनुष की प्रत्यञ्चा टूट जाए, ऐसी कामना करते हैं ॥३ ॥

५६३५. वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः। अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ।।४ ॥

हम पर आक्रमण करने वाले शत्रु विनष्ट हो जाएँ। हे इन्द्रदेव ! हम पर घात करने वाले जघन्य दुष्टों को आप अपने शस्त्रों से मारते हैं। हमारी बुद्धि आपकी ओर प्रेरित हो। आपके धन आदि के दान हमें प्राप्त हों। हमारे शत्रुओं के धनुष की प्रत्यञ्चा टूट जाए, ऐसी कामना करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त-९६]

[ऋषि- पूरण, ११-१६ रक्षोहा, १७-२३ ब्रह्मा, २४ प्रचेता। देवता- इन्द्र, ६-१० इद्राग्नी, यक्ष्मनाशन, ११-१६ गर्भसंस्राव प्रायश्चित्त, १७-२३यक्ष्मनाशन, २४ दुःस्वप्नघ्न। । छन्द- त्रिष्टुप्, ९ शक्वरीगर्भा जगती, १०-१८, २४ अनुष्टुप्, १९ ककुम्मती अनुष्टुप्, २० चतुष्पदा भुरिक् उष्णिक्, २१ उपरिष्टात् विराट् बृहती, २२उष्णिग्गर्भा निचृत् अनुष्टुप्, २३ पथ्यापंक्ति।]

५६३६. तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च। इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप तीव्र प्रभाव वाले इस सोमरस का सेवन करें। गतिशील रथ से योजित किये गये अश्वों को यहाँ आकर मुक्त कर दें। अन्य यजमान आपको हर्षित न कर सकें, हम स्वयं आपको सन्तुष्ट करेंगे। आपके निमित्त ही यह सोमाभिषव किया गया है ॥१ ॥

५६३७. तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति। इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥२ ॥

हे इन्द्र !आपके निमित्त ही सोम तैयार किया गया है, आगे भी आपके लिए ही प्रस्तुत होगा। ये सभी स्तुतियाँ आपका ही आवाहन करती हैं।हे इन्द्रदेव ! शीघ्र ही उपस्थित होकर आप हमारे इस यज्ञ में सोमपान करें ॥२ ॥

५६३८. य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति। न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३ ॥

जो साधक भावनापूर्वक इन्द्रदेव के लिए सोमरस अभिषुत करते हैं, इन्द्रदेव उनकी गौओं को भी क्षीण नहीं करते। उन्हें श्रेष्ठ और प्रशंसनीय ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३ ॥

५६३९. अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम्। निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥४ ॥

जो धनवान् लोग इन्द्रदेव के निमित्त सोमरस प्रस्तुत करते हैं, उन्हें वे प्रत्यक्ष लाभ प्रदान करते हैं। इन्द्रदेव अपनी भुजाओं से उन्हें संरक्षण प्रदान करते हैं। उत्तम कर्मों से विद्वेष करने वालों को इन्द्रदेव बिना कहे ही नष्ट करते हैं ॥४ ॥

५६४०. अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ।

आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥५॥

सुखदाता हे इन्द्रदेव ! अश्वों, गौओं और ऐश्वर्य की अभिलाषा से प्रेरित होकर हम आपके आगमन की प्रार्थना करते हैं। आपके निमित नवीन और श्रेष्ठ स्तोत्रों की रचना करके आपका आवाहन करते.हैं ॥५॥

५६४१. मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।

ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥६॥

हे रोगिन् ! यज्ञ के हविर्द्रव्य से हम आपको अज्ञात रोगों और राजयक्ष्मा से मुक्त करते हैं। जो घेर कर जकड़ लेने वाले (राक्षस या व्याधि विषाणु) हैं, उनसे इन्द्रदेव और अग्निदेव हमें मुक्ति दिलाएँ ॥६॥

[ऋषि ओषधि संयम और मंत्र के संयुक्त प्रयोग से असाध्य रोगों का भी उपचार पूरे विश्वास के साथ करने में समर्थ थे। अग्नि के सहयोग से यज्ञीय ऊर्जा तथा इन्द्र (आत्म- शक्ति) के सहयोग जीवनी शक्ति का समर्थन करते थे। इसीलिए अग्नि और इन्द्र से प्रार्थना की गयी है।]

५६४२. यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नी त एव।

तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥७॥

यदि रोगी की आयु क्षीण हो गयी है, यदि वह मृत्यु के समीप गया हुआ है, तो भी हम उसे (मृत्युदेव) निर्ऋति के समीप से वापस ला सकते हैं। (रोग निवारण विद्या के जानकार) हमने उसका स्पर्श किया है, जिससे वह सौ वर्ष तक जीवित रहेगा ॥७॥

५६४३. सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।

इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥८॥

सहस्र अक्ष (नेत्र या पहलुओं) वाली, शतवीर्य (प्राणवान् तत्त्व) वाली तथा शतायु बनाने वाली आहुतियाँ हमने प्रदान की हैं। उनसे जीवन को सुरक्षित किया है। सम्पूर्ण दुःखों का निवारण करके इन्द्रदेव इन्हें सौ वर्ष की आयु प्रदान करें ॥८॥

५६४४. शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।

शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥९॥

हे रोगमुक्त मनुष्य ! नित्यमेव वृद्धिशील होते हुए आप एक सौ शरद, एक सौ हेमन्त और एक सौ वसन्त तक सुखपूर्वक जीवित रहें। इन्द्रदेव, अग्निदेव, सवितादेव और बृहस्पतिदेव हविष्यान्न द्वारा परितृप्त होकर आपको सौ वर्ष तक के लिए जीवनी शक्ति प्रदान करें ॥९॥

५६४५.आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः। सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥

हे रोगी मनुष्य ! हम आपको मृत्यु के पास से लौटाकर लाये हैं। यह आपका पुनर्जीवन है। हे सर्वाङ्ग स्वस्थ ! आपके लिए समर्थ नेत्रों और आयुष्य को हमने उपलब्ध किया है ॥१०॥

५६४६. ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः।

अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥११॥

हमारे स्तोत्रों से प्रसन्न होकर अग्निदेव शरीर की सभी बाधाओं (रोगों) का निवारण करें। हे नारी ! आपके शरीर में जो भी विकार (रोग) प्रत्यक्ष या गोपनीय रूप से विद्यमान हैं, उन सबको अग्निदेव दूर करें ॥११॥

५६४७. यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।

अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥१२ ॥

हे नारी ! जिन असुरों (रोगों) ने आपको पीड़ित किया है तथा आपकी सृजन एवं धारण करने की क्षमता को विनष्ट किया है; अग्निदेव उन सबको समाप्त करें, हम उनकी स्तुति करते हैं ॥१२ ॥

५६४८. यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।

जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१३ ॥

हे स्त्री ! विभिन्न रोगों के रूप में जो भी पैशाचिक शक्तियाँ आपके गर्भ को पीड़ित करना चाहती हैं, जो आपकी सन्तानों को पीड़ा पहुँचाती हैं, उन सबको आपके पास से दूर करके नष्ट करते हैं ॥१३ ॥

५६४९. यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये । योनिं यो अन्तरारेळिह तमितो नाशयामसि ।

हे नारी ! जो विकार (रोग) जाने-अनजाने तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर गये हैं तथा जो तुम्हारी सन्तानों को नष्ट करना चाहते हैं, अग्निदेव की सहायता से हम उन सबका विनाश करते हैं ॥१४ ॥

५६५०. यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥१५ ॥

हे स्त्री ! जो रोग आपके पास छलपूर्वक भ्रातारूप से ; पतिरूप से अथवा उपपति बनकर आता है और आपकी सन्तति को विनष्ट करने की कामना करता है, उसे हम यहाँ से दूर भगाते हैं ॥१५ ॥

[रोग या दुर्गुण हितैषियों जैसे, अपनों जैसे रूप बनाकर ही छलपूर्वक स्वभाव में या शरीर में प्रवेश करते हैं । उन्हें पहचानने और नष्ट करने की विद्या ऋषिगण जानते रहे हैं ।]

५६५१. यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ।

हे नारी ! जो रोग स्वप्नवेला और निद्रावस्था में आपको मोह- मुग्ध करके समीप आता है और जो आपकी सन्तति को विनष्ट करने की कामना करता है, उसे हम यहाँ से दूर करते हैं ॥१६ ॥

[स्वप्न एवं सम्मोहन की स्थिति में अवचेतन अवस्था में विकार अपना जाल फैलाते हैं, उस गहराई तक उपचार किया जाना अभीष्ट है ।]

५६५२. अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।

यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१७ ॥

हे रोगिन् ! आपके दोनों नेत्रों, दोनों कानों, दोनों नासिका रन्ध्रों, ठोढ़ी, सिर, मस्तिष्क और जिह्वा से हम रोग को दूर करते हैं ॥१७ ॥

५६५३. ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।

यक्ष्मं दोषण्य१मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥१८ ॥

हे रोगिन् ! आपके गर्दन की नाड़ियों, ऊपरी-स्नायुओं, अस्थियों के संधि भागों, कन्धों, भुजाओं और अन्तर्भाग से यक्ष्मारोग का निवारण करते हैं ॥१८ ॥

५६५४. हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।

यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥१९ ॥

(हे मनुष्य !) हम आपके हृदय, फेफड़ों, क्लोम ग्रन्थि (पित्ताशय), दोनों पार्श्व (पसलियों) गुर्दों, तिल्ली, जिगर (लीवर) आदि से रोगों का निवारण करते हैं ॥१९ ॥

५६५५. आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।

यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥२० ॥

आपकी आँतो, गुदा, नाड़ियों, हृदयस्थान, मूत्राशय, यकृत् और अन्यान्य पाचन तन्त्र के अवयवों से हम रोगों का निवारण करते हैं ॥२० ॥

५६५६. ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।

यक्ष्मं भसद्यं१ श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥२१ ॥

हे रोगिन् ! आपकी दोनों जंघाओं, जानुओं, एड़ियों, पंजों, नितम्ब भागों, कटिभागों और गुदाद्वार से हम यक्ष्मा रोग का निवारण करते हैं ॥२१ ॥

५६५७. अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।

यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥२२ ॥

हे रोगिन् ! आपकी अस्थियों, मज्जा, नाड़ियों और शरीर के प्रत्येक सन्धि भाग में जहाँ कहीं भी रोगों का निवास है, वहाँ से हम उन्हें दूर करते हैं ॥२२ ॥

५६५८. अङ्गे अङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।

यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥२३ ॥

शरीर के प्रत्येक अंग, रोमों (रोमकूपों) शरीर की सभी संधियों, जहाँ भी रोग का प्रभाव है, उन सभी स्थानों से हम उसका निवारण करते हैं ॥२३ ॥

[आज विज्ञान यह मानने लगा है कि गंभीर रोगों की जड़ें शरीर के तमाम कोशों, अंग - प्रत्यंगों में फैली होती हैं । ऋषि अपनी सूक्ष्म दृष्टि से प्राणवान् उपचार प्रक्रिया से रोगों के समूल उच्छेदन का एक सशक्त तंत्र बनाते हैं ।]

५६५९. अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर । परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥

हे दुःस्वप्न ! आपने हमारे मन को अपने अधीन कर लिया है । आप यहाँ से दूर भाग जाएँ । दूर देश में जाकर इच्छानुसार विचरण करें । निर्ऋति देवता जो यहाँ से दूर रहते हैं, उनसे जाकर कहें कि जीवित व्यक्तियों के मनोरथ विस्तृत होते हैं, अतएव वे मनोरथों के विनाशक दुःस्वप्न दर्शन को विनष्ट करें ॥२४ ॥

[सूक्त-९७]

[ऋषि- कलि । देवता-इन्द्र । छन्द- प्रगाथ, ३ बृहती ।]

५६६०. वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् । तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ।

हम याजकों ने इन्द्रदेव को कल सोमरस से तृप्त किया था, उन्हें आज के यज्ञ में भी सोमरस प्रदान करते हैं । हे याजको ! इस समय स्तोत्रों का गान करके इन्द्रदेव को अलंकृत करें ॥१ ॥

५६६१. वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।

सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥२ ॥

भेड़िये जैसे क्रूर शत्रु भी इन्द्रदेव के समक्ष अनुकूल हो जाते हैं । वे (इन्द्रदेव) हमारी प्रार्थनाओं को स्वीकार करते हुए हमें उत्कृष्ट चिन्तन, संयुक्त विवेक- बुद्धि प्रदान करें ॥२ ॥

५६६२. कदू न्व१स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥३ ॥

ऐसा कौन सा पुरुषार्थ है, जिसको इन्द्रदेव ने (प्रभावित) नहीं किया तथा उनकी वीरता की गाथाएँ किसने नहीं सुनी ? वृत्र का संहार करने वाले इन्द्रदेव बचपन से ही विख्यात हैं ॥३ ॥

[सूक्त-९८]

[ऋषि- शंयु । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५६६३. त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम स्तोतागण अन्न प्राप्ति की कामना से आपका आवाहन करते हैं । आप सज्जनों के रक्षक हैं । शत्रु को जीतने के निमित्त आपका आवाहन करते हैं ॥१ ॥

५६६४. स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२ ॥

विपुल पराक्रमी, वज्रधारी, बलधारक हे इन्द्रदेव ! अपनी असुरजयी शक्ति से महान् हुए आप हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हम साधकों को पशुधन तथा ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२ ॥

[सूक्त-९९]

[ऋषि- मेध्यातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५६६५. अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! प्राचीनकाल से ही ऋभुगणों तथा रुद्रों (उग्रवीरों) द्वारा आपकी स्तुति की जाती रही है । याजकगण स्तुति करते हुए सोमपान के लिए सर्वप्रथम आपको ही बुलाते हैं ॥१ ॥

५६६६. अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव सोमरस का सेवन करके अत्यधिक आनन्दित होकर यजमान के वीर्य और बल को बढ़ाते हैं, अतएव स्तोतागण आज भी उनकी महिमा का वर्णन करते हैं ॥२ ॥

[सूक्त-१००]

[ऋषि- नृमेध । देवता-इन्द्र । छन्द- उष्णिक्]

५६६७. अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे । उदेव यन्त उदभिः ॥१ ॥

स्तोत्रों से पूजित हे इन्द्रदेव ! आपके पास हम लोग बड़ी-बड़ी कामनाएँ लेकर उसी प्रकार आते हैं, जैसे जल स्वभावतः जल भण्डारों की ओर (नाले नदी की ओर तथा नदियाँ समुद्र की ओर) प्रवाहित होता है ॥१ ॥

५६६८. वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि। वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥२ ॥

वज्रधारी, शूरवीर हे इन्द्रदेव ! जैसे नदियों के जल से समुद्र की गरिमा बढ़ती है, उसी तरह हम अपनी स्तुतियों से आपकी गरिमा का विस्तार करते हैं ॥२ ॥

५६६९. युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे। इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥३ ॥

गमनशील इन्द्रदेव के महान् रथ में संकेत मात्र से ही दो श्रेष्ठ घोड़े नियोजित हो जाते हैं। स्तोतागण उन्हें स्तोत्रों से नियोजित करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-१०१]

[ऋषि- मेध्यातिथि। देवता- अग्नि । छन्द- गायत्री।]

५६७०. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप यज्ञ के विशेषज्ञ हैं, समस्त देवशक्तियों को तुष्ट करने की सामर्थ्य रखते हैं। आप यज्ञ की विधि-व्यवस्था के स्वामी हैं। ऐसे समर्थ आपको देवदूत रूप में हम स्वीकार करते हैं ॥१ ॥

५६७१. अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्। हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२ ॥

प्रजापालक, देवों तक हवि पहुँचाने वाले, परमप्रिय, कुशल नेतृत्व प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! हम याजकगण हवनीय मंत्रों से आपको सदा बुलाते हैं ॥२ ॥

५६७२. अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे। असि होता न ईड्यः ॥३ ॥

हे स्तुत्य अग्निदेव ! आप अरणिमन्थन से उत्पन्न हुए हैं। विस्तृत कुशाओं पर बैठे हुए यजमान पर अनुग्रह करने हेतु आप (यज्ञ की) हवि ग्रहण करने वाले देवताओं को इस यज्ञ में बुलाएँ ॥३ ॥

[सूक्त-१०२]

[ऋषि- विश्वामित्र। देवता- अग्नि । छन्द- गायत्री।]

५६७३. ईळेन्यो नमस्य स्तिरस्तमांसि दर्शतः। समग्निरिध्यते वृषा ॥१ ॥

स्तुत्य, प्रणम्य, अन्धकार नाशक, दर्शनीय और शक्तिशाली हे अग्निदेव ! आप आहुतियों द्वारा भली प्रकार प्रज्वलित तथा संवर्द्धित किये जाते हैं ॥१ ॥

५६७४. वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः। तं हविष्मन्त ईळते ॥२ ॥

बलशाली अश्व जैसे राजा के वाहन को खींचकर ले जाते हैं, उसी प्रकार अग्निदेव देवताओं तक हवि पहुँचाते हैं। उत्तम प्रकार से प्रदीप्त हुए अग्निदेव यजमान की स्तुतियों को प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

५६७५. वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि। अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥३ ॥

हे अग्ने ! घृतादियुक्त हवि प्रदान करने वाले हम, शक्तिशाली, तेजस्वी और महान् आपको प्रदीप्त करते हैं।

[सूक्त-१०३]

[ऋषि- सुदीति और पुरुमीढ, २-३ भर्ग। देवता- अग्नि । छन्द- बृहती, २-३ प्रगाथ।]

५६७६. अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम्।
अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! विस्तृत-विकराल ज्वालाओं वाले अग्निदेव की स्तुति करो । उद्‌गातागण उन प्रसिद्ध अग्निदेव से धन तथा श्रेष्ठ प्रकाशयुक्त आवास-प्राप्ति हेतु प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

५६७७. अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।

आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवों को बुलाने वाले हैं, हमारी प्रार्थना सुनकर अपनी अग्नियों (विशिष्ट शक्तियों) सहित यहाँ पधारें । हे पूज्य अग्निदेव ! अध्वर्यु के द्वारा प्रदत्त आसन पर आपके प्रतिष्ठित होने पर, हम आपका पूजन करें ॥२ ॥

५६७८. अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।

ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥३ ॥

बल से उत्पन्न सर्वत्र गमनशील हे अग्निदेव ! आप तक हविष्यान्न पहुँचाने के लिए यह हवि पात्र सक्रिय है । शक्ति का ह्रास रोकने वाले अभीष्टदाता, तेजस्वी, ज्वालाओं से युक्त आपकी हम यज्ञस्थल पर प्रार्थना करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-१०४]

[ऋषि- मेध्यातिथि, ३-४ नृमेध । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५६७९. इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥१ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! हमारी स्तुतियाँ आपकी कीर्ति को बढ़ाएँ । अग्नि के समान प्रखर पवित्रात्मा और विद्वान् साधक स्तोत्रों द्वारा आपकी प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

५६८०. अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।

सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥२ ॥

ये इन्द्रदेव हजारों ऋषियों के स्तुतिबल को पाकर प्रख्यात और समुद्र की तरह विस्तृत हुए हैं । इनकी सत्यनिष्ठा और शक्ति प्रसिद्ध है । यज्ञों में स्तोत्रगान करते हुए इनका सम्मान किया जाता है ॥२ ॥

५६८१. आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।

उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥३ ॥

संग्राम में रक्षा के लिए बुलाने योग्य, वृत्रहन्ता, धनुष की श्रेष्ठ प्रत्यंचा के समान, उत्तम मंत्रों से स्तुत्य हे इन्द्रदेव ! हमारे (तीनों) सवनों एवं स्तोत्रों को आप सुशोभित करें ॥३ ॥

५६८२. त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।

तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सर्वप्रथम धनदाता हैं । ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं । आपसे हम पराक्रमी एवं श्रेष्ठ संतानों की कामना करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त-१०५]

[ऋषि- नृमेध, ४-५ पुरुहन्मा । देवता-इन्द्र । छन्द- प्रगाथ, ३ बृहती ।]

५६८३. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप संग्राम में शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं । सबके जन्मदाता आप, पालन न करने वालों एवं असुरों को नष्ट करने वाले हैं ॥१ ॥

५६८४. अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।

विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार माता-पिता अपने शिशु की रक्षा में तत्पर रहते हैं । आकाश और पृथ्वी उसी प्रकार शत्रुसंहारक आपके बलों के संरक्षक होते हैं । जब आप वृत्रासुर का वध करते हैं, तब आपके क्रोध के समक्ष युद्ध के लिए तत्पर शत्रुपक्ष कमजोर पड़ जाता है ॥२ ॥

५६८५. इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।

आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥३ ॥

हे साधको ! शत्रुसंहारक, सर्वप्रेरक, वेगवान्, यज्ञस्थल पर जाने वाले, उत्तम रथी, अहिंसनीय, जलवृष्टि करने वाले तथा अजर-अमर इन्द्रदेव का अपने संरक्षण के लिए आवाहन करो ॥३ ॥

५६८६. यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥४ ॥

मानवों के अधिपति, वेगवान्, शत्रु-सेना के संहारक, वृत्रहन्ता, श्रेष्ठ इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥४ ॥

५६८७. इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥५ ॥

हे साधको ! अपनी रक्षा के लिए देवराज इन्द्र की उपासना करो । जिनके संरक्षण में (देवत्व की) रक्षा एवं (असुरता के) विनाश की दोहरी शक्ति है । वे इन्द्रदेव, सूर्य के समान तेजस्वी वज्र को हाथ में धारण करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त-१०६]

[ऋषि- गोषूक्ति और अश्वसूक्ति । देवता- इन्द्र । छन्द- उष्णिक् ।]

५६८८. तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् । वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥

हे इन्द्र ! हमारी प्रार्थनाएँ आपके शौर्य, सामर्थ्य, कुशलता, पराक्रम और श्रेष्ठ वज्र को तेजस्वी बनाती हैं ॥

५६८९. तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! अन्तरिक्ष से आपकी शक्ति-सामर्थ्य का और पृथ्वी से आपके यशस्वी स्वरूप का विस्तार है । जल प्रवाह और पर्वत (मेघ) आपको अपना अधिपति मानकर आपके पास पहुँचते हैं ॥२ ॥

[इन्द्रादि देवों की सामर्थ्य का भण्डार आकाश में है, पृथ्वी पर उनका प्रत्यक्ष प्रयोग होने से यहाँ उनका यशस्वी स्वरूप प्रकट होता है । सामर्थ्य प्राप्ति के लिए अन्तरिक्षीय सूक्ष्म प्रवाहों को धारण करने तथा यशः प्राप्ति के लिए उनके प्रत्यक्ष सदुपयोग की विद्या मनुष्यों को भी अपने अन्दर विकसित करनी पड़ती है ।]

५६९०. त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! महान् आश्रयदाता मान करके विष्णु , मित्र और वरुणादि देवता आपका स्तुतिगान करते हैं। मरुद्गणों के बल से आप हर्षित होते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-१०७]

[ऋषि- वत्स, ४-१२ बृहद्दिव और अथर्वा, १३-१४ ब्रह्मा, १५ कुत्स । देवता- इन्द्र , १३-१५ सूर्य । छन्द- गायत्री, ४-११, १४-१५ त्रिष्टुप् , १२ भुरिक् परातिजागता त्रिष्टुप् , १३ आर्षी पंक्ति ।]

५६९१. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥१ ॥

समस्त प्रजाएँ उग्र इन्द्रदेव के प्रति नमनपूर्वक उसी प्रकार आकर्षित होती हैं, जैसे सभी नदियाँ समुद्र में मिलने के लिए वेग से जाती हैं ॥१ ॥

५६९२. ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥२ ॥

इन्द्रदेव का वह ओजस् (बल) अत्यन्त प्रभावयुक्त है, जिससे वे द्युलोक से पृथ्वी लोक तक आवरण के समान फैलकर सुरक्षा करते हैं ॥२ ॥

५६९३. वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ॥३ ॥

संसार को भयभीत करने वाले (कम्पित करने वाले) वृत्रासुर के सिर को शक्ति-सम्पन्न इन्द्रदेव ने अपने तीक्ष्ण प्रहार वाले वज्र से अलग कर दिया ॥३ ॥

५६९४. तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥४ ॥

संसार का कारणभूत ब्रह्म स्वयं ही सब लोकों में प्रकाशरूप में संव्याप्त हुआ, जिससे प्रचण्ड तेजस्वी बल से युक्त (इन्द्रदेव) देव का प्राकट्य हुआ । जिनके प्रकट होते ही शत्रु नष्ट हो जाते हैं । उन्हें देखकर सभी प्राणी हर्षित हो उठते हैं ॥४ ॥

५६९५. वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥५ ॥

अपनी सामर्थ्य से वृद्धि को प्राप्त हुए, अनन्त शक्तियों से युक्त, दुष्टों के शत्रु इन्द्रदेव शत्रुओं के अन्तःकरण में भय उत्पन्न करते हैं । वे सभी चर-अचर प्राणियों को संचालित करते हैं । ऐसे देव की हम (याजकगण) सम्मिलित रूप से, एक साथ स्तुति करके उन्हें तथा स्वयं को आनन्दित करते हैं ॥५ ॥

५६९६. त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! सभी यजमान आपके लिए ही अनुष्ठान करते हैं । जब यजमान विवाहोपरान्त दो तथा एक सन्तान के बाद तीन होते हैं , प्रिय लगने वाले (सन्तान) को प्रिय (धन या गुणों) से युक्त करें । बाद में इस प्रिय सन्तान को पुत्र- पौत्रादि की मधुरता से युक्त करें ॥६ ॥

५६९७. यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥७ ॥

कभी पराजित न होने वाले हे इन्द्रदेव ! युद्धों में आप सदैव अपने पराक्रम से धन-सम्पदाओं पर विजय प्राप्त करते हैं । ब्रह्मनिष्ठ साधक (याजक) ऐसे अवसरों पर आपकी स्तुति करते हैं । आप स्तोताओं को तेजस्विता प्रदान करें । दुस्साहसी असुर कभी आपको पराभूत न कर सकें ॥७ ॥

५६९८. त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।

चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके सहयोग से हम रणभूमि में दुष्ट शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं । युद्ध की इच्छा से प्रेरित अनेक शत्रुओं पर हम दृष्टि रखते हैं । आपके वज्रादि आयुधों को हम स्तोत्रों द्वारा प्रोत्साहित करते हैं । स्तुति मंत्रों से हम आपकी तेजस्विता को तीक्ष्ण करते हैं ॥८ ॥

५६९९. नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।

आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जिस यजमान के घर में हविरूप अन्न से परितृप्त होते हैं, उसे दिव्य और भौतिक सम्पदाएँ प्रदान करते हैं । समस्त प्राणियों के निर्माता, गतिशील द्युलोक और पृथ्वीलोक को आप ही सुस्थिर करते हैं । उस समय आपको अनेक कार्यों का निर्वाह करना पड़ता है ॥९ ॥

५७००. स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।

आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥१० ॥

स्तुत्य, विभिन्न स्वरूपों वाले, दीप्तिमान्, सर्वेश्वर और सर्वश्रेष्ठ इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं । वे अपनी सामर्थ्य से आसुरी वृत्तियों का विनाश करें तथा पृथ्वी पर यज्ञीय प्रतिमानों को प्रतिष्ठित करें ॥१० ॥

५७०१. इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।

महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥११ ॥

ऋषियों में श्रेष्ठ और स्वर्गलोक के आकांक्षी बृहद्दिव (बृहद् आकाश तक गति वाले) ऋषि इन्द्रदेव को सुख प्रदान करने के लिए ही इन वैदिक मन्त्रों का पाठ करते हैं । वे तेजस्वी, दीप्तिमान् इन्द्रदेव विशाल पर्वतों (अवरोध) को हटाते हैं तथा शत्रुपुरियों के सभी द्वारों के उद्घाटक हैं ॥११ ॥

['ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' के अनुसार वेद मंत्र परम व्योम अथवा बृहदाकाश में रहते हैं । ऋषि अपनी परिष्कृत चेतना द्वारा वहाँ से उन्हें अवतरित करते हैं । इसीलिए बृहद्दिव नाम या गुण वाले ऋषि द्वारा मंत्र पाठ की आशा की गयी है ।]

५७०२. एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्व१मिन्द्रमेव ।

स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥१२ ॥

अथर्वा ऋषि के पुत्र महाप्राज्ञ बृहद्दिव ने इन्द्रदेव के लिए अपनी बृहद् स्तुतियों का उच्चारण किया । माता सदृश भूमि पर उत्पन्न पवित्र नदियाँ, पारस्परिक भगिनी तुल्य स्नेह से जल प्रवाहित करती हैं तथा अन्नबल से लोगों का कल्याण करती हैं ॥१२ ॥

५७०३. चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।

दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥१३ ॥

वीर पराक्रमी, पूजनीय, तेजस्वी प्रकाश किरणों से सम्पन्न, सभी दिशाओं को प्रकाशित करने वाले तथा अन्धकार को दूर करने वाले सूर्यदेव (इन्द्रदेव) समस्त पापों को विनष्ट कर डालते हैं ॥१३ ॥

५७०४. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥१४ ॥

जंगम, स्थावर जगत् के आत्मारूप सूर्यदेव, दैवी शक्तियों के अद्‌भुत तेज के समूह सहित उदित हो गये हैं। मित्र, वरुण आदि के चक्षु रूप इन सूर्यदेव ने उदय होते ही द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्ष को अपने तेज से भर दिया है ॥१४ ॥

५७०५. सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥१५ ॥

प्रथम दीप्तिमान् और तेजस्विता युक्त देवी उषा के पीछे सूर्यदेव उसी प्रकार अनुगमन करते हैं, जिस प्रकार पुरुष नारी का अनुगमन करते हैं। जहाँ देवत्व के उच्च लक्ष्य को पाने के लिए साधक यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न करते हैं, वहाँ उन साधकों एवं कल्याणकारी यज्ञीय कर्मों को सूर्यदेव अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हैं ॥१५ ॥

[सूक्त-१०८]

[ऋषि- नृमेध । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री, २ ककुप् उष्णिक्, ३ पुर उष्णिक् ।]

५७०६. त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनाषहम् ॥१ ॥

अनेक कार्यों के सम्पादनकर्ता, ज्ञानी, हे इन्द्रदेव ! आप हमें शक्ति एवं ऐश्वर्य से परिपूर्ण करें तथा शत्रुओं को जीतने वाला पुत्र भी प्रदान करें ॥१ ॥

५७०७. त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे ॥२ ॥

सबको आश्रय देने वाले शतकर्मा हे इन्द्रदेव ! आप पिता तुल्य पालन करने वाले और माता तुल्य धारण करने वाले हैं। हम आपके पास सुख माँगने के लिए आते हैं ॥२ ॥

५७०८. त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥३ ॥

असंख्यों द्वारा स्तुत्य, बलवान्, प्रशंसित, शक्तिशाली हे इन्द्रदेव ! हम आपकी स्तुति करते हुए कामना करते हैं कि हमें उत्तम, तेजस्वी सामर्थ्य प्रदान करें ॥३ ॥

[सूक्त-१०९]

[ऋषि- गोतम । देवता- इन्द्र । छन्द- पथ्यापंक्ति ।]

५७०९. स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१ ॥

भक्तों पर कृपावृष्टि करने वाले इन्द्र (सूर्य) देव के साथ गौएँ (किरणें) आनन्दपूर्वक शोभायमान हैं। वे भूमि पर स्वराज्य की मर्यादा के अनुरूप उत्पन्न सुस्वाद मधुर रस का पान करती हैं ॥१ ॥

५७१०. ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥२ ॥

इन्द्रदेव (सूर्य) का स्पर्श करने वाली धवल गौएँ (किरणें) दूध (पोषण) प्रदान करती हैं तथा उनके वज्र को प्रेरणा देती हुई स्वराज्य में ही रहती हैं ॥२ ॥

५७११. ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥३ ॥

ज्ञानयुक्त वे (किरणें) इन्द्रदेव के प्रभाव का पूजन करती हैं । पूर्व में हो चुके को समझने वाली वे किरणें इन्द्रदेव द्वारा पहले किये गये कार्यों का स्मरण दिलाती हैं और स्वराज्य के अनुशासन में ही रहती हैं ॥३ ॥

[इस सूक्त की उक्त तीन ऋचाओं में इन्द्र की किरणों (प्रतिभाओं) के लिए स्वराज्य (अपने राज्य) में मर्यादित तीन क्रियात्मक अनुशासनों का उल्लेख किया गया है ।

(१) स्वराज्य के अनुरूप मधुर रसों का पान करें, औसत नागरिकों के स्तर के अनुरूप ही निर्वाह के साधन स्वीकार करें ।

(२) इन्द्र (प्रशासन) को पुष्ट बनाते हुए अपराधियों के लिए दण्ड व्यवस्था को प्रभावपूर्ण बनाएँ ।

(३) व्यवस्थाओं की प्रशंसा करते हुए पूर्व की जा चुकी व्यवस्थाओं का स्मरण दिलाकर जन-जन को नैष्ठिक बनाएँ ।]

[सूक्त-११०]

[ऋषि- श्रुतकक्ष अथवा सुकक्ष । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५७१२. इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१ ॥

हम स्तोतागण स्तुतियों द्वारा, इन्द्रदेव के निमित्त निकाले गये आनन्दमयी प्रकृति वाले दिव्य सोमरस की प्रशंसा करते हैं ॥१ ॥

५७१३. यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥२ ॥

उन कान्तिमान् इन्द्रदेव का हम सोमयज्ञ में आवाहन करते हैं, जिनकी स्तुति यज्ञ के सातों ऋत्विज् करते हैं ॥

५७१४. त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद् वर्धन्तु नो गिरः ॥३ ॥

प्रेरणादायी, उत्साह बढ़ाने वाले, तीन चरणों में सम्पन्न होने वाले यज्ञ का विस्तार देवगण करते हैं । साधकगण उस यज्ञ की प्रशंसा करते हैं ॥३ ॥

[यज्ञ के तीन चरण प्रयाज, याज और अनुयाज होते हैं । प्रयाज से साधना द्वारा यजन के लिए उपयुक्त वातावरण तथा व्यवस्था बनने का विधान है । यजन में भावना पूर्वक तप साधना युक्त आहुतियाँ दी जाती हैं । अनुयाज में यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा का जनहितार्थ सुनियोजन किया जाता है ।]

[सूक्त-१११]

[ऋषि-पर्वत । देवता- इन्द्र । छन्द- उष्णिक् ।]

५७१५. यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये । यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञों में विष्णु के उपस्थित होने के बाद आपने सोमपान किया था । त्रितआप्त्य एवं मरुद्गणों के साथ सोमरस के सेवन से आनन्दित होने वाले आप हमारे यज्ञ में भी सोमपान करके आनन्दित हों ॥१ ॥

५७१६. यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे । अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार सुदूर क्षेत्र में सोमरस पान करके आप हर्षित होते हैं, उसी प्रकार हमारे यज्ञ में भी सोमपान करके हर्षित हों ॥२ ॥

५७१७. यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥

हे सत्य के पालक इन्द्रदेव ! आप जिस याजक के यज्ञ में विधिवत् सोमपान करके आनन्दित होते हैं । उस याजक को आप बढ़ाते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-११२]

[ऋषि- सुकक्ष । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५७१८. यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥१ ॥

वृत्र संहारक हे इन्द्रदेव ! आपसे प्रकाशित होने वाला सब कुछ (सम्पूर्ण जगत्) आपके ही अधिकार में है ॥

५७१९. यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत् सत्यमित् तव ॥२ ॥

प्रगति करने वाले तथा सज्जनों का पालन करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप स्वयं को अमर मानते हैं, आपका ऐसा मानना ही यथार्थ है ॥२ ॥

५७२०. ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो सोमरस दूर या निकट के स्थानों पर अभिषुत किया जाता है, आप उन समस्त स्थानों पर पधारते हैं ॥३ ॥

[सूक्त-११३]

[ऋषि- भर्ग । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५७२१. उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥१ ॥

धनवान् और बलवान् हे इन्द्रदेव ! हमारी दोनों प्रकार की प्रार्थनाओं को समीप आकर सुनें । सामूहिक उपासना से प्रसन्न होकर आप सोमपान के लिए यहाँ पधारें ।

५७२२. तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥२ ॥

आकाश और पृथ्वी ने वृष्टिकर्त्ता, समर्थ और तेजस्वी इन्द्रदेव को प्रकट या नियुक्त किया है । हे इन्द्रदेव ! आप उपमानों में सर्वश्रेष्ठ हैं । आप सोमपान की इच्छा से यज्ञवेदी पर विराजमान होते हैं ॥२ ॥

[सूक्त-११४]

[ऋषि- सौभरि । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५७२३. अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जन्म से ही भ्रातृ संघर्ष से मुक्त हैं । आप पर शासन करने वाला कोई नहीं है और न ही सहायता करने वाला कोई मित्र । आप युद्ध (जन संरक्षण) द्वारा अपने सहयोगियों (मित्रों) और भक्तों को पाने की कामना करते हैं ॥१ ॥

५७२४. नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप (यज्ञ , दान आदि से रहित) धनाभिमानी को मित्र नहीं बनाते हैं । सुरा पीकर मदान्ध (अमर्यादित लोग) आपको दुखी करते हैं । ज्ञान एवं गुण-सम्पन्नों को मित्र बनाकर आप उन्नति पथ पर चलाते हैं, जिससे आप पिता तुल्य सम्मान प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

[सूक्त-११५]

[ऋषि- वत्स । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५७२५. अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि ॥१ ॥

हमने यज्ञरूप इन्द्र की बुद्धि को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, इससे सूर्य सदृश तेजोयुक्त हो गये हैं ।

५७२६ अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥२ ॥

कण्व ऋषि के सदृश हमने इन्द्र को उन स्तोत्रों से सुशोभित किया, जिनके प्रभाव से वे शक्तिसम्पन्न बनते हैं।

५७२७. ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति न करने वाले तथा आपके निमित्त स्तुति करने वाले ऋषिगणों के मध्य भी हमारे स्तोत्र प्रशंसनीय हैं । आप उन स्तोत्रों के प्रभाव से भली प्रकार परिपुष्ट हों ॥३ ॥

[सूक्त-११६]

[ऋषि- मेध्यातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- बृहती ।]

५७२८. मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा से हमारा पतन न हो और न ही हम दुःखी हों । पतझड़ में शाखाविहीन वृक्षों के समान हम सन्तानरहित न हों । हे इन्द्रदेव ! हम आपके घरों में सुरक्षित रहकर आपकी स्तुति करते हैं ॥१ ॥

५७२९. अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सुकृत् सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥२ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! हम हड़बड़ाहट तथा क्रोधरहित होकर आपका स्तवन करें । हे वीर इन्द्रदेव ! आपके निमित्त हम भले ही जीवन में एक बार ही यज्ञ करें, पर प्रचुर धन-धान्य से सम्पन्न होकर करें ॥२ ॥

[सूक्त-११७]

[ऋषि- वसिष्ठ । देवता-इन्द्र । छन्द- विराट् गायत्री ।]

५७३०. पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥

हे भूरेवर्ण के अश्वों से युक्त इन्द्रदेव ! आप आनन्ददायक सोमरस का पान करें । संचालक के बाहुओं से सुनियंत्रित घोड़े के समान (यज्ञशाला में) सुरक्षित रखे गये पत्थर के द्वारा आपके लिए सोम निकाला जाता है ॥

५७३१. यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि । स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ।

हरि नामक अश्वों के स्वामी हे समृद्धिशाली इन्द्रदेव ! जिस सोमरस के उत्साह द्वारा आप वृत्रासुर (दुष्टों) का हनन करते हैं, वह श्रेष्ठ रस आपको आनंद प्रदान करे ॥२ ॥

५७३२. बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! विशिष्ट याजक (वसिष्ठ) गुणगान करते हुए , जिस श्रेष्ठ वाणी से आपकी अर्चना कर रहे हैं,

[सूक्त-११८]

[ऋषि-भर्ग, ३-४ मेध्यातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५७३३. शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥१ ॥

हे शचीपति, शूरवीर इन्द्रदेव ! सब प्रकार के रक्षा-साधनों के साथ आप हमें अभीष्ट फल प्रदान करें । सौभाग्ययुक्त धन प्रदान करने वाले आपकी हम आराधना करते हैं ॥१ ॥

५७३४. पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप गौओं (इन्द्रियों, पोषण-प्रवाहों) तथा अश्वों (पुरुषार्थ एवं शक्ति प्रवाहों) को बढ़ाने वाले हैं । आप स्वर्ण सम्पदा के स्रोत हैं । आपके अनुदानों को विस्मृत करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है, आप हमें अभीष्ट फलों से परिपूर्ण करें ॥२ ॥

५७३५. इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥३ ॥

दैवी प्रयोजनों के लिए किये गये यज्ञों में हम याजकगण जिस प्रकार यज्ञ के प्रारम्भ और उसकी समाप्ति के समय इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं, वैसे ही धन प्राप्ति की कामना से भी बलशाली इन्द्रदेव को आवाहित करते हैं ॥३ ॥

५७३६. इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥४ ॥

ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्य से द्युलोक और पृथ्वी को विस्तृत किया । इन्द्रदेव ने ही सूर्यदेव को आलोकयुक्त किया । इन्द्रदेव ने ही सभी लोकों को आश्रय प्रदान किया । ऐसे इन्द्रदेव के लिए ही यह सोमरस समर्पित है ॥४ ॥

[सूक्त-११९]

[ऋषि- आयु, २ श्रुष्टिगु । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५७३७. अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! आपने पूर्व यज्ञों में बृहती छन्द में सामगान किया था । अब आप इन्द्रदेव के लिए सनातन कण्ठस्थ स्तोत्रों का पाठ करें । इससे स्तोताओं की मेधा में वृद्धि होती है ॥१ ॥

५७३८. तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥२ ॥

शीघ्र कार्य करने वाले विप्रगण मधुर घृतसिक्त (भावयुक्त अथवा तेजस्वी) पूजनीय मन्त्रों का उच्चारण करते हैं । इससे हमारे लिए धन, वीर्य (पौरुष) तथा सोम की सिद्धि होती है ॥२ ॥

[सूक्त-१२०]

[ऋषि- देवातिथि । देवता- इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५७३९. यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्य ग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तोताओं द्वारा सहायता के लिए चारों ओर (पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण) से आवाहित किये जाते हैं । शत्रुनाशक हे इन्द्रदेव ! 'अनु' और 'तुर्वश' (अनुगामियों और दुष्टों को वश में रखने वालों) के लिए आपको प्रार्थनापूर्वक बुलाया जाता है ॥१ ॥

५७४०. यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप रुम, रुशम, श्यावक और कृप (ज्ञानियों, शूरों, धनिकों तथा श्रमशीलों) के लिए प्रसन्न किये जाते हैं । कण्ववंशीय ऋषिगण आपको विभिन्न स्तोत्रों से प्रभावित करने का प्रयास करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप यज्ञार्थ पधारें ॥२ ॥

[सूक्त-१२१]

[ऋषि- देवातिथि । देवता-इन्द्र । छन्द- प्रगाथ ।]

५७४१. अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! आप इस स्थावर एवं जंगम जगत् के स्वामी हैं । दिव्य दृष्टि-सम्पन्न आपके लिए हम उसी तरह लालायित रहते हैं, जैसे न दुही हुई गौएँ अपने बछड़े के पास जाने के लिए लालायित रहती हैं ॥१ ॥

५७४२. न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके समान इस पृथ्वीलोक या दिव्यलोक में न कोई है, न कभी हुआ है और न कभी होगा । हे देव ! अश्व, गौ तथा धन-धान्य की कामना वाले हम (स्तोतागण) आपका आवाहन करते हैं ॥२ ॥

[सूक्त-१२२]

[ऋषि- शुनःशेप । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५७४३. रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१ ॥

जिनकी स्तुति करके हम प्रफुल्लित होते हैं , उन इन्द्रदेव के लिए की गई हमारी प्रार्थनाएँ हमें प्रचुर धन-धान्य प्रदान करने की सामर्थ्य वाली हों ॥१ ॥

५७४४. आ घ त्वावान् त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णावियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥२ ॥

हे धैर्यशाली इन्द्रदेव ! आप कल्याणकारी बुद्धि से स्तुति करने वाले स्तोताओं को अभीष्ट पदार्थ अवश्य प्रदान करें । आप स्तोताओं को धन देने के लिए रथ के चक्रों को मिलाने वाली धुरी के समान ही सहायक हैं ॥२ ॥

५७४५. आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्। ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तोताओं द्वारा इच्छित धन उन्हें प्रदान करें। जिस प्रकार रथ की गति से उसके अक्ष (धुरे के आधार) को भी गति मिलती है, उसी प्रकार स्तुतिकर्ताओं को धन की प्राप्ति हो ॥३ ॥

[सूक्त-१२३]

[ऋषि- कुत्स। देवता-सूर्य । छन्द- त्रिष्टुप्।]

५७४६. तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥१ ॥

वे महान् कार्य ही सूर्यदेव के देवत्व के कारण हैं। जब वे सूर्यदेव अपनी हरणशील किरणों को आकाश से विलग कर केन्द्र में धारण करते हैं, तब रात्रि इस विश्व के ऊपर गहन तमिस्रा का आवरण डाल देती है ॥१ ॥

५७४७. तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥२ ॥

द्युलोक की गोद में स्थित सूर्यदेव, मित्र और वरुण देवों का वह रूप प्रकट करते हैं, जिससे वे मनुष्यों को सब ओर से देखते हैं। उनकी किरणें अनन्त विश्व में एक ओर प्रकाश और चेतना भर देती हैं, तो दूसरी ओर अन्धकार भर देती हैं ॥२ ॥

[सूर्य की किरणों में दृश्य प्रकाश के साथ-साथ अदृश्य चेतना का प्रवाह भी रहता है।]

[सूक्त-१२४]

[ऋषि- वामदेव। देवता- इन्द्र। छन्द- गायत्री, ३ पाद निचृत् गायत्री, ४-६ त्रिष्टुप्।]

५७४८. कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥१ ॥

निरन्तर प्रगतिशील हे इन्द्रदेव ! आप किन-किन तृप्तिकारक पदार्थों के भेंट करने से तथा किस तरह की पूजा- विधि से प्रसन्न होंगे ? आप किन दिव्य शक्तियों सहित हमारे सहयोगी बनेंगे ? ॥१ ॥

५७४९. कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृळ्हा चिदारुजे वसु ॥२ ॥

सत्यनिष्ठों को आनन्द प्रदान करने वालों में सोम सर्वोपरि है; क्योंकि हे इन्द्रदेव ! यह आपको दुर्धर्ष शत्रुओं के ऐश्वर्य को नष्ट करने की प्रेरणा देता है ॥२ ॥

५७५०. अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतिभिः ॥३ ॥

स्तुतियों से प्रसन्न करने वाले अपने मित्रों के रक्षक हे इन्द्रदेव ! हमारी हर प्रकार से रक्षा करने के लिए आप उच्चकोटि की तैयारी सहित प्रस्तुत हों ॥३ ॥

५७५१. इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥४ ॥

हम इन समस्त लोकों को शीघ्र ही प्राप्त करें। इन्द्रदेव और सभी देवगण हमारे लिए सुख-शान्ति की प्राप्ति में सहायक हों। इन्द्रदेव और आदित्यगण हमारे यज्ञ को सफल बनाएँ, शरीर को नीरोग बनाएँ और हमारी सन्तानों को सद्व्यवहार के लिए प्रेरित करें ॥४ ॥

५७५२. आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम्।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥५ ॥

इन्द्रदेव आदित्यों और मरुद्गणों के साथ पधारकर हमारे शरीरों को सुरक्षा प्रदान करें। जिस समय देवगण वृत्रादि असुरों का संहार करके अपने स्थान की ओर लौटे, उस समय अमर देवत्व की सुरक्षा हो सकी ॥५ ॥

५७५३. प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६ ॥

(इन्द्रदेव ने) शक्तियों सहित सूर्य को प्रकट किया, तब सबने स्वधा (वर्षा या तृप्तिदायक प्रक्रिया) को देखा। इस प्रकार देवों के हित में बल का अर्जन किया गया। (हम याजक) श्रेष्ठवीरों सहित सौ वर्षों तक हर्षित रहें ॥६ ॥

[सूक्त-१२५]

[ऋषि-सुकीर्ति। देवता- इन्द्र, ४-५ अश्विनीकुमार । छन्द- त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्।]

५७५४. अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ॥१ ॥

हे ऐश्वर्यवान् एवं शत्रुओं के पराभूतकर्ता इन्द्रदेव ! आप हमारे पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण से आने वाले शत्रुओं को दूर हटाएँ। हम आपके समीप सुखपूर्वक रह सकें ॥१ ॥

५७५५. कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार जौ की खेती करने वाले कृषक जौ को बा-बार काटते हैं, उसी प्रकार देवताओं के प्रिय आप दुष्टों का दमन करके श्रेष्ठजनों को पोषण प्रदान कर उनकी रक्षा करें।२ ॥

५७५६. नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥३ ॥

एक चक्रवाली गाड़ी कभी भी समय पर नहीं पहुँचती।युद्धकाल में उससे अन्नलाभ नहीं हो सकता।अतः हम गौ, वृषभ, अश्व, अन्न तथा बल की कामना करते हुएइन्द्रदेव की मित्रता के लिए उनका भी आवाहन करते हैं ॥

[केवल पदार्थपरक सुविधाओं के सहारे जीवन लक्ष्य पा लेने की कामना एक पहिए की गाड़ी की तरह है। पदार्थों के साथ नियामक चेतना का भी आवाहन करना चाहिए।]

५७५७. युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा। विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम्।

हे अश्विनीकुमारो ! नमुचि नामक असुर के अधिकार में स्थित श्रेष्ठ- मधुर सोमरस भली प्रकार प्राप्त करके उसका पान करते हुए, आप दोनों ने नमुचि वध में इन्द्रदेव की सहायता की ॥४ ॥

५७५८. पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! राक्षसों के संसर्ग से अशुद्ध सोम का पान कर (स्वयं को संकट में डालकर) अश्विनीकुमारों ने आपकी उसी प्रकार की रक्षा की, जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है। आपने नमुचि का वध करके जब प्रसन्नता प्रदान करने वाले सोम का पान किया, तब देवी सरस्वती भी आपके अनुकूल हुईं ॥५ ॥

५७५९. इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।

बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥६ ॥

भली प्रकार से संरक्षण प्रदान करने की सामर्थ्य से युक्त वे इन्द्रदेव हमारी सुरक्षा करें । वे सर्वज्ञ परमेश्वर हमारे शत्रुओं के संहारक हों । हममें निर्भीकता स्थापित करें, जिससे हम उत्तम बलों के स्वामी बनें ॥६ ॥

५७६०. स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥७ ॥

हम यज्ञीय पुरुष की श्रेष्ठ बुद्धि में वास करें तथा कल्याणकारी श्रेष्ठ मन से भी सम्पन्न हों । श्रेष्ठ, संरक्षक और ऐश्वर्यवान् वे इन्द्रदेव हमारे समीपस्थ और दूर छिपे हुए सभी शत्रुओं को सदा के लिए दूर करें ॥७ ॥

[सूक्त-१२६]

[ऋषि- इन्द्राणी और वृषाकपि । देवता- इन्द्र । छन्द- पंक्ति ।]

इस सूक्त में ऐन्द्र (इन्द्र के पुत्र या सहयोगी) वृषाकपि का वर्णन है । वे इन्द्रदेव को प्रिय हैं । इन्द्राणी उनसे रुष्ट हैं, तो इन्द्र और वृषाकपि उन्हें मनाते हैं । प्रत्येक मंत्र के अन्त में गति की टेक की तरह एक उक्ति आती है, विश्व में इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं । 'वृषा' का अर्थ होता है - वर्षणशील या बलशाली तथा 'कपि' का अर्थ होता है - कम्पनशील । वृषाकपि-सोमदेव की तरह दिव्याकाश, अन्तरिक्ष, भूमि एवं प्राणियों के शरीरों में सक्रिय दीखते हैं । आकाश में वे शक्तिसम्पन्न, कम्पनशील 'आयन' के रूप में सक्रिय हैं, जो इन्द्रदेव (संगठक-पदार्थ संयोजक शक्ति) को प्रिय हैं । अन्तरिक्ष में मेघरूप वे ही वर्षणशील होते हैं । पृथ्वी पर अग्नि के अन्दर यही कम्पनशील कणों की प्रतिक्रिया चलती है । शरीर में 'जीव' इन्द्रदेव के साथ, कामनाशक्ति वृषाकपि का ही रूप है । जीवन की पदार्थ प्राप्ति या विकास की कामना इन्द्रदेव के लिए उपयोगी हैं । वे विकारग्रस्त हों, तो हानि है; इसलिए इन्द्राणी उन पर क्रुद्ध होती हैं; किन्तु जीवन के यज्ञीय सन्दर्भों में ये इन्द्रदेव के प्रिय सहयोगी हैं । इन्हीं सन्दर्भों में मंत्रार्थों को देखा जाना उचित लगता है-

५७६१. वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।

यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१ ॥

इन्द्रदेव ने स्तोताओं को सोम अभिषव या अन्य कार्य के लिए प्रेरित किया था, तथापि स्तुतिकर्ताओं ने इन्द्रदेव की प्रार्थना नहीं की (अपितु वृषाकपि की प्रार्थना की) । जहाँ सोमप्रवृद्ध यज्ञ में आर्य वृषाकपि (इन्द्रदेव के पुत्र) हमारे मित्र होकर सोमपान से हर्षित हुए, वहाँ भी इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१ ॥

५७६२. परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।

नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२ ॥

(इन्द्राणी का कथन) हे इन्द्रदेव ! आप व्यथित होकर वृषाकपि के समीप दौड़ जाते हैं । आप दूसरे स्थान पर सोमपान हेतु नहीं जाते । निश्चय ही इन्द्रदेव सर्वश्रेष्ठ हैं ॥२ ॥

५७६३. किमयं त्वा वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।

यस्मा इरस्यसीदु न्व१र्यो वा पुष्टिमद् वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३ ॥

(इन्द्राणी का कथन) हे इन्द्रदेव ! इस हरित (हरे या हरणशील) मृग (भूमिगामी) वृषकपि ने आपका क्या हित किया है, जिसके कारण आप उदारता के साथ उन्हें पुष्टिकर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ? इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं ॥३ ॥

५७६४. यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।

श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥४ ॥

(इन्द्राणी का कथन) हे इन्द्रदेव ! आप जिस प्रिय वृषाकपि को सुरक्षित करते हैं, वाराह पर आक्रमण करने वाला श्वान उसका कान काट ले । इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं ॥४ ॥

५७६५. प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्य दूदुषत् ।

शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५ ॥

(इन्द्राणी का कथन) आपको तुष्ट करने वाले पदार्थों को वृषाकपि ने दूषित कर दिया । मेरी अभिलाषा है कि इसके मस्तक को काट डालूँ । इस दुष्कर्म में संलग्न (वृषाकपि) की कभी हितैषी नहीं बनूँगी । इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ और महान् हैं ॥५ ॥

[इन्द्राणी शक्ति को तुष्ट करने वाले पदार्थों को वृषाकपि (कामना प्रवाह) दूषित करते हैं, तो वे उग्र होती हैं ।]

५७६६. न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।

न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६ ॥

(इन्द्राणी का कथन) कोई दूसरी स्त्री मुझसे बढ़कर सौभाग्यशालिनी नहीं और न कोई दूसरी अतिसुखी और सुसन्तति युक्त है । मुझसे अधिक कोई भी स्त्री अपने पति को सुख देने में सक्षम भी नहीं होगी । इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥६ ॥

५७६७. उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।

भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वी व हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥७ ॥

(वृषाकपि का कथन) हे इन्द्राणी माता ! आप सभी सुखों का लाभ प्राप्त करने वाली हैं । आपके अंग, जंघा, मस्तक आदि आवश्यकतानुसार स्वरूप धारण करने या कार्य करने में सक्षम हैं । आप पिता इन्द्रदेव के लिए स्नेहसिक्त सुख-प्रदात्री हों । इन्द्रदेव ही सर्वोत्तम हैं ॥७ ॥

५७६८. किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।

किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्य मीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८ ॥

(इन्द्र का कथन) हे वीर पत्नी इन्द्राणी ! आप श्रेष्ठ भुजाओं से युक्त, सुन्दर अँगुलियों वाली, श्रेष्ठ केशवती तथा विशाल जंघाओं से युक्त हैं । आप वृषाकपि पर क्यों क्रोधित हो रही हैं ? इन्द्रदेव विश्व में सर्वोत्तम हैं ॥८ ॥

५७६९. अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।

उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९ ॥

(इन्द्राणी का कथन) यह घातक वृषाकपि मुझे पति-पुत्रादि से रहित के समान ही मानता है ; परन्तु इन्द्रपत्नी सन्तानादि से सम्पन्न हैं तथा मरुद्‌गण उसके सहायक हैं । इन्द्रदेव विश्व में सर्वोत्तम हैं ॥९ ॥

[वृषाकपि द्वारा प्रत्यक्ष रूप से इन्द्रदेव के संयोजक कार्यों में विघ्न पैदा हो जाते हैं । वृषाकपि इन्द्राणी की अभ्यर्थना करते हैं, तो भी उन्हें उनके कार्यों में अपने अधीनस्थ प्राण-प्रवाहों की उपेक्षा दिखती है ।]

५७७०. संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।

वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१० ॥

प्राचीन काल से ही नारी श्रेष्ठ यज्ञों और महोत्सवों में भाग लेती आई है । यज्ञ विधान सम्पन्न करने वाली और वीर पुत्रों की जन्म प्रदात्री होने से इन्द्रपत्नी (इन्द्राणी) की स्तुति सभी जगह होती है । इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१० ॥

५७७१. इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११ ॥

सभी स्त्रियों में इन्द्राणी को मैं सर्वाधिक सौभाग्यशालिनी मानता हूँ । दूसरी स्त्रियों के पति के समान इन्द्राणी के पति इन्द्र, वृद्धावस्था में मृत्यु को प्राप्त नहीं होते, (अपितु इन्द्र अमर हैं) इन्द्र ही वस्तुतः सर्वोत्तम हैं ॥११ ॥

५७७२. नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२ ॥

हे इन्द्राणी ! हमारे मित्र (मरुद्गण) वृषाकपि के बिना हर्षित नहीं रहते । वृषाकपि का ही अति प्रीतियुक्त द्रव्य (हव्यादि) देवों के समीप पहुँचता है, इन्द्रदेव ही सर्वोत्तम हैं ॥१२ ॥

[मरुद्गण संचरणशील हैं, उन्हें वृषाकपि मेधा या अग्निरूप में सहयोग देते हैं । हव्य एवं पर्जन्य को प्रवाहित करते हैं ।]

५७७३. वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१३ ॥

हे वृषाकपायि !(वृषाकपि की माता या पत्नी) आप धनवती, श्रेष्ठ पुत्रवती और सुन्दर पुत्रवधू वाली हैं । आपके उक्षाओं का इन्द्रदेव शीघ्र सेवन करें । आपके प्रिय और सुखप्रद हविष्यान्न का भी वे सेवन करें । इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं ॥१३ ॥

[उक्षा का अर्थ वृषभ भी होता है, जो यहाँ युक्ति संगत नहीं ।'पुष्टिदायक ओषधि' तथा 'सेचन सामर्थ्य' यहाँ समीचीन हैं]

५७७४. उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१४ ॥

(इन्द्र का कथन) मेरे लिए (शची द्वारा प्रेरित) पन्द्रह-बीस उक्षा (सेचन सामर्थ्य, इन्द्रियों तथा प्राण-उपप्राण आदि) एक साथ परिपक्व होते हैं, उनका सेवन करके मैं पुष्ट होता हूँ । मेरे दोनों पार्श्व उससे भर जाते हैं । विश्व में इन्द्रदेव ही सर्वोपरि हैं ॥१४ ॥

५७७५. वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१५ ॥

(इन्द्राणी का कथन) तीखे सींगों से युक्त वृषभ जैसे गो-समूह में गर्जनशील होकर (रँभाते हुए) विचरते हैं, वैसे आप भी हमारे साथ रमण करें । हे इन्द्र ! आपके हृदय का भावमंथन कल्याणप्रद हो ।आपके निमित्त भावना पूर्वक आकांक्षी इन्द्राणी जिस सोम का अभिषव करती है, वह भी कल्याणकारी हो ।इन्द्रदेव विश्व में सर्वोत्तम हैं ॥

मन्त्र क्र०१६ में इन्द्राणी जो बात कह रही हैं, मन्त्र क्र० १७ में इन्द्र उससे विपरीत तथ्य कह रहे हैं । यह रहस्यमय कथन है, जो प्रकृति एवं जीव-जगत् में घटित होता है । कुछ आचार्यों ने इन मन्त्रों का अर्थ रतिकर्म परक किया है, किन्तु यह शब्दार्थों के साथ खींचतान जैसा लगता है । 'कपृत्' का अर्थ 'उपस्थेन्द्रिय' भी होता है, किन्तु उसका अर्थ 'कुख्याति का कारणभूत' भी होता है । यह अनेकार्थी शब्द है । 'रम्बते'का अर्थ-शब्दायमान है, उसे रकार-लकार की एकता मानकर 'लम्बते' करते उचित नहीं लगता । इसी प्रकार रोमशः शब्द रोमयुक्त, अंकुरयुक्त एवं विकिरण युक्त के लिए प्रयुक्त होता है, उसे पुरुष जननेन्द्रिय से जोड़ना एक तरह की जबरदस्ती है । यहाँ मन्त्रों के सहज स्वाभाविक भाषा एवं भाव सम्मत अर्थ करने का प्रयास किया गया है । वैसे ये मन्त्र शोध की अपेक्षा रखते हैं-

५७७६. न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृत्।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१६ ॥

(प्राणिसंदर्भ में इन्द्राणी कहती हैं) जिसके सक्थ (भारवाहक दो अवयवों के बीच) कुख्याति प्रदायक (विकार) शब्द करते (अपनी अभिव्यक्ति करते) हैं । वे शासन करने में समर्थ नहीं होते । (वह विकार) जिसके रोमों से क्षरण का यत्न करते हैं, वह (विकारयुक्त होकर) शासन करने में समर्थ होता है । वास्तव में इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१६ ॥

५७७७. न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१७ ॥

(प्रकृति के संदर्भ में इन्द्र कहते हैं) जिसके कुरूप-विस्तार वाले (मेघादि) दो धारक (आकाश एवं पृथ्वी के बीच) अंतरिक्ष में शब्दायमान होते हैं, वही शासन करता है । जिसके विकिरणयुक्त अंग (अथवा अंकुरों) से विकार प्रकट होते हैं, वह शासन नहीं करता । इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१७ ॥

५७७८. अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत्।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! वृषाकपि दूरवर्ती, अलभ्य पदार्थ भी प्राप्त करें । खड्ग (विकारनाशक) , पाकस्थल, नये चरु और काष्ठों से परिपूर्ण यह शकट ग्रहण करें । इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं ॥१८ ॥

५७७९. अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१९ ॥

मैं (इन्द्र) यजमानों का निरीक्षण करते हुए, शत्रुओं को दूर करते हुए तथा आर्यों का अन्वेषण करते हुए यज्ञ में उपस्थित होता हूँ । सोम अभिषवणकर्ताओं और हविष्यान्न तैयार करने वालों द्वारा समर्पित किये गये सोम का सेवन करता हूँ । बुद्धिमान् यजमान की श्रेष्ठ रीति से रक्षा करता हूँ । इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१९ ॥

५७८०. धन्व च यत् कृन्तत्रं च कति स्वित् ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२० ॥

जल रहित मरुस्थल (उर्वरता रहित क्षेत्र) और काटने योग्य वन (जहाँ आवश्यकता से अधिक उत्पादन हो रहा हो) में कितना अन्तर है ?(दोनों को ठीक करना होगा) अतएव हे वृषाकपे ! आप समीप ही स्थित हमारे घर में आश्रय ग्रहण करें । इन्द्रदेव सर्वश्रेष्ठ हैं ॥२० ॥

५७८१. पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२१ ॥

हे वृषाकपे ! आप पुनः वापस आएँ । आपके निमित्त हम (इन्द्र-इन्द्राणी) सुखदायी श्रेष्ठ कर्मों को सम्पादित करते हैं ।आप निद्रा एवं स्वप्ननाशक सूर्य के समान सुगम मार्ग से हमारे घर में पुनः आएँ ।इन्द्र ही सर्वोत्तम हैं ॥
[स्वप्नों में न भटक कर कामनाएँ तेजस्वी मार्ग से चलें, तो इन्द्र के सहयोग से फलित हों ।]

५७८२. यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व१स्य पुल्वघो मृगः कमगं जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२२ ॥

हे वृषाकपि और इन्द्रदेव ! आप ऊपर से घूमकर हमारे घर में प्रविष्ट हों । बहुभोक्ता और लोगों के लिए आनन्ददायक विचरणशील आप कहाँ गये थे ? इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥२२ ॥

५७८३. पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२३ ॥

मनु की पुत्री पर्शु (स्पर्श) नाम वाली है, जिनने बीस पुत्रों (दस इन्द्रियों, पाँच तन्मात्राओं और पंच प्राणों) को एक साथ जन्म दिया । जिन पर्शु का उदर विशाल हुआ था, उनका सदैव कल्याण हो । इन्द्र ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥२३ ॥

[सूक्त-१२७]

बीसवें काण्ड के सूक्त क्र० १२७ से १३६ तक के सूक्तों को 'कुन्ताप' सूक्त कहा गया है । कुछ आचार्य 'कुन्ताप सूक्तों' को खिल(प्रक्षिप्त) मानते हैं । इन पर सायण भाष्य भी उपलब्ध नहीं है; किन्तु सूत्र ग्रन्थों और ब्राह्मण ग्रन्थों में इनका उल्लेख मिलता है । विद्वानों ने इन्हें मूल संहिता में मान्यता दे दी है तथा सूक्तों एवं मंत्रों की गणना में ये शामिल हैं ।

आहवनीय यज्ञों के १२ दिवसीय अनुष्ठानों में छठे दिन इनके पाठ का विधान मिलता है । इस आधार पर इन्हें 'पृष्ठ्य षडह' सूक्त भी कहा जाता है । कुन्ताप का अर्थ 'कुयान् तप्यते' (अर्थात् कुत्सित-पापों को तपाकर भस्म कर देने वाला) होता है । अर्थ की दृष्टि से इन्हें दुरूह माना जाता है, फिर भी पापों-अनिष्टों के निवारण के भाव से इनके पाठ का महत्त्व कहा गया है । 'कुन्ताप' के अंतर्गत विभिन्न मंत्र वर्गों के अनेक नाम कहे गये हैं । उनका तथा उनसे सम्बन्धित कथानकों के संकेत सहित मन्त्रार्थ करने का प्रयास किया गया है ।

२०/१२७/१-३ मंत्रों को 'नाराशंस्य' कहा गया है, जिसका अर्थ होता है नर- नेतृत्व करने वाले की प्रशंसा अथवा प्रजा में वाणी की स्थापना-

५७८४. इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥१ ।

हे जनो-लोगो ! नरों (इन्द्रादि देवों) की प्रशंसा में स्तवन किये जाते हैं, उन्हें सुनो । हे कौरम (कर्मठ-नायक) ! हम ६०९० रुशमों (वीरों) को पाते या नियुक्त करते हैं ॥१ ॥

[भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा ने ६०९० वीरों से चक्रव्यूह बनाये जाने का उल्लेख किया है । अन्य संदर्भों में यह अंक शोध की अपेक्षा रखता है ।]

५७८५. उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश ।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः ॥२ ॥

बीस ऊँट अपनी वधुओं (शक्तियों) सहित उस (नर) के रथ को खींचते हैं । उस रथ के सिर द्युलोक को स्पर्श करने की इच्छा के साथ चलते हैं ॥२ ॥

५७८६. एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः ।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥३ ॥

इस (नर श्रेष्ठ ने) मामह ऋषि को सौ स्वर्ण मुद्राओं, दस हारों, तीन सौ अश्वों तथा दस हजार गौओं का दान दिया ॥३ ॥

मंत्र क्र० १२६/४-६ रेभ के लिए हैं । रेभ का अर्थ सूत्र ग्रन्थों के अनुसार शब्द या अग्नि माना गया है । मंत्रों में 'शब्द' का भाव ही अधिक संगत बैठता है-

५७८७. वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः ।
नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥४ ॥

हे स्तोता (रेभ) ! बोलो-पाठ करो । (पाठ के समय) ओष्ठ और जिह्वा जल्दी-जल्दी चलते हैं, जैसे पके फल वाले वृक्ष पर पक्षी (की चोंच) और कैंचियों के फल चलते हैं ॥४ ॥

५७८८. प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते । अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ॥५ ॥

स्तोता शक्तिसम्पन्न वृषभों के समान गतिमान् हो रहे हैं, इनके गृह, सुसन्तति एवं गवादि पशुओं से युक्त हैं ॥

५७८९. प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम् । देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् ॥

हे स्तोतागण ! आप गोधन उपलब्ध करने वाली और ऐश्वर्य सम्पदा की प्राप्तिभूत प्रेरक बुद्धि को धारण करें । जिस प्रकार बाण के संधानकर्त्ता मनुष्य का संरक्षण करते हैं, उसी प्रकार वाणी आपको संरक्षण प्रदान करे । देवताओं के समीप आप इन स्तोत्रों का गायन करें ॥६ ॥

मंत्र क्र० १२७/७-१० को परिक्षित्य कहा गया है । परीक्षित को कसौटी पर खरे उतरने वाले शासक, अग्नि अथवा संवत्सर के रूप में लिया जाता है-

५७९०. राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति ।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥७ ॥

सर्वहितकारी, सभी पर शासन करने वाले एवं भली प्रकार परीक्षित राजा की श्रेष्ठ स्तुतियों का श्रवण करें; क्योंकि मनुष्यों में श्रेष्ठ होने के कारण राजा देवतुल्य होता है ॥७ ॥

५७९१. परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन् ।
कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥८ ॥

कौरव (कर्मठ) पुत्र गृह निर्माण करते हुए अपनी पत्नी से कहते हैं कि शोभन राज सिंहासन पर आसीन होकर परीक्षित राजा (अथवा अग्नि) ने हमारा कल्याण किया ॥८ ॥

५७९२. कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् ।
जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥९ ॥

परीक्षित (विश्वस्त राजा अथवा यज्ञाग्नि) राष्ट्र (क्षेत्र या प्रकाश) में स्त्री पति से पूछती है कि दही, मट्ठा या रस आदि में आपके लिए कौन सी वस्तु प्रस्तुत की जाए ? ॥९ ॥

[परीक्षित के प्रभाव से वांछित पदार्थों का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता है, यह भाव इस मंत्र से प्रकट होता है ।]

५७९३. अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् ।
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥१० ॥

जिस प्रकार पक्व जौ उदररूपी स्थल में जाता है, उसी प्रकार परीक्षित के राज्य में सभी प्राणी कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥१० ॥

मंत्र क्र० १२७/११-१४ को कारव्य नाम दिया गया है । कारव्य का अर्थ होता है , देवों या सत्पुरुषों द्वारा किये जाने वाले कल्याणकारी कार्य-

५७९४. इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।
ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः ॥११ ॥

इन्द्रदेव ने स्तोता को प्रेरित किया कि वे उठ खड़े हों, जन - जागरण हेतु समाज में विचरें, (अनीति के प्रति) उग्र स्वभाव वाले मुझ इन्द्र की स्तुति करें । सभी शत्रु तुम्हारे समीप आत्मसमर्पण करेंगे ॥११ ॥

५७९५. इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः । इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ।

यहाँ मनुष्य, सन्तति और अश्व प्रचुर संख्या में उत्पन्न हों, गौएँ अपने गोवंश को बढ़ाएँ । हजारों प्रकार के अनुदानों के दाता पूषादेव यहाँ प्रतिष्ठित हैं ॥१२ ॥

५७९६. नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोप रीरिषत् ।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! गौएँ यहाँ हानिरहित हों, गोपालक भी हानिरहित हों, शत्रु और चोर भी इनके स्वामी न बनें ॥१३ ।

५७९७. उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपको कल्याणकारी वाणी से हर्षित करते हैं, हम आपको सूक्त द्वारा भी हर्षित करते हैं । आप हमारे स्तोत्रों का (अन्तरिक्ष से) श्रवण करें, हम कभी विनष्ट न हों ॥१४ ॥

[सूक्त-१२८]

मंत्र क्र० १ से ५ तक के मंत्र 'दिशां क्लृप्तयः' कहे जाते हैं । ये नीतिपरक दिशा-निर्देश करने वाले मंत्र हैं-

५७९८. यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः ।
सूर्यं चामू रिशादसस्तद् देवाः प्रागकल्पयन् ॥१ ॥

जो सभासद हैं, जो विदथ (विद्वान् सभा) के सदस्य हैं, जो सोम निष्पादक पुरुष हैं, उन्हें तथा सूर्य को देवों ने अग्रगामी बनाया है ॥१ ॥

५७९९. यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखायं दुधूर्षति । ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ।

जो बहिन के साथ दुर्व्यवहार करते , मित्र को हानि पहुँचाते और ज्येष्ठ होने पर दुष्ट स्वभाव वाले होते हैं, ऐसे मनुष्य पतित कहलाते हैं ॥२ ॥

८००. यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः ।
तद् विप्रो अब्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः ॥३ ॥

जिस भद्रपुरुष का पुत्र धर्षणशील (पराक्रमी) होता है, ऐसा विप्र अभीष्ट वाणी प्रयुक्त करने में सक्षम होता है, ऐसा गन्धर्व ने कहा है ॥३ ॥

५८०१. यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः । धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ।

जो वणिक् स्वयं उपभोग करने के साथ देवों के निमित्त हविष्यान्न देने की भावना से रहित होता है । वह समस्त धीर पुरुषों में निम्नकोटि का होता है, ऐसा हमने सुना है ॥४ ॥

५८०२.ये च देवा अयजन्ताथो ये च परादद्‌िः । सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ॥

जो स्तोतागण देवों का यजन करते हैं और दूसरों को दान देते हैं, वे सूर्य के समान स्वर्गलोक में जाते हैं और वे ऐश्वर्यवान् (अथवा इन्द्र) की तरह शोभा पाते हैं ॥५ ॥

मंत्र क्र० ६ से ११ 'जनकल्पाः' जनता का वर्गीकरण करने वाले कहे जाते हैं, ये भी नीतिक दिशापरक मंत्र हैं-

५८०३. योनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणि वो अहिरण्यवः ।
अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥६ ॥

अञ्जनरहित आँख, उबटनरहित शरीर, रत्न एवं स्वर्णरहित आभूषण तथा ब्रह्मज्ञानरहित ब्राह्मणपुत्र, ये सब एक जैसे (दोषपूर्ण) होते हैं ॥६ ॥

५८०४. य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः ।
सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥७ ॥

अञ्जनयुक्त आँख, उबटनयुक्त शरीर, श्रेष्ठ रत्न और सुन्दर सोने के आभूषण तथा ब्रह्म ज्ञान सम्पन्न विप्र पुत्र, ये सभी कल्पों में समान (श्रेष्ठ) माने गये हैं ॥७ ॥

५८०५. अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः ।
अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥८ ॥

जो तालाब पेयजल से रहित हैं, जो धनवान् होते हुए दानभाव से रहित हैं तथा रमणीय होने पर भी जो कन्याएँ गृहस्थ धर्म के आयोग्य हैं, वे सभी कल्पों में समान (दोषपूर्ण) माने जाते हैं ॥८ ॥

५८०६. सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः ।
सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥९ ॥

तालाबों का पेयजल से परिपूर्ण होना, धनवान् होने पर श्रेष्ठ दानकर्त्ता होना तथा सुन्दर कन्या होने के साथ गृहस्थ धर्म के निर्वाह योग्य होना, ये बातें सभी कल्पों में समान रूप से (श्रेष्ठ) मानी जाती हैं ॥९ ॥

५८०७.परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः । अनाशुरश्वायामी तोता कल्पेषु संमिता ।

महारानी का परित्याग करना, स्वस्थ होने पर संग्राम क्षेत्र में न जाना, तीव्रगति से रहित घोड़ा अथवा चलने वाला घोड़ा अथवा न चलने वाला घोड़ा, ये सभी बातें कल्पों में समान (दोषपूर्ण) मान्य हैं ॥१० ॥

५८०८. वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः । श्वाशुरश्वायामी तोता कल्पेषु संमिता ।

प्रिय राजमहिषी होना, स्वस्थ होने पर युद्ध क्षेत्र में गमन और श्रेष्ठ गतिशील घोड़े, ये बातें सभी कल्पों में एक सी (श्रेष्ठ) मान्य होती हैं ॥११ ॥

मन्त्र क्र० १२ से १६ को 'इन्द्रगाथा' नाम दिया गया है। इसमें इन्द्र की स्तुति के साथ शत्रुओं के पराभव का भाव है-

५८०९. यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः ।
विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यक्षाय कल्पते ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! दाशराज के युद्ध में प्रवेश करके आपने मनुष्यों को मथ डाला । (इस पराक्रम से) आप सभी के लिए सम्माननीय हुए । आप यक्षों के साथ प्रकट हुए थे ॥१२ ॥

[पौराणिक सन्दर्भ में दाशराज के युद्ध में इन्द्र ने पराक्रम करके प्रतिष्ठा पाई थी। आध्यात्मिक सन्दर्भ में दश इन्द्रियाँ अपने विषयों के फन्दे में फँस जाती हैं। इन्द्र (नियामक सत्ता) द्वारा उसमें प्रवेश करके उन्हें अपने वश में कर लिया जाता है, तब उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती है।]

५८१०. त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः । त्वं रौहिणं व्या स्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ।

(हे इन्द्र !) आप विजयशील हैं । आपने मनुष्यों के लिए सूर्य को नम्र (नीचे की ओर संचरित) किया । आपने ही ऊपर चढ़ते हुए वृत्र के सिर को काट गिराया ॥१३ ॥

५८११. यः पर्वतान् व्यदधाद् यो अपो व्यगाहथाः ।
इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते ॥१४ ॥

जिन्होंने पर्वत शृंखलाओं को स्थापित किया है और जल को प्रवाहित किया है । जो महान् इन्द्रदेव वृत्रासुर के संहारक हैं, ऐसे हे इन्द्रदेव ! आपके लिए नमस्कार है ॥१४ ॥

५८१२. पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैः श्रवसमब्रुवन् । स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥

अग्रगामी उच्चैःश्रवा घोड़ों से (याजकों ने) कहा- हे अश्व !आप जीतने के लिए मालाधारी इन्द्र को यहाँ लाएँ।
[उच्चैःश्रवा घोड़ा समुद्र मंथन से निकला था, जो इन्द्र को सौंपा गया था । यह घोड़ों की एक नस्ल भी होती है, जो ऊँचे कान वाले और तीव्रगामी होते हैं ।]

५८१३. ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते ॥१६ ॥

दक्षिण (अनुकूलता से) योजित अजश्रवा अश्वो ! प्रथम नमनीय इन्द्र को धारण करके आपकी शुभ्रता और महान् (श्रेष्ठ) हो जाती है ॥१६ ॥

[सूक्त-१२९]

सूक्त क्र० १२९ से १३२ तक के सूक्त 'एतश प्रलाप' के नाम से जाने जाते हैं । ऐतरेय ब्राह्मण (३०/७) में इस संदर्भ की कथा दी गयी है । एतश नामक ऋषि ने 'अग्नेरायुः' नामक मन्त्र समूह का साक्षात्कार किया तथा अपने पुत्रों एवं शिष्यों को समझाया कि तुम्हारी समझ में न आये, तो भी मेरे कथन को अनर्गल मत कहना; किन्तु वे २७ पदसमूह कह पाये, तब तक उन्हीं के पुत्र (अभ्याग्नि) ने उसे अनर्गल कहकर रोक दिया । एतश ऋषि ने पुत्र को बहिष्कृत किया तथा अपनी शक्ति व्यक्त की । एतश प्रलाप के पाठ को यज्ञों में बहुत महत्त्व देकर उसका पाठ करने की बात भी कही गयी है । उसे पूज्य और छन्दों में वेद का रस भी कहा है । इसका सम्बन्ध अर्थ की अपेक्षा आस्था के साथ अधिक जोड़ा जाता है । एतश प्रलाप तथा कुन्ताप सूक्त के अन्य (१२९ से १३६) सभी सूक्तों में पाठभेद भी मिलता है । उसकी समीक्षा होशियारपुर के विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधसंस्थान द्वारा सम्पादित अथर्ववेद संहिता में संदर्भों सहित दी गयी है । इस अनुवाद में संहिताओं में मान्यता प्राप्त पाठ को ही लिया गया है-

५८१४. एता अश्वा आ प्लवन्ते ॥१ ॥ **५८१५. प्रतीपं प्राति सुत्वनम् ॥२ ॥**

यह अश्वाएँ (शक्तियाँ या प्रवृत्तियाँ) उमड़ रही हैं । प्रतिकूल (आत्मिक अनुशासन के विपरीत नश्वर) ऐश्वर्य प्राप्त कर रही हैं ॥१-२ ॥

५८१६. तासामेका हरिक्निका ॥३ ॥ **५८१७. हरिक्निके किमिच्छसि ॥४ ॥**

उन (शक्तियों-प्रवृत्तियों) में एक हरि उन्मुख है ।हे हरिक्निके (चित्‌शक्ति) !तुम क्या चाहती हो ? ॥३-४ ॥

५८१८. साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥५ ॥ **५८१९. क्वाहतं परास्यः ॥६ ॥**

(हरिक्निका की ओर से कथन) मैं साधु (सज्जन) पुत्र हिरण्य (पदार्थ के पूर्व की स्थिति में तेजस् तत्त्व) को चाहती हूँ । (उससे पुनः प्रश्न) उसे तुमने कहाँ छोड़ा ? ॥५-६ ॥
[सृष्टि सृजन में चेतना से पदार्थ बनाने के क्रम में पदार्थ से पूर्व तेजोमय द्रव्य को हिरण्य कहा गया है । चित् शक्ति उसी के द्वारा विभिन्न सृजन कार्य करती है ।]

५८२०. यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः ॥७ ॥ **५८२१. परि त्रयः ॥८ ॥**

जहाँ वे तीन छायाकार वृक्ष (तीन गुण या तीन संरक्षक माता-पिता एवं गुरु) हैं, उन्हीं तीन के आस-पास उन्हें छोड़ा है ॥७-८ ॥
[हिरण्य तत्त्व को जहाँ पदार्थ रूप में आकार दिया जा सकता है, चित्‌शक्ति उसे वहीं पहुँचाती है ।]

५८२२. पृदाकवः ॥९ ॥ **५८२३. शृङ्गं धमन्त आसते ॥१० ॥**

पृदाकु (अजगर या विशाल सर्प अथवा त्रिदोष या वासना, तृष्णा, अहंतारूप दोष) शृंगी फूँकते विजय वाद्य बजाते हुए स्थित हैं ॥९-१० ॥

५८२४. अयन्महा ते अर्वाहः ॥११ ॥ **५८२५. स इच्छकं सघाघते ॥१२ ॥**

यह तुम्हारा वहन करने वाला (अश्व) आ गया । यह इच्छा करने वालों की सहायता करता है ॥११-१२ ॥

५८२६. सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति॥१३ ॥ **५८२७. पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥१४ ॥**

गौ (वाणी) की शक्ति गौओं (इन्द्रियों) की गति की मदद करती है ।हे पुरुष !तुम कौन सी गति चाहते हो ?

[वाणी की प्रेरणाएँ तो सहज ही प्राप्त होती रहती हैं, मनुष्य की कामना के अनुरूप प्रेरणाएँ वह प्राप्त कर पाता है ।]

५८२८. पल्प बद्ध वयो इति ॥१५ ॥ **५८२९. बद्ध वो अघा इति ॥१६ ॥**

सीमा में बद्ध आयु है । बँधा होना तुम्हारे लिए पाप है ॥१५-१६ ॥

५८३०. अजागार केविका ॥१७ ॥ **५८३१. अश्वस्य वारो गोशपद्यके ॥१८ ॥**

अजा (प्रकृति) के इस गृह में (इन्द्रियाँ) सेविकाएँ हैं । तुम अश्व (शक्तियों) के सवार (नियन्त्रक) हो । गौओं (इन्द्रियों) के खुरों (चरणों) में पड़े हो ? ॥१७-१८ ॥

५८३२. श्येनीपती सा ॥१९ ॥ **५८३३. अनामयोपजिह्विका ॥२० ॥**

वह (बुद्धि-प्रकृति) गतिशील शक्तियों (प्रवृत्तियों) की स्वामिनी है ।आरोग्य को उपजीविका देने वाली है ।

[सूक्त-१३०]

५८३४. को अर्य बहुलिमा इषूनि ॥१ ॥

कौन आर्य (श्रेष्ठ पुरुष) बहुत प्रकार के बाण रखता है ? ॥१ ॥

[संसार एक समर है, इसमें विजय पाने के लिए विचारों एवं शम, दम, नियमादि के बाणों का प्रयोग करना पड़ता है । ऋषि संभवतः उसी संदर्भ में प्रश्न कर रहे हैं ।]

५८३५. को असिद्याः पयः ॥२ ॥

५८३६. को अर्जुन्याः पयः ॥३ ॥ **५८३७. कः कार्ष्ण्याः पयः ॥४ ॥**

असिद् (असित् अर्थात् सत् से भिन्न रजोगुणी प्रकृति) का पय (पोषक तत्त्व) क्या है ? अर्जुनी (सत् प्रकृति) का पय क्या है ? तथा कार्ष्णी (तमोगुणी प्रकृति) का पय क्या है ? ॥२-४ ॥

[इन तीनों प्रकृतियों के पय को जो जान ले, वह इन तीनों का लाभ उठा सकता है । इस त्रिगुणात्मक संसार में उनसे बचना कठिन है, उनके सदुपयोग का तंत्र बिठाना ही उचित है ।]

५८३८. एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥५ ॥ **५८३९. कुहाकं पक्वकं पृच्छ ॥६ ॥**

यह (जानते नहीं हो तो) पूछो । किसी चमत्कारी व्यक्ति से पूछो । किसी अद्‌भुत कौशलयुक्त तथा परिपक्व व्यक्ति से पूछो ॥५-६ ॥

[भाव यह है कि केवल शाब्दिक जानकारी देने वाले से काम नहीं चलता, ऐसे गूढ़ विषय उनसे पूछना चाहिए, जिनका अनुभव परिपक्व हो ।]

५८४०. यवानो यतिस्वभिः कुभिः ॥७ ॥ **५८४१. अकुप्यन्तः कुपायकुः ॥८ ॥**

यत्न करने वालों तथा धन-धान्य युक्त भूमि से (जानो),(प्रकृतिका मर्म न जानने वालों से) भूरक्षक कुपित हुए ।

[जो प्रकृति का मर्म नहीं जानते , वे प्रकृति का शोषण करके संतुलन बिगाड़ते हैं । इसलिए पृथ्वी के रक्षक देवों के कोप-भाजन बनते हैं ।]

५८४२. आमणको मणत्सकः ॥९ ॥ ५८४३. देव त्वप्रतिसूर्य ॥१० ॥

हे आमणक ! हे मणत्सक देव ! आप सूर्य के प्रतिरूप हैं ॥९-१० ॥

५८४४. एनश्चिपङ्क्तिका हविः ॥११ ॥ ५८४५. प्रदुद्रुदो मघाप्रति ॥१२ ॥

यह पापनाशक हवि है । (यह) ऐश्वर्य के प्रति गति देने वाली हो ॥११-१२ ॥

५८४६. शृङ्ग उत्पन्न ॥१३ ॥ ५८४७. मा त्वाभि सखा नो विदन् ॥१४ ॥

हे प्रकट हुए शृंग (सींग अर्थात् पीड़ादायक-हिंसक उपकरण) ! हमारे मित्रों का तुमसे पाला न पड़े ॥१३-१४॥

५८४८. वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥१५ ॥ ५८४९. इरावेदुमयं दत ॥१६ ॥

वशा (प्रकृति) के पुत्र को लाते हैं । ज्ञानमयी इरा (वाणी या भूमि) इसे दो ॥१५-१६ ॥

५८५०. अथो इयन्नियन्निति ॥१७ ॥ ५८५१. अथो इयन्निति ॥१८ ॥

अब (वह) चलने वाला हो , चलने वाला ही हो, अब चलने वाला ही हो ॥१७-१८ ॥

५८५२. अथो श्वा अस्थिरो भवन् ॥१९ ॥ ५८५३. उयं यकांशलोकका ॥२० ॥

अब (वह) श्वान (जैसे स्वभाव वाला) अस्थिर होकर निश्चय ही कष्टप्रद लोक वाला हो ॥१९-२० ॥

[सूक्त-१३१]

५८५४. आमिनोनिति भद्यते ॥१ ॥

५८५५. तस्य अनु निभञ्जनम् ॥२ ॥ ५८५६. वरुणो याति वस्वभिः ॥३ ॥

वह (परमतत्त्व) विभक्त हुआ ऐसा कहा गया है । उसका पुनः (सतत) विभाजन हुआ । वरुण (वरणशील देव) धन (सम्पत्तियों) के साथ चलते (गतिशील होते) हैं ॥१-२-३ ॥

[इन मन्त्रों में सृष्टि प्रारम्भ के समय हुए महा विस्फोट (बिग-बैंग) की प्रक्रिया व्यक्त की गयी प्रतीत होती है । उस परमात्म तत्त्व का विभाजन हुआ तथा यह विभाजन होता चला गया । तब वरुण (वरणशील) विभिन्न उपकरणों के संयोग से विभिन्न पदार्थों के रूप में सम्पत्ति बनाते हुए गतिशील हुए ।]

५८५७. शतं वा भारती शवः ॥४ ॥ ५८५८. शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः । शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ॥५ ॥

(इस प्रक्रिया में) सौ (सैकड़ों) भारती (विद्याओं) के बल (प्रवृत्त) हैं । (उस प्रक्रिया से) हिरण्य तेजस् तत्त्व के सौ (सैकड़ों) अश्व, सैकड़ों रथ, सैकड़ों गद्दे तथा सैकड़ों हिरण्ययुक्त हार (प्रकट होते) हैं ॥४-५ ॥

[सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया में सैकड़ों विद्याएँ प्रयुक्त हुई हैं । परमात्म तत्त्व के विभाजन से हिरण्य तत्त्व की उत्पत्ति कही गयी है, इसीलिए उसे हिरण्यगर्भ कहा गया है । हिरण्य चेतन और पदार्थ के बीच के तेजस् तत्त्व को कहा गया है । उस हिरण्य से ही अश्व (शक्तिकण) रथ (संवाहक कण) , गद्दे (गतिशील कणों के आघातों को सँभालने वाले बीच के नरम पदार्थ) तथा हिरण्य के हार (उपकरणों की लम्बी शृंखला वाले पदार्थ) बने ।]

५८५९. अहल कुश वर्त्तक ॥६ ॥ ५८६०. शफेन इव ओहते ॥७ ॥

वह (परमतत्त्व) बिना हल के ही कुश का वर्तन (प्रयोग) करने वाला है । खुर की तरह वह (अनायास) ही खोदता है ॥६-७ ॥

['कुश के साथ चलता है' यह वाक्य अनेकार्थी है। कुश-दर्भ की उत्पत्ति या उसे नष्ट करने के लिए वह परमात्म सत्ता हल का प्रयोग नहीं करती। पशु चलता है तो खुर के दबाव से भूमि खुदती या तृण उखड़ जाते हैं, इसी प्रकार उस देव की गतिशीलता के साथ वह कार्य सहज ही होते चलते हैं।]

५८६१. आय वनेनती जनी ॥८॥

५८६२. वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ॥९॥ **५८६३. इदं मह्यं मदूरिति ॥१०॥**

(हे परमसत्ता !) आप (बच्चों के लिए) झुकने वाली माता की तरह आएँ। निष्ठावान् (दायित्व को देखकर) रुकते नहीं। यह (ऊपर लिखे अनुसार किया जाना) हमारे लिए आनन्ददायक है ॥८-९-१०॥

५८६४. ते वृक्षाः सह तिष्ठति ॥११॥ ५८६५. पाक बलिः ॥१२॥ ५८६६. शक बलिः ॥

(वे) वृक्षों (पेड़ों अथवा रक्षण या वरण करने वालों) के पास स्थित रहते हैं; (कौन ?) परिपक्व बलि (भोज्य पदार्थ) एवं समर्थ (शक्तियुक्त) बलि ॥११-१२-१३॥

[सूक्ष्म रूप में पोषक कण प्रकृति में सतत प्रवाहित हैं। वृक्ष उन्हें धारण करके परिपक्व करते हैं; तब वे प्राणियों के लिए उपयोगी बनते हैं। परिपक्व- शक्तियुक्त भोज्यपदार्थ उसी को लाभ पहुँचाते हैं, जो उनका रक्षण -वरण (पालन) कर सकें]

५८६७. अश्वत्थ खदिरो धवः ॥१४॥ ५८६८. अरदुपरम ॥१५॥ ५८६९. शयो हत इव ॥१६॥

अश्वत्थ (अश्व-इन्द्रियों पर आरूढ़ जो है वह) स्थिर दृढ़ स्वामी होता है। जो शौर्यहीन है, वह शयन (नींद) की स्थिति में मारे जाने वाले की तरह (दुर्गति पाता) है ॥१४-१५-१६॥

५८७०. व्याप पूरुषः ॥१७॥ **५८७१. अदूहमित्यां पूषकम् ॥१८॥**

(विश्व में) व्याप्त पुरुष (परमात्मा) बिना दुहे ही पोषण प्रदानकर्ता है ॥१७-१८॥

[प्रकृति भी प्राणियों के प्रति स्नेह के कारण दिव्य पय उत्पन्न करती है, किन्तु उसे दुहना पड़ता है। परम पुरुष बिना दुहे-अनायास ही पोषण देते हैं।]

५८७२. अत्यर्धर्च परस्वतः ॥१९॥

अति स्तुत्य एवं पालक (उस परमात्मा) का अर्चन-पूजन करो ॥१९॥

५८७३. दौव हस्तिनो दृती ॥२०॥

हाथी के दो दृति (चर्म या विदारण करने वाले दो दाँत) हैं ॥२०॥

[सूक्त-१३२]

५८७४. आदलाबुकमेककम् ॥१॥ **५८७५. अलाबुकं निखातकम् ॥२॥**

५८७६. कर्करिको निखातकः ॥३॥ **५८७७. तद् वात उन्मथायति ॥४॥**

(यह) अलाबुक (न डूबने वाले पोले तुम्बे की तरह) एक ही है। यह एक निखात (खोदे गये गड्ढे) की तरह है। क्रियाशील (परमात्मा उस गर्त का) खोदने वाला है। उस (तुम्बे) को वात (वायु या प्राण) हिलाता- डुलाता है ॥

[अलाबुक सम्बोधन इस पोले विश्व, ब्रह्माण्ड, जीव कोश, जीवात्मा के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।]

५८७८. कुलायं कृणवादिति ॥५॥ **५८७९. उग्रं वनिषदाततम् ॥६॥**

५८८०. न वनिषदनाततम् ॥७॥ **५८८१. क एषां कर्करी लिखत् ॥८॥**

(वह जीव या ब्रह्म) अपना स्थान गढ़ लेता है। वह उग्र (तेजोयुक्त) और विस्तृत दिखता है। जो विस्तृत नहीं हुआ, वह नहीं दिखाई देता ॥५-८॥

५८८२. क एषां दुन्दुभिं हनत् ॥९ ॥ ५८८३. यदीयं हनत् कथं हनत् ॥१० ॥

किसने इस कर्करी (नीचे छिद्र वाले जलपात्र अर्थात् बादल) की रचना की ? कौन इस नगाड़े को बजाता (मेघ गर्जन करता) है ॥९-१० ॥

५८८४. देवी हनत् कुहनत् ॥११ ॥ ५८८५. पर्यागारं पुनः पुनः ॥१२ ॥

देवी (दिव्य चेतना उस नगाड़े को) बजाती है, (तो) कहाँ बजाती है ? सभी आवासों (स्थानों) के चारों ओर बार-बार बजाती है ॥११-१२ ॥

५८८६. त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥१३ ॥ ५८८७. हिरण्यं इत्येके अब्रवीत् ॥१४ ॥

उष्ट्र के तीन नाम हैं । इनमें से एक नाम हिरण्य कहा गया है ।

[कोष ग्रन्थों में उष्ट्र के अर्थ-वाहक रथ, बली तथा दीर्घगति (तीव्र गतिवाला) (कहे)बताये गये हैं । जो सूक्ष्म कणों (सब एटामिक पार्टिकल्स) के रूप में ब्रह्माण्ड में पदार्थ प्रवाहित है, उसका रथ-संवाहक (कैरियर) हिरण्य (तेजस्) ही है । उसके दूसरे दो नाम विचारणीय हैं ।]

५८८८. द्वौ वा ये शिशवः ॥१५ ॥ ५८८९. नीलशिखण्डवाहनः ॥१६ ॥

दो ही ये शिशु हैं, नील शिखण्ड (नीली शिखा वाला मोर या अग्नि) उनका वाहन है ॥१५-१६ ॥

[सूक्त-१३३]

इस सूक्त के मन्त्रों को प्रवल्हिका-पहेलियाँ कहा जाता है । प्रत्येक मन्त्र में एक स्थायी पद (टेक) है, जिसका अर्थ है "हे कुमारि ! यह सब ऐसा नहीं है, जैसा तुम मानती हो" । यह कुमारी मनुष्य की अयुक्त (परम तत्त्व से जो जुड़ नहीं पायी हो, ऐसी) बुद्धि हो सकती है । वह जैसा समझती है, वस्तुतः यह (परम पुरुष) वैसा नहीं है-

५८९०. विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः । न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे।

फैली हुई दो किरणों को यह पुरुष पीसता रहता है । हे कुमारि ! जैसा तुम मानती हो, वैसा यह नहीं है ॥१ ॥

[पदार्थ परक और चेतना परक दो प्रकार की किरणें निःसृत हो रही हैं । यह पुरुष उन्हें पीसकर, मिलाकर सृष्टि रचता है ।]

५८९१. मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते । न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥२।

तुम्हारी माता से (यह) दोनों किरणें किसी पुरुष के बिना ही निवृत्त-निःसृत हुई हैं । हे कुमारि ! जैसा तुम मानती हो, वैसा यह नहीं है ॥२ ॥

[मंत्र पाठ भेद में इसका उत्तर 'कोशबिल' माना जाता है । इसका अर्थ होता है कि बिल (गुप्त स्थान) में (रखा हुआ) कोश । किरणों का निस्सरण किसी कोश में रखे धन की तरह होता है ।]

५८९२.निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे । न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे।

हे मध्यमे (जड़ एवं चेतन को संयुक्त करने वाली सत्ता !) आप दोनों कर्णों (छोरों) को अपने वश में करके उन्हें नियोजित कर देती हैं । हे कुमारि ! जैसा तुम मानती हो, वैसा यह नहीं है ॥३ ॥

[यह क्रिया कैसे होती है ? इसका उत्तर दो रस्सियों में गाँठ लगाने की प्रक्रिया जैसा 'रज्जुनि ग्रन्थेर्दानम्' कहा गया है ।]

५८९३. उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि ।

न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥४ ॥

(यह प्रकृति) खड़े हुए या सोये(लेटे) हुए (सभी) को ढककर स्थित है । हे कुमारि ! ... नहीं है ॥४ ॥

[इस पहेली के उत्तर में जूते में पाँव 'उपानहि पादम्' की उपमा दी गयी है । यह पुरुष खड़ा है- उसका पैर जूते में लेटा है । 'पद्भ्यां भूमिः' के अनुसार यह विश्व उस विराट् पुरुष के पैर रूप में ही है । प्रकृति उसे जूते की तरह ढके है । उसे (पुरुष को) पहचानने के लिए प्रकृति के अन्दर झाँकना पड़ता है ।]

५८९४. श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥५ ॥

स्नेहयुक्त (यह प्रकृति) स्नेह करने वालों से अपने स्नेह को ढँक कर रखती है । हे कुमारि ! जैसा तुम मानती हो, वैसा यह नहीं है ॥५ ॥

५८९५. अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥६ ॥

उस तैलीय पदार्थ की तरह जो नीचे उतर कर लोमराशि के ह्रदय में समा जाता है । हे कुमारि ! जैसा तुम मानती हो, वैसा यह नहीं है ॥६ ॥

[सूक्त-१३४]

इस सूक्त के मंत्रों को 'प्रतिगर' अथवा आजिज्ञासेन्या: कहा गया है । हम मंत्र में 'यहाँ इस प्रकार' कहकर कुछ व्यवस्थाएँ बतलायी गई हैं । किस प्रकार यह जानने की जिज्ञासा उभरती है-

५८९६. इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-अरालागुदभर्त्सथ ॥१ ॥

यहाँ (संसार में) इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण (दिशाओं में-सभी ओर) द्वेष की भर्त्सना करने वाला (आदिदेव) स्थित है ॥१ ॥

५८९७. इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-वत्सा: पुरुषन्त आसते ॥२ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में बच्चे पुरुषत्व के लिए स्थित हैं ॥२ ॥

५८९८. इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-स्थालीपाको वि लीयते ॥३ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में स्थालीपाक (थाली में स्थित पके पदार्थ) विलीन हो जाते हैं ।

५८९९. इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-स वै पृथु लीयते ॥४ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में वह (पके पदार्थ) बड़ी मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं ॥४ ॥

५९००. इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-आष्टे लाहणि लीशाथी ॥५ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में प्रेरकशक्ति (या बुद्धि) विस्तार पाती है ॥५ ॥

५९०१. इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-अक्ष्लिली पुच्छिलीयते ॥६ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में व्यावहारिक (शक्ति या बुद्धि) पूछी जाती है ॥६ ॥

[सूक्त-१३५]

इस सूक्तके मन्त्र १ से ३ को प्रतिराधा, ४-५ को 'अतिवाद' कहा जाता है । प्रसिद्धि है कि प्रतिराधा से देवों द्वारा असुरों या आसुरी प्रवृत्तियों के मार्ग में रुकावट डाली गयी थी तथा अतिवाद से उन्हें खरी-खोटी सुनाकर हतप्रभ किया गया था-

५९०२. भुगित्यभिगत: शलित्यपक्रान्त: फलित्यभिष्ठित: ।
दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोऽथामो दैव ॥१ ॥

भुक् (भोक्ता) अभिगत (प्रत्यक्ष सामने रहने वाला) है । (गतिशील-जीव) अपक्रान्त (शरीर) को छोड़कर निकल जाने वाला) है तथा फल (कर्म फल) अभितिष्ठ (चारों ओर स्थिर रहने वाला) है । हे जरित: (स्तोता) ! दैव (नियन्ता) की दुन्दुभि बजाने (प्रतिष्ठा बढ़ाने) के लिए हम दो (वाणी और कर्म) के डंके उठाएँ ॥१ ॥

५९०३. कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम् ।
उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात् ॥२ ॥

कोश के बिल (खोह) में रखे धन की तरह, उत्तम जननी में, गाँठ में बँधे धन की तरह उत्पन्न होने वाले (मनुष्यों) में तथा जूते में पैर की तरह उत्पन्न पदार्थों में (वह दिव्य परमात्म चेतना स्थित) है ॥२ ॥

५९०४. अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् ।
पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरितरोऽथामो दैव ॥३ ॥

तुम्बी, घृतबिन्दु, पीपल और पलाश, चींटी, वट की कोपलें, (जल में) बिजली एवं किरणें (आकाश में), गोखुर आदि (पृथ्वी पर जैसे ऊपर ही रहते हैं, वैसे ही) स्तोतागण (स्तोत्रों द्वारा) देव शक्तियों को उठाए रखते हैं ।

५९०५. वी मे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर । सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि ॥४ ॥

(यज्ञ के समय) देवगण विशेष गतिशील (सक्रिय) हैं, हे अध्वर्यो ! शीघ्रता करो । तुम्हारी सुसत्य वाणियाँ (इन्हें या तुम्हें) आनन्द देने वाली हैं ॥४ ॥

५९०६. पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोऽथामो दैव ।
होता विष्टीमेन जरितरोऽथामो दैव ॥५ ॥

(इस समय) पत्नी (पालनकर्त्री प्रकृति) पत्नी (पोषिका) रूप में ही परिलक्षित हो रही है । हे स्तोताओ ! देवों को उठाओ, (परमात्मा) इनमें प्रविष्ट है, हे होता ! देवों को (आहुतियों और स्तोत्रों से) उन्नत करो ॥५ ॥

[अगले मंत्र वर्ग ६ से १० तक 'देवनीथ' कहलाते हैं । इस प्रसंग में कथा है कि आदित्यों और अंगिराओं में सोम यज्ञ हेतु स्पर्धा हुई । अग्नि नामक अंगिरा ने देवों की सहायता की । प्रसन्न होकर देवों ने उन्हें पृथ्वी दान में दी, उसे उन्होंने नहीं लिया तो उन्हें श्वेत अश्व प्रदान किया । अन्तिम मंत्र वर्ग ११ से १३ में 'भूतेच्छद:' नाम से इन्द्र की प्रशंसा है ।]

५९०७. आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।
तां ह जरित: प्रत्यायंस्तामु ह जरित: प्रत्यायन् ॥६ ॥

आदित्यों ने ही स्तुति करने वाले अंगिराओं को दक्षिणा प्रदान की । उस दक्षिणा को स्तोताओं ने ही प्राप्त किया, उसे उन्होंने स्वीकार किया ॥६ ॥

[यहाँ आदित्य स्वप्रकाशित अखण्ड तेज के प्रतीक हैं तथा अंगिरा, शरीरों (अंगों) में स्थित उसी तेज के अंश हैं ।]

५९०८. तां ह जरितर्न: प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्न: प्रत्यगृभ्ण: ।
अहानेतरसं न वि चेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवाम: ॥७ ॥

उस (दक्षिणा) को जरिता (स्तोताओं) ने हमारे लिए पाया और स्वीकार किया । हम प्राप्त (पदार्थों) में बल संचार करने वाली तथा यज्ञ में बल संचार करने वाली चेतना को आगे बढ़कर स्वीकार करें ॥७ ॥

५९०९. उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठ: । उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥८ ॥

यह श्वेत (तेजस्वी) बलवान् पदों से शीघ्र गमन करने वाला है । यह निश्चित रूप से शीघ्रतापूर्वक (कार्य या लक्ष्य की निर्धारित मात्रा) को पूरा करता है ॥८ ॥

५९१०. आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं राध: प्रति गृभ्णीह्यङ्गिर: ।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥९ ॥

हे अंगिरा ! आदित्य, वसु, रुद्र आदि आपको अनुदान देते हैं, आप इस धन को स्वीकार करें ।यह धन प्रभु (प्रभावयुक्त) विभु (विभूतियुक्त) बृहत् (बड़ा) और पृथु (विस्तार वाला) है ॥९ ॥

५९११. देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् । युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥१०॥

(हे अंगिराओ या मनुष्यो !) देवगण तुम्हें जो बल दें, वह सुचेतना सम्पन्न हो तथा तुम्हें प्रतिदिन प्राप्त हो । तुम उसे प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करो ॥१० ॥

५९१२. त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः । विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने (प्राणियों के लिए) आश्रय और हव्य (आहार) पहुँचाया है । विप्रों (याजकों) एवं स्तोताओं के लिए भी धनादि का वहन करें ॥११ ॥

५९१३. त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते ।
श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने पंख से ही चलने वाले कपोत (कबूतर या सहनशीलों) के लिए भी अनेक बार दान, पक्व अन्न, फल, जल आदि बहुत बार (प्रकट या पैदा) किया है ॥१२ ॥

५९१४. अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया । इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ॥१३ ॥

तीन प्रकार से तीन लड़ों (वाले पाश) से बँधे हुए अंगिरा बार-बार कहते हैं कि वे श्रेष्ठ अन्न की प्रशंसा करते हैं तथा निन्दित अन्न को परे (दूर) हटाते हैं ॥१३ ॥

[सूक्त-१३६]

यह सूक्त 'आहनस्य' नाम से जाना जाता है । इसमें प्रजा-उत्पत्ति का वर्णन माना जाता है । मन्त्र में 'अस्याः' सम्बोधन को 'योनि' के सन्दर्भ में लेने से 'पस' और मुष्क आदि के अर्थ भी गुप्तांग परक हो जाते हैं । 'अस्याः' को वेदिका या उर्वरा भूमि के रूप में लेने से व्यापक सृष्टि या राष्ट्र व्यवस्था का भाव बनता है । ' पस' का अर्थ पुरुषेन्द्रिय के अतिरिक्त 'पापनाशक' तथा राष्ट्र भी होता है । इसी प्रकार 'मुष्क' का अर्थ अण्डकोशों के अतिरिक्त 'गुच्छक' जटायुक्त तस्कर एवं विषनाशक भी होते हैं । मंत्र क्रमांक ५ से ११ तक महान् अग्नि का वर्णन आया है । वह सृष्टि उत्पादक पोषक अग्नि ही हो सकती है । इस आधार पर प्रारम्भिक मंत्र में 'अस्याः' सम्बोधन उत्पादक या पोषक वेदिका के सन्दर्भ में लिया जाना युक्तिसंगत लगता है-

५९१५.यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव।

जब इस (वेदिका या धरा) के सूक्ष्म, स्थूल (भाग) नष्ट किये जाते हैं, तो इसके मुष्कविद् (दोषनाशक विशेषज्ञ) गाय के खुर (जितने स्थल में) दो मछलियों की तरह कम्पित होते हैं ॥१ ॥

५९१६. यथा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् ।
विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ॥२ ॥

जब स्थूल पस (पापनाशक) द्वारा मुष्क (विषनाशक) अणुओं का प्रहार किया जाता है, तो धूलि भरे क्षेत्रों में गर्दभों की तरह इसकी दोनों प्रकार की सन्तति का विकास होता है ॥२ ॥

५९१७. यदल्पिकास्वल्पिका कर्कन्धूकेवपद्यते ।
वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ॥३ ॥

जब झरबेरी की तरह छोटे से छोटे (अति सूक्ष्म कण) गमन करते हैं, तो वे वायुरहित क्षेत्र के लिए वसन्त ऋतु जैसी तेजस्विता (उर्वरता) को प्राप्त करते हैं ॥३ ॥

५९१८ यद् देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः ।
सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥४ ॥

जब देवतुल्य प्रवाह, प्रधानतायुक्त उत्तम या कोमल क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं, तो नारी (स्त्री, वेदिका या धरा) आँखों देखे सत्य की तरह कुल सम्पन्न हो जाती है ॥४ ॥

५९१९. महानग्न्य तृप्नद्वि मोक्रददस्थान'सरन् । शक्तिकानना स्वचमशकं सक्तु पद्यम ॥

महान् अग्नि स्थिर भाव से आकर दोनों (नर-नारी या पृथ्वी-आकाश) को तृप्त करें । हम शक्ति के कानन (उपवन) से अपने चमस आदि में खाद्य पदार्थ, सत्तू आदि प्राप्त करें ॥५ ॥

५९२०. महानग्न्यु लूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् । यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवति ॥

महान् अग्नि ने उलूखल (हव्य कूटने वाली ओखली) का अतिक्रमण करते हुए कहा हे वनस्पते ! तुम्हें जिस लिए कूटा जाता है, वह (यज्ञ) ही सम्पन्न हो ॥६ ॥

५९२१. महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः । यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवति ॥७ ॥

महान् अग्निदेव ने कहा हे वनस्पते ! तुम नष्ट होकर भी पुनः उत्पन्न हो जाती हो, अतः तुम्हें पीसते हैं, वह(यज्ञीय प्रयोग) वैसा ही हो ॥७ ॥

५९२२.महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः । यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते ॥८ ॥

महान् अग्नि ने कहा हे वनस्पते ! तुम नष्ट होकर भी पुनः उत्पन्न हो जाती हो । जैसे जीवन तापित होकर स्वर्ग को प्राप्त होता है, वैसे ही नमनपूर्वक (हविरूप में) तुम्हें होमा जाता है ॥८ ॥

५९२३. महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशितं पसः । इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पं भजेमहि ॥

महान् अग्नि ने कहा बहिन (विश्व या काया में संव्याप्त अग्नि) ने पस (पापनाशक) को आवेशित किया है । हम इस (प्रक्रिया में उत्पन्न) वृक्ष के फल का (सूपों द्वारा शोधित करके) सेवन करें ॥९ ॥

५९२४. महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति ।
अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥१० ॥

महान् अग्नि 'कृक' ध्वनि के साथ शमी से (अरणी से) दौड़ते हैं । यह पता नहीं कौन सा मृग (भूचर) अपने सिर पर धाणिका (अन्न के भंडार) का वहन करता है ॥१० ॥

५९२५.महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति । इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्यौदनम् ॥

महान् अग्नि, दौड़ते हुए महान् अग्नि के पीछे दौड़ते हैं । आप इन गौओं (इन्द्रियों, भूमियों या वाणियों) की रक्षा करें । हे यम (नियमनकर्त्ता) ! हमें अन्न खिलाइए ॥११ ॥

५९२६. सुदेवस्त्वा महानग्नीर्बबाधते महतः साधु खोदनम् । कुसं पीवरो नवत् ॥१२ ॥

हे सुदेव ! आपको महान् अग्नि महत्त्वपूर्ण साधु (सराहनीय) ऐश्वर्य के लिए बाध्य करते हैं । वे कृशकाय और स्थूल सभी को झुका लेते हैं ॥१२ ॥

५९२७. वशा दग्धामिमाङ्गुरिं प्रसृजतोऽग्रतं परे । महान् वै भद्रो यभ मामद्ध्यौदनम् ॥१३ ॥

वशा (वश में की हुई जीवनी शक्ति) जली हुई अँगुली की तरह उग्रता को परे (दूर) हटा देती है । (यह) महान् कल्याणकारी यम रूप ही है, हमें ओदन (पका हुआ अन्न) खिलाएँ ॥१३ ॥

५९२८. विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महतः साधु खोदनम्।

कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति ॥१४ ॥

हे विशिष्ट देवो ! आप को महान् अग्नि बड़े साधु (सराहनीय) ऐश्वर्य के लिए बाध्य करते हैं। कुमारी पिंगलिका सद्य (अग्नि) , कार्द (कीचड़ आदि विकारों) को भस्म करती हुई पृथ्वी पर दौड़ती है ॥१४ ॥

५९२९. महान् वै भद्रो बिल्वो महान् भद्र उदुम्बरः।

महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥१५ ॥

कल्याणकारी बिल्व (वृक्ष या भेदक अग्नि) महान् है। कल्याणकारी उदुम्बर (वृक्ष या शक्ति शाली अग्नि) भी महान् है। यह महान् प्रतिष्ठा वाले बड़े साधु (सराहनीय) ऐश्वर्य के लिए बाध्य करते हैं ॥१५ ॥

५९३०.यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत्। तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत्॥

जो कुमारी पिंगलिका वसन्त (यौवन को) प्राप्त करे, वह तप्त तेलकुण्ड (व्यसनों) में पीड़ा पाती हुई शुद्धता का उद्धार करे ॥१६ ॥

[सूक्त-१३७]

[ऋषि-१-३ क्रमशः शिरिम्बिठि, बुध, वामदेव, ४-६ ययाति, ७-११ तिरश्चीराङ्गिरस अथवा द्युतान, १२-१४ सुकक्ष। देवता-अलक्ष्मीनाशन, २ वैश्वदेवी अथवा ऋत्विक्स्तुति, ३ दधिक्रा, ४-६ सोम पवमान, ७-८, १०-१४ इन्द्र , ८ (चतुर्थ पाद) मरुद्गण, ९ इन्द्राबृहस्पती। छन्द- अनुष्टुप्, २ जगती, ७-११ त्रिष्टुप्, १२-१४ गायत्री।]

५९३१.यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः। हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥१॥

गोले धारण करने वाली जब तुम अग्रिम होकर आगे बढ़ती हो, तो वीर इन्द्रदेव के सभी शत्रु जल के बुद्बुदों के समान विनष्ट हो जाते हैं ॥१ ॥

[तोप की तरह भीषण आघात करने वाली किसी शक्ति या उपकरण का संकेत यहाँ है, जो शत्रुओं को पानी के बुलबुलों की तरह नष्ट करने में समर्थ हैं।]

५९३२. कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये।

निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥२ ॥

हे कर्मशील मनुष्यो ! इन्द्रदेव श्रेष्ठ सुखों के दाता हैं। उन सुखदायक इन्द्रदेव को अपने अन्तरंग में धारण करो और अन्न, बल, ऐश्वर्यादि लाभ के लिए उन्हें प्रेरित करो। उनकी प्रार्थना करो तथा उन्हें शान्ति प्रदान करो। इस भूलोक में संरक्षण, कष्टों के निवारण के लिए तथा सोमपान के निमित्त अदिति पुत्र इन्द्रदेव का आवाहन करो ॥

५९३३. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।

सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥३ ॥

हम विजय से सम्पन्न, व्यापक तथा वेगवान् दधिक्रादेव की प्रार्थना करते हैं। वे हमारी मुख आदि इन्द्रियों को सुरभित (श्रेष्ठ) बनाएँ तथा आयु की वृद्धि करें ॥३ ॥

५९३४. सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।

पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥४ ॥

मधुर और हर्ष प्रदायक सोमरस पवित्र होकर इन्द्रदेव के लिए तैयार होता है । हे सोमदेव ! आपका यह आनन्ददायक रस देवगणों के पास पहुँचे ॥४ ॥

५९३५.इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् । वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ।

इन्द्र के लिए शास्त्रों के अनुसार सोम शोधित होता है ।वह ज्ञानरक्षक, समर्थ सोम यज्ञ में प्रयुक्त होता है ॥५॥

५९३६.सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः । सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥६॥

वाणी के प्रेरक, ऐश्वर्यवान् , इन्द्रदेव के मित्र, सोम प्रतिदिन सहस्रों धाराओं से कलश में शोधित होता है ॥६॥

५९३७. अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमपस्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥७ ॥

त्वरित गतिशील दस हजार सैनिकों सहित आक्रमण करने वाले, सम्पूर्ण संसार को दुःख देने वाले, 'अंशुमती' नदी (यमुना) के तटपर विद्यमान (सबको आकर्षित करके अपने चंगुल में फँसा लेने वाले) कृष्णासुर पर सर्वप्रिय इन्द्रदेव ने प्रत्याक्रमण करके सेनासहित उसे पराजित कर दिया ॥७ ॥

५९३८. द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥८ ॥

इन्द्रदेव ने कहा 'अंशुमती' नदी के तट पर गुफाओं में घूमते हुए 'कृष्णासुर' को हमने सूर्य के सदृश देख लिया है । हे शक्तिशाली मरुतो ! हम आपके सहयोग की आकांक्षा करते हैं । आप संग्राम में उनका संहार करें ॥८॥

५९३९. अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्या३चरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥९ ॥

'अंशुमती' नदी के तट पर शीघ्रगामी कृष्णासुर तेजसम्पन्न होकर निवास करता है । इन्द्रदेव ने बृहस्पतिदेव की सहायता से सभी ओर से आक्रमण के लिए बढ़ती हुई उसकी सेनाओं को परास्त किया ॥९ ॥

५९४०. त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥१० ॥

अजातशत्रु हे इन्द्रदेव ! वृत्रासुर तथा सात राक्षसों के उत्पन्न होते ही आप उनके शत्रु हो गये । (राक्षसों द्वारा स्थापित किये गये) अंधकार से द्युलोक और पृथ्वी को (उद्धार करके) आपने प्रकाशित किया । अब आपने इनके लोकों को भली-भाँति स्थिर करके ऐश्वर्यवान् तथा सौन्दर्यशाली बना दिया ॥१० ॥

५९४१. त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥११ ॥

वज्र धारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप रिपुओं को दबाने वाले हैं । असीमित शक्ति वाले शुष्णासुर को आपने अपने वज्र से विनष्ट किया । राजर्षि 'कुत्स' के निमित्त आपने उसे (शुष्णासुर को) अपने हथियारों द्वारा काट डाला तथा अपने बल से गौओं (किरणों या जल धाराओं) को उत्पन्न किया ॥११ ॥

५९४२. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥१२ ॥

जो वृत्रहन्ता हैं, हम उनकी प्रशंसा और स्तुति करते हैं। वे दानदाता इन्द्रदेव हमें धन-धान्य से परिपूर्ण करें ॥१२ ॥

५९४३.इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥१३ ॥

दान देने के लिए ही उत्पन्न हुए इन्द्रदेव बलवान् बनने के लिए सोमपान करते हैं । प्रशंसनीय कार्य करने वाले वे देव, सोम पिलाये जाने योग्य हैं ॥१३ ॥

५९४४. गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥१४ ॥

वज्रपाणि, स्तुत्य, बलवान्, तेजस्वी और अपराजेय इन्द्रदेव साधकों को ऐश्वर्य देने की इच्छा रखते हैं ॥१४ ॥

[सूक्त-१३८]

[ऋषि- वत्स । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

५९४५. महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥१ ॥

जल की वृष्टि करने वाले मेघों के सदृश महान् और तेजस्वी वे यशस्वी इन्द्रदेव अपने प्रिय पात्रों की स्तुतियों से समृद्ध होकर व्यापक रूप ग्रहण करते हैं ॥१ ॥

५९४६. प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥२ ॥

जब आकाश मार्ग से गमन करने में सक्षम अश्व, यज्ञ में जाने के लिए तत्पर इन्द्रदेव को वेगपूर्वक (यज्ञस्थल पर) ले जाते हैं, तब उद्‌गातागण यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले मंत्रों से उन इन्द्रदेव की स्तुति करते हैं ॥२ ॥

५९४७. कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ॥३ ॥

जब कण्व वंशीय ऋषिगण स्तुतियों के माध्यम से इन्द्रदेव को यज्ञ साधक (यज्ञ रक्षक) बना लेते हैं, तब (यज्ञ रक्षार्थ) शस्त्रों की आवश्यकता नहीं रह जाती, ऐसा कहा गया है ॥३ ॥

[सूक्त-१३९]

[ऋषि- शशकर्ण । देवता-अश्विनीकुमार । छन्द- बृहती, २-३ गायत्री, ५ ककुप् उष्णिक् ।]

५९४८. आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों वत्स ऋषि की सुरक्षा के निमित्त निश्चित रूप से पधारें । उन्हें क्रोधी मनुष्यों से सुरक्षित विशाल आवास प्रदान करें । तत्पश्चात् आप दोनों उनके रिपुओं को दूर भगाएँ ॥१ ॥

५९४९. यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु । नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जो ऐश्वर्य अन्तरिक्ष, दिव्यलोक तथा (पृथ्वी पर) पाँच प्रकार के मनुष्यों के पास उपलब्ध रहता है, वही ऐश्वर्य हमें भी प्रदान करें ॥२ ॥

५९५०. ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः । एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! कण्व पुत्रों ने तथा जिन विद्वान् पुरुषों ने अपनी प्रार्थनाओं के द्वारा आपके कर्मों को ज्ञात कर लिया है, आप उनकी जानकारी रखें अर्थात् उनकी रक्षा करें ॥३ ॥

५९५१. अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके निमित्त यह घर्म (गर्मी या ऊर्जा उत्पादक-यज्ञ अथवा सोम) स्तोत्रों (मंत्रशक्ति)

द्वारा सिञ्चित किया जा रहा है । हे बलसम्पन्न देवो ! यही वह मधुर सोम है, जिससे आप वृत्र को देख लेते हैं ॥४ ।

[प्रकृति एवं शरीर में छद्मरूप से छिपे वृत्ररूप घातक जीवों तक अश्विनीकुमारों (आरोग्यदायक प्रवाहों) को प्रभावपूर्ण ढंग से पहुँचाने में मंत्रशक्ति का प्रयोग किया जाता रहा है ।]

५९५२. यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् । तेन माविष्टमश्विना ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस शक्ति से आप दोनों ने ओषधियों, विशाल वृक्षों तथा जल को रक्षित किया, उसी बल से हमारी भी रक्षा करें ॥५ ॥

[सूक्त-१४०]

[ऋषि- शशकर्ण । देवता- अश्विनीकुमार । छन्द- बृहती, २-४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।]

५९५३. यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों जगत् के पालनकर्त्ता तथा सभी को स्वस्थ रखने वाले हैं । केवल ज्ञान के द्वारा ये स्तोतागण आपको नहीं प्राप्त कर सकते; क्योंकि आप तो हवि प्रदान करने वाले याजकों के निकट जाते हैं ॥१ ।

[केवल ज्ञान पर्याप्त नहीं, ज्ञान के अनुरूप यज्ञीय कर्मप्रयोगों से वाञ्छित लाभ मिलते हैं ।]

५९५४. आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमं चिकेत वामया । आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ।

अश्विनीकुमारों की स्तुतियों को स्तोताओं ने अपनी श्रेष्ठ बुद्धि से सम्पन्न किया । उन्होंने मधुर सोमरस तथा घृत सिञ्चित हवि को समर्पित किया ॥२ ॥

५९५५. आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना । आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ।

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों तेज चलने वाले रथ पर आरूढ़ होते हैं । नभ की तरह विस्तृत हमारी स्तुतियाँ आपको प्राप्त हों ॥३ ॥

५९५६. यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥४ ॥

हे सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! आज जिस प्रकार शस्त्र वचनों (स्तुतियों) द्वारा आपको बुलाया गया है, उसी प्रकार मुझ कण्व ऋषि द्वारा स्तोत्रों के माध्यम से आपका आवाहन किया जाता है ॥४ ॥

५९५७. यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार आप दोनों का कक्षीवान्, व्यश्व, दीर्घतमा ने आवाहन किया । जिस प्रकार यज्ञ स्थल पर वेनपुत्र पृथी ने आवाहित किया था, उसी प्रकार हम आपका इस समय आवाहन करते हैं, आप इसे (हृद्गत भाव को) जानें ॥५ ॥

[सूक्त-१४१]

[ऋषि- शशकर्ण । देवता-अश्विनीकुमार । छन्द- विराट् अनुष्टुप्, २जगती, ३ अनुष्टुप्, ४-५ बृहती ।]

५९५८. यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥१ ॥

सबके घरों की रक्षा करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारे तथा हमारे घर और समस्त संसार के पालक बनें । आप हमारे पुत्र-पौत्रों के कल्याण के लिए घर पर पधारें ॥१ ॥

५९५९. यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! यदि आप इन्द्रदेव के साथ उनके रथ पर आसीन होकर गमन करते हैं, वायुदेव के साथ एक जगह निवास करते हैं, अदिति पुत्रों अथवा ऋभु संज्ञक देवों के साथ प्रेमपूर्वक रहते हैं तथा विष्णु के विशिष्ट पदक्षेप के साथ तीनों लोकों में विराजते हैं, तो हमारे निकट भी पधारें ॥२ ॥

५९६०. यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये । यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥३ ॥

अश्विनीकुमारों का संरक्षण उच्च कोटि का है । संग्राम में रिपुओं का विनाश करने में वे पूर्ण सक्षम हैं, अतः अपनी रक्षा के लिए यदि उन्हें हम पुकारें, तो वे निश्चित रूप से पधारेंगे ॥३ ।

५९६१. आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥४ ॥

यह सोमरस 'तुर्वश' और 'यदु' के घर पर विद्यमान है, यह कण्व पुत्रों को प्रदान किया गया था । हे अश्विनीकुमारो ! यह हव्यरूप सोमरस आपके लिए प्रस्तुत है, अतः आप (इसका पान करने के लिए) पधारें ॥४ ॥

५९६२. यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥५ ॥

सत्यनिष्ठ हे अश्विनीकुमारो ! जो ओषधियाँ निकट तथा दूर प्रदेश में उपलब्ध हैं, उनसे संयुक्त रहने हेतु अहंकाररहित वत्स ऋषि के लिए श्रेष्ठ आवास प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त-१४२]

[ऋषि-शशकर्ण । देवता- अश्विनीकुमार । छन्द- अनुष्टुप्, ५-६ गायत्री ।]

५९६३. अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः । व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥१ ॥

दोनों अश्विनीकुमारों की दिव्य वाणियों से हम चैतन्य हो गये हैं । हे उषा देवि ! आप अन्धकार को दूर करके सभी मनुष्यों को सद्‌बुद्धि तथा उपयुक्त ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१ ॥

५९६४. प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि । प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ।

हे प्रकाशमान तथा महान् उषा देवि ! आप अश्विनीकुमारों को प्रेरित करें । हे याजको ! आप अश्विनीकुमारों को आनन्दप्रदायक प्रचुर हव्य प्रदान करें ॥२ ॥

५९६५. यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे । आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥

हे उषादेवि ! जब आप स्वर्णिम किरणों से सम्पन्न होकर चलती हैं, सूर्य के तेज से प्रकाशित हो जाती हैं, उस समय अश्विनीकुमारों का रथ मनुष्यों को स्वास्थ्य लाभ प्रदान करने के लिए यज्ञ मण्डप में प्रवेश करता है ॥३ ॥

५९६६. यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः । यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ।

हे अश्विनीकुमारो !जब पीतवर्ण की सोमलताएँ गौ के थन से दूध निकालने के समान निचोड़ी जाती हैं तथा जब हम देवत्व की कामना से अपने स्तुति वचनों द्वारा आपकी प्रार्थना करते हैं, तब आप हमारे संरक्षक हों ॥४ ॥

५९६७. प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥५ ॥

श्रेष्ठ ज्ञान से सम्पन्न हे अश्विनीकुमारो ! आप हमें ऐसी प्रेरणा प्रदान करें, जिससे हम शक्ति, ऐश्वर्य, सहनशीलता तथा श्रेष्ठ कार्य करने का कौशल प्राप्त कर सकें ॥५ ॥

५९६८. यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥६ ॥

प्रशंसा के योग्य हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारे पिता तुल्य हैं । अतः जिस प्रकार पिता अपने पुत्रों के लिए प्रत्येक सुख-साधन उपलब्ध कराता है, उसी प्रकार आप हमें हर्ष प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त-१४३]

[ऋषि-पुरुमीढ और अजमीढ, ८ (पूर्वार्द्ध) वामदेव, ८-९ मेध्यातिथि मेधातिथी । देवता-अश्विनीकुमार । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

५९६९. तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आज हम आपके प्रसिद्ध वेग वाले तथा गौ प्रदान करने वाले रथ को आहूत करते हैं । काष्ठ स्तम्भयुक्त वह रथ सूर्या को भी धारण करता है । वह स्तुतियों को ढोने वाला, विशाल तथा ऐश्वर्यवान् है ॥

५९७०. युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥२ ॥

हे द्युलोक (अथवा दिव्यता) का पतन न होने देने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों देवता हैं । आप दोनों उस श्रेष्ठता को अपने बल के द्वारा प्राप्त करते हैं । जब विशाल अश्वों वाले रथ आपको वहन करते हैं, तब आप दोनों के शरीर को सोमरस पुष्ट करता है ॥२ ॥

५९७१. को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३ ॥

कौन सोमरस प्रदाता आज अपनी सुरक्षा के लिए अथवा अभिषुत सोमरस को पीने के लिए आपकी प्रार्थना करते हैं ? नमन करने वाले कौन लोग आप दोनों को यज्ञ के लिए प्रवृत्त करते हैं ? ॥३ ॥

५९७२. हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥४ ॥

अनेकों प्रकार से अपनी सत्ता को प्रकट करने वाले तथा सत्य का पालन करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों इस यज्ञ में स्वर्णिम रथ द्वारा पधारें, मधुर सोमरस पिएँ तथा पुरुषार्थी मनुष्यों को मनोहर ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४ ॥

५९७३. आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५ ॥

श्रेष्ठ स्वर्णिम रथ द्वारा आप दोनों द्युलोक या भूलोक से हमारी ओर पधारें । आपके अभिलाषी अन्य याजक आपको बीच में ही अवरुद्ध न कर सकें, क्योंकि पुरातनकाल से ही हमने आपके लिए स्तुतियाँ प्रस्तुत की हैं ॥५

५९७४. नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥६ ॥

हे रिपुओं के संहारक अश्विनीकुमारो ! आप अनेक वीरों से सम्पन्न प्रचुर ऐश्वर्य हम दोनों के लिए प्रदान करें। हे अश्विनीकुमारो ! पुरुमीढ के स्तोताओं ने आपको स्तुति द्वारा प्राप्त किया है और अजमीढ के स्तोताओं की प्रशंसा भी उसी के साथ सम्मिलित है ॥६ ॥

५९७५. इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना।
ऊरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७ ॥

शक्तिरूपी अन्न को अपने समीप रखने वाले हे अश्विनीकुमारो ! समान विचारों वाले आप दोनों के लिए हम स्तुतियाँ समर्पित करते हैं। वे श्रेष्ठ स्तुतियाँ हम याजकों के लिए फल देने वाली हों। हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारी सुरक्षा करें। हमारी कामनायें आपकी ओर गमन करती हैं ॥७ ॥

५९७६. मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥८ ॥

वनौषधियाँ हमारे लिए मधुरता से पूर्ण हों तथा द्युलोक, अन्तरिक्ष और जल हमारे लिए मधुर हों। क्षेत्र के स्वामी हमारे लिए मधु-सम्पन्न हों। हम रिपुओं द्वारा अहिंसित होकर उनका अनुगमन करें ॥८ ॥

५९७७. पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत् ताँ उप याता पिबध्यै ॥९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर जल की वृष्टि करने वाला आपका कार्य अत्यन्त सराहनीय है। गौओं को खोजने जैसे सहस्रों पुण्य कार्यों के समय सोमरस पान करने के लिए आप यहाँ पधारें ॥९ ॥

॥ इति विंशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ इति अथर्ववेदसंहिता समाप्ता ॥